मैथिलीशरण गुप्त
काव्य-संदर्भ
कोश

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-६

मैथिलीशरण गुप्त काव्य-संदर्भ कोश

प्रधान सम्पादक

डा० नगेन्द्र

सम्पादक-लेखक

प्रो० शान्तिस्वरूप गुप्त

डॉ० नगीनचन्द सहगल

डॉ० सतीश गर्ग

'व्यक्तित्व और कृतित्व' के रचनाकार

जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व	डा० सतीश गर्ग
रचना-संसार	डा० सतीश गर्ग
भारतीय संस्कृति के आख्याता कवि	प्रो० शान्तिस्वरूप गुप्त
राष्ट्रीय भावना	प्रो० शान्तिस्वरूप गुप्त
नारी भावना	प्रो० शान्तिस्वरूप गुप्त
भक्ति-साधना	डा० सतीश गर्ग
रस-योजना	प्रो० शान्तिस्वरूप गुप्त
प्रबन्ध-कल्पना और प्रगीत तत्व	डा० नगीनचन्द सहगल
काव्यरूप तथा छन्द-विधान	डा० नगीनचन्द सहगल
काव्यभाषा	डा० नगीनचन्द सहगल
मूल्यांकन	डा० नगेन्द्र

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६
 / संस्करण : प्रथम, १९८७ / मूल्य : एक सौ पचास रुपये

MAITHILI SHARAN GUPTA : KAVYA-SANDARBHA KOSHA
Edited by Dr. Nagendra Rs. 150.00
Published by Prabhat Prakashan, Chawri Bazar, Delhi-110006

निवेदन

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य पर आलोचनात्मक सामग्री तो प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु किसी सन्दर्भ-कोश का प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी अभाव की पूर्ति, कम-से-कम आंशिक पूर्ति का प्रयास है।

यह कोश पाँच-खंडों में विभक्त है : (१) व्यक्तित्व और कृतित्व, (२) ग्रन्थ-सार, (३) पात्र-परिचय, (४) सन्दर्भ एवं अन्तर्कथाएँ और (५) विशिष्ट शब्दावली। इसकी परिधि केवल काव्य-ग्रन्थों तक ही सीमित है : अर्थात् इसमें कवि के अनुवाद-ग्रन्थों, नाटकों तथा गद्य-लेखों का अन्तर्भाव नहीं किया गया है। खण्ड १ में, जैसाकि उसके शीर्षक से ही स्पष्ट है, गुप्तजी के व्यक्तित्व और उनके कृतित्व की कुछ प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन है। 'ग्रन्थ-सार' में उनके काव्य-ग्रन्थों का सार-संक्षेप—कथा-काव्यों का कथा-सार और शेष की विषय-वस्तु का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। खण्ड ३ अर्थात् 'पात्र-परिचय' में ऐसे प्रमुख पात्रों के व्यक्ति-वैशिष्ट्य का निरूपण है जिनका एक या एकाधिक कृतियों में चरित्र-विकास किया गया है। 'सन्दर्भ' तथा 'अन्तर्कथाओं' में विभिन्न काव्य-ग्रन्थों में अनुस्यूत प्रसंगों का आख्यान है। ऐसे सभी पात्र जिनके नामों का ही उल्लेख मात्र है, सन्दर्भों के अन्तर्गत रखे गए हैं। ये सन्दर्भ सामान्यतः तीन प्रकार के हैं—पौराणिक, ऐतिहासिक और शास्त्रीय। शास्त्रीय सन्दर्भ में कुछ-एक ऐसे प्रसंगों की व्याख्या है जिनका सम्बन्ध दर्शन या काव्यशास्त्र आदि से है। उदाहरण के लिए :

बैठीं नाव निहार, लक्षणा-व्यंजना,
'गंगा में घर' वाक्य सहज वाचक बना।

शास्त्रीय सन्दर्भ है जिसका सम्बन्ध संस्कृत-काव्यशास्त्र के साथ है। अन्तर्कथाएँ भी वस्तुतः 'सन्दर्भ' के अन्तर्गत ही आती हैं—अन्तर केवल इतना ही है कि इनमें कथा की एक रूपरेखा विद्यमान रहती है। खण्ड ५ में गुप्तजी के काव्य-ग्रन्थों में बिखरे हुए अनेक अप्रचलित अथवा अर्ध-प्रचलित शब्दों के अर्थ दिए गए हैं। इनमें तत्सम, देशज तथा पारिभाषिक—सभी प्रकार के शब्दों का समावेश है।

काव्य-समीक्षा जहाँ किसी रचना की शक्ति और सीमा का विवेचन करती हुई उसके सौन्दर्य का उद्घाटन करती है, वहाँ सन्दर्भ-कोश उसके रूप-विधान में गुम्फित अनेक ग्रन्थियों को खोलने में सहायता देता है—जिसके बिना न तो काव्य का अर्थ-बोध ही सम्भव है और न उसके मर्म का उद्घाटन।

यदि हमारा यह कोश मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के आस्वादन में किसी प्रकार योगदान कर सका, तो कवि की जन्म-शताब्दी के पुण्य अवसर पर आयोजित यह सारस्वत श्राद्ध कृतकार्य हो जाएगा।

वसन्त-पंचमी—१९८७ —नगेन्द्र

कार्य-विभाजन

कोश के कार्य का विभाजन इस प्रकार किया गया है—लेखक-मंडल के प्रत्येक सदस्य ने अपने नाम के नी सूचीबद्ध ग्रन्थों की सभी प्रविष्टियाँ यथा—ग्रन्थ-सार, पात्र-परिचय, सन्दर्भ एवं अन्तर्कथाएँ और विशिष्ट शब्दों, प पंक्तियों का अर्थ—स्वतंत्र रूप से लिखी हैं। ग्रन्थ के आगे उस संस्करण विशेष का उल्लेख कर दिया गया है जिसके आध पर उससे सम्बद्ध प्रविष्टियाँ तैयार की गयी हैं। प्रथम खण्ड में दस विवेचनात्मक निबन्ध हैं जिनके लेखकों के नाम यथास्थ दे दिये गये हैं।

शान्ति स्वरूप गुप्त

१. उच्छ्वास	प्रथमावृत्ति, २०१७ वि०
२. गुरुकुल	मार्गशीर्ष शुक्ल ६, १६८५
३. हिन्दू	चतुर्थावृत्ति, २०१३ वि०
४. झंकार	द्वितीयावृत्ति, २०६७ वि०
५. दिवोदास	पाठ्य संस्करण, १६८० ई०
६. स्वस्ति और संकेत	द्वितीय साकेत संस्करण, १६८३ ई०
७. पद्य प्रबन्ध	प्रथम संस्करण, १६१२ ई०
८. स्वदेश संगीत	प्रथम संस्करण, १६८२ वि०
९. मंगल घट	प्रथमावृत्ति, १६६४ वि०
१०. रंग में भंग	प्रथम साकेत संस्करण, १६८३
११. पत्रावली	२०१० वि०
१२. वैतालिक	२००२ वि०
१३. अंजलि और अर्घ्य	प्रथमावृत्ति, २००७ वि०
१४. भारत भारती	प्रथम साकेत संस्करण, १६८३
१५. आस्वाद	प्रथम संस्करण, १६३८ ई०

नगीनचन्द सहगल

१. पंचवटी	चौबीसवां, २००५ वि०
२. साकेत	२०१० वि०
३. प्रदक्षिणा	प्रथम साकेत संस्करण, १६८५ ई०
४. अनघ	पंचम, २००५ वि०
५. जयनि तथा पृथिवीपुत्र	प्रथम, २००७ वि०
६. कुणालगीत	२००२ वि०
७. विकट भट	चतुर्थ, २००३ वि०
८. अर्जन विसर्जन	द्वितीय, २००३ वि०
९. विश्ववेदना	द्वितीय, २००३ वि०
१०. काबा कर्बला	द्वितीय, २००४ वि०
११. अजित	प्रथम, २००३ वि०
१२. लीला	प्रथम, १०१७ वि०
१३. यशोधरा	सन् १६३२
१४. रत्नावली	प्रथम, २०१७ वि०

सतीश गर्ग

१. जयद्रथ वध	वि० १६७६
२. किसान	वि० २०१३
३. शक्ति	वि० २०१२
४. राजा प्रजा	वि० २०१३
५. शकुन्तला	वि० २०१३
६. युद्ध	वि० २००६
७. विष्णुप्रिया	वि० २०१७
८. विजय पर्व	सन् १६६३
९. हिडिम्बा	वि० २०१३
१०. जयभारत	वि० २०१४
११. द्वापर	वि० २०१६
१२. नहुष	वि० २०१४
१३. सिद्धराज	सन् १६८१
१४. सैरंध्री	सन् १६८३
१५. वनसंहार	वि० १६८७
१६. वन वैभव	वि० १६८७
१७. भूमिभाग	वि० २०१०

विषय-सूची

संकेत चिह्न

अं० अ०—अंजलि और अर्घ्य
अजित—अजित
अनघ—अनघ
अ० वि०—अर्जन और विसर्जन
आस्वाद—आस्वाद
कावा०—कावा और कर्बला
कि०—किसान
कु० गी०—कुणाल गीत
ज० व०—जयद्रथ वध
जयनि—जयनि
ज० भा०—जय भारत
गुरु०—गुरुकुल
उ०—उच्छ्वास
झं०—झंकार
द्वा०—द्वापर
दि०—दिवोदास
न०—नहुष
पंच०—पंचवटी
पत्रा०—पत्रावली
प० प्र०—पद्य-प्रबन्ध
पृथ्वी०—पृथ्वीपुत्र
भूमि०—भूमिभाग
भा० भा०—भारत भारती
मं० घ०—मंगल घट
प्रद०—प्रदक्षिणा
यशो०—यशोधरा
यु०—युद्ध
रंग०—रंग में भंग
रत्ना०—रत्नावली
रा० प्र०—राजा प्रजा
ली०—लीला
व० सं०—वक संहार
व० वै०—वन वैभव
वि० भ०—विकट भट
वि० प०—विजय पर्व
वि० वे०—विश्ववेदना
वैता०—वैतालिक
वि० प्रि०—विष्णुप्रिया
श०—शक्ति
शकु०—शकुंतला
सा०—साकेत
सिद्ध०—सिद्धराज
स्व० सं०—स्वदेश संगीत
स्वस्ति—स्वस्ति और संकेत
सै०—सैरन्ध्री
हि०—हिंदू
हिडि०—हिडिम्बा

खण्ड १

व्यक्तित्व और कृतित्व

जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व

व्यक्तित्व—लाला मदन मोहन जु पिता की सखी-भाव ी उपासना के कारण मिथिलाधिप नन्दनशरण बने और वेद्यालय के रजिस्टर की एक पंक्ति में न समा पाने के कारण ांथिलीशरण बन गए। बुन्देलखण्ड के धनाढ्य गहोई (गृह-ति) वंश अर्थात् वैश्य होने के कारण उन्होंने 'गुप्त' शब्द को ी अङ्गीकृत कर लिया। इस तरह 'कनकने' परिवार में न्मा हमारा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त बन गया। बाल्य-ाल में ही पिता के उपनाम कनकलता के स्थान पर स्वर्ण-ता नाम से छप्पय लिख दिया और किशोरावस्था में रखे सिकेश, रसिकेन्दु नाम को आचार्य द्विवेदी के कारण छोड़ना ड़ा। हाँ! मधुप नाम से उनके अनुवाद तथा नित्यानन्द ौर 'भारतीय' नाम से अंग्रेजी शासन के विरोध में लिखी विताएँ भी प्रकाशित हुईं।

यह तो थी नाम की कहानी। गुप्त जी का जन्म ३ गस्त १८८६ को भाण्डेर से चिरगाँव में आकर बसे राघव ी के प्रपौत्र, सेठ रामचरण के यहाँ, चिरगाँव में हुआ था। नकी माता का नाम काशीबाई था। ये अपने पाँच भाइयों तीसरे स्थान पर थे। इनका पहला विवाह नौ वर्ष की वस्था में हुआ था तथा पहली और दूसरी पत्नी के निधन पश्चात् तीसरा विवाह भी हुआ। इनकी तीसरी पत्नी ा नाम सरयूदेवी है जो अभी जीवित हैं। गुप्त जी को नौ न्तानों के निधन का दुःख सहना पड़ा। उनकी एकमात्र न्तान श्री उर्मिलाचरण गुप्त पैतृक आवास चिरगाँव में ही ावास करते हैं। १२ दिसम्बर १९६४ को कवि का पंच ौतिक शरीर पंचतत्व को प्राप्त हो गया। उन्होंने इस र्गागार भारत-भू पर अठहत्तर वर्ष चार महीने छः दिन का ोवन जिया था। स्वर्गीय भवानी भाई के शब्दों में—

वैसे तो जीवन में भी
यश, मान और कीर्ति लक्ष्मी
और इनके विलोम।
तुमने समान भाव से
गरल और सोम को पिया था।
तुमने धरती का यह जीवन
लगभग गीता के ढंग से जिया था।

जहाँ तक पारिवारिक सम्पन्नता और प्रतिष्ठा की बात है, कवि ने स्वयं कहा है—

जन्म मेरा ऐसे सुसम्पन्न घर में हुआ
घाटे से विपन्नता की ओर जा रहा जो
× × × ×
आर्थिक अवस्था हीन होती गई ब्याज से
यद्यपि दिवाला नहीं पिटने दिया गया।

गुप्तजी की कालानुसरण क्षमता उनके व्यक्तित्व का एक अङ्ग है। उनकी वेशभूषा भी इसका अपवाद नहीं है। बचपन में स्वर्णाभूषण पहनने पड़े तो किशोरावस्था में साहबी पोशाक भी पहिनी और उसके बाद घुटनों तक धोती, ढीला कुर्ता, खाकी रंग का साफा, बुन्देलखण्डी लाल पगड़ी, छकलिया अङ्गा, बण्डी, अचकन, कोट, तनीदार मिर्जई, पजामा आदि भी अदलते-बदलते रहे। मूँछ-दाढ़ी का भी यही हाल रहा। बाद में साम्प्रदायिक तिलक का भी लोप हो गया, किन्तु तुलसी की कण्ठी सदैव उनके साथ रही। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव से अपनाई धोती, जवाहरकट बण्डी, कुर्ता, जूते, टोपी, चप्पल, मोटे फ्रेम का चश्मा और जेब-घड़ी आदि पहिरावा उन्होंने अन्तिम समय तक अपनाए रखा।

हम जैसे शोधकर्त्ता जब गुप्त जी की शिक्षा-दीक्षा के विषय में चिंतन करते हैं तो लगता है कि वे कबीर होकर भी कबीर नहीं थे और तुलसीदास होकर भी तुलसीदास नहीं थे क्योंकि—

शिक्षा का सुयोग रहा फिर भी—
मैंने खेल-कूद में अच्छे दिन खो दिए,
खेल मनोरंजक थे, विद्या तो रटंत थी—
सो वह विमुख हुई! बोली "कर्महीन, जा—
नोंन-गुड़ बेचना भी तुझको न आएगा।
इस अभिशाप में भी एक वरदान था।
डंडी मारने से परित्राण मिला मुझको,

बुद्धि से पतित को सहारा रहा मन का,
वह कविता की ओर खींच मुझे ले गया।

अंग्रेजी पढ़ाकर डिप्टी कलैक्टर बनाने की आशा से गुप्त जी को गाँव के तीसरे दर्जे से हटाकर झाँसी के मैक्डानल स्कूल में भेजा गया। यहाँ वे छठी कक्षा तक पढ़े किंतु इसी बीच गेंद-बल्ला, डोर-पतंग और रात में नाटक, चेटक आदि देखने में उनका मन रम गया। गुप्त जी के ही शब्दों में "कुछ दिन पीछे मैं झाँसी से घर बुला लिया गया, बहुत साधन नष्ट करके कोरा का कोरा लौट आया था।" वास्तविकता तो यह है कि दद्दा पढ़ने के लिए नहीं, पढ़े जाने के लिए पैदा हुए थे। उन्होंने स्वयं भी एक भाषण में कहा था—"मैं पढ़ने के लिए नहीं जन्मा हूँ। मैंने इसलिए जन्म लिया है कि लोग ही मुझे पढ़ें।" यह कथन गर्वोक्ति न होकर उस व्यक्तित्व का परिचायक है जिसका निर्माण एक तो तिलस्मी, जासूसी उपन्यासों, मंत्रशास्त्र, इन्द्रजाल, आल्हा, योद्धाओं और डाकुओं की कथाओं आदि दूसरे वैद्यक का माधवनिदान, संस्कृत के शृंगारिक पद्य, रसराज, विद्यासुन्दर पंचाशिका, भर्तृहरि-शतक, हितोपदेश, लघु सिद्धान्त कौमुदी, मध्यकौमुदी, अमर-कोष आदि, तीसरे गीता, रामायण, अध्यात्म रामायण, राम-यश दर्पण आदि ग्रन्थों ने किया था और इसके बाद तो भास, कालिदास, भवभूति उनके कंठहार बन गये। हिन्दी में तुलसी, सूर, रहीम से लेकर रीतिकालीन सभी काव्य-ग्रन्थों, नायिका-भेद तथा अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का गुप्त जी ने पारायण किया। गुप्त जी ने संस्कृत और हिंदी की रचनाओं को ही नहीं, बंगला के कवि एवं लेखकों में माइकेल मधुसूदन-दत्त, द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, नवीनचन्द्रसेन, बंकिम और शरत् आदि के साहित्य का भी अध्ययन किया था। इतना ही नहीं वह संगीत की ओर भी आकृष्ट हुए थे। इस सारे स्वाध्याय का श्रेय गुप्त जी ने एक ही व्यक्ति को दिया है। वह थे उनके बाल्यसखा मुंशी अजमेरी।

मेरे बाल्य बन्धु अजमेरी कलकंठ से,
श्लोक और छंद नित्य गाकर सुनाते थे,
जाति से वह डाढ़ी और वैष्णव थे धर्म से,
सात्विक स्वभाव वाले ऐसे मुसलमान थे
जिन पर भारतेन्दु कोटि हिंदू बार दें।

गुप्त जी निर्भीकता, नम्रता, शील, शिष्टाचार, सहिष्णुता, उत्साहदान, आत्मविश्वास, कर्तव्य-निष्ठा, व्यवहार-कुशलता, विनोद-प्रियता आदि मानवीय गुणों के समुच्चय थे। उनका गगनभेदी अट्टहास और स्पष्टवादिता प्रसिद्ध हैं। कवि-सम्मेलनों या सभाओं में जाने से वे बचते थे किंतु १२ वर्षों तक राज्यसभा के सदस्य रहे और बैठकबाजी के लिए तो प्रसिद्ध थे ही। तात्पर्य यह है कि दद्दा अपने समय के सबसे बड़े समन्वयवादी थे। उनके व्यक्तित्व में पुरातन या प्राचीन संस्कारों तथा आधुनिक विचारधारा दोनों का समन्वय हुआ था। वे कवि थे इसलिए भावुक थे किंतु समाज और संसार को छोड़कर तो वे स्वर्ग में भी जाना नहीं चाहते थे। अतः उनमें भावुकता और सांसारिकता दोनों का समन्वय हुआ है—

इन आत्मीयों के साथ सदा स्वर्गाधिक नरक सहूँगा मैं।
जाकर सुरेन्द्र को तुम मेरे सादर सौ धन्यवाद देना,
कहना, मैं हूँ संतुष्ट यहीं, मुझको वह स्वर्ग नहीं लेना।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने गुप्त जी के मानवीय गुणों एवं व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए लिखा था—"उनकी नम्रता, उनकी भक्ति, उनकी परहित चिंता ये सब उनकी मधुर प्रवृत्ति से उत्पन्न हुए सद्‌गुण हैं किंतु किसी भी दर्शक को या उनके मित्र को उनकी सहज रसवत्ता से अपने आपको तनिक भी मोह में न पड़ने देना चाहिए। उनका तेजस्वी अन्तःकरण भी अत्यंत जागरूक है। उनकी सत्यनिष्ठा उनके व्यवहारों का अतल मेरु-दंड है, जो न स्वयं झुकता है और न किसी को झुकने दे सकता है।" वे सदैव बच्चों जैसे चपल रहे हैं, मशीनों और आधुनिक यंत्रों के प्रति उनका मोह देखते ही बनता था। कुशल व्यापारी की बौद्धिक सजगता भी उनमें थी और इसके साथ-साथ समान भाव से ही साहित्य का रस भी वे ग्रहण करते चलते थे। गुप्त जी वास्तव में गृहस्थ धर्म की उदात्त मर्यादाओं के पक्षधर तो थे ही वे, हमारे नवीन राष्ट्र में भागवत आदर्शों के प्रतीक भी थे।

व्यक्तित्व के विधायक तत्वों में जहाँ तक खान-पान, व्यसन-निरसन, क्रीड़ा-कौतुक और काव्य-संस्कार का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि इस सम्बन्ध में भी उनमें पुरातनता तथा आधुनिकता का समन्वय हुआ है। बासी रोटियों को दुबारा सिकवा कर उनके ऊपर भुनी मेथी घी में मिलाकर लगाकर खाना, बासी पूड़ी खाना। कॉफी, चाय, फल, मेवों और मिठाइयों के प्रति भी उनका लगाव रहा है। सिगार, सिगरेट, पान, तम्बाकू भी वे ओढ़ते छोड़ते रहते थे। कई-कई घंटों तक सूत कातना या अकेले बैठकर ताश का पेशन्स खेल खेलते रहना और साथ-साथ गुनगुनाते जाना उनकी बाल-आसक्ति के ही परिचायक हैं। शतरंज, चौपड़, पुस्तकावलोकन, रेडियो पर समाचार सुनना, झूले पर बैठकर कविता गुन-गुनाना तो कवि को अन्त तक रस देते रहे थे। बचपन में तैराकी, गेंद-बल्ला, पतंग और चकरी आदि से कवि का

अत्यधिक लगाव रहा था। उसने अखाड़े की धूल ही नहीं छानी, पंजा भी लड़ाया और बन्दूक भी चलाई थी। आल्हा के जोर-जोर से गायन और संस्कृत के पद्यों को गुनगुनाने का भी कवि को शौक रहा था। नाटक और लीला के लिए तो कवि ने स्कूली शिक्षा भी छोड़ दी थी। उक्त विवेचन से सहज ही सिद्ध है कि उनका व्यक्तित्व वैराग्यप्रधान न होकर आसक्तिप्रधान रहा है। इसीलिए उनका काव्य भी लोक-संग्रह का काव्य है जिसमें व्यष्टि का पर्यवसान समष्टि में होता है।

स्वभाव से ही लोक-संग्रही कवि ने जिस युग से संस्कार ग्रहण किए उसमें देश, समाज, साहित्य आदि क्षेत्रों में नयी प्रवृत्तियाँ पनप रही थीं। उनके पिता हाथ में तलवार रखते थे किंतु उपासक थे, रामभक्ति के सखी सम्प्रदाय के। वर्ण-व्यवस्था के प्रति सतर्क होते हुए भी मुंशी अजमेरी उनके छठे पुत्र थे। वे सत्कवि ही नहीं, भक्त, कलाविद, संगीतज्ञ और छंदशास्त्र के ज्ञाता भी थे। उन्होंने रहस्य रामायण के कुछ काण्डों की रचना भी की थी। मुंशी अजमेरी कवि के पिता के ही छठे पुत्र नहीं थे बल्कि गुप्त जी के भी अभिन्न थे। उन्होंने ही गुप्त जी को कविता की ओर प्रेरित किया था। कवि ने संस्कृत, अवधी, ब्रजभाषा, और बंगला काव्य का भी स्वाध्याय किया था। अतः इन संस्कारों ने उसे तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था में ही कविता लिखने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप गुप्त जी ने स्लेट पर लिखा—"अजहुँ दीनदयाल दया करो सपदि भारत की विपद हरो।" तथा अपने पिताजी की कापी में भी—"लषण आदि सब भ्रात और श्रुति कीरत आदिक" छप्पय घसीट दिया। पिता का आशीर्वाद भी मिला तथा कवि के हृदय का भारत एवं रामभक्ति उसे कविता की ओर खींच ले गई। सन् १८९८ से सन् १९०३ तक स्फुट छंद और छप्पय लिखने का सिलसिला जारी रहा। उस समय के प्रसिद्ध पत्र श्री वेंकटेश्वर समाचार, वैश्योपकारक तथा मोहिनी आदि पत्र-पत्रिकाओं में कवि की रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। किंतु गुप्त जी के काव्य-शरीर का निर्माण तो सरस्वती आश्रम में विधिवत् दीक्षित हो जाने के बाद अर्थात् सन् १९०५ में ही हुआ। कवि ने स्वयं लिखा है—

किंतु हिंदी संस्कृत के पद्य मैंने सैकड़ों
सीख लिए कंठ कर इधर-उधर से
और पद्य-रचना का व्यसनी मैं हो उठा
एक कार्य लेकर मैं कुछ दिन करता,
फिर वह छोड़कर खोजता था दूसरा
शूर था अवश्य किंतु मैं आरंभ शूर था।
असफल हो के दयनीय ही था अन्त में
संभवतः पूज्य पिता ने इसी भाव से
कामना की अन्ततः मैं कुछ लिख ही सकूँ
वह अनन्य भक्त थे अभिन्न सीता राम के
उनका उदार आशीर्वाद ही मुझे मिला।

× × × ×

यह भी विचित्र बात हुई मुझमें,
आदि में ही मैंने गणवृत्त अपना लिए
मुझको सरलता उन्हीं में जान पड़ती
और एक नूतनता कुतूहलकारिणी।
ऊपर गणों में वृत्त लक्षण मैं लिखता,
नीचे अनुरूप शब्द सोचकर रखता,
और देखता मैं वृत्त बन गया सहसा,
अल्प न थी मेरे लिए इतनी सफलता।

× × × ×

हिंदी में सरस्वती पत्रिका प्रधान थी
उसने प्रतिष्ठा प्राप्त की थी सभी प्रांतों में
उसके सुसंपादक पूज्य द्विवेदी जी थे।
उनका अनुग्रह भी प्राप्त हुआ मुझको।
और मेरी पद्य-कृति अङ्गीकृत हो उठी,
लिखते ही कितने थे तब इस भाषा में ?
पाँचवाँ सवार मैं भी मान ही लिया गया।

सन् १९०५ में उनकी रचना 'हेमंत' सरस्वती में प्रकाशित हुई। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस कविता में इतने संशोधन किए थे कि एक तरह से उसका कायाकल्प ही हो गया था। इस रचना के कुछ समय पश्चात् उनकी दूसरी रचना 'क्रोधाष्टक' भी सरस्वती में प्रकाशित हुई तथा द्विवेदी जी ने गुप्त जी को यह भी निर्देश दिया कि वे अपनी रचना अन्यत्र प्रकाशित होने न भेजें। गुप्त जी ने द्विवेदी जी की आज्ञा को शिरोधार्य ही नहीं किया बल्कि सन् १९३२ तक वे कविताओं तथा ग्रंथों के संबंध में उनसे परामर्श लेते रहे। द्विवेदी जी के परामर्श से सन् १९०९ में उनका पहला काव्य 'रंग में भंग' प्रकाशित हुआ। तदुपरांत सन् १९१० में उनका दूसरा काव्य 'जयद्रथ-वध' प्रकाशित हुआ। जयद्रथ-वध की लोकप्रियता ने उसे लिखने की ही नहीं बल्कि रचनाओं के प्रकाशन की भी प्रेरणा दी। गुण तथा परिमाण में जितनी रचनाएँ, जितने काव्य-प्रकार या काव्य रूप तथा जितने छंद गुप्त जी ने हिंदी को दिए हैं उनकी तुलना की ही नहीं जा सकती। उनसठ वर्षों में गुप्त जी ने गद्य, पद्य नाटक, मौलिक तथा अनूदित सब मिलाकर हिंदी को लगभग चौहत्तर रचनाएँ

प्रदान की हैं। इनमें से कुछ रचनाएँ आज भी अप्रकाशित हैं। दो महाकाव्य, बीस खण्डकाव्य, सत्रह गीतिकाव्य, चार नाटक और गीतिनाट्य, दो संस्मरणात्मक गद्य-रचनाएँ, चार निराख्यानक निबंध तो कवि की वे मौलिक रचनाएँ हैं जो प्रकाशित हैं। लगभग छः या सात मौलिक रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं। उनकी तेरह अनूदित रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं तथा पाँच अभी भी अप्रकाशित हैं।

यह तो सही है कि गुप्त जी को काव्य-संस्कार अपने कुल-परिवार, पिता, मुंशी अजमेरी तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्राप्त हुए थे। प्रश्न उठता है कि उनके काव्य में जिस समाज और राष्ट्र की पीड़ा का गायन हुआ है उसके प्रेरक तत्व क्या थे? भाइयों में से विशेषकर सियारामशरण के अतिरिक्त रायकृष्णदास, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, नवीन जी, जैनेन्द्र जी, माखनलाल चतुर्वेदी, वृंदावनलाल वर्मा, राजा रामपाल, दुर्गादत्त पंत, आचार्य वार्हस्पत्य जी, वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ० हजारी प्रसाद जी और डॉ० नगेन्द्र आदि ऐसे व्यक्तित्व रहे हैं जिन्होंने कवि गुप्त के व्यक्तित्व को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित किया है और लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, गणेशशंकर विद्यार्थी, मालवीय जी उनके आदर्श रहे हैं। और कवि में राष्ट्रीय चेतना के प्रेरक गणेशशंकर विद्यार्थी गुप्त जी के अभिन्न मित्र थे।

महात्मा गांधी के भारतीय राजनीतिक जीवन में आने से पूर्व ही गुप्त जी का युवा मन गरमदल और तत्कालीन क्रांतिकारी विचारधारा से प्रभावित हो चुका था। 'अनघ' से पूर्व की रचनाओं में जयद्रथ-वध और भारत भारती में कवि अहिंसा और शान्ति का नहीं बल्कि क्रान्ति का उद्गायक रहा है। बाद में गांधीजी, राजेन्द्र बाबू, स्वर्गीय जमनालाल बजाज, नेहरू जी और विनोबा भावे के सम्पर्क के कारण वह गांधीवा के व्यावहारिक पक्ष, सुधारवादी आंदोलनों आदि का सम प्रवक्ता बना। इसीलिए सन् १९३६ में गुप्त जी का अभिनंद करते हुए गांधी जी ने कवि को राष्ट्रकवि का संबोधन त दिया ही था, साथ ही यह भी कहा था—"पर मैं तो गुप्त ज को इसलिए बड़ा मानता हूँ कि वे हम लोगों के कवि हैं। औ राष्ट्र भर की आवश्यकता को समझकर लिखने की कोशि कर रहे हैं। हम लोग सब काशी के विद्वान और साहित्यि नहीं हैं। मैं तो साहित्यिक दृष्टि से निश्चित रूप से मूर्ख और गुप्त जी हम सभी मूर्खों के प्रतिनिधि कवि हैं। एक बा मैं उनके बारे में अच्छी तरह से जानता हूँ कि हमारे औ उनके बीच कोई गलतफहमी नहीं हो सकती।" आगे उन्हों यहाँ तक कह दिया—"मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि मैं उ इसलिए बड़ा मानता हूँ कि जैसा मैं चाहता हूँ वैसा वह देश क काम करने को तैयार है।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गुप्त जी द्विवेदी युग की सबसे बड़ी देन तो थे ही, लगभग एक तिहाई शताब्द तक हिंदी कविता पर छाए भी रहे थे किंतु उनकी दिनचर्या रचनाविधि, वेशभूषा, खान-पान, व्यसन-निरसन तथा आचार व्यवहार में जिस तरह की सादगी और पुरातनता के दर्श होते हैं उसके कारण महादेवी जी यह कहने को विवश ह जाती हैं—"गुप्त जी के बाह्य दर्शन में ऐसा कुछ नहीं है, ज उन्हें असाधारण सिद्ध कर सके।" मगर उनकी आराधनात्म प्रकृति, उनकी कालानुसरण क्षमता और उनके काव्यों निहित युगीन चेतना उनके व्यक्तित्व को साधारण मान ह नहीं सकती। इसीलिए तो माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा था— सच पूछा जाए तो युग उनके काँधों पर बैठकर आज इतन दूर आया है।

रचना-संसार

पद्य-रचना की ओर गुप्त जी का झुकाव लघु सिद्धांत कौमुदी पढ़ते हुए हुआ था। उन्होंने लिखा है, "मैंने एक श्लोक सीख लिया था 'आदि मध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम् भरता लाघवंयान्ति मनौ तु गुरु लाघवम्।' मैंने स्लेट पर पहले एक सगण के चिह्न लिखे फिर दो भगण और एक रगण का। उसके नीचे उसी क्रम से अक्षर बिठाने आरम्भ कर दिये—

अजहुं दीन दयाल दया करौ,
सपदि भारत की विपद हरौ।

उक्त छंद के पश्चात् कवि ने अनेक दोहों व छप्पयों की रचना की। एक छप्पय जिसकी प्रथम पंक्ति थी—

"लषण आदि सब भ्रात और श्रुति कीरति आदिक।"

को कवि ने अपने हस्ताक्षरों सहित पिता की कापी पर भी घसीट दिया।

इस तरह गुप्त जी ने ब्रजभाषा में कविता लिखना आरंभ किया। उस समय वे अधिकांशतः दोहा, चौपाई और छप्पय ही लिखा करते थे। उन्होंने संस्कृत छंदों में अनेक अन्योक्तियाँ भी लिखी थीं। बारह वर्ष की आयु से अर्थात् सन् १८९८ से १९०३ तक वे स्फुट छंद, अन्योक्तियाँ और छप्पय ही लिखते रहे। सन् १९०४ में उनकी रचनाएँ कलकत्ता से प्रकाशित पत्र 'वैश्योपकारक' में छपीं और सन् १९०५ में 'हेमन्त' कविता के सरस्वती में प्रकाशित होने के साथ-साथ गुप्त जी सरस्वती मंडल के नियमित सदस्य बन गये।

सन् १९०९ में उनकी प्रथम कृति 'रंग में भंग' प्रकाशित हुई। सन् १९०९ से लगाकर १९६४ तक कवि ने हिन्दी साहित्य को लगभग उनसठ मौलिक काव्य और नाटक प्रदान किये जिनमें तिरपन प्रकाशित तथा छह अप्रकाशित हैं। गुप्त जी ने मौलिक काव्य-सृजन के साथ-साथ बंगला, संस्कृत और फारसी से लगभग अट्ठारह काव्य एवं नाटकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया है। रायकृष्णदास द्वारा रचित गद्य-गीत संग्रह 'साधना' तथा श्रीप्रकाश जी के नागरिकता संबंधी विचारों का पद्य-रूपांतरण भी उन्होंने 'साधना' तथा 'गृहस्थगीता' नाम से किया था। 'गृहस्थगीता' तो पुस्तक रूप में प्रकाशित है, किंतु साधना अभी तक अप्रकाशित है।

"गुप्त जी गद्य लिखने से सदा अलसाते रहे हैं।" फिर भी वे एक सफल गद्यकार थे। उनकी काव्य-कृतियों की भूमिकाएँ तथा संस्मरण 'मुंशी अजमेरी' इसी तथ्य का निदर्शन हैं। गुप्त जी के निबंधों, भाषणों और पत्राचार से भी यही प्रकट होता है। यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि मैथिली-शरण गुप्त एक सफल आलोचक और समीक्षक भी थे। 'सरस्वती' में प्रकाशित उनके लेख "हिन्दी कविता किस ढंग की हो" (दिसम्बर १९१४) भानु कवि कृत काव्य-प्रभाकर की समालोचना (अप्रैल-मई १९१२) ब्रजनन्दन सहाय के 'सौंदर्योपासक' उपन्यास का पुस्तक-परिचय (दिसंबर १९११) तथा 'मेघनाद वध' की भूमिका इसके साक्षी हैं।

उक्त विशाल रचना-संसार के अतिरिक्त गुप्त जी की अनेक रचनाएँ—विशाल भारत, त्याग-भूमि, सुधा, हंस, विश्वमित्र, वैशाली, कल्याण, हरिजन आदि पत्र-पत्रिकाओं तथा अनेक अभिनंदन-ग्रंथों में प्रकाशित हैं जो आज तक भी पुस्तक रूप में नहीं छपी हैं।

गुप्तजी ने सन् १९०४ से १९६४ यानी साठ वर्ष तक काव्य-साधना करते हुए हिन्दी को लगभग ७३ काव्य, नाटक, अनुवाद और गद्य-रचनाएँ दीं जिनका विवरण निम्नलिखित है:

१. प्रबन्ध काव्य

(क) महाकाव्य अथवा बृहत् प्रबंध काव्य

१. साकेत (सन् १९३१)

२. जयभारत-महाभारत के प्रसंगों पर आधारित बृहत् काव्य।

(ख) खण्ड काव्य

१. रंग में भंग (प्रकाशन १९०९) ऐतिहासिक आख्यान जिसमें बूंदी एवं चित्तौड़ के राजपूत राजाओं के शौर्य का वर्णन है।

२. जयद्रथ-वध (प्र. सन् १९१०) महाभारतीय आख्यान तथा अभिमन्यु के शौर्य और जयद्रथ-वध का वर्णन।

३. शकुन्तला (प्र. सन् १९१४) महाकवि कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का पद्य-रूपांतरण, शकुन्तला-दुष्यन्त का आख्यान।

४. पंचवटी (प्र. सन् १९१५) रामायणीय आख्यान जिसमें लक्ष्मण एवं शूर्पणखा प्रसंग का वर्णन है।

५. किसान (प्र. सन् १९१६) भारतीय कृषक-जीवन तथा कुली-प्रथा से संबद्ध।

६. सैरंध्री (प्र. सन् १९२७) महाभारतीय आख्यान, पांडवों के अज्ञातवास के समय सैरंध्री (द्रौपदी) और कीचक का प्रसंग।

७. वकसंहार (प्र. सन् १९२७) महाभारतीय आख्यान—कुन्ती के आदर्श चरित्र एवं भीम द्वारा वक-वध की कथा।

८. वन वैभव (प्र. सन् १९२७) महाभारतीय आख्यान-गन्धर्व चित्रसेन द्वारा दुर्योधन की पराजय एवं अर्जुन की विजय कथा।

९. शक्ति (प्र. सन् १९२७) पौराणिक आख्यान—दुर्गासप्तशती में वर्णित दुर्गा के शौर्य का वर्णन।

१०. यशोधरा (प्र. सन् १९३२) भगवान बुद्ध और यशोधरा से सम्बद्ध काव्य।

११. द्वापर (प्र. सन् १९३६) कृष्ण-कथा पर आश्रित एकालाप शैली में लिखित काव्य।

१२. सिद्धराज (प्र. सन् १९३६) ऐतिहासिक काव्य-सिद्धराज राजा जयसिंह के चरित्र पर आधृत ऐतिहासिक काव्य।

१३. नहुष (प्र. सन् १९४०) महाभारतीय आख्यान—महाराज नहुष के पौरुषमय चरित्र का चित्रण।

१४. कुणाल गीत (प्र. सन् १९४१) कुणाल की करुण गाथा का गीतिशैली में चित्रण।

१५. कर्बला (प्र. सन् १९४२) मुसलमान संस्कृति तथा इमाम हुसैन के बलिदान की गाथा।

१६. अजित (प्र. सन् १९४६) एक राजनीतिक बन्दी का आत्मकथात्मक आख्यान।

१७. हिडिम्बा (प्र. सन् १९५०) महाभारतीय आख्यान—राक्षसी हिडिम्बा तथा भीम की कथा।

१८. विष्णुप्रिया (प्र. सन् १९५७) महाप्रभु चैतन्य की धर्मपत्नी विष्णुप्रिया की पुण्य गाथा।

१९. रत्नावली (प्र. सन् १९६०) महाकवि तुलसीदास की पत्नी रत्नावली का आख्यान गीत।

२०. उर्मिला (अप्रकाशित, रचनाकाल सन् १९०८-०९) लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला का विरह-वर्णन।

(ग) कथाश्रित निबन्ध काव्य

१. पत्रावली (प्र. सन् १९१६) ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधृत सात पद्यात्मक पत्र।

२. विकट-भट (प्र. सन् १९२८) ऐतिहासिक प्रसंग पर लिखित राजपूती शौर्य की गाथा।

३. गुरुकुल (प्र. सन् १९२८) सिख-गुरुओं के जीवन पर आधृत कथात्मक निबंध-माला।

४. अर्जन और विसर्जन (प्र. सन् १९४२) दमिश्क और उत्तरी अफ्रीका पर किये गये आक्रमणों से सम्बद्ध काव्य-रचना।

५. काबा (प्र. सन् १९४२) मुस्लिम संस्कृति का आख्यान तथा हजरत मुहम्मद के जीवन पर आधृत काव्य निबंध।

६. प्रदक्षिणा (प्र. सन् १९५०) सूत्ररूप में सम्पूर्ण रामकथा का वर्णन।

७. युद्ध (प्र. सन् १९५०) महाभारत के युद्ध से सम्बद्ध रचना।

८. कवि श्री (प्र. सन् १९५५) आदर्श भारतीय नारियों की भावनाओं का चित्रण।

९. नल दमयन्ती (अप्रकाशित, रचनाकाल सन् १९१०-११) नल-दमयन्ती की कथा पर आधृत लघु काव्य।

२. निबंध काव्य

१. भारत-भारती (प्र. सन् १९१२) राष्ट्रीय नवजागरण का उद्‌बोधन काव्य।

२. हिन्दू (प्र. सन् १९२७) जातीय एकता के आदर्शों से प्रेरित काव्य।

३. राजा-प्रजा (प्र. सन् १९५६) राजतंत्र बनाम प्रजा-तंत्र विषय पर रचित विचार-प्रधान काव्य।

४. विजय पर्व (प्र. सन् १९६३) भारत पर चीन के आक्रमण के अवसर पर संसद में दिया गया पद्यात्मक वक्तव्य।

३. मुक्तक एवं विविध कविताएँ

१. पद्य-प्रबन्ध (प्र. सन् १९१२) प्रकीर्ण कविताओं का संग्रह।

२. मंगल घट (प्र. सन् १९३७) दार्शनिक-सांस्कृतिक तथा अन्य प्रसंगों पर आधृत कविताएँ।

३. आस्वाद (प्र. सन् १९३८) प्रकीर्ण कविताएं और गीत-संग्रह।

४. दुर्दशा निवेदन (अप्रकाशित, रचनाकाल १९०५) षट्ऋतु वर्णन के माध्यम से भारतवासियों की दुर्दशा का चित्रण।

५. अन्योक्ति पुष्पावली (अप्रकाशित, रचनाकाल १९०४-१४) मौलिक तथा संस्कृत से अनूदित अन्योक्तिपरक रचनाएँ।

६. स्वस्ति और संकेत (प्र. सन् १९७९) कवि के जीवनकाल में अप्रकाशित स्फुट कविताओं एवं गीतों का संग्रह।

७. राष्ट्रवाणी (प्र. सन् १९८६) कवि की जन्म-शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित राष्ट्रीय कविताओं का संलकन।

४. गीति काव्य

१. वैतालिक (प्र. सन् १९१६) राष्ट्रीय तथा पुनर्जागरण के गीत।

२. स्वदेश संगीत (प्र. सन् १९२५) राष्ट्रीय गीतों का संकलन।

३. झंकार (प्र. सन् १९२७) आध्यात्मिक एवं रहस्यानुभूति की कविताएँ।

४. विश्ववेदना (प्र. सन् १९४२) युद्ध की विभीषिका से प्रेरित विश्व-वेदना की अभिव्यक्ति।

५. अंजलि और अर्घ्य (प्र. सन् १९४२) महात्मा गांधी के निधन पर रचित शोक-गीत।

६. भूमि भाग (प्र. सन् १९५३) सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विनोबा के भूदान-यज्ञ संबंधी रचनाएँ।

७. उच्छ्वास (पृ० सन् १९६०) वैयक्तिक शोक-गीतों का संग्रह।

५. नाटक

(क) पद्य-नाट्य अथवा रूपक

१. अनघ (प्र. सन् १९२५) बौद्ध संस्कृति पर आधारित नाट्य रूपक।

२. दिवोदास (प्र. सन् १९५०) दिवोदास के वैदिक आख्यान पर आधृत एकांकी नाट्य रूपक।

३. पृथ्वीपुत्र (प्र. सन् १९५०) माता भूमि के मिथक पर आधृत एकांकी संवाद रूपक।

४. जयिनी (प्र. सन् १९५०) मार्क्स एवं जेनी (जयिनी) के जीवनादर्शों पर आधृत संवादात्मक काव्य।

५. लीला (प्र. सन् १९६०) नौ दृश्यों में विभाजित सीता-स्वयंवर की कथा (रचनाकाल सन् १९१०)

(ख) गद्य नाटक

१. तिलोत्तमा (प्र. सन् १९१५) पौराणिक आख्यान पर आश्रित नाटक, सुंद एवं उपसुंद के पराजय की कथा।

२. चन्द्रहास (प्र. सन् १९१६) पाँच अंकों में विभाजित पौराणिक नाटक।

३. उद्धार (अप्रकाशित, रचनाकाल १९१४) चित्तौड़-उद्धार की घटना पर आधारित नाटक।

६. गद्य रचनाएँ

१. श्रद्धांजलि और संस्मरण (प्र. सन् १९७९) छह संस्मरण।

२. मुंशी अजमेरी (प्र. सन् १९८२) कवि के बाल्य-बन्धु मुंशी अजमेरी से सम्बद्ध संस्मरण।

७. अनुवाद

(क) संस्कृत से

१. स्वप्न वासवदत्ता (प्र. सन् १९१४) महाकवि भास के नाटक का अनुवाद।

२. गीतामृत (प्र. सन् १९२५) भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय का अनुवाद।

३. दूत घटोत्कच (प्र. सन् १९५५) भास के प्रसिद्ध एकांकी का अनुवाद।

४. अविमारक (प्र. सन् १९६३) भास के नाटक का अनुवाद।

५. प्रतिमा (प्र. सन् १९६३) भास के नाटक का अनुवाद।

६. अभिषेक (प्र. सन् १९६३) भास के नाटक का अनुवाद।

७. उरुभंग (अप्रकाशित, रचनाकाल सन् १९१४) भास द्वारा रचित नाटक का अनुवाद।

८. दूत वाक्यम् (अप्रकाशित, रचनाकाल १९१४) भास के नाटक का अनुवाद।

९. चारुदत्त (अप्रकाशित, रचनाकाल १९१४)

१०. प्रतिज्ञा यौगन्धरायण (अप्रकाशित, रचनाकाल १९१४)

(ख) बंगला से अनूदित

१. विरहिणी ब्रजांगना (प्र. सन् १९१४) माइकेल मधुसूदनदत्त द्वारा रचित वियोग-गीति का अनुवाद।

२. पलासी का युद्ध (प्र. सन् १९१४) नवीनचन्द्र सेन के प्रबंध-काव्य का अनुवाद।

३. वीरांगना (प्र. सन् १९२७) माइकेल मधुसूदनदत्त रचित ग्यारह पौराणिक पत्र-गीतों का अनुवाद।

४. मेघनाद वध (प्र. सन् १९२७) माइकेल मधुसूदन-दत्त के महाकाव्य का अनुवाद।

५. वृत्र संहार (प्र. सन् १९६२) हेमचन्द्र वंद्योपाध्याय के महाकाव्य का अनुवाद।

(ग) अन्य अनूदित रचनाएँ

१. रुबाइयात-उमर खैयाम (प्र. सन् १९३१) अंग्रेजी कवि-अनुवादक—फिट्जरॉल्ड के 'रुबाइयात उमर खैयाम' के आधार पर अनूदित।

२. गृहस्थ गीता (प्र. सन् १९३७) श्रीयुत श्रीप्रकाश के 'सच्ची नागरिकता' में संकलित लेखों का पद्य अनुवाद।

३. साधना (अप्रकाशित, रचनाकाल सन् १९१८) स्व० रायकृष्णदास के पच्चीस गद्य-गीतों का पद्य रूपान्तरण।

८. अन्य संग्रह

१. कविता कलाप (प्र. सन् १९०९) सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी। इस संग्रह में गुप्तजी की सत्ताईस कविताएँ संगृहीत हैं।

भारतीय संस्कृति के आख्याता कवि

मानव के प्रकृत रागद्वेषों के परिष्कृत रूप तथा उदात्त विचारों की दीर्घ परंपरा को संस्कृति कहते हैं। विशिष्ट आदर्शों, आचार-विचार और चिंतन-पद्धति के कारण भिन्न-भिन्न देशों की संस्कृति का रूप भिन्न-भिन्न होता है। भारत की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है और उसकी विशेषताएँ हैं—सहिष्णुता, अध्यात्म, समन्वयभावना, मानव-कल्याण, विश्वबंधुत्व, सम्मिलित परिवार-पद्धति, वर्णाश्रम-धर्म व्यवस्था आदि। मैथिलीशरण गुप्त उस सांस्कृतिक काव्यधारा के कवि हैं जिसके एक छोर पर हिंदू पुनरुत्थान-वाद की जातीय भावना है और दूसरे छोर पर समस्त धर्मों और विविध संस्कृतियों के समन्वय की अवधारणा द्वारा विश्व-कल्याण और मानव-मंगल की कामना। अतः उनके आरंभिक काव्यों से लेकर अन्तिम रचना तक में भारतीय संस्कृति के अतीतकालीन उत्कर्ष के भव्य चित्र मिलेंगे। 'भारत भारती' में कवि उस पुण्यभूमि का स्मरण करता है जहाँ के निवासी विद्या-कला-कौशल के प्रथम आचार्य थे और जहाँ स्वर्गीय भावों से भरे ऋषि होम करते थे। उसका उद्देश्य भारतीय संस्कृति के गौरव-प्रतीकों द्वारा पाठकों में राष्ट्रीय भावना, आत्मगौरव तथा आत्मविश्वास जगाना है। इसीलिए उसने प्राचीन आख्यानों को नया अभिप्राय दिया है, महा-पुरुषों और आर्य-स्त्रियों—अनुसूया, गार्गी, मैत्रेयी, अंशुमती आदि के चरित्रों को जीवनादर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी सीता भारत-लक्ष्मी हैं, द्वापर के कृष्ण नव-निर्माण के नेता हैं, नारद सुधारवादी क्रांति के प्रचेता हैं। उन्होंने वेद-वाणी की गरिमा को स्वीकार किया, मनु, याज्ञवल्क्य द्वारा प्रणीत स्मृति-ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा अर्पित की।

भारतीय समाज की संघटना का मूलाधार है सम्मिलित परिवार जिसका प्रत्येक सदस्य अपने कर्तव्य, उत्तरदायित्व और मर्यादा को समझ उनका निर्वाह करता है। 'साकेत' में पारिवारिक जीवन के चित्र अत्यंत मधुर और आह्लादकारी हैं। पिता-पुत्र, भाई-भाई, सास-बहू, देवर-भाभी, पति-पत्नी का परस्पर सहयोग, स्नेह, कर्तव्य-परायणता आदि परिवार को सुखमय बनाते हैं। यह सहयोग परिवार की सीमाओं से बाहर भी क्रियाशील रहता है—

रहेगा साधु भरत का मंत्र
मनस्वी लक्ष्मण का बलतंत्र

पारिवारिक जीवन का सबसे मधुर और महत्वपूर्ण अङ्ग है दाम्पत्य जीवन क्योंकि आदर्श दंपति ही अपने जीवन को मधुर तथा संतान को योग्य बना सकते हैं। साकेत, पंचवटी, दिवोदास आदि अनेक प्रबंध-रचनाओं में दाम्पत्य जीवन के हास्य-विनोद, कर्तव्य-परायणता, परस्पर त्याग आदि भावों की चित्रशाला मिलती है। गुप्त जी नारी को पुरुष की उप-भोग्या मात्र नहीं मानते, उसे जीवन-संगिनी, सहधर्मिणी और सच्चे अर्थों में अर्धाङ्गिनी मानते हैं। अतः वह जगह-जगह उसे आदर्श माता, आदर्श पत्नी एवं आदर्श वधू के रूप में चित्रित करते हैं।

यद्यपि आज वर्णाश्रम-धर्म पर प्रश्नचिह्न लग रहा है फिर भी प्राचीन भारतीय समाज-व्यवस्था का मूलाधार वर्णाश्रम धर्म रहा है। गुप्त जी ने गुणशील के आधार पर वर्ण-भेद को स्वीकार किया है। अतः वे अत्याचारी और आततायी द्विज का भी वध न्यायसंगत मानते हैं—

द्विजता तक आततायिनी
वध में है कब दोषदायिनी

उनका आश्रम-व्यवस्था में पूर्ण विश्वास है। वह मानते हैं कि प्रौढ़ होने पर मनुष्य को अधिकारों का मोह और भोग-विलास की लालसा त्याग कर वानप्रस्थ ले लेना चाहिए—

गृह-योग्य बने हैं वनस्पृही
वन-योग्य हाय! हम बने गृही

भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, अपरिगृह, त्याग, सेवा-भाव आदि को धर्म का आधार माना गया और उसका विश्वास है कि जहाँ धर्म है वहीं जय है। गांधी जी से प्रभावित गुप्त जी सत्य और अहिंसा के पूर्ण समर्थक थे, परन्तु वे मनु और कौटिल्य के समान स्वाधिकार की रक्षा के लिए हिंसा को अपनाना दोष नहीं मानते। राम का चरित्र इसका ज्वलंत

दृष्टांत है। अपरिगृह और त्याग भारतीय संस्कृति के मूल तत्व हैं। गुप्त जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है :

जो संग्रह करके त्याग नहीं करता है,
वह दस्यु लोक धन लूट-लूट धरता है।

'यतो धर्मस्ततो जयः' का समर्थन उर्मिला द्वारा कराया गया है :

धर्म तुम्हारी ओर, तुम्हें फिर किसका भय है ?
जीवन में ही नहीं, मरण में भी निज जय है।

वह पाप से अर्जित धन-सम्पत्ति को अस्पृश्य मानती है—

गरज उठी वह—नहीं, नहीं पापी का सोना
यहाँ न लाना, भले सिंधु में वहीं डुबोना।

समष्टि के लिए व्यष्टि का बलिदान हमारी संस्कृति का प्रधान तत्व रहा है। 'साकेत' के राम इसी सिद्धांत को अपनाते हुए राजसी सुखभोग का त्याग कर वन जाते हैं—

हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी

भारत में राजतंत्र-पद्धति ही रही है पर यहाँ राजा निरंकुश, तानाशाह और आततायी न होकर अपने को जनता का सेवक और राज्य को धरोहर मानकर राज्य करता था। गुप्त जी भी शासक को 'नियत शासक लोक-सेवक मात्र' मानकर राज्य को 'प्रजा की थाती' मानते हैं। वर्तमान परिस्थितियों के प्रति जागरूक कवि 'स्वत्वों की भिक्षा' के विरुद्ध है और तानाशाही एवं साम्राज्यवाद से क्षुब्ध हो उठता है :

राज-पद ही क्यों न अब हट जाय ?
लोभ-मद का मूल ही कट जाय ?

प्रारब्ध और कर्म का विवाद अत्यंत पुराना है। कुछ लोग 'भाग्यं फलति सर्वत्र' को मानते रहे हैं तो कुछ कर्म द्वारा ब्रह्मा की लिखी भाग्य-लिपि को मिटाने की दुहाई देते रहे हैं। वैष्णव संस्कारों में पले तथा जीवन में अनेक पारिवारिक कष्ट भोगने का निजी कटु अनुभव करने वाले गुप्त जी भी प्रारब्ध, विधि के विधान और भाग्य में विश्वास करते प्रतीत होते हैं। चाहे अपनी संतानों की असामयिक मृत्यु पर स्वयं तथा पत्नी को समझाने का प्रसंग हो और चाहे 'साकेत' में संकट की स्थिति हो, सर्वत्र वह 'दैव की इच्छा' समझ सांत्वना देते प्रतीत होते हैं। पर साथ ही वह पुरुषार्थ, कर्मनिष्ठा, और परिश्रम पर बल देते हैं। 'साकेत' में अयोध्या की स्त्रियाँ कहती हैं—

जाओ अपने राम-राज्य की आन बढ़ाओ।
वीरवंश की बान, देश का मान बढ़ाओ।

तो 'भारत-भारती' में उनका उद्बोधन है—

है भाग्य की क्या भावना ? अब पाठ पौरुष का पढ़ो।
पीछे पड़े तुम दैव के सिर दोष अपना मढ़ रहे ?
पर कर्म-तैल बिना कभी विधि-दीप जल सकता नहीं।

भारतीय समाज के सांस्कृतिक पक्ष को उद्घाटित करने के लिए गुप्त जी ने पद्य-प्रबन्ध, स्वदेश संगीत, मंगल-घट आदि अनेक कृतियों में सामाजिक पर्वों और धार्मिक त्यौहारों का—विजयादशमी, होली, दीपावली, रामनवमी, कृष्ण-जन्माष्टमी आदि का महत्त्व बताया है, उन्हें तत्त्व-पूर्ण और विज्ञान-सम्मत माना है तथा परम्परा-निर्वाह का आग्रह किया है। भारत में चिर-प्रचलित रीति-रिवाजों, व्रत-उपवास, जप-तप, यज्ञ-अनुष्ठान, पूजा-अर्चना की विधि, तीर्थ-स्थानों की महिमा आदि का बखान कर कवि ने भारतीय संस्कृति की विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर वर्तमान युग में भी उनकी प्रासंगिकता का आख्यान किया है।

हिन्दू संस्कृति के सबल समर्थक होते हुए भी उन्होंने अन्य संस्कृतियों का विरोध नहीं किया क्योंकि भारतीय संस्कृति का तो मूल स्वर ही समन्वयवाद और मानवतावाद है। 'भारत-भारती' और 'हिन्दू' का हिन्दू पुनरुत्थानवाद भी न इस्लाम-विरोधी है और न पश्चिम-विरोधी। पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति के समन्वय पर बल देते हुए वे 'वैतालिक' में कहते हैं :

उनकी सी साधना रहे, अपनी आराधना रहे।
उनका अथक परिश्रम हो, पर उसमें अपना क्रम हो।
उनका प्रेय श्रेय अपना, उनका ज्ञेय ध्येय अपना।
उनकी गति, पद्धति अपनी, उनकी उन्नति, मति अपनी।

वह भौतिक और आध्यात्मिक संस्कृतियों के समन्वय में मानव-कल्याण देखते हैं और संयम तथा मर्यादा-पालन पर बल देते हैं—

जितने प्रवाह हैं बहें, अवश्य बहें वे,
निज मर्यादा में किन्तु सदैव रहें वे।

उनका समन्वयवाद उन स्थलों पर भी प्रतिलक्षित होता है जहाँ वह त्याग और योग, भक्ति और मुक्ति, धर्म और राजनीति, प्रवृत्ति और निवृत्ति, भावुकता एवं कर्मपरायणता, कर्म और तपस्या, राष्ट्र-प्रेम एवं विश्वबन्धुत्व आदि के समन्वय पर बल देते हैं।

इस प्रकार वर्तमान युग में गुप्तजी ने भारतीय संस्कृति के समर्थ आख्याता की भूमिका का पूर्ण निर्वाह किया है।

राष्ट्रीय भावना

द्विवेदी-युग जातीय जनजागरण और राष्ट्रीय उन्मेष का युग था। गुप्तजी अपने युग और उसकी समस्याओं के प्रति अत्यन्त संवेदनशील रहे हैं। ई० एच० कार ने गौरवपूर्ण अतीत के स्मरण, वर्तमान के क्षोभ और भविष्य की कल्पना को राष्ट्रवाद की प्रथम आवश्यकता माना है। 'भारत-भारती' की आरम्भिक पंक्तियाँ 'हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी' इस कसौटी पर प्रस्तुत काव्य-रचना को राष्ट्रवाद का उद्घोष सिद्ध करती हैं। गुप्तजी की आरंभिक राष्ट्रवादी काव्य-प्रवृत्तियाँ ब्रिटिश शासन की आशंसा और साथ ही उसकी अहितकारी कार्य-पद्धति की आलोचना के रूप में अभिव्यक्त हुई। उनका आरंभिक स्वरूप हिन्दू राष्ट्रवाद से निर्मित हुआ और फिर सामयिक प्रेरणाओं और गांधी से प्रभावित हो वह धीरे-धीरे कांग्रेस की राजनीति के समीप आता गया और अंत में उसकी परिणति विश्व जन-तंत्र और अखिल मानव की कल्याण-भावना में हुई।

संवेदनशील और जागरूक कवि-हृदय देश की वर्तमान दशा से क्षुब्ध था। वह धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों को इस दुर्दशा का मूल कारण मानता था, अतः कवि के राष्ट्रवाद की प्रथम जागृति धार्मिक और सामाजिक सुधारवाद के रूप में दिखाई देती है। एक ओर देशवासियों को कष्ट से मुक्त करने और देशोन्नति के लिए वह भगवान से प्रार्थना करता है—

प्रभु पर है भारत का भार, हुए जहाँ उनके अवतार

और दूसरी ओर देशवासियों में आत्म-गौरव का भाव जगाने के लिए देश के भव्य भौगोलिक स्वरूप का स्तवन करता है—

नीलांबर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्यचन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस देश की।
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।

पाठकों में राष्ट्रप्रेम और स्वातंत्र्य-कामना उत्पन्न करने के लिए उसने स्वदेश-प्रेम के गीत गाये जिनमें स्वातंत्र्य-प्रेम की राष्ट्रवादी भावनाएँ समाविष्ट हैं।

शासन किसी परजाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो।
संभव नहीं है किन्तु जो सर्वांश में वह इष्ट हो।

आगे चल कर 'साकेत' में भी वह सीता के ब्याज से भारत माता को स्वतंत्र करने का उद्बोधन देते हैं—

भारत-लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में
सिंधु पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में।

१९२० ई० के आसपास की गुप्तजी की काव्य-रचनाएँ सामयिक प्रेरणा से लिखी गयी हैं। उस समय देशव्यापी साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे, किसानों की स्थिति बड़ी दयनीय थी, गांधी जी के नेतृत्व में सत्याग्रह, सविनय आन्दोलन, नमक कानून को तोड़ना, हरिजन-उद्धार, खादी-प्रचार, ग्रामोद्योग आदि कार्यक्रम बड़े उत्साह से किये जा रहे थे। गुप्तजी के काव्य में इन सबकी प्रतिध्वनि मिलती है। कहीं किसान की दशा पर आँसू बहाये गये हैं, कहीं प्रवासी भारतीय की कष्ट-कथा कही गयी है, कहीं हिन्दू-मुसलमानों के बीच मेल कराने का प्रयास है—

हिन्दू मुसलमान दोनों अब छोड़ें वह विग्रह की नीति

अथवा

हिन्दू मुसलमान सब भाई, निज नवीन जय-गान

'स्वदेश संगीत' में सत्याग्रह, स्वराज्य की अभिलाषा गांधी गीत, ओ बारडोली, भारत का झंडा आदि रचनाएँ तत्कालीन आन्दोलनों पर लिखी गयी हैं और गांधी जी की अहिंसा, सत्याग्रह, खादी-प्रयोग आदि नीतियोंका समर्थन किया गया है—

अस्थिर किया टोप वालों को गांधी टोपी वालों ने।
शस्त्र बिना संग्राम किया है इन माई के लालों ने।
× × ×
असहयोग के फल उपजाये उनकी ऊँची डालों ने।

'अजित' में वह हिंसक क्रांति-पद्धति और आतंकवाद का विरोध करते हुए सत्याग्रह और अहिंसा-नीति का समर्थन करते हैं। 'साकेत' में अयोध्यावासियों को सत्याग्रह करते दिखाकर भी उन्होंने गांधी के सविनय आन्दोलन और पिकेटिंग

धरना आदि का समर्थन किया प्रतीत होता है—

जाओ, यदि जा सको रौंद हमको यहाँ
यों कह पथ में लेट गये बहु जन वहाँ

अपने रचना-काल के अंतिम चरण में गुप्तजी संकुचित राष्ट्रवाद से व्यापक मानव-मंगल, विश्वबन्धुत्व और अखिल संसार की सुख-शांति की ओर अग्रसर हुए। 'विश्व वेदना' में उन्होंने युद्ध और शांति का, 'राजा-प्रजा' में लोकतंत्र की समस्या का प्रश्न उठाया है। सारांश यह है कि गुप्तजी की राजनीतिक चेतना का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। आरंभिक हिन्दू-पुनरुत्थानवाद, सुधारवाद और हिन्दू राष्ट्रवाद उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ पहले सत्याग्रही क्रांति और सर्वोदयी जीवन-दर्शन की ओर अग्रसर हुआ और अंत में वह राष्ट्रीय सीमाओं को अतिक्रान्त कर मानव-संस्कृति की अखण्डता की ओर बढ़ा।

गुप्तजी के राष्ट्रवादी काव्य की दो विशेषताएँ एकदम परिलक्षित होती हैं और उन्हें अन्य राष्ट्रवादी कवियों से भिन्न बना देती हैं—प्रथम तो उनके राष्ट्रवादी काव्य में बौद्धिक ऊहापोह और तर्क-वितर्क न होकर राष्ट्रीय उत्थान और लोक-कल्याण का सहज भाव है और वह आदर्शवाद पर आधृत है। दूसरे, उनकी राष्ट्रीय भावना विशुद्ध राजनीतिक न होकर संस्कृति पर अधिष्ठित है। डा० सत्येन्द्र ने ठीक ही लिखा है, "राष्ट्रीयता गुप्तजी का उद्देश्य है, पर संस्कृतिशून्य राष्ट्रीयता उन्हें ग्राह्य नहीं।"

नारी-भावना

मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य-मंच पर आविर्भाव उस समय हुआ जब भारत के कवि पाश्चात्य साहित्य और विचारों से प्रभावित होकर नारी को जीवन के विस्तृत क्षेत्र में सहधर्मिणी, माता, भगिनी एवं पुत्री के रूप में देखने लगे थे। स्वतंत्रता और समानाधिकार की भावना और स्वातंत्र्य-संग्राम में भारतीय नारी के सहयोग के फलस्वरूप भी उसका सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक महत्त्व स्वीकार किया जा रहा था। गुप्तजी कालिदास की तरह नारी को पुरुष की सखी और सचिव तथा जयशंकर प्रसाद के सदृश 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' मानते थे। वे पारिवारिक जीवन के कथाकार हैं, और परिवार का अस्तित्व नारी के बिना संभव ही नहीं है। अतः वह नारी को जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं। नारी के प्रति उनकी दृष्टि रोमानी न होकर मर्यादा-वादी और सांस्कृतिक रही है। वह शरीरी संसर्ग के स्वस्थ रूप को स्वीकार करते हैं, यथाअवसर उन्होंने नारी के कामिनी और रमणी रूप के मनोरम चित्र भी उकेरे हैं। 'पंचवटी' में शूपर्णखा का रूप-चित्रण, 'साकेत' में उर्मिला की यौवन-सुलभ उत्सुकता, विकलता, चंचलता और 'हिडिम्बा' में भीम से सहवास की याचना इसके उदाहरण हैं, पर कुल मिलाकर वह अपने नारी-पात्रों में उन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा करते हैं जो भारतीय कुलवधू के आदर्श माने गये हैं, साथ ही उन्होंने नारी को पुरुष का पूरक अंग मानते हुए उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व, स्वाभिमान, दर्प, स्वावलम्बन आदि का भी वर्णन किया है और उसके अधिकारों तथा प्रतिष्ठा का जोरदार समर्थन किया है।

गुप्तजी नारी को भोग्या-मात्र तो मानते ही नहीं, उन्हें नारी-संबंधी अनुदार दृष्टि भी असह्य है। 'द्वापर' की विधृता पुरुषों की इस संकीर्ण दृष्टि की भर्त्सना करती है :

नर के बाँटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई
माँ, बेटी या बहिन हाय, क्या संग नहीं वह लाई

विधृता के माध्यम से कवि ने नारी की सामाजिक हीनता और अरक्षित पत्नीत्व पर प्रश्न-चिह्न लगाया है। उनकी यशोधरा भी नहीं मानती कि नारी सिद्धि-मार्ग की बाधा है; अर्ध-विश्व में व्याप्त नारी की उपेक्षा नहीं हो सकती। यह सच है कि अधिकांश स्थलों पर गुप्तजी ने नारी की निरीहता के प्रति करुणा उत्पन्न की है :

अबला जीवन, हाय, तुम्हारी यही कहानी
आंचल में है दूध और आँखों में पानी।

पर अनेक पात्रों द्वारा उन्होंने नारी की सामाजिक परतंत्रता के प्रति आक्रोश भी व्यक्त किया है। यथाअवसर नारी राष्ट्र और समाज की सेविका और वीरांगना के रूप में शोभित हुई है और राक्षस स्त्रियों तक ने कवि की उदारता पायी है। हिडिम्बा राक्षसी न रहकर वैष्णवी बन गयी है। रावण-कुल की स्त्रियाँ मंदोदरी, सुलोचना आदि को सती रूप में चित्रित किया गया है।

गुप्तजी के अधिकांश काव्यों में नारी के तीन रूप प्रमुख हैं—प्रेमिका, पत्नी और माता। इन तीनों रूपों में एक ओर वह अपना कर्त्तव्य-पालन कर हमारी श्रद्धा जगाती है तो दूसरी ओर प्रिय-वियोग, आहत वात्सल्य, पति की संदेह-शीलता, पर-पुरुष के प्रेम-प्रस्ताव से आतंकित नारी हमारे हृदय को करुणाद्रवित भी करती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में नारी-पात्रों—द्रौपदी, शची, विधृता, रानकदे आदि को सतीत्व की अग्नि-परीक्षा में डालकर तथा उन्हें उस ताप से द्वादशवर्णी स्वर्ण की तरह खरा और निखरता दिखाकर उन्होंने नारी का तपोनिष्ठ और उदात्त चरित्र अंकित किया है। वियोगिनी रूप में उर्मिला, यशोधरा और विष्णुप्रिया का जीवन और आचरण पाठकों को श्रद्धावनत और विस्मय-विमुग्ध कर देता है। उर्मिला यदि अवधि-शिला का गुरु भार लिए उसे अपनी अश्रुधार से तिल-तिल काटती है तो यशोधरा जिसकी 'आँखों में पानी' कभी नहीं सूखता, राहुल के प्रति कर्त्तव्य-भार को वहन करते हुए 'जल-जल कर काया' को जीवित रखती है। एक पीड़ा का स्वागत करती है—'वेदना तू भी भली बनी' दूसरी मृत्यु का 'मरण सुन्दर बन आया री'। विष्णुप्रिया तो आरंभ से अंत तक प्रेम की जीवनव्यापी

साधना करती है। उसका करुण-विप्रलंभ तीनों पात्रों में सर्वाधिक मर्मस्पर्शी है।

गुप्तजी के नारी पात्र घोर से घोर संकट और विषम से विषम परिस्थितियों में भी धीरता, कर्मण्यता और कर्त्तव्य-भावना का परित्याग नहीं करते। वे कर्त्तव्यनिष्ठ, त्यागशील और सहिष्णु नारी हैं। यशोधरा अपने श्वसुर शुद्धोधन से भी अधिक धैर्यवान, सहिष्णु है और वह स्वनिर्मित मर्यादा में तल्लीन रहती है और अंत में प्राणप्रिय के चरणों में अपना सर्वस्व राहुल उत्सर्ग कर अपनी जीवन-साधना को पूर्ण करती है। विष्णुप्रिया का प्रेम तो आरंभ से ही त्यागनिष्ठ है क्योंकि उसके पति तो पहले से ही संन्यासवृत्ति के थे।

अपार मानसिक और शारीरिक कष्ट झेलते हुए भी गुप्तजी की नारी—यशोधरा, उर्मिला, विष्णुप्रिया—अपने दायित्वों—पारिवारिक, सामाजिक आदि के प्रति सजग हैं और उन्हें निष्ठापूर्वक निभाती हैं। उर्मिला सासों की सेवा करती है, रसोई बनाती है, किसानों की दशा पूछती रहती है—

पूछी थी सुकाल-दशा मैंने आज देवर से

और नगर की प्रोषित पतिकाओं की सुध-बुध लेती है। यशोधरा श्वसुर और पुत्र के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूर्ण निष्ठा के साथ निभाती है और विष्णुप्रिया सास की सेवा ही नहीं करती, अपनी आजीविका स्वयं उपार्जित करती है तथा विषम परिस्थिति में भी यह कह पर्वोत्सव मनाती है; रोक निज दुःख हम मानें सुख सबका'। हिम में जलती, तप में कंपती और वर्षा में सूखती हुई भी वह स्वावलंबी जीवन अपनाती है क्योंकि समाज के दया-दान पर जीना अनुचित है और आत्म-हत्या करना पाप।

गुप्तजी ने नारी के आहत नारीत्व से जाग्रत उसके स्वाभिमान, दर्प और मानिनी रूप को भी दिखाया है। गौतम यशोधरा को और गौर विष्णुप्रिया को सोता छोड़ कर चुपचाप चले गये। यशोधरा अपने आहत अभिमान की व्यंजना 'सखि वे मुझसे कहकर जाते' गीत में करती है तो गौर के संन्यासी होने का वृत्तान्त सुन विष्णुप्रिया आहत होकर कहती है :

अबला के भय से भाग गये वे उससे भी निर्बल निकले।
नारी निकले तो असती है,. नर यती कहा कर चल निकले।

यशोधरा गौतम के आगमन का समाचार सुन कर भी अपने कक्ष से निकल पति का स्वागत करने नहीं जाती, स्वयं गौतम उसके कक्ष में प्रवेश कर कहते हैं 'मानिनी, मान तजो लो, रही तुम्हारी आन' तथा शुद्धोधन भी उसके औदात्य को देख कहते हैं—

गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको

यशोधरा के संबंध में बुद्धदेव ने तथा उर्मिला के संबंध में राम ने जो कुछ कहा है, उससे स्पष्ट है कि गुप्तजी नारी को कितना सम्मान देते थे। बुद्ध कहते हैं 'दीन न हो, गोपे सुनो, हीन नहीं नारी कभी' और राम उर्मिला को सीता से भी अधिक धर्मपरायण कह कर उसका अभिनंदन करते हैं। सारांश यह है कि गुप्तजी की दृष्टि में नारी अपने सतीत्व, एकनिष्ठ प्रेम, उत्सर्ग, त्याग, सहिष्णुता, धैर्य, उदारता और स्वाभिमान की रक्षा के प्रति सजगता आदि गुणों के कारण महान है, पुरुष से अधिक गौरवशालिनी है।

भक्ति-साधना

मैथिलीशरण गुप्त को २०वीं सदी का तुलसीदास, राम भक्ति का गायक और परम वैष्णव कहा जाता है। उन्होंने स्वयं कहा है—सीताराम की उपासना मुझे अपने कुल से प्राप्त हुई, परंतु अपने पिता की भाँति मैं अनन्य उपासना का अधिकारी न हो सका। संभवत: हमारे संप्रदाय में रामचरित मानस आदि-कवि के काव्य से भी अधिक प्रिय हैं, भले ही लोग मुँह से यह बात न कहें, रामचरित मानस का मुझ पर जो ऋण है, उसे मैं कभी नहीं चुका सकता। अन्यत्र भी कवि ने लिखा है—मैं सख्य भाव में दीक्षित हुआ था, परंतु अपना संबंध-पत्र भी खो बैठा।

उपर्युक्त कथन से निम्नलिखित चार प्रभाव कवि पर स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं—

(क) सीताराम की उपासना कुल से प्राप्त हुई थी।

(ख) "हमारे संप्रदाय में···।" संप्रदाय का अर्थ है कवि का संबंध वैष्णव संप्रदाय से रहा है।

(ग) कवि सख्य भाव में दीक्षित हुआ था।

(घ) रामचरित मानस का कवि पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था।

यह ठीक है कि कवि पर वैष्णव संप्रदाय की सख्य शाखा, रामचरित मानस और पारिवारिक वैष्णव परंपरा का प्रभाव है। कवि की काव्य-साधना पर इन्होंने कहाँ तक प्रभाव डाला, यहाँ इस पर विचार करना अपेक्षित है।

वैष्णव संप्रदाय में मुद्राकिन, उर्ध्वपुंड्र धारण करना, नामकरण (दासांत नाम), मंत्र-जाप, तुलसी की कंठी, यज्ञोपवीत और सिर पर चोटी धारण करना उपासक के लिए आवश्यक है। गुप्तजी इन सभी को आवश्यक न मानकर, चोटी, वैष्णवी तिलक, यज्ञोपवीत, तुलसी की कंठी धारण करना आवश्यक समझते रहे। उनका सांप्रदायिकनाम जिसके अंत में मणि था, उन्हें स्मरण नहीं रहा, लेकिन मिथिलाधिप-नंदिनीशरण या परिवर्तित मैथिलीशरण नाम दासांत हैं, इस कारण वैष्णवी भी। जहाँ तक 'मंत्र-जाप' का प्रश्न है, लेखक व्यक्तिगत परिचय के आधार पर इतना जान पाया है कि गुप्त जी जब भी अकेले बैठे होते थे, ध्यानमग्न अवश्य रहते थे और बातचीत करने पर भी रामचरित मानस की चौपाइयाँ उनके अधरों से झड़ती रहती थीं, जिनका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि वे किसी विशेष मंत्र का जाप न करके सीताराम के संपूर्ण जीवन का ही जाप करते थे और उनके पावन चरित्र को अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न करते थे। उनके आचार-व्यवहार आदि सभी वैष्णवी दिखलाई पड़ते थे। शत्रु भी उनके मित्र थे और सारा संसार ही उन्हें सिया-राममय दिखलाई पड़ता था। नए कपड़े को पहनने से पूर्व तुलसी के बिरवे से छुआ लेना और दूसरों से भी ऐसा ही करने को कहना, ये कुछ ऐसी बातें हैं जो उन्हें बैष्णव सिद्ध करती हैं।

कारागार जाने से पूर्व गुप्तजी भगवान का भोग लग जाने पर भोजन करते और संध्योपासना आदि भी किया करते थे। कारागार में जाने के बाद से यह सब छूट गया और सूत कातने के कार्य को ही कवि ने भगवान की पूजा स्वीकार कर लिया। गांधीवादी विचारधारा के प्रभाव से उन्होंने प्रत्येक कार्य को ईश्वर का कार्य और पूजा समझकर मनोयोग से करना प्रारंभ किया।

भक्ति और उपासना के लिए जिस उपास्य की आवश्यकता होती है वह उपास्य गुप्तजी के परिवार ने उन्हें प्रदान कर ही दिया था अर्थात राम? राम भी अकेले नहीं सीता, लक्ष्मण, हनुमान सहित। इतना ही नहीं संपूर्ण राम परिवार—भरत, शत्रुघ्न, श्रुतकीर्ति, मांडवी आदि भी उनकी भक्ति के विषय थे। राम-परिवार के अतिरिक्त, कृष्ण-परिवार, पांडव-परिवार, ऋषिमुनि, शिव-परिवार, दुर्गा, तीर्थ स्थान आदि भी कवि के उपास्य रहे हैं। इन उपास्यों की परंपरा कवि को स्वयं प्राप्त थी, क्योंकि उनके आदर्श तुलसी ने भी इन सबकी महिमा का गान किया था। कवि ने इस क्षेत्र को और भी विस्तृत कर बुद्ध, तीर्थंकर सिखों के गुरु, मुसलमानों के पैगंबर, ईसामसीह, गांधी, विनोबा आदि को भी उपासना क्षेत्र में समाहित कर भारतीय भक्तिमार्ग या भारतीय धार्मिक

चिंता की सीमा को अपरिमित विस्तार दिया है। तात्पर्य यह है कि कवि की भक्ति भावना के एक छोर पर उसके परमाराध्य लक्ष्मण, सीता, हनुमान सहित दाशरथि राम हैं तो उसका दूसरा छोर गांधी जी और विनोबा तक परिव्याप्त है जिसमें बुद्ध, तीर्थंकर मुहम्मद साहिब, ईसा आदि भी सम्मिलित हैं।

गुप्त जी भारतीय भक्ति-परंपरा के अनन्य उपासक हैं इसीलिए वे प्रतिमा, मंदिर एवं विधि-विधान सहित पूजा में भी आस्था रखते हैं :

सच्ची निष्ठा है मुझमें तो प्रतिमा ही पर्याप्त।
जड़ में भी मेरा चेतन है, करूं कहीं मैं प्राप्त।

केवल जयभारत में ही नहीं, बल्कि अन्य काव्य-ग्रन्थों में भी कवि ने प्रभु की प्रतिमा पर आस्था प्रकट की है। उसका कथन है (१) प्रतिमा भक्ति-भाव का अवलंब है। (२) भक्तों की भावना कंकर को भी शंकर बना सकती है। (३) तात्पर्य यह है कि प्रतिमा में भी प्रभु की प्रभुता के दर्शन भक्ति भावना द्वारा हो सकते हैं। (४) इन प्रतिमाओं के लिए ही भवनों, मंदिरों आदि के निर्माण की कल्पना की जाती है। कवि ने साकेत में देव-मंदिर-देहली का वर्णन किया है। (५) भारत भारती और सिद्धराज में भी मंदिरों की महिमा का वर्णन किया गया है। (६) विधिविधान सहित पूजा अर्थात् षोडषोपचार को भी वह असीमाधार की सीमा के हृदयस्थ रूपोद्‌गार के लिए आवश्यक मानते हैं—

होता न मूर्ति विधान यदि साधन हमारे देश का।
पूजन षोडषविध यहाँ होता सगुण सर्वेश का।
अनुभव न होता एक सीमा में असीमाधार का,
होता निदर्शन भी न उस हृदयस्थ रूपोद्‌गार का॥

गुप्तजी के काव्य में नवधा भक्ति

नवधा भक्ति के सम्बन्ध में कवि के विचार हैं—

तुम में है नवधा भक्ति, देगी माँ तुमको नव शक्ति।

नवधा भक्ति की प्रथम विधा श्रवण के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि भगवन्नाभ सुनने से ही सुनने वालों का मन पवित्र हो जाता है और कीर्तन से तो ईश्वर स्वयं खिंचा चला आता है—

सुनो खोजता है जो मुझको कहीं नहीं पाता है,
यह पुकारना किन्तु आप ही खींच मुझे लाता है।

द्वापर की राधा कीर्तन द्वारा ही अपने मनोभाव को प्रकट करती है। शक्ति के मंगलाचरण में भक्तिपूर्वक सीता के भजन की सम्मति कवि ने की है—

भावुक भव-भय छोड़ दो, सीता भजो सभक्ति,
यातुवंश विध्वंसिनी पातु सौम्य शुभ शक्ति।

जयद्रथ वध के सप्तम सर्ग में कृष्ण के गुणों का गान तथा शक्ति में दुर्गा की स्तुति कीर्तन के प्रति कवि की अगाध श्रद्धा का ही परिचायक है। राघवेन्द्र-स्तवन तो है ही राम का संकीर्तन। इसके अतिरिक्त 'हिन्दू' में कवि ने राम, कृष्ण, महादेव भवानी का भी कीर्तन किया है। स्मरण में भी गुप्तजी की अगाध आस्था है—

जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे,
वे भी भव सागर बिना प्रयास तरेंगे।

शायद ही उनका कोई ऐसा काव्य हो जिसमें राम-कथा या राम का नाम न आया हो। प्रदक्षिणा, लीला, पंचवटी और साकेत में तो राम-कथा का गायन हुआ ही है, झंकार के 'ध्यान' शीर्षक गीत में ध्यान से आत्मा के परिष्करण और भक्ति की दृढ़ता का संकेत मिलता है।

पाद-सेवन के अन्तर्गत चरण सेवा के अतिरिक्त दर्शन, स्पर्श, परिक्रमा, मंदिर-गमन, तीर्थ-यात्रा, तीर्थ-स्नान आदि के द्वारा सेवा का उल्लेख किया गया है। कवि को रामचरण से वस्तुत: अधिक मोह है—

वहाँ पंथ-भय क्या भला मेरे अंध प्रबंध।
जहाँ खींचता है मुझे राम चरण-रज गंध।

कवि भाव-विभोर होकर भगवान के चरणों पर झुक जाने में ही भक्ति की सार्थकता मानता है—

कहते हुए यों नृप युधिष्ठिर मुग्ध होकर रुक गए,
तत्क्षण अचेत समान फिर प्रभु के पदों में झुक गए।

गुप्तजी ने तीर्थ-स्थानों को भी उचित महत्त्व दिया है। मंदिर-गमन, परिक्रमा आदि भी तीर्थ-यात्रा के ही अंग हैं। सिद्धराज में उन्होंने कहा है—प्रभु तो सर्वत्र व्याप्त हैं मगर उनके प्रभाव से किसी-किसी स्थान का महत्त्व बढ़ जाता है। इसीलिए भक्त भगवान के सामने मस्तक झुकाने के लिए तीर्थ-यात्रा करते हैं। इसी रचना में आगे उनका कथन है कि राम तो सब में रमे हैं लेकिन अयोध्या, चित्रकूट, पंचवटी, रामेश्वर में उनके चरित्र हमें विशेष रूप से पवित्र करते हैं।

कवि ने वन्दना को अपनी भक्ति-भावना का प्रमुख अंग माना है। यशोधरा के मंगलाचरण में वह नीरज नाभ को प्रणाम करता है। 'रंग में भंग' नामक काव्य में उसी नीरज नाभ को सर्वेश मानकर उसकी वंदना करता है—

राम नाम ललाम जिसका सर्व मंगलधाम है
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धा सहित प्रणाम है।

प्रत्येक काव्य के प्रथम पृष्ठ पर 'श्रीराम' और मंगलाचरण

से पूर्व श्रीगणेशाय नमः लिखकर राम और विघ्न-विनाशक गणेश को प्रणाम कर ही गुप्त जी ने प्रत्येक काव्य का आरंभ किया है। उन्होंने राम को पिता और सीता को माता माना है। "राम सभी के तात हमारे और तुम्हारे।" पिता राम के प्रति उनका विश्वास अडिग है। जो भक्ति-भावना राम को पिता रूप में ग्रहण करती है वही सहज-भाव से सीता को माता भी स्वीकार करती है। 'काबा और कर्बला' के मंगलाचरण की सीता इसीलिए तो अल्ला है—

लाड़ लड़ा चाहें तो झल्ला, नहीं छूटने का यह पल्ला।
इस देही की गति वैदेही, युक्ति मूर्ति मेरी तू अल्ला।

गुप्त जी को यद्यपि सख्य संप्रदाय में दीक्षित किया गया था किंतु इनकी भक्ति-भावना का मूल स्वर दास्य-भाव की भक्ति का ही है। विष्णुप्रिया, वैतालिक, साकेत, जय-भारत आदि काव्यों में पदे-पदे यही स्वर अनुगुंजित है। हाँ, झंकार के कुछ गीतों में यथा निबल का बलराम, शरणागत, उपहार आदि में दास्य-भाव तथा झंकार, बंधन, असंतोष आदि में सख्य-भाव, यात्री, माला खोज, उत्कंठिता आदि में माधुर्य-भाव के भी दर्शन होते हैं। इसी प्रकार द्वापर में यशोदा, देवकी और नन्द में वात्सल्य भाव, राधा, विधृता, कुब्जा और गोपियों में माधुर्य भाव, ग्वाल-बाल, उद्धव आदि के आत्म-संलापों में दास्य-भाव की भक्ति लक्षित है। माधुर्य, वात्सल्य, सख्य आदि भक्ति-भाव के दर्शन तो गुप्त जी के काव्यों में प्राप्त हैं किंतु ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनका साध्य एकमात्र दास्य-भाव ही है। 'विष्णुप्रिया' काव्य में मुरारि गुप्त का कथन स्वयं कवि का ही कथन प्रतीत होता है—

देव गोपी भाव का नहीं हूँ अधिकारी मैं,
मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पदों में ही—
रमता है मेरा मन, चाहता हूँ मैं यही—
पाऊँ दास्य भाव में ही मैं सामीप्य उनका।
कृष्ण मेरे पूज्य राम के ही प्रतिरूप से,
मेरी मति और गति आगे नहीं जाती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुप्त जी का मन मुख्यतः दास्य-भाव में ही रमा है। जहाँ तुलसी कहते हैं—

कहा कहूँ छवि आपकी भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे जब धनुष बाण लेहुँ हाथ।

वहाँ गुप्तजी कुछ आगे बढ़कर कह उठते हैं—

धनुर्वाण या वेणु लो श्याम रूप के संग।
मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग॥

नवधा भक्ति की अन्तिम विधा है—आत्मनिवेदन। कवि ने आत्म-निवेदन, दैन्य और मानमर्षण पर विशेष बल दिया है। झंकार और उच्छ्वास की अनेक गीतियों में आत्म-निवेदन की भावना अनुस्यूत है। 'झंकार' में वह अत्यंत दीन-भाव से भगवत्-शरण में जाता है। उसने न तो तप किया है न त्याग, केवल तुम्बी बजाना सीखा है जिसे लेकर वह अपने आराध्य के द्वार पर आकर बस गया है। 'उच्छ्वास' में पदे-पदे दैन्य, मनोराज्य, विचारणा, भयदर्शन, भर्त्सना आदि तत्त्व प्राप्त होते हैं। कवि का भक्त हृदय केवल दैन्य ही नहीं, दर्प करना भी जानता है—

तुझको मनाना पड़ता है, तू अजान है;
प्रभु के निकट ही तो मूल्य पाता मान है।

इसीलिए कवि की यशोधरा में "दैन्य और दर्प दोनों का बसेरा है।"

वैष्णव मार्ग में नवधा भक्ति को अत्यधिक महत्व दिया गया है। गुप्त जी को इस भक्ति का व्यावहारिक पक्ष स्वीकार्य है। इसीलिए यशोधरा के मंगलाचरण में उन्होंने नाम-रूप-गुण-लीला के लाभ पर बल दिया है—

राम तुम्हारे इसी धाम में नाम-रूप-गुण-लीला-लाभ;
इसी देश में हमें जन्म दो लो प्रणाम हे नीरज नाभ।

भक्ति-मार्ग का यह आत्मनिवेदन मात्र औपचारिक नहीं है, इसके लिए शरणागति अत्यावश्यक है। वैष्णव दर्शन में ही नहीं बौद्ध दर्शन में भी शरणागति को अत्यंत महत्त्व दिया गया है। अहिर्बुध्न्य संहिता में शरणागति, न्यास और प्रपत्ति समानार्थक हैं। गुप्तजी को भी शरणागति और प्रपत्ति काम्य हैं।

गुप्तजी की भक्ति-साधना और प्रपत्ति

गुप्तजी प्रपत्ति-मार्गी हैं। उन्हें यह चिंता नहीं है कि उनके राम सर्वव्यापी हैं अथवा नहीं। उन्हें तो राम चरण-रज गन्ध निरंतर आकर्षित करती है। ईश्वर में इस अनन्य भक्ति-भाव का ही परिणाम है कि उनके राम शरणागत को बन्धुभाव से अंगीकृत कर बहुमान देते हैं—

बोला—सुग्रीव—वैरी है। क्यों विभीषण आ रहा ?
शरणागत जो भी हो, आने दो—राम ने कहा।

कवि को विश्वास है कि 'भगवंत' में लीन हो जाने पर अंत में चित्त मुक्त हो जाता है। उनकी वैष्णवी यशोधरा की यही आस्था है—

उन्हें समर्पित कर दिए यदि मैंने सब काम,
तो आएँगे एक दिन निश्चय मेरे राम!

और राधा के तो सारे कर्म ही आराध्य को अर्पित हैं—"तुझको एक तुझी को अर्पित राधा के सब कर्म हरे।"

प्रश्न उठता है कि क्या कवि अच्छे और बुरे दोनों तरह

के कर्मों के समर्पण में विश्वास रखता है ? नहीं—

पुण्य पाप सब प्रभु को अर्पित, कहा एक जन ने ज्यों ही,
नहीं-नहीं, उसका प्रिय साथी उसे रोक बोला त्यों ही
पाप नहीं, अर्पित स्वपुण्य ही जो दोगे, प्रभु ले लेंगे,
किंतु न भूलो, उसे सौ गुना करके वे लौटा देंगे।

तात्पर्य यह है कि गुप्तजी "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" के समान सब कुछ प्रभु चरणों में समर्पित करने में विश्वास नहीं रखते, केवल पुण्यों का समर्पण ही उन्हें इष्ट है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि परंपरागत वैष्णव-भावना ने गुप्त जी के व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों को प्रभावित किया है। यह ठीक है कि उन्होंने अपने काव्य में भक्ति का शास्त्रीय विवेचन नहीं किया है किंतु इस मार्ग की मान्यताओं को अपने काव्य में स्थान दिया है। इसी कारण उनकी भक्ति-भावना सांप्रदायिक संकीर्णताओं में आबद्ध न होकर युग के अनुरूप है। इसी संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने परम्परागत सांप्रदायिक भावना को व्यापक भी बनाया है और उसमें युगानुकूल प्रवृत्तियों को समाविष्ट भी किया है।

गुप्तजी के काव्य में भक्ति के अंग—गुप्तजी की दृष्टि में भगवत्-कृपा-प्राप्ति के साधन हैं :

(क) राम-कृपा—गुप्त जी राम-भक्त हैं। राम की कथा किसी-न-किसी रूप में उनके प्रत्येक काव्य में प्राप्त है। राम का वृत्त ही ऐसा है कि गुप्त जी उसी का आश्रय लेकर कवि बन सके हैं। उनके राम पथप्रदर्शक, भू-भार को दूर करने वाले, नववैभवदाता, नर को ईश्वरता प्राप्त कराने वाले, भूतल को स्वर्ग बनाने वाले ही नहीं, सुख-शांति हेतु क्रांति करने वाले भी हैं। वे तापित, विवश, बलहीन, दीन, शापित समाज के उद्धारक हैं। इसीलिए कवि उनसे याचना करता है—

धन्य हमारा भूमि भार भी जिससे तुम अवतार धरो,—
मुक्ति, मुक्ति माँगें क्या तुमसे, हमें भक्ति दो, ओ अमिताभ।

(ख) भगवत्कैंकर्य—रामानंद संप्रदाय में सांग सपार्षद भगवान राम की सेवा विधेय मानी गयी है। गुप्त जी की सीता तो अल्ला है ही—"इस देही की गति वैदेही मुक्ति मूर्ति मेरी तू अल्ला।" साकेत में कवि ने अनुजों सहित राम को ब्रह्म की मूर्तियाँ और भगिनियों सहित सीता को माया की मूर्तियाँ कहा है। प्रदक्षिणा के मंगलाचरण में लक्ष्मण की स्तुति की गयी है और हिंदू, रत्नावली और पत्रावली में कवि ने हनुमान की स्तुति की है।

भगवान की कृपा प्राप्ति कराने के लिए मध्यस्थ का कार्य करने वालों में कवि ने केवल राम परिवार या पार्षदों का ही आश्रय नहीं लिया है बल्कि इस कृपा का अत्यंत विस्तार कर दिया है। राम तो उसके आराध्य हैं ही, कृष्ण भी राम के प्रतिरूप होने के कारण आराध्य हैं। अत: राम के अंतेवासी लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, उर्मिला, मांडवी, श्रुतिकीर्ति और हनुमान तथा कृष्ण परिवार के बलराम, राधा, गोपियाँ आदि भी उसके लिए पुरुषकार हैं। इतना ही नहीं कवि ने बुद्ध, मुहम्मद, ईसा, सिक्ख गुरुओं और गांधी आदि श्रद्धेयों के प्रति भी श्रद्धा व्यक्त करते हुए उन्हें भी भक्ति-भाव को भगवान तक पहुँचाने का साधन अर्थात् पुरुषकार रूप में स्वीकार कर लिया है।

(ग) गुरु-कृपा एवं सत्संग—गुप्तजी ने गुरु और सत्संग को भी भगवत्कृपा का साधन स्वीकार किया है। 'लीला' में राम ने विश्वामित्र के प्रति आस्था प्रकट की है। साकेत के राम भी गुरु को प्रणाम करते हुए गुरु के चरणों में मस्तक झुकाते हैं। गुरुकुल के उपोद्घात में उसने कहा भी है "लेखक का अपने गुरुजनों के प्रति श्रद्धांजलि देने का अधिकार तो अक्षुण्ण है।" सत्संग को भी कवि ने भक्ति-उन्मेष के लिए आवश्यक माना है। सत्संग द्वारा शक्ति, साहस, श्रद्धा, विश्वास और भक्ति की प्राप्ति होती है। चंद्रहास नाटक में सत्संग के विषय में कवि का कथन है—

सत्संग संसार-समुद्र-सेतु है, सत्संग ही मोद विनोद हेतु है।
सत्संग सा लाभ न और अन्य है, पाता उसे जो वह धन्य है।

सिद्धराज में इसी कृपा-प्राप्ति के लिए तीर्थादि की यात्रा को आवश्यक माना गया है—

उनके उपासकों के भावों की विभूति को,
भेटने मैं जा रही हूँ, मेटने को लालसा।

(घ) व्रत, पर्व एवं मंत्र-जाप—वैष्णव संप्रदाय में व्रत एवं पर्वों को भी भक्ति का साधन स्वीकार किया गया है। कवि ने भी 'हिन्दू' में संवत्सर, रामनवमी, जन्माष्टमी, विजयादशमी, दीपावली आदि पर्वों के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। इसी तरह मंत्र-जाप भी उसके लिए भक्ति का साधन है। गालव ऋषि ने चन्द्रहास को "हरे राम, हरे राम राम-राम हरे हरे" मंत्र जाप के लिए दिया था। 'भारत-भारती' में कवि ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ "सीतापते, सीतापते ! गीतामते गीतामते" मंत्र का जाप किया है। इसी तरह कवि 'हिन्दू' में "हरि : ओम्, हरि: ओम्, हरि: ओम्, ओम्" कह कर मंत्र-जाप का महत्त्व प्रतिपादित करता है।

(ङ) भक्ति के अन्य साधन—भक्ति के अन्य साधनों में कवि अतिथि को देवता मानता है। वक संहार में

इस भावना के अत्यन्त उदात्त रूप में दर्शन होते हैं। कवि की वैष्णव भावना में विचारों की पवित्रता को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। संयम, विषय-विराग, अनालस्य, अविचल उद्योग, सत्य, सरल निश्छल व्यवहार, आत्मविश्वास, पवित्रता, अध्यवसाय, धृति, शान्ति, शौच, दया, क्षमा, शम, दम, अहिंसा आदि को वह भक्ति-उद्रेक के लिए आवश्यक मानता है। कवि बुराई करने वाले को उपकारी कहता है—

कहा किसी ने अमुक आपको कहता था अपशब्द उजागर।
तो क्या, वह मेरा उपकृत है, हंसकर बोले विद्यासागर।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह तो भक्ति के बाधक हैं ही—

क्योंकर हो मेरे मन मानिक की रक्षा ओह।
मार्ग के लुटेरे—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह ॥

उनका स्पष्ट निर्देश है—

परधन हारी, मद्यपी, व्यभिचारी, ठग, चोर।
मोमिन हो सकते नहीं, कामी, कुटिल कठोर ॥

गुप्त जी आजन्म 'न्याय' के पक्षधर रहे हैं। न्यायार्थ अपने बंधु को दण्ड देना उनके वैचारिक पक्ष का अंग रहा है किन्तु साथ ही वे हिंसा के स्थान पर अहिंसा के ही कामी रहे हैं। "अहिंसा परमो धर्मः,' में उनकी पूर्ण आस्था है। इसीलिए उनकी सीता भी अहिंसारूपिणी है—

वे आप अहिंसा रूपिणी परम पुण्य की पूर्ति सी।

उनके विचार से तलवार संस्कार नहीं संहार करती है। इस कारण उन्होंने अहिंसा से बचने की प्रार्थना की है—

सदय हो मुझ पर दया-निधान, बचूँ इस हिंसा से भगवान।
अहिंसा ही हो मेरा धर्म, उसी में है हम सबका शर्म।

उक्त विवेचन से सहज ही सिद्ध है कि गुप्त जी ने अपनी भक्ति-भावना में जिन तत्त्वों एवं विचारधाराओं का समावेश किया है वे किसी विशेष संप्रदाय से संबद्ध न होकर सार्वजनीन और युगीन हैं। इसीलिए कहा जा सकता है कि कवि ने अपनी भक्ति-भावना में युग के आदर्शों का समन्वय कर भक्ति-भावना को व्यापकत्व प्रदान किया है। उनकी भक्ति-भावना में मानव की प्रतिष्ठा है। उनकी भक्ति-भावना व्यक्ति को समदर्शी होने की ही प्रेरणा नहीं देती अपितु विश्व-बन्धुत्व की दिशा में ले जाने को भी प्रेरित करती है। इस स्थिति में उनका भक्त-हृदय 'स्व' को 'सर्व' बना देना चाहता है। वे अपने देश का नहीं अखिल विश्व का त्राण चाहते हैं। इसीलिए प्रदक्षिणा का भक्त विभीषण रावण से कह उठता है—

किसी एक सीमा में बँधकर रह सकते हैं क्या ये प्राण ?
एक देश का अखिल विश्व का तात! चाहता हूँ मैं त्राण।

वास्तव में आधुनिक युग का वैष्णव तो वही है— "जे पीर पराई जाणे रे।" और ऐसे वैष्णव की दृष्टि का अत्यन्त व्यापक होना स्वाभाविक ही है। वह अनार्यों और राक्षसों को आर्य बनाना चाहेगा, वानरों को सभ्य बनाना चाहेगा, गुह, निषाद, शबरों तक को स्नेह देगा और आत्मविकास कर विश्व को कुटुम्ब बना लेना चाहेगा। उसके राम, उसके मंदिर, मूर्तियाँ उसकी नहीं जन-जन की हो जाएँगी और उसके लिए सारा जगत् सियाराममय हो जाएगा।

विभु मय विश्व जान वैष्णव सहज ही
होते हैं विनम्र और विनयी हृदय से।

तात्पर्य यह है कि गुप्तजी की भक्ति-भावना का मूल आधार वह वैष्णव भक्ति है जिसको प्रत्येक युग ने अपना कर उसमें व्यापकत्व का समावेश किया है। गुप्त जी ने भी इसी भक्ति-भावना में आधुनिक युग-बोध का समन्वय कर उसे लोक-धर्म का पर्याय बना दिया है। भक्ति में भाव, ज्ञान और कर्म का पूर्ण समन्वय, अन्य किसी युग की अपेक्षा इसी युग में हुआ है। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, तथा गांधी ने दर्शन और समाज के क्षेत्र में जिस भक्ति को सार्वजनिक और सर्वसुलभ बनाने का कार्य किया था, काव्य के माध्यम से गुप्त जी ने उसी भक्ति-भावना की प्रतिष्ठा की है।

रस-योजना

मैथिलीशरण उदार जीवनद्रष्टा और अत्यंत संवेदनशील कवि थे। उन्हें मार्मिक प्रसंगों की सहज पहचान थी और जीवन तथा मानव-मन की क्रिया-प्रक्रिया का सूक्ष्म ज्ञान था। उनकी अधिकांश रचनाएं प्रबंधात्मक हैं जिनमें उन्होंने जीवन की विभिन्न स्थितियों, परिस्थितियों और मार्मिक प्रसंगों का वर्णन किया है। अत: उनकी भाव-परिधि बहुत व्यापक है और उनके काव्य में प्रायः सभी रसों का समावेश है। भारतीय काव्यशास्त्र में नौ रस माने गये हैं। इनमें श्रृंगार, वीर, करुण और शांत का संबंध व्यक्ति के अपेक्षाकृत मौलिक भावों से है। गुप्त जी के काव्य में भी इन चार का विशेष और शेष पांच का साधारण चित्रण मिलता है।

भवभूति ने करुण को एक मात्र रस कहकर शेष को उसी के अन्तर्गत समाहित किया है। यद्यपि इसके विषय में विवाद हो सकता है, तथापि करुण रस में पाठक को भाव-विह्वल एवं तन्मय बनाने की जितनी शक्ति है उतनी अन्य रसों में नहीं। गुप्त जी के अधिकांश काव्यों में या तो देश की दुर्दशा का अथवा नारी की पीड़ा, यातना, कष्ट-सहिष्णुता का वर्णन है। अत: उनके काव्य में कारुण्यधारा की प्रधानता है। जयद्रथवध की उत्तरा पति के शव के सम्मुख जब कुररी सदृश विलाप करती हैं, विकट भट की ठकुरानी जब पुत्र की मृत्यु पर पृथ्वी पर लोटकर विलाप करती है और साकेत के दशरथ-मरण प्रसंग पर जब रानियां मूर्छित हो जाती हैं तथा सुमन्त 'हा स्वामी' कहकर शोकदग्ध हो उठते हैं तो करुण रस की धारा की आर्द्रता पाठक को भावविह्वल कर डालती है।

अर्धांग रानियां शोककृता मूर्च्छित हुई या अर्द्धमृता ?
'हा स्वामी' कह ऊंचे रव से दहके सुमंत मानों दव से।

श्रृंगार रस को रसराज कहा गया है। उसके दो पक्ष हैं—संयोग और विप्रलंभ। गुप्तजी मर्यादाशील वैष्णववृत्ति के कवि रहे हैं पर गृहस्थ जीवन के मनोरम चित्र अंकित करने में वे अपना सानी नहीं रखते। अत: दम्पति का हास्य-विनोद, प्रणय-क्रीड़ा आदि के चित्रों में संयोग श्रृंगार मिलता तो है, पर वह सर्वत्र मर्यादित है। 'रंग में भंग' में वधू को विवाह-मण्डप में ले जाने का दृश्य 'ललित लज्जा-भार से ग्रीवा रुचिर नीची किये', साकेत के प्रथम सर्ग में लक्ष्मण-उर्मिला और आठवें सर्ग में राम-सीता का मधुर तरल हास्य विनोद, और नवम सर्ग में लक्ष्मण के साथ केलि-क्रीड़ा की स्मृतियाँ—

चौंक देखा मैंने चुप कोने में खड़े थे प्रिय
माई मुख-लज्जा उसी छाती में छिपाई थी।

सभी में रति-भाव की सघनता की मनोरम व्यंजना हुई है।

विरह को प्रेम का तप्त स्वर्ण कहा गया है। वेदना की अग्नि में तपकर प्रेम की मलिनता गल जाती है और वह निखर उठता है। गुप्तजी के सर्वाधिक आकर्षक और उदात्त व्यक्तित्व सम्पन्न नारी पात्र—उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया विरहिणी नारियां ही हैं और उनकी विरह-वेदना का मर्म-स्पर्शी एवं भावमग्न करने वाला वर्णन पढ़ते समय पाठक के हृदय का सारा कलुष बह जाता है। विप्रलंभ श्रृंगार के चार भेद—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण माने गये हैं पर प्रवासजन्य विरह ही वास्तविक और सर्वाधिक तीव्र होता है। गुप्तजी की इन तीनों विरहिणियों के पति—लक्ष्मण, गौतम और गौर उन्हें छोड़कर चले जाते हैं। अत: उनकी विरह-वेदना प्रवास के अन्तर्गत आती है। विप्रलंभ श्रृंगार की चर्चा में परम्परानुमोदित दस काम-दशाओं का उल्लेख किया गया है। 'साकेत' में अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, उन्माद, प्रलाप आदि का चित्रण उपलब्ध होता है। 'बीच-बीच में उन्हें देख लूं मैं झुरमुट की ओट' में यदि अभिलाषा है, तो उद्वेग स्थिति हमें उर्मिला की आत्म-प्रतारणा में मिलती है—

अधम उर्मिले हाय निर्दया
पतित नाथ हैं ! तू सदाशया ?

अतीत की मधुर स्मृतियां यदि उर्मिला की वेदना को तीव्र कर देती हैं तो व्यथा के अतिरेक में वह प्रलाप करने लगती है और सुरभि, गूंगी निंदिया, सारिका, चातकी आदि को अपनी करुण कथा सुनाने लगती है।

गुप्तजी के विरह-वर्णन की एक अन्य विशेषता है प्राचीन और नवीन अभिव्यंजना-पद्धतियों का प्रयोग। एक ओर वह रीतिकालीन विरह-काव्य की पद्धतियों—ऊहा, अतिशयोक्ति, अलंकार-योजना द्वारा उक्ति को चमत्कारपूर्ण बनाना—का सहारा लेते हैं—

जा, मलियानिल लौट जा, यहाँ अवधि का शाप
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप

कहीं षड्ऋतुओं का आधार लेकर उर्मिला की विरह-वेदना का चित्रण करते हैं, कहीं फारसी काव्य की 'सीके-कवाब पद्धति' का अनुसरण करते हुए फफोलों का वर्णन करते हैं—

नैश गगन के गात्र में पड़े फफोले हाय !
तो क्या अरी, न आह भी भरूं आज निरुपाय ?

तो दूसरी ओर कवि ने विरह-वर्णन के लिए नयी अभिव्यंजना-पद्धतियों की उद्भावना की है। कहीं उर्मिला शिशिर से प्रार्थना करती है कि वह गिरि-वन में न जाय क्योंकि उससे लक्ष्मण को कष्ट होगा, कहीं कामदेव को चुनौती देती है और कहीं मानवीकरण, लाक्षणिक भाषा और उपचारवक्रता का आश्रय लेकर कवि ने विरहिणी की मूक व्यथा को वाणी दी है—

श्रुति-पुट लेकर पूर्वस्मृतियां खड़ी यहां पट खोल
देख, आप ही अरुण हुए हैं उनके पाण्डु कपोल

गुप्तजी पर आरोप लगाया जाता है कि वह सूक्ष्म भावों के चितेरे नहीं हैं, उनके काव्य में सूक्ष्म-भावों के चित्रण का अभाव है। यह कथन आंशिक रूप से ही सत्य है। उर्मिला और यशोधरा के चेतन मन के साथ कवि ने उनके अवचेतन और अर्द्धचेतन को भी प्रवेश कर, वहाँ विहार करने वाली भाव-बीचियों को भी पकड़ कर उनका चित्रण किया है। वियोगिनी उर्मिला की अर्द्धविस्मृति का सूक्ष्म तारल्य निम्न उक्ति में मिलता है—

भूल अवधि-सुध प्रिय से कहती जगती हुई कभी—आओ
किन्तु कभी सोती तो उठती वह चौंक बोलकर—जाओ

चेतन-अवचेतन का संघर्ष, दमित वासना के कारण स्वप्न में प्रिय दर्शन, कभी लक्ष्मण को आया जान उनके स्वागत की तैयारी और फिर अवधि से पहले आ जाने पर लक्ष्मण की भर्त्सना और फिर यह जानकर कि वह केवल स्वप्न था आत्मग्लानि से उसका भर उठना इस बात का उदाहरण है कि कवि मानव-मन का सूक्ष्म पारखी है। उर्मिला का अन्त-र्विवाद (Interior monologue) कवि की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि तथा नवीन शिल्प-ज्ञान का परिचायक है।

कवि के विरह-वर्णन की नवीनता इस बात में भी है कि उसने स्वयं नायिका के मुख से उसकी वेदना कम कहलवाई है, दूसरों की आतुरता तथा परिस्थिति की गंभीरता का चित्र अंकित कर उसकी ओर अप्रत्यक्ष संकेत किया है। कहीं अनु-भावों की सहायता से वेदना की तीव्रता व्यक्त की गयी है तो कहीं बिम्बों, विराट रूपकों, सटीक अप्रस्तुत-विधान की योजना कर कथन को मार्मिक बनाया गया है। उर्मिला के विरह की गरिमा को रासायनिक प्रक्रिया वाले भावनिष्ठ रूपक द्वारा व्यंजित करने का अभिव्यंजना-कौशल अद्वितीय है।

उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह विक्षेप से
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र स्वर्ण के ?

इसी प्रकार शरद-ऋतु में ज्योत्स्ना-स्नात कुंज को सफेद चादर से ढका सोया शिशु बताना कवि की मौलिक उद्भावना है।

सारांश यह है कि कवि की अनुभूति गहरी है, उनके भावों में पूरी गहराई, तीव्रता और ईमानदारी है। विरहिणी के स्वाभिमान को लगी कचोट से उत्पन्न उसकी सघन और तीव्र व्यथा का चित्र यशोधरा के निम्न उपालंभ में मिलता है :

सखि, वे मुझसे कहकर जाते
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते ?

उसी के निम्नलिखित कथन में उसके हृदय का उत्ताप और भावों की प्रबलता देखिये :

···यदि पाती तो कभी यहाँ
बैठ रहती मैं ? छान डालती धरित्री को
सिंहनी सी कानों में, योगिनी सी शैलों में
शफरी सी जल में, विहंगिनी सी व्योम में,

उनके काव्य में अन्य रसों की व्यंजना भी समुचित रूप में हुई है। युद्ध-भूमि में वीरों और वीरांगनाओं के शौर्य और पराक्रम युक्तकर्मों के चित्रण में युद्ध-वीर, रौद्र एवं भयानक रस का, हनुमान के आकाश-रोहण जैसे चमत्कारपूर्ण प्रसंगों में अद्भुत रस का, युद्ध समाप्त होने पर युद्ध-भूमि के वर्णन या शूर्पणखा के विकृत रूप-धारण के प्रसंग में वीभत्स रस का चित्रण अत्यन्त प्रभावशाली है :

विपिनि में विराग लिए बैठा आप ही आप से कुछ कह रहा है। मन-ही-मन बातें करते इस वीर-धीर-गंभीरमना के सामने एक हास्यवदिनी बाला निःसंकोच आ खड़ी होती है और संवादकौशल के सहारे कवि कथाप्रवाह को अविरल तथा अप्रतिहत गति प्रदान कर देता है :

हँसी सुन्दरी भी, फिर बोली—"यदि वह फल मैं ही होऊं,
तो क्या करो, बताओ? बस अब, क्यों अमूल्य अवसर खोऊं?"

"तो मैं योग्य पात्र खोजूँगा, सहज परन्तु नहीं वह काम।"
"मैंने खोज लिया है उसको, यद्यपि नहीं जानती नाम।
फिर भी वह मेरे समक्ष है।" चौंके लक्ष्मण, बोले "कौन?"
"केवल तुम" कहकर रमणी भी हुई तनिक लज्जित हो मौन।
"पाप शान्त हो, पाप शान्त हो, कि मैं विवाहित हूँ बाले।"
"पर क्या पुरुष नहीं होते हैं दो-दो दाराओं वाले?"

इसी नूतन शुक-रम्भा संवाद में रात बीत जाती है। पूर्व में पौ फटती है और प्रकृति-पटी का रंग भी पलट जाता है। अब एक नया ही दृश्यचित्र समुपस्थित है। भाभी सीता, लक्ष्मण और शूर्पणखा के बीच एक अपूर्व हास्य-रेखा खींच कर कहती है :

देवर, तुम कैसे निर्दय हो, घर आये जन का अपमान!
किसके पर नर तुम, उसके जो चाहे तुमको प्राण समान?

अनुज से अस्वीकृता शूर्पणखा अग्रज की ओर आकृष्ट होती है और इस प्रकार पहले देवरानी फिर सौत का प्रसंग उपस्थित होता है। अन्ततोगत्वा वह निशाचरी नासा-कर्ण कटा कर रुधिर बहाती, बिललाती, धूल उड़ाती आँधी ऐसी वहाँ से चिल्लाती भाग खड़ी होती है और पंचवटी में एक बार फिर वही शान्त-सुखद वातावरण परिव्याप्त हो जाता है जहाँ राम पुलकित होकर और सुधबुध भूल कर सीता तथा लक्ष्मण द्वारा लगाये गये पौधों के फूल उन पर बरसा देते हैं।

गुप्तजी के रचना-विधान का यही विकसित रूप 'अनघ' में व्यक्त हुआ। इस पद्य-नाट्य में कवि एक सार्वभौम चरित्र की सृष्टि के लिए यत्नशील है और इसीलिए यहाँ उसने भगवान बुद्ध के साधनावतार मघ के माध्यम से वास्तव में महात्मा गांधी का ही काव्यात्मक प्रतिरूप प्रस्तुत कर दिया है। सहयोगियों-विरोधियों से घिरा मघ कठिनाइयों तथा अत्याचारों को झेल कर भी सर्वसेवा के कंटकाकीर्ण पथ पर बढ़ता चला जाता है और अन्ततोगत्वा सभी को यह स्वीकार करना पड़ता है कि 'निश्चय मघ हैं अनघ, अनघ, पहले फिर मघ हैं।'

गुप्तजी के अन्य पद्य-नाट्य 'लीला' में वस्तुयोजना ही सर्वोपरि है। यहाँ कवि ने राम-जन्म से लेकर उनके विवाह तक की कथा का काव्यात्मक निबन्धन किया था और इस प्रकार उसने मानो अपने को उस पथ पर आगे बढ़ा लिया था जिसकी परिणति 'साकेत' में हुई।

'साकेत' में गुप्तजी के प्रबन्ध-शिल्प का उत्कर्ष परिलक्षित होता है। काव्य की उपेक्षिता उर्मिला के प्रति न्याय करने के लिए कृतसंकल्प कवि ने यहाँ राम और सीता की कहानी को उर्मिला की कहानी बना दिया है और इस प्रकार उसकी रचना में स्थान-ऐक्य तथा घटना-ऐक्य का स्वतः समावेश हो गया है। काव्य का आरम्भ लक्ष्मण-उर्मिला के वाग्विनोद से होता है जिसके माध्यम से राम-राज्याभिषेक के प्रसंग पर पाठक का ध्यान केन्द्रित कर दिया गया है। इस प्रसंग का कैकेयी की वरयाचना, रामवनवास तथा दशरथ-मरण आदि के साथ कारण-कार्य-सम्बन्ध है और ये घटनाएँ 'साकेत' में घटित होती हैं। भरत अपने प्रकृत नरनाथ को मनाने के लिए चित्रकूट जाते हैं तो हमारा प्रबन्ध-कुशल कवि पाठक को यह सूचित करना नहीं भूलता कि 'सम्प्रति साकेत समाज वहीं है सारा' और भरत के चित्रकूट से साकेत लौटने पर तो साकेत पुनः समस्त कार्यकलाप का केन्द्रस्थल बन जाता है। यहीं भरत ने 'उनके अनुराग से भवन में वन का व्रत ले लिया', यहीं चौदह वर्ष के लिए 'मानस मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप, जलती-सी उस विरह में बनी आरती आप।' यहाँ साकेत में ही—

आज एक ऐसे ही जन ने मुझको यह संवाद दिया,
सबके लिए अगम दक्षिण का पथ प्रभु ने है सुगम किया।

यहीं हनुमान साकेतवासियों को खर-दूषण-संहारी का वृत्तान्त सुनाते हैं और यहीं गुरु वसिष्ठ सबको दूरदृष्टि प्रदान कर यह सामर्थ्य सुलभ कर देते हैं कि—

देखा, सम्मुख दृश्य आप ही खिंच आया है,
अन्धकार में उदित स्वप्न की सी माया है।

स्वप्न की सी इसी माया में साकेतनिवासी लंका में होने वाली घटनाओं को साकेत में ही देख लेते हैं और अन्ततः वह दिन भी आता है जब साकेत में 'पैरों पड़ती हुई उर्मिला हाथों पर थी।'

इस प्रकार गुप्तजी ने इस सनातन कथा में अनेक मौलिक उद्भावनाओं (लक्ष्मण-उर्मिला का प्रेमी जीवन, साकेत के राजपरिवार का कौटुम्बिक जीवन, कैकेयी का परिताप, उर्मिला-विरह-वर्णन, भरत के पास अयोध्या में ही संजीवनी की विद्यमानता, लक्ष्मण-शक्ति के बारे में सुनकर अयोध्यावासियों की रणसज्जा और उर्मिला का वीरांगना रूप, गुरु वसिष्ठ द्वारा योग-बल से सम्पूर्ण युद्ध-दृश्य-दर्शन)

के समावेश द्वारा एक अभिनव रामकाव्य की नियोजना कर दिखायी है।

मैथिलीशरण गुप्त की प्रबंध-माला का एक अन्य मूल्यवान रत्न है 'सिद्धराज'। यहाँ पाँच सर्गों में सिद्धराज जयसिंह के राजत्वकाल की कुछ प्रमुख घटनाओं का आख्यान है। प्रबंध काव्य का आरंभ राजमाता मीनलदे की सोमनाथ-यात्रा के साथ होता है। राजमाता यह जान कर अपनी यात्रा स्थगित कर देती हैं कि सोमनाथ के दर्शनार्थ जाने वाले यात्रियों को राज-कर चुकाना पड़ता है। मातृभक्त जयसिंह कर का निदेशपत्र और लेखा फाड़ कर माँ के चरणों पर पुष्पवत् चढ़ा देता है और इस प्रकार दर्शनार्थी कर-बाधा से मुक्त हो जाते हैं।

इसी बीच मालवराज नरवर्मा पाटन पर आक्रमण करता है। सिद्धराज नरवर्मा पर प्रत्याक्रमण करता है। वर्षों तक युद्ध होता है। नरवर्मा के देहान्त के पश्चात् यशोवर्मा अवन्तिका का राजा बनता है। अन्त में सिद्धराज अवंतीनाथ बन कर पाटन लौट आता है।

जयसिंह सिंधुराज की कन्या रानकदे के साथ विवाह करने का आकांक्षी है किंतु उसका शत्रु सोरठराज खंगार रानकदे को अपनी पत्नी बना लेता है। शत्रु-राज्यों के बीच वर्षों तक युद्ध होता है। रानकदे के दो पुत्र होते हैं। घर की फूट खंगार को परास्त करा देती है और वह वीरगति प्राप्त करता है। सिद्धराज रानकदे के दोनों पुत्रों की हत्या करा देता है। कामी-क्रूर कापुरुष के रूप में वह रानकदे से बलात्कार के लिए उद्यत हो जाता है किंतु जगदेव उसे पथ-भ्रष्ट होने से रोकता है। रानकदे अन्त में सती हो जाती है।

क्षुब्ध सिद्धराज शाकंभरियों से प्रतिशोध लेने के लिए युद्ध करता है। वह युद्ध में विजयी होकर अर्णोराज को बंदी बना लाता है। अर्णोराज का सिद्धराज जयसिंह की पुत्री कांचनदे के साथ विवाह हो जाता है।

अन्तिम सर्ग में सिद्धराज की सफल राज्यव्यवस्था का विवरण है। वह समस्त प्रजा का हित-संपादन करता है। चारण से महोबे के राजा मदनवर्मा की प्रशंसा सुन कर उसे ईर्ष्या होती है। अन्ततोगत्वा मदनवर्मा और जयसिंह में मैत्री स्थापित हो जाती है और दोनों रक्त की होली के स्थान पर रंग की होली के रूप में परस्पर मिलते हैं। मदनवर्मा एकच्छत्र राज्यादर्श की उपयोगिता पर प्रकाश डाल कर सांस्कृतिक समन्वय पर बल देता है, क्योंकि इसी प्रकार 'होगा एक विश्व-तीर्थ भारत ही भूमि का।'

सिद्धराज की कथावस्तु के इस संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि कवि ने कथात्मक पद्धति से जयसिंह के चरित्र के विकसन का ही प्रयत्न किया है। सिद्धराज इसी धरती का मनुष्य है; अतः उसकी शक्तियाँ भी हैं, सीमाएँ भी। 'सिद्धराज' में गुप्त जी ने पूर्वापर संबंध में आबद्ध कथावस्तु का संग्रथन न करके केवल इस दृष्टि से घटनाओं का संकलन तथा शोधन कर दिया है कि इस प्रकार नायक के चरित्र की समुचित व्यंजना हो सके।

'जयभारत' जितना वृहत् ग्रंथ है, उतना सुव्यवस्थित नहीं है। यहाँ गुप्त जी ने उन महाभारतीय आख्यानों तथा कथा-प्रसंगों को परस्पर सूत्रबद्ध कर दिया है, जिनकी रचना किसी एक अखंड कृति के अंशों के रूप में न होकर स्वतःपूर्ण तथा स्वतंत्र आख्यान काव्यों के रूप में हुई है। विविध आख्यानों का संग्रथन इस प्रकार कर दिया गया है कि वह एक संपूर्ण कथा का वर्णन हो गया है। 'जयभारत' में गुप्त जी ने 'महाभारत' की संपूर्ण कथा का संक्षेप दिया है, उसके विशिष्ट प्रसंगों का विशद् वर्णन किया है और इस विस्तृत कथा को सूत्रबद्ध करने के लिए अध्याहार की पद्धति अपनायी है। इस प्रकार इस ग्रंथ में प्रबंध के विस्तार का, उसकी व्यापकता तथा उत्कृष्टता का तो सन्निवेश हो गया है किन्तु इस रचना में अखंड कला-सृष्टि का आभास नहीं होता है।

सामयिक प्रसंगों तथा अपने ही जीवनानुभवों को प्रबंधात्मकता प्रदान करने की परिकल्पना 'किसान' और 'अजित' के रूप में साकार हुई है। इन दोनों ही रचनाओं में गुप्तजी ने कथानायकों की जीवन-गाथा के रूप में वस्तुतः अपने ही जीवन के कटु-तिक्त अनुभवों को शब्दबद्ध किया है। इन दोनों के रचनाकाल में लगभग तीस वर्ष का अन्तराल है। तथापि इन दोनों का लक्ष्य एक ही है : "बस, यह मेरा आत्मचरित ही है मेरा अंतिम संदेश।"

'किसान' खंडकाव्य का नायक पुलिस, महाजन तथा जमींदार के अमानुषिक अत्याचारों से पीड़ित है। कठोरतम श्रम भी उसे निश्चिन्त आजीविका सुलभ नहीं करा पाता। अन्ततः वह आरकटियों के चंगुल में जा फँसता है और बंदी बना कर फिजी द्वीप भेज दिया जाता है। यहाँ ओवरसियर की नृशंसता उसकी पत्नी के प्राण ले लेती है और पति का यह चीत्कार ही बना रह जाता है कि "तनिक ठहर मैं भी चलता हूँ···"

अन्ततोगत्वा सरकार के सत्प्रयास से कुली-प्रथा का अन्त होता है और किसान के जीवन का नैराश्य सुखद आशोल्लास में परिणत हो जाता है। वह स्वदेश लौटता है और 'उतर नाव से सिर पर रक्खी उसने भारत की वह धूल,

जिस पर प्रकृति चढ़ा रखती है रंगबिरंगे सुरभित फूल।' कुली-प्रथा के नरक से उबार लेने वाली सरकार के ऋणशोध के विचार से किसान रण-संकट में सरकार की सहायता के लिए सन्नद्ध हो जाता है और एक दिन किसान से कुली और कुली से सैनिक बन जाने वाले इस कथानायक के जीवन में एक अभूतपूर्व घटना घटित हो जाती है : 'विक्टोरिया क्रास छाती पर देखा मैंने शान्ति समेत !'

'अजित' की रचना, स्वयं कवि के शब्दों में, "अपने कारावास की स्मृति के रूप में की गयी। पुस्तक में वर्णित अनेक घटनाएँ सच्ची हैं, उनके देश-काल और पात्र ही विभिन्न हैं। उन्हीं विभिन्नताओं को मैंने अपने शब्दों में एकत्र कर दिया है।" ('अजित' : निवेदन)।

'अजित' मूलतः राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित काव्य-कृति है। इसमें भारत के स्वाधीनता-संग्राम के दोनों पक्षों—अंग्रेजों की बर्बरता और स्वाधीनता के दीवानों द्वारा क्रमशः हिंसा और अहिंसा के पथ पर किये गये पुण्य प्रयाण—का चित्रण है। कथानायक की माँ छुटपन में ही उसे सदा के लिए छोड़ जाती है। वह गाँव में रहता और पेट भर खाता है; फिर उस पर पुलिस की शनि-दृष्टि कैसे न पड़ती ? उसे कारागार के नाम से उस पिंजरे में बंद कर दिया जाता है जहाँ 'एक-एक में सौ-सौ बंदी' और जहाँ के भोजन में 'मिट्टी, कंकड़, घुन, अनाज सब साथ पिसा था।' यहाँ अजित 'कोल्हू में पिरा, पिसा चक्की में, चरमर, सूख चला तन, किंतु हुआ मन गीला-गीला।'

कारागार में अजित की भेंट डाकू-लुटेरों से भी होती है और राजनीतिक बंदियों तथा उन गम्भीर विचारकों से भी जिनका प्रतिनिधित्व दादा श्याम सिंह करते हैं। यहीं उसे यह स्पष्टबोध होता है कि पराधीनता के कारण उसकी स्थिति कितनी विपन्न है, 'रेल, तार, जल, ज्योति, प्रेस, पथ साथ उन्हीं के, जीना-मरना यहाँ हमारा हाथ उन्हीं के।'

जमानत के रूप में बावनाताल (बावन बीघे का खेत) अर्पित कर दिये जाने के कारण अजित को समय से पूर्व ही निष्कृति-निदेश प्राप्त हो जाता है किंतु 'फाँसी-घर सा आज मुक्त बंदी का घर था' :

पिता गये, घर नहीं आज पत्नी भी मेरी,
मरी कि जीती कहाँ, यहाँ सब ओर अंधेरी !

अजित को दादा श्यामसिंह का यह कथन स्मरण हो आता है—

माँ बंधन में पड़ी प्रतीक्षा में है मरती,
अपना ही धन आज माँगती तुझसे धरती···

वह भद्र युवक विद्रोही बन जाता है। देश के वीर नर-नाहर एक दल का संगठन करते हैं और शीघ्र ही यह स्थिति आ जाती है—

लूटी जो तहसील मिला अच्छा धन उसमें,
लुटे स्वयं भी किंतु हमारे दो जन उसमें।

क्रमशः उन्हें हिंसात्मक कार्यपद्धति की तुलना में अहिंसा का मार्ग अधिक श्रेयस्कर लगने लगता है। 'अजित' के द्वारा गुप्तजी ने गांधीवादी जीवनादर्श की उपयुक्तता प्रतिपादित कर दी है और इस प्रकार अजित का कवि अपने इस प्रबन्ध-कौशल द्वारा भारत के समसामयिक जनजीवन को सरल-सरस प्रबंधात्मकता प्रदान करने में कृतकार्य हो सका है।

गुप्तजी की कुछ प्रबंधात्मक रचनाएँ—'यशोधरा', 'कुणाल गीत', विष्णुप्रिया', 'रत्नावली' ऐसी हैं, जिनमें गीति-तत्त्व की प्रधानता के कारण प्रबंध-तत्त्व प्रायः क्षीण हो गया है। यहाँ छोटे-छोटे काव्य-खंडों—उदाहरणार्थ 'रत्नावली' की 'अवतरणिका'—अथवा गीतों में सन्निहित संकेतों द्वारा ही प्रबंधात्मकता के सूत्रों का आभास होता चलता है। उदाहरण के लिए 'यशोधरा' के गीत 'प्रियतम तुम श्रुतिपथ से आये' से पाठक को यह सूचना प्राप्त हो जाती है कि सिद्धि-लाभ करके सिद्धार्थ लौट रहे हैं। कुणाल के इस गीत से कि 'मुझे यही संतोष नितांत, तथाकथित विद्रोह यहाँ का हुआ सहज ही शान्त' से यह ज्ञात हो जाता है कि कुणाल ने सीमाप्रान्त के विद्रोह पर विजय पा ली है। 'रत्नावली' के इस गीत द्वारा कि 'धन्य सन्त-पद पाकर स्वामी, हुए राम के ही अनुगामी; कुछ अपूर्व निर्माण-निरत हैं पाकर गिरा-प्रसाद' यह पता चल जाता है कि तुलसीदास एक महत् रामकाव्य की रचना कर रहे हैं। वास्तविकता यही है कि इन काव्य-कृतियों में गीत-तत्व की जितनी प्रबलता होती गयी है, इनकी प्रबंधात्मकता का उसी अनुपात में अपकर्ष होता गया है। इनमें से 'विष्णुप्रिया' और 'रत्नावली' कवि-जीवन के अंतिम अवस्थान की रचनाएँ हैं। अतः यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि प्रबंधात्मकता के प्रति कवि की प्रवृत्ति अब घटना से भाव की ओर उन्मुख हो रही है।

प्रगीत-तत्व

मैथिलीशरण गुप्त ने लगभग अर्द्ध शती तक गीति-रचना की। 'भारत-भारती' का विनय-गीत "इस देश को हे दीन-बंधो, आप फिर अपनाइए" (रचनाकाल १९१२) गुप्तजी का सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध गीत है और १९६० में प्रकाशित 'रत्नावली' के गीत उस समय की रचना हैं जब कवि यह

अनुभव करने लगा था कि 'बढ़ती-सी लगती है मुझको निज कवित्व की दीपशिखा।' इस विस्तृत कालखंड में उन्होंने प्रचुर परिमाण में प्रगीत लिखे। इनमें कथाश्रित गीत भी हैं, आत्माभिव्यंजक भी; कुछ गीतों में यदि वस्तुनिष्ठता का प्राधान्य है तो अन्य में रहस्यमयी भक्तिभावना का; कुछ गीत उद्बोधनात्मक हैं तो अन्य आत्मसंलापात्मक; उन्होंने शोकगीतियों की भी रचना की है, दार्शनिकता अथवा मनोवैज्ञानिकतासमन्वित गीतों की भी। इस प्रकार उनके प्रगीत-काव्य में वैविध्य भी है, विस्तार भी।

गुप्तजी के प्रारम्भिक गीत मुख्यतया उद्बोधनात्मक हैं। ये गीत राष्ट्रीय प्रगीतों, जागरण गीतों तथा प्रशस्तियों आदि के रूप में रचे गये। उनके राष्ट्रवादी गीतों की भावधारा को सामयिक राजनीतिक चेतना, मध्यवर्गीय मर्यादावाद तथा स्वयं कवि की वैष्णव भावना ने गम्भीरता-उदारता तथा सौम्यता प्रदान की है। उनकी दृष्टि में 'हरि का क्रीड़ा क्षेत्र हमारा, भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष।' उनकी उद्बुद्ध राष्ट्र-भावना उद्बोधन गीतों के रूप में मुखरित हुई। 'वैतालिक' और 'विश्ववेदना' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

दूसरी ओर, सांत्वना, तथा 'उच्छ्वास' में संकलित अन्य शोक-गीत कवि की विषण्ण मन:स्थिति के परिणाम हैं जिनमें कवि की वैयक्तिक करुण-भावना सर्वत्र परिव्याप्त है :

आवेंगे व्रत पर्व, प्रसाद बँटेगा अब भी,
सबको देकर शेष रहेगा वह कुछ तब भी।
पर लेने को जब न एक कर और बढ़ेगा,
चढ़े हुए पर एक अश्रु चुपचाप चढ़ेगा।

'अंजलि और अर्घ्य' राष्ट्रपिता के प्रति राष्ट्रकवि की श्रद्धांजलि है :

कि पुण्यों से हमें मिला था
अन्धकार में यह आलोक?
हरे! बुझाकर आप हमीं ने
किया अँधेरा अपना ओक!

'उच्छ्वास' को गुप्तजी ने 'द्वापर की पूर्वपीठिका' कहा है। 'द्वापर' को 'सांत्वना' का समाधान माना जा सकता है। इस आत्मसंलापात्मक प्रगीत-काव्य में श्रीकृष्ण से संबंधित विभिन्न पात्रों के आत्मोद्गार अंकित हैं जो निश्छल आत्मीयता से ओतप्रोत हैं :

यह वृन्दावन, यह वंशीवट, यह यमुना का तीर हरे!
यह तरते ताराम्बर वाला नीला निर्मल नीर हरे!
यह शशि-रंजित सितघन-व्यंजित परिचित त्रिविध समीर हरे!
बस, यह तेरा अंक और यह मेरा रंक शरीर हरे!

'झंकार' के रहस्यमय प्रगीत नवयुग के प्रभाव का प्रसाद हैं। वे कवि की स्वाभाविक प्रवृत्ति की देन नहीं हैं। 'झंकार' गुप्तजी की एकमात्र ऐसी रचना है जिसमें काव्य का विषय स्वयं कवि है, आत्मनिवेदन ही उसका प्रतिपाद्य है और ईश्वरोपासना ही उसका इष्ट है। मर्यादावादी होने के कारण आत्मप्रस्तुति में भी कवि ने स्वच्छन्दतावाद का अवलम्ब नहीं लिया है। विशिष्टाद्वैतवादी रामोपासक कवि मैथिलीशरण गुप्त ने शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर 'झंकार' का सृजन नहीं किया, उनकी इस अनुरागाश्रित आत्माभिव्यक्ति में तो स्वयं साकार तथा निराकार भी एकाकार हो गये हैं :

वह बाल-बोध था मेरा,
निराकार निर्लेप भान में भान हुआ जब तेरा।
तेरी मधुर मूर्ति, मृदु ममता,
रखती नहीं कहीं निज समता,
करुण कटाक्षों की वह क्षमता,
फिरा जिधर भव फेरा;
अरे सूक्ष्म, तुझमें विराट ने डाल दिया है डेरा।

कथाश्रित गीत हमें मुख्यतया 'साकेत', 'यशोधरा', 'कुणालगीत', 'विष्णुप्रिया' और 'रत्नावली' में प्राप्त हैं। इनका प्रयोजन पात्र की मन:स्थितियों का सम्यक् उद्घाटन है। इसीलिए इनमें आत्मानुभूति, हार्दिकता तथा मर्मस्पर्शिता भरपूर मात्रा में उपलब्ध हैं।

'साकेत' की रुदन्ती विरहिणी के गीत कथा को आगे तो गतिशील नहीं करते, किंतु वे 'साकेत' के प्रबंध-शिल्प में असंगत भी नहीं हैं। विरहिणी उर्मिला के उद्गार होने के कारण वे विप्रलम्भ शृंगार के व्यंजक हैं।

'यशोधरा' के गीतों में 'अबला की आँखों का पानी' ही नहीं 'आँचल का दूध' भी है। इसीलिए इनमें यदि एक ओर "चुप रह, चुप रह हाय! अभागे, रोता है अब किसके आगे?" का स्वर सुन पड़ता है तो "किलक, अरे! मैं नेक निहारूँ" और "सो, मेरे अंचलधन, सो" भी है। यहाँ अन्य पात्रों की मानसिक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति के लिए भी गीतों को माध्यम बनाया गया है। "देखी मैंने आज जरा" और "ओ क्षणभंगुर भव राम राम" गौतम के हृदय में उठने वाले झंझावात के निदर्शन हैं।

'कुणालगीत' के गीतों में भावुकता की अपेक्षा दार्श-

निकता का प्राधान्य है, यद्यपि इनमें हार्दिकता का भी अभाव नहीं है। कुणाल को 'दृष्टि के इस दान में भी दीख पड़ती आय ही है।' वह एक नई पहेली बूझ रहा है क्योंकि 'बाहर मुझे न दीखे कुछ भी भीतर सब कुछ है सूझ रहा।' इसी अन्तर्दृष्टि के आधार पर 'प्रकट दीख पड़ते हैं मुझको उन तलवों के छाले।'

'विष्णुप्रिया' और 'रत्नावली' के गीतों में इन दोनों पतिप्रेमवंचिताओं की एकांतिक विरह-व्यथा का ही द्योतन नहीं है, सामाजिक चेतना का भी प्रकाशन है। विष्णुप्रिया के जीवन की सबसे अधिक असमाधेय समस्या यदि यह है—

तुम मुझको छोड़ो, मैं तुमको छोड़ूँ कहो कहाँ से ?
सब कुछ छोड़ यहाँ आयी थी, जाऊँ कहाँ यहाँ से ?

तो रत्नावली के शब्दों में नर-सिद्धि का संदेश यही है—

देशकाल कभी न भूलो और पात्र विशेष,
टुक रुको जन, आ गया यदि रोष वा आवेश।

संक्षेप में, गुप्तजी ने विभिन्न रंग-ढंग से जीवंत जीवन तथा साक्षात् सौन्दर्य के आदर्शवादी गीतों की रचना की। उनका प्रगीतशिल्प प्रत्यक्ष सौन्दर्यांकन पर अवलंबित है जिसमें यथार्थ जीवनमूल्यों के प्रति कवि विशेषतया आग्रहशील बना रहा है।



काव्यरूप तथा छंदविधान

'यशोधरा' के शुल्क (प्रस्तावना) में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने अनुज श्री सियारामशरण गुप्त को संबोधित करके कहा है : "मेरी शक्ति का विचार किये बिना ही मुझसे ऐसे ही अनुरोध किया करते हो। कविता लिखो, गीत लिखो, नाटक लिखो। अच्छी बात है। लो कविता, लो गीत, लो नाटक और लो गद्य, पद्य, तुकान्त-अतुकान्त सभी कुछ···"

गुप्तजी ने अपनी कृतियों के माध्यम से पाठक को सचमुच 'सभी कुछ' सुलभ कर दिया है। उनकी रचनाओं में अपरिमित भावगत व्याप्ति के साथ-साथ असाधारण रूपगत वैविध्य परिलक्षित होता है। उनकी प्रत्येक कृति का अलग प्रतिपाद्य तो है ही, अपना निजी रूपाकार भी है, जो उसे दूसरी कृतियों से भिन्न—अद्वितीय—बना देता है।

काव्यरूप की दृष्टि से गुप्तजी की रचनाओं को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :

१. निबंध-काव्य (बड़ी कविताएँ)—आख्यानक तथा निराख्यानक रचनाएँ,

२. खंडकाव्य,

३. महाकाव्य,

४. गीतिकाव्य,

५. नाट्य कृतियाँ,

६. अनुवाद।

निबंध-काव्य के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं : वह विषयीनिष्ठ काव्य न होकर विषयनिष्ठ काव्य होता है। रचनापद्धति की दृष्टि से वह विवरणात्मक अथवा वर्णनात्मक होता है। आकार में वह लघु भी हो सकता है, वृहत् भी। उसमें किसी आख्यान का सन्निवेश भी संभव है और वह निराख्यानक भी हो सकता है। 'पद्य-प्रबन्ध' तथा 'मंगल-घट' में गुप्तजी के आख्यानक तथा निराख्यानक निबंध-काव्य संकलित हैं। आख्यानक लघु निबंध काव्य के अन्य उत्तम उदाहरण 'अर्जन' और 'विसर्जन' में प्राप्त हैं। ये दोनों चरित्रप्रधान निबंध-काव्य हैं, जिनमें क्रमशः राजपुत्री इडडोसिया और मूर सम्राज्ञी काहिना का चरित्रांकन है। 'विकट भट' और 'गुरुकुल' आख्यानक वृहत् निबंधकाव्य हैं। विकटभट में जोधपुर महाराज के एक सरदार देवीसिंह तथा उनके वीर पुत्र सवाईसिंह के माध्यम से राजपूती आनबान का सजीव चित्रण है। 'गुरुकुल' का आयाम अपेक्षया अधिक व्यापक है—उसमें कवि ने सिख गुरुओं के स्तवन के माध्यम से गुरु नानक से लेकर अब तक के सिक्ख इतिहास की काव्यबद्ध रूपरेखा प्रस्तुत कर दी है। 'भारत-भारती', 'हिन्दू' और 'राजा-प्रजा' निराख्यानक वृहत् निबंधकाव्य है। 'भारत-भारती' भारतीय पुनरुत्थानवाद की दीपशिखा है। 'हिन्दू' में संकलित कविताओं के विषय में स्वयं कवि का यह कथन ही अलम् है, "कवित्व स्वच्छंदतापूर्वक स्वर्ग के छाया-पथ पर आनंद से गुनगुनाता हुआ विचरण करे अथवा वह स्वर्गंगा के निर्मल प्रवाह में निमग्न होकर अपने पृथ्वीतल के पापों का प्रक्षालन करे। लेखक उसे आयत्त करने की चेष्टा नहीं करता। उसकी तुच्छ तुकबन्दी सीधे मार्ग से चलती हुई राष्ट्र किंवा जाति गंगा में ही एक डुबकी लगा कर 'हर गंगा' गा सके तो वह इतने से ही कृतकार्य हो जायगा।' 'राजा-प्रजा' में नवोदित स्वतंत्र देश की लोकतंत्रीय संरचना की स्वर-साधना है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त प्रधानतया प्रबंधकार हैं। उनके काव्य का पूर्ण वैभव प्रबंध-काव्यों में ही प्रकट हुआ है। इन कृतियों में खंडकाव्यों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं। खंडकाव्य में जीवन के अंगविशेष का निरूपण किया जाता है। गुप्तजी ने अपने खंडकाव्यों के लिए इतिहास, पुराण तथा समसामयिक जीवन—सभी से सामग्री संचित की है।

'रंग में भंग' और 'सिद्धराज' गुप्तजी के ऐतिहासिक खंडकाव्य हैं। 'रंग में भंग' राजपूती वीरत्व की गौरवगाथा है। इसमें मुख्यतः दो घटनाएँ वर्णित हैं : चित्तौड़ के महाराणा खेतल का विवाहोपरान्त अपने श्वसुर बूँदीनरेश वर्रसिंह से विग्रह और चित्तौड़ में नकली किले की रक्षा करते हुए वीर हाड़ा कुंभ का प्राणोत्सर्ग। किन्तु, इन दोनों के बीच कोई अविभाज्य संबंध-सूत्र विद्यमान न रहने के कारण कथानक में प्रभावशाली क्रमबद्धता नहीं रह पायी है।

'शक्ति' 'दुर्गासप्तशती' पर आधृत पौराणिक खंडकाव्य है, जिसमें यातु-वंश-विध्वंसिनी सौम्य शुभ शक्ति का गुणगान है। 'शकुन्तला' 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' पर आधारित खंड-काव्य है। स्वयं कवि के शब्दों में "श्री कालिदास ने जो श्रवण सुधा रस बरसाया, उसी सुरस हित प्रस्तुत नूतन पद्य पात्र की रचना की गयी है।" और "अहोभाग्य है यदि इसमें वह एक बूँद भी लिया गया।"

'जयद्रथ वध', 'नहुष', 'सैरंध्री', 'वक-संहार' 'वन-वैभव' तथा 'हिडिम्बा' महाभारतीय खंडकाव्य हैं और 'पंचवटी' खंडकाव्य में 'रामायण' के शूर्पणखा प्रसंग की नव प्रस्तुति है। 'विष्णुप्रिया' और 'रत्नावली' मध्यकालीन खंडकाव्य हैं, जिनमें क्रमशः चैतन्य महाप्रभु की पत्नी विष्णुप्रिया और गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी रत्नावली की त्याग-बलिदानमयी व्यथा-कथा वर्णित है। 'कर्बला' अल्पाकार सांस्कृतिक खंडकाव्य है। इसमें धर्म की रक्षा के लिए हज़रत हुसैन तथा उनके अनुयायियों द्वारा किये गये बलिदान का वर्णन है। 'यशोधरा' भगवान बुद्ध की कथा पर आधारित एक नवीन काव्यरूप है। नाट्यांश तथा गीतों का प्राबल्य होने पर भी इसका स्वरूप खंडकाव्यात्मक ही है। 'अनघ' बौद्धकालीन पद्य-नाट्य है, जिसमें भगवान बुद्ध के उस साधनावतार मघ का शील-निरूपण है जिसे 'जन सेवा—सदा सच्ची भुवन—सेवा ही इष्ट है।'

'किसान' और 'अजित' आत्मकथात्मक खंडकाव्य हैं, जिनमें नायक की जीवनगाथा के सहारे सामयिक प्रसंगों तथा परिस्थितियों को काव्यबद्ध किया गया है। इस दृष्टि से इन्हें सामाजिक-राजनीतिक खंडकाव्य भी माना जा सकता है। 'दिवोदास', 'जयिनी' और 'पृथ्वीपुत्र' प्रबंध-शैली के नये प्रयोग हैं।

'जयभारत' एक वृहत्काय काव्यग्रंथ है, जिसमें ४७ प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरण का नामकरण उसमें वर्णित घटना, व्यक्ति या घटनास्थल के आधार पर कर दिया गया है। इस काव्य का निर्माण 'महाभारत' की कथा के आधार पर हुआ है, जिसमें नहुष की कथा से लेकर पांडवों के स्वर्गारोहण तक की घटनाएँ वर्णित हैं। इस ग्रंथ की रचना में कथावस्तु की अखंड कल्पना अथवा चरित्र की कोई सुस्पष्ट, समग्र अथवा संश्लिष्ट अवधारणा प्रेरक तत्त्व के रूप में विद्यमान नहीं रही है। यहाँ तो कवि ने कुछ पूर्वरचित आख्यान खंडों को यथावत् अथवा किंचित् संशोधित, परिवर्तित रूप में अभिनव आख्यान-सृष्टियों के साथ जोड़ कर उन्हें परस्पर संग्रथित कर दिया है। इसी कारण इसमें कथाऐक्य एवं प्रबंधसूत्रता बहुत ही शिथिल तथा क्षीण है। यत्र-तत्र कुछ नवीन उद्भावनाएँ अवश्य मिल जाती हैं किन्तु वे भी अधिक सरस या सजीव नहीं हैं। कार्यान्विति का गुण भी इसमें नहीं के ही बराबर है। अतः काव्यरूप की दृष्टि से इस रचना को 'वृहत् प्रबंध' या 'विशाल प्रबंध-संकलन' की ही संज्ञा दी जा सकती है।

'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त का 'निज कवि-धन' है। यह उनका जीवनकार्य है। यह उनका प्रतिनिधि तथा प्रधान प्रबंधकाव्य है। इसमें बारह सर्ग हैं। कवि का अपना प्रयत्न इसे महाकाव्य रूप में लिखने का रहा है। इसमें महाकाव्य के अनेक परंपरागत लक्षण विद्यमान हैं : साकेत का आरंभ गणेश-वंदना से होता है। प्रथम सर्ग के आरंभ में सरस्वती की वंदना की गयी है। 'साकेत' की कथा लोकप्रसिद्ध है। इस ग्रंथ में श्रृंगार रस प्रधान है और अन्य रस तथा काव्यगुण भी अनुपलब्ध नहीं हैं। प्रसंगानुसार प्रातःकाल, रात्रि, नदी, वन, पर्वत, युद्ध आदि का सांगोपांग वर्णन है। इसकी रचना का मूल उद्देश्य उपेक्षिता उर्मिला के जीवन का अंकन है, यद्यपि प्रसंगवश रावण-युद्ध तक की सम्पूर्ण रामकथा का समावेश कर दिया गया है। 'साकेत' के कवि का लक्ष्य रामकथा के उपेक्षित पात्रों को प्रकाश में लाना तथा उसके देवत्व गुणयुक्त पात्रों को मानवरूप में उपस्थित करना रहा है। गुप्तजी ने अपने काव्य का प्रधान पात्र राम और सीता को न बना कर लक्ष्मण, उर्मिला और भरत को बनाया है, किंतु राम के विराट व्यक्तित्व ने अन्य सभी पात्रों के चरित्र को इतना आच्छादित किया हुआ है कि राम के अवलम्ब के बिना उनका निजी व्यक्तित्व असंभवप्राय ही रहा है और महच्चरित्र के अभाव ने 'साकेत' के महाकाव्यत्व पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है।

'साकेत' को वस्तुविन्यास अथवा व्यापार योजना की दृष्टि से भी महाकाव्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। इसमें प्रायः 'रामायण' के विस्मृत-उपेक्षित प्रसंगों का ही प्रकाशन है। इस प्रकार इसमें नवीनता तथा आधुनिकता का सन्निवेश तो हो गया है किन्तु 'रामायण' सरीखे महान कार्य-व्यापार की समुचित योजना नहीं हो पायी है। "जातीय संस्कृति के मूल तत्त्वों के उद्घाटन, महान आदर्शों की स्थापना, राष्ट्रीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति, महच्चरित्र की सर्जना अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र की वेगवान अनुभूति के प्रत्यक्षीकरण के उद्देश्य से लिखे गये महाकाव्यों में जो गुरुत्व और गांभीर्य होता है वह 'साकेत' में नहीं है, क्योंकि उसमें उपर्युक्त बातों में से कोई भी उद्देश्य के रूप में नहीं गृहीत हुई है। महान उद्देश्यों को ग्रहण करने की क्षमता ऐसे महान प्रतिभा वाले कवि में ही होती है जो विराट कल्पना कर सकता है।

'साकेत' में विराट कल्पना के दर्शन नहीं होते। उसमें गुप्तजी का सरल भावुक मन सामान्य जीवन से ऊपर उठकर महच्चरित्र और व्यापक पृष्ठभूमि की कल्पना नहीं कर सका है। इसीलिए उनके काव्य का क्षेत्र साकेत नगर तक और उसमें भी विशेष रूप से उर्मिला के भवन तक ही सीमित रह गया है। महान उद्देश्य और महती काव्यप्रतिभा के अभाव में इस काव्य की सप्राणता और जीवनी शक्ति भी सीमित ही है। यद्यपि साकेत सामान्य भावुक पाठकों के लिए बहुत आकर्षक है पर गंभीर जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा न होने से उसमें अमरत्व की शक्ति नहीं आ सकी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाव्य के शाश्वत लक्षणों की कसौटी पर 'साकेत' खरा नहीं उतरता।"[1]

अपने अनेक प्रबंध काव्यों में (उदाहरणार्थ 'साकेत', 'यशोधरा', विष्णुप्रिया', 'रत्नावली' में) गुप्तजी ने गीतों को भी स्थान दिया है। प्रबंध-धारा के प्रवाह में सर्वत्र सहायक न होकर भी वे कवि की गीति-रचना क्षमता के साक्ष्य हैं। गुप्तजी की कुछ रचनाएँ प्रधानतया गीति शैली में निबद्ध हैं। उनके राष्ट्रवादी गीत 'स्वदेश-संगीत' में, स्वानुभूतिव्यंजक तथा सांस्कृतिक प्रगीत 'मंगलघट' में और आध्यात्मिक प्रगीत 'झंकार' में संकलित हैं। 'पत्रावली' पत्र-गीति-संग्रह है। कथाश्रित प्रगीत 'साकेत', 'यशोधरा', 'विष्णुप्रिया', 'कुणाल-गीत' और 'रत्नावली' में प्राप्त हैं। 'द्वापर' आत्मसंलापात्मक प्रगीत काव्य के रूप में उल्लेख्य है। 'वैतालिक' तथा 'विश्व-वेदना' को उद्बोध गीति की संज्ञा दी जा सकती है। 'सांत्वना' तथा 'अंजलि और अर्घ्य' शोकगीत हैं एवं 'भूमिभाग' में सामयिक गीतियों का संग्रह है।

गुप्तजी की नाट्य कृतियाँ हैं 'लीला', 'तिलोत्तमा' और 'चन्द्रहास'। 'विरहिणी ब्रजांगना' (मूल लेखक माइकेल मधुसूदन दत्त), 'पलासी का युद्ध' (मूल लेखक नवीनचन्द्रसेन), 'स्वप्न वासवदत्ता' (मूल लेखक भास), 'वीरांगना' (मूल लेखक माइकेल मधुसूदन दत्त), 'मेघनाद वध' (मूल लेखक माइकेल मधुसूदन दत्त), 'वृत्र संहार' (मूल लेखक हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय) और 'रुबाइयात उमर खैयाम' (फ़िट्जजेरल्ड द्वारा अंग्रेजी में प्रस्तुत 'रुबाइयात उमर खैयाम' का अनुवाद) के रूप में उत्कृष्ट अनुवाद प्रस्तुत करके राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी इस परिकल्पना को सजीव तथा साकार कर दिया—

आप अनुवाद की ही योजनाएँ कर दें
तो कह सकें हम सगर्व-विश्व भर के
वाङ्मय में जो है वह चुन लिया हमने
और जो हमारा अपना है अतिरिक्त है।[2]

छंदविधान

श्री मैथिलीशरण गुप्त छंदभक्त कवि हैं। कविता के सहज वाहन छंद को गुप्तजी ने काव्य के अनिवार्य आभूषण के रूप में ग्रहण किया है। काव्य-यात्रा के आरंभ में ही उनके हृदय में छंद के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया था :

यह भी विचित्र एक बात हुई मुझमें,
आदि में ही मैंने गण वृत्त अपना लिये।
मुझको सरलता उन्हीं में जान पड़ती,
और एक नूतनता कौतूहलकारिणी।
ऊपर गणों में वृत्तलक्षण में लिखता
नीचे अनुरूप शब्द सोचकर रखता,
और देखता मैं वृत्त बन गया सहसा।
अल्प न थी मेरे लिए इतनी सफलता। ('आभार')

क्रमश: सरलता अथवा सुविधा का स्थान सतर्कता ने लिया और गुप्तजी के छंद-प्रयोग में सप्रयोजनता का समावेश होता गया।

गुप्तजी की छंदयोजना में विलक्षण वैविध्य है। उनकी एक ही रचना 'जयभारत' में पच्चीस छंदों का प्रयोग किया गया है और एक अन्य रचना 'साकेत' के केवल नवम सर्ग में पचास से अधिक छंद प्रयुक्त हैं। उन्होंने मात्रिक तथा वर्णिक, दोनों प्रकार के छंदों में काव्य-रचना की है। मात्रिक छंदों में अनुसोरठ ('विष्णुप्रिया'), अहीर ('अनघ'), आर्या ('साकेत'), आर्यागीति ('साकेत'), उत्कंठा ('यशोधरा'), उल्लाला ('अनघ'), उल्लास ('जयभारत'), उर्मिला ('साकेत), कुंडल ('यशोधरा'), कुंडलिया ('साकेत'), गीति ('साकेत'), गोपीवर्द्धन ('यशोधरा'), चतुष्पद ('जय भारत'), छप्पय ('यशोधरा'), तरलनयन ('हिंदू'), ताटंक ('साकेत'), तिलका मात्रिक ('झंकार'), दिग ('अनघ'), दोहा ('काबा'), दोहाधर ('यशोधरा'), दिग ('अनघ'), निश्चल ('जयभारत'), पदपादाकुलक ('साकेत'), पीयूष-निर्झर ('जयभारत'), पीयूषराशि ('तिलोत्तमा'), पीयूषवर्षी ('साकेत'), बरवै ('साकेत'), मधुमालती ('साकेत'), मधु-

१. डा० शम्भूनाथ सिंह, 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास', पृ० ६९९-७००।
२. आभार (राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा किये गये अभिनंदन का आभार व्यक्त करते समय श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा पठित कविता), पृ० ७।

वल्लरी ('कुणालगीत'), मरहट्ठा माधवी ('द्वापर'), माधुरी ('झंकार'), मालिका ('झंकार'), युग्मक ('रत्नावली'), राधिका ('साकेत'), राम ('साकेत'), रास ('यशोधरा'), रोला ('साकेत'), विजात ('अनघ'), विष्णुपद ('यशोधरा'), शुद्धगीता ('काबा'), सार ('साकेत'), सिंधु ('साकेत'), सोरठा ('साकेत'), हरिगीतिका ('भारत-भारती'), हाकलि ('साकेत'), आदि व्यवहृत हैं। कहीं-कहीं दो मात्रिक छंदों का संयुग्मन भी है। उदाहरणार्थ 'साकेत' के अवतरण—

जय देव मंदिर, देहली
सम-भाव से जिस पर चढ़ी,
नृप-हेममुद्रा और रंक वराटिका।
मुनि-सत्य सौरभ की कली—
कवि-कल्पना जिसमें बड़ी,
फूले-फले साहित्य की वह वाटिका।

के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ तथा पंचम चरण मधुमालती के (१४ मात्राएँ) हैं और तृतीय तथा षष्ठ मधुवल्लरी (२१ मात्राएँ) के हैं।

वर्ण वृत्तों में इंद्रवंशा ('साकेत'), इंद्रवज्रा ('चंद्रहास'), उपेन्द्रवज्रा ('साकेत'), कनक मंजरी ('साकेत'), तरेटक ('मंगलघट'), दुर्मिल सवैया ('साकेत'), प्रमिताक्षरा ('साकेत'), पृथ्वी ('साकेत'), मदिरा सवैया ('चंद्रहास'), भुजंगी ('साकेत'), वियोगिनी ('साकेत'), शशिकला ('चंद्रहास'), शालिनी ('साकेत'), समानिका ('साकेत'), स्रग्धरा ('साकेत'), स्वागता ('पत्रावली') और हरिणी ('साकेत') आदि का प्रयोग किया गया है और यत्रतत्र दो छंदों का मिश्रण भी कर दिया गया है। वार्णिक मुक्तकों में मुख्यतया अनुष्टुप् ('साकेत'), अर्चना ('जयभारत'), मनहरण घनाक्षरी ('यशोधरा'), मिताक्षरी ('यशोधरा') और रूप घनाक्षरी ('साकेत') प्रयुक्त हैं।

प्रसंगानुरूपता गुप्तजी के छंदविधान की अन्य उल्लेखनीय विशेषता है। उन्होंने इस बात का सदा ध्यान रखा है कि यह बाह्य परिधान अपने भीतर छिपे भाव का शोभावर्द्धन ही करे। इसीलिए प्रेमियों के गीतातीत प्रेम के गायन के लिए यदि १९ मात्रा वाला पीयूषवर्षी छंद काम में लाया गया है :

"जागरण है स्वप्न से अच्छा कहीं !"
"प्रेम में कुछ भी बुरा होता नहीं।"
"प्रेम की यह रुचि विचित्र सराहिए
योग्यता क्या कुछ न होनी चाहिए ?" ('साकेत')

तो आत्मकेन्द्रित निर्वेद के निरूपण में सप्ताक्षरी छंद समानिका का प्रयोग है :

कंठ-कंठ गा उठा,
शून्य-शून्य छा उठा—
सत्य काम सत्य है,
राम नाम सत्य है ! ('साकेत')

निश्चिन्त आत्मविश्वास के आकलन के लिए यदि षोडषवर्णीय अर्चना छंद उपयुक्त माना गया है :

विघ्न में विचरते हैं, डर सकते हैं हम ?
नर हैं, अमर नहीं, मर सकते हैं हम। ('नहुष')

तो उत्कंठा का आरेखन तीसमात्रिक 'उत्कंठा' में है :

बोल युवक, क्या इसीलिए है यह यौवन अनमोल हाय ?
आकर इसके दाँत तोड़ दे, जरा भंग कर अंग-काय ?
बता जीव, क्या इसीलिए है यह जीवन का फूल हाय !
पका और कच्चा फल इसका तोड़-तोड़कर काल खाय !
('यशोधरा')

क्षणिक छलना का द्योतन यदि केवल आठ मात्रा वाले तिलका मात्रिक में किया गया है :

मैं जाग पड़ी,
हो गई खड़ी। ('झंकार')

तो गंभीर चिंतन के क्षणों में २६ मात्रा वाले विष्णुपद की व्यवस्था है :

हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा ?
हाय मिलेगा मिट्टी में वह वर्ण-सुवर्ण खरा ?
सूख जायगा मेरा उपवन, जो है आज हरा ?
धिक् जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा !
('यशोधरा')

बालगोपाल की नटखट लीलाओं के वर्णन के लिए यदि चौपाई तथा उल्लाला के मिलन से निर्मित मरहट्ठा माधवी अंगीकृत है :

कर लेता है ठीक ठिकाना वह चाहे जिस ठौर ही,
नागर नटवर होकर भी वह हम सबका सिरमौर ही।
हम हाथी घोड़े हैं उसके यमुना उसकी पालकी,
बलिहारी, बलिहारी, जय-जय गिरिधारी गोपाल की।
('द्वापर')

तो हत्या का भयावह वातावरण चतुष्पद में आलेखित है :

सब ओर असित आवरण निशा का घोर घना तम छाया,
छिप गई उसी में श्रांत-क्लांत-सी शिथिल सृष्टि की काया।

मारी मेघों की फूंक पवन ने दिव के दीप बुझाए,
गोड़े तमसा ने मार्ग सदा के सूझे और सुझाए।
('जयभारत')

अवधि-शिला को अश्रुजल से तिल-तिल काटती उर्मिला के विरहवर्णन की प्रस्तावना के लिए यदि 'उर्मिला' छंद उत्तम माना गया है :

छिन्न भी है, भिन्न भी है, हाय !
क्यों न रोवे लेखनी निरुपाय ?
क्यों न भर आँसू बहावे नित्य ?
सींच करुणे, सरस रख साहित्य ! ('साकेत')

तो पुरुषोत्तम राम की विशाल हृदयता का चित्रण 'राम' छंद द्वारा किया गया है :

करता है गंभीर अम्बुनिधि नाद ज्यों,
बोले श्रीमद्रामचन्द्र सविषाद यों—
"उठो प्रजाजन, उठो, तजो यह मोह तुम,
करते हो किस हेतु विनत विद्रोह तुम ?" ('साकेत')

धर्मग्रंथों का स्तवन यदि 'शुद्ध गीता' छंद में किया गया है :

जानते जिनको नहीं इंजील से पोथी-पुरान,
गूढ़ पुण्य स्पर्श जिसको ,मानता है शुभ कुरान,
आज मैं दारा वही निधि पा गया, पावे जहान,
आर्यऋषियों की अहा ! वह उपनिषद् विद्या महान।
('काबा')

तो रस तथा विष की एकरसता मधुवल्लरी में परिस्फुट है :

यदि लोक ने अपना दिया लौटा लिया,
तो फिर यहाँ उसने असंगत क्या किया ?
विष वह किसे दे, रस हमें उसने दिया,
विष भी पियेंगे हम, हमीं ने रस पिया।
('कुणालगीत')

सुजलां-सुफलां मातृभूमि का सौम्य-सारल्य यदि तरलनयन द्वारा मूर्तिमंत है :

एक पुण्यभूमि, एक मातृभूमि,
हरित भरित भरतभूमि मातृभूमि।
एक मनःप्राण, एक सत्य पक्ष
एक उक्ति, एक मुक्ति, एक लक्ष। ('हिन्दू')

तो अन्यायजन्य आक्रोश तथा आवेग की व्यंजना के लिए अहीर छंद अपनाया गया है :

यह कैसा अन्याय,
पर है कौन उपाय ?
त्यागो बस यह राज्य,
सचमुच है यह त्याज्य। ('अनघ')

छंद के विभिन्न अवयवों—वर्ण, मात्रा, लय, यति, गति के प्रति गुप्तजी प्रायः सर्वत्र ही सचेष्ट बने रहे हैं और तुक अथवा अंत्यानुप्रास के साथ तो उनका लगाव इतना अधिक रहा है (और संभवतः इसी कारण हमें झाड़, पहाड़ तथा आड़; सनी, मनी, जनी और उपमोचितस्तनी तथा मक्खी, रक्खी, लक्खी और चक्खी सरीखे तुकसाम्य मिलते हैं) कि उन्होंने अपने परम प्रिय बन्धु श्री सुमित्रानंदन पंत को भी 'अन्त्यानुप्रास' के रूप में ही अंगीकार किया है :

मिले संत के अनुप्रास से
तुम हमको प्रिय पंत,
भोगो अपनी पुण्यभूमि के
शत-शत शरद वसन्त। (रत्नावली : समर्पण)

काव्यभाषा

श्री मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-वल्लरी का उद्भव आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा खड़ीबोली के शैशव-काल में हुआ। वैसे तो खड़ीबोली के उत्स अपभ्रंश के अनेक उदाहरणों तथा सिद्धों के गीतों आदि में खोजे जा सकते हैं और पद्य-भाषा के रूप में इसके साक्ष्य खुसरो, भूषण तथा गंग आदि की रचनाओं में उपलब्ध हैं, किन्तु हिन्दी-काव्य-धारा पर इस वाग्धारा का यथार्थ अवतरण उन्नीसवीं शती के नौवें दशक में ही माना जाना चाहिए, जब बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ीबोली का झंडा उठाकर खड़ीबोली का आन्दोलन चलाया और पंडित श्रीधर पाठक ने अपनी काव्य-कृतियों में खड़ीबोली का प्रयोग कर उक्त आन्दोलन को रचनात्मक आधारशिला सुलभ की। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध कृत 'प्रियप्रवास' के प्रकाशन ने इसी आधार को पुष्टतर बनाया।

गुप्तजी ने बीसवीं शती के प्रथम छह दशकों में काव्य-सृजन किया। अध्ययन की सुविधा के लिए इस कालावधि को चार कालखंडों में विभक्त किया जा सकता है :

१. प्रारम्भ	१९०१ से १९१० ई०
२. प्रबोध	१९११ से १९२५ ई०
३. प्रकर्ष	१९२६ से १९४० ई०
४. प्रौढ़ि	१९४१ से १९६४ ई०

प्रारम्भिक रचनाएँ काव्याभ्यास ही हैं। गुप्तजी ने पंद्रह वर्ष की अवस्था में पद्य-रचना आरंभ की। १९०१ में उन्होंने अपने पिता की काव्य-रचना 'रहस्य रामायण' के अनुकरण पर पद्य-रचना की। स्वयं गुप्तजी के शब्दों में, "मेरे कवित्व का आरंभ, जहाँ तक मैं समझता हूँ, इस प्रकार हुआ—पिताजी ने 'कवितावली' के अनुकरण पर कुछ सवैये भी लिखे थे। एक छंद में सीताजी से उनकी माताजी कहती हैं :

"दूर गली जनि जाहु लली,
निज आँगन खेल रचौ रस-भीनी।
'कनकलता' हिय माँहि बसौ नित,
तात औ मात की जीवन-जीनी।"

इस छन्द में 'कनकलता' नाम अपनी सहज गति से नहीं आता, यह बात मुझे खटकी। मैंने सोचा पिताजी का नाम 'कनक-लता' न होकर 'स्वर्णलता' अथवा 'हेमलता' होता तो अच्छा होता। सवैया पढ़ते समय मैं 'स्वर्णलता' कहने लगा। मेरे भीतर यहीं से छंद का उदय समझिए।" ('मेरे कवि का आरम्भ' रेडियो वार्ता, १९५४ ई०)

कवि के इस आत्मोद्गार से सिद्ध हो जाता है कि भाषा-चेतना उन्हें प्रकृत वरदान के रूप में प्राप्त हुई थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस चेतना का दिशा-निर्देशन, संवर्द्धन तथा संस्कार किया।

गुप्तजी ने ब्रजभाषा की पद्य-रचना से काव्यारंभ किया। उनकी इस समय की काव्यभाषा का स्वरूप यह है :

जयति जयति जगदंब जयति जय जनक लड़ैती।
जयति काल विकराल ज्वाल जल शीतल सैंती।

इस अवतरण के 'लड़ैती' शब्द से स्पष्ट है कि इस समय गुप्तजी की ब्रजभाषा में बुंदेलखंडी का मिश्रण था। क्रमश: उनकी ब्रजभाषा में परिमार्जन हुआ और वह अपना सहज माधुर्य अर्जित करने लगी :

जग की गति सौं अपनी गति कौं
नित देखत हैं पहचानत ना।
चक चौंधि गए जकिकैं थकिकैं
टक भूलि गए सुधि आनत ना।
हम जात खिचें कितकैं कित हैं,
जब लौं हरिजू तुम तानत ना।
अपनो अपनो सपनो सब है,
जन जानत है, मन मानत ना।

(रचनावर्ष १९०३)

गुप्तजी ने अपनी एक ब्रजभाषा रचना 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ भेजी। द्विवेदीजी का उत्तर था, "आपकी कविता पुरानी भाषा में लिखी गई है। 'सरस्वती' में हम बोलचाल की भाषा में ही लिखी गई कविताएँ छापना पसंद करते हैं।" साथ ही उन्होंने गुप्तजी के तत्कालीन उपनाम

रसिकेन्द्र के विषय में लिखा, "अब रसिकेन्द्र बनने का जमाना गया।"

१९०५ ई० में गुप्तजी की खड़ीबोली में रचित कविता 'हेमन्त' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। गुप्तजी के कवि-जीवन की यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना थी। यह रचना आचार्य द्विवेदी द्वारा संशोधित रूप में प्रकाशित हुई थी और इसी ने गुप्तजी को द्विवेदीजी सरीखा आचार्य तथा द्विवेदीजी को गुप्तजी जैसा वह अनुगत प्रदान कर दिया जिसने पूर्ण भक्ति-भाव से आचार्य का प्रसाद अंगीकार किया और मुक्तकंठ से उनका आभार स्वीकार भी किया :

करते तुलसीदास भी कैसे मानस-नाद ?—
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।

'हेमंत' के प्रकाशन को खड़ीबोली काव्य-क्षेत्र में गुप्तजी का नियमित प्रवेश माना जा सकता है। अब वह अधिकतम मनोयोगपूर्वक उस भाषा (खड़ीबोली) में काव्य-सृजन में तल्लीन हो गये, जिसके विषय में उन्होंने कार्तिक शुक्ला ३, संवत् १९६१ (सन् १९०४ ई०) को आचार्य द्विवेदी के नाम लिखे अपने पत्र में कहा था, "खेद का विषय है कि इस दास को स्वभाव से ही खड़ीबोली से कुछ अरुचि-सी है।"

१९०९ ई० में गुप्तजी का प्रथम खंडकाव्य 'रंग में भंग' प्रकाशित हुआ। 'हेमन्त' के साथ 'रंग में भंग' की तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग चार वर्ष की इस अवधि में गुप्तजी ने अपनी काव्यभाषा के रूप-शृंगार के लिए कितना उद्यम किया था।

'हेमन्त का' एक मूल (असंशोधित) अंश इस प्रकार है :

ओढ़े दुशाले अति उष्ण अंग।
धारें गेरु वस्त्र हिये उमंग॥
तो भी करें सब लोग सी-सी।
'हेमन्त' में हाय कंपे बत्तीसी॥

और 'रंग में भंग' का एक अंश यहाँ तुलनार्थ प्रस्तुत है :

हो चुका शृंगार जब पूरा यथोचित रीति से,
ले चलीं वर के निकट सखियाँ उसे तब प्रीति से।
ललित लज्जा-भार से ग्रीवा रुचिर नीची किये,
मन्द गति से वह गई अवलंब उन सबका लिये।

इससे अगले ही वर्ष १९१० में प्रकाशित 'जयद्रथ-वध' में शब्द-चयन और भी अधिक सुविचारित तथा सुरुचिपूर्ण हो गया है :

जो 'सहचरी' का पद मुझे तुमने दया कर था दिया,
वह था तुम्हारा, इसलिए प्राणेश तुमने ले लिया।
पर जो तुम्हारी 'अनुचरी' का पुण्यपद मुझको मिला,
है दूर ही रहना नहीं कोई उसे सकता हिला।

इस अवतरण के केवल 'सहचरी' और 'अनुचरी' शब्दों में ही नहीं, 'दिया' और 'मिला' जैसे सामान्य शब्दों में भी विशिष्ट अर्थगरिमा है। प्रदत्त वस्तु को दाता चाहे तो लौटा ले सकता है परंतु पुण्यफल के रूप में प्राप्त (अर्जित) वस्तु का स्वयं दाता द्वारा भी प्रत्यावर्तन संभव नहीं है।

इन साभिप्राय तथा सहज सरल शब्द-प्रयोगों के साथ-साथ हमें इस अवधि की रचनाओं में 'अपारार्णव' और 'वीर-वर्योचित' जैसी वे कष्टसाध्य उक्तियाँ भी मिल जाती हैं, जिनसे पता चलता है कि कवि भाषा पर प्रभुत्व पाने के लिए पांडित्य से पल्ला छुड़ा नहीं पाया है।

'प्रबोध' कालीन कृतियों में 'भारत-भारती' को महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है। इसके प्रणयन तक कवि ऐसे गम्भीर प्रश्नों के तर्कपुष्ट विश्लेषण-विवेचन में प्रवृत्त हो गया था कि "हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी ?" भावप्रकाशन के लिए खड़ीबोली को वह पहले ही आत्मस्थ कर चुका था। अब आवश्यकता थी उसके समुचित श्रीवर्द्धन की। इसके लिए गुप्तजी ने एक सुदृढ़ आधार ग्रहण किया। उन्होंने अन्य भाषाओं—विशेषतया संस्कृत और बंगला—के गौरवग्रंथों का न केवल गहन अवगाहन किया, अपितु अनेक कालजयी रचनाओं का खड़ीबोली में उत्तम अनुवाद भी प्रस्तुत कर दिखाया। इस प्रकार हमारे कवि ने अभीष्ट शब्द-संपदा का संचय किया, उसकी काव्यभाषा में सुधार तथा निखार आया और उसके समक्ष भावाभिव्यंजन के नये-नये आयाम उद्घाटित हुए। 'पंचवटी' इसी अवस्थान का एक सुविकसित प्रसून है, जहाँ कवि की भाषा भाव-संवहन में स्वतः समर्थ हो गयी है :

"क्या कर्त्तव्य यही है भाई ?"
लक्ष्मण ने सिर झुका लिया,
"आर्य्य! आपके प्रति इस जन ने
कब-कब क्या कर्तव्य किया ?"
"प्यार किया है तुमने केवल—"
सीता यह कह मुस्काई,
किन्तु राम की उज्ज्वल आँखें
सफल सीप सी भर आईं।

'प्रकर्ष' कालखंड तक पहुँचते-पहुँचते गुप्तजी को भाषा पर पर्याप्त अधिकार प्राप्त हो गया था। अतः अब वह भाव-विस्तार की ओर विशेषतः सक्रिय हुए। अब इतिहास तथा

पुराण ही नहीं, युगीन परिस्थितियाँ तथा प्रसंग भी उनके चिंतन-मनन का विषय बनने लगे और वह उस समस्त सामग्री को अपने काव्य में संरचित-संरक्षित करने के लिए उत्कंठित हो गये। इसीलिए इस अवधि में उन्होंने एक ओर देशभक्ति-पूर्ण रचनाओं द्वारा जन्मभूमि का स्तवन किया, दूसरी ओर 'साकेत', 'यशोधरा' और 'द्वापर' के रूप में अपना जीवन-कार्य निष्पन्न किया; एक ओर यदि 'हिन्दू' द्वारा जातीय उद्‌बोधन का दायित्व निभाया तो दूसरी ओर 'गुरुकुल' द्वारा सिख गुरुओं के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित कर सहिष्णुता और राष्ट्रभावना का द्योतन किया; एक ओर 'विकट भट' तथा 'सिद्धराज' के माध्यम से इस देश के गौरवपूर्ण इतिहास को काव्यबद्ध किया तो दूसरी ओर 'सैरंध्री', 'वन वैभव' और 'वक-संहार' के नाम से उस खंडकाव्यशृंखला का समारंभ किया जिसकी पूर्ण परिणति 'जय भारत' में हुई; एक ओर यदि 'वीरांगना', 'मेघनाद वध' और 'रुबाइयात उमर ख़ैयाम' नामक उत्कृष्ट अनुवाद उपस्थित किये तो दूसरी ओर 'झंकार' तथा 'मंगलघट' द्वारा माँ भारती की अर्चना संपन्न की।

इस भावगत वैविध्य के अनुरूप ही इस कालखंड की काव्य-भाषा में भी विविधता आयी। अब "वेदने तू भी भली बनी, पाई मैंने आज तुझीमें अपनी चाह घनी," "बल हो तो सिंदूर-विन्दु यह, यह हरनेत्र निहारो," "प्रियतम, तुम श्रुतिपथ से आये," "पुलक पूर्ण शिशु-यौवन सो", "तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किसमें होकर आऊँ मैं, सब द्वारों पर भीड़ मची है, कैसे भीतर आऊँ मैं?" "तुझे प्यार करके अपने से मैंने वैर विसाहा","फूटता नहीं है कभी फोड़ा आप अपना, फोड़ दूँगा दंभ का तुम्हारा अघ-कुंभ मैं" आदि पंक्तियाँ सहज ही कवि की लेखनी से निःसृत होने लगीं, वह भावानुभाव के कुशल चित्रण में सक्षम हो गया और चरित्रांकन की उस कला में भी प्रवीण हो गया जहाँ एक ही उक्ति व्यक्ति की चारित्रिक विशिष्टताओं का संपूर्ण चित्र उतार देती है :

हम पर भाग नहीं लेंगी, अपना त्याग नहीं देंगी। (सुमित्रा)
गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको। (शुद्धोदन)
भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान। (यशोधरा)
सब सह लूंगी—रो रोकर मैं, देना मुझे न बोध हरे! (राधा)
मेरे भीतर तू बैठा है, बाहर तेरी माया। (यशोदा)
तन न जाय, पर मन तो मेरा अपनी गैल गया है। (विधृता)

काट डाले मेरा सिर कोई अनायास ही,
किन्तु झुकने से रहा मस्तक विपक्षी को (जगद्देव)
आदि आदि।

अब कवि की कलम से उतरते-उतरते शब्द मानो उसके कानों में कहने लग गया है, "मैं अर्थ का संवाहक मात्र नहीं हूँ, मेरा प्रभावक्षेत्र इससे कहीं अधिक विस्तीर्ण है।" एक उदा-हरण पर्याप्त होगा :

उर्मिला की 'मंजरी सी अंगुलियों में यह कला' देखकर लक्ष्मण सुध-बुध भूल जाते हैं और मत्त गज से झूम कर उर्मिला से अनुनय करते हैं—

कर कमल लाओ तुम्हारा चूम लूँ।

यहाँ 'कर-कमल' बहुत ही साधारण और परंपरागत अभि-व्यक्ति है किन्तु हमारे कवि ने मानो मत्त गज के सान्निध्य में इसका प्रयोग करने से पूर्व ही इसकी विशद भूमिका का निर्धारण कर लिया है। उर्मिला अपना हाथ आगे बढ़ा देती है। अब वह 'कर-कमल' मात्र नहीं रहा है—'कमल-सा खिला' हो गया है, अर्थात् अब कमल एक सामान्य उपमान-मात्र नहीं रह गया है, वह उस कर का कुशल आरेखक बन गया है जिसमें 'भूरि भूरि भलाइयाँ भरी' हैं, जिसमें 'आ गुराई से मिला आरुण्य है', 'आप विधि के हाथ से ढाली गयी गई जो सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई कनक-लतिका भी कमल-सी कोमला है'। कमल-सा हाथ पति की ओर बढ़ाते हुए उर्मिला मुस्कराती है। उसकी इस मुस्कराहट में पूर्वव्यक्त 'मत्त गज सा झूम लूँ' का प्रयोजन अंतर्निहित है और उसके भीतर छिपा विनोद इस प्रकार मुखरित हो जाता है :

मत्त गज बन कर विवेक न छोड़ना,
कर कमल कह कर न मेरा तोड़ना।

'कर-कमल' का याचक पति लज्जित होकर प्रेम-सागर में निमज्जित हो जाता है और इस प्रकार 'कर-कमल' की यथार्थ भूमिका तब पूरी होती है जब पति प्रिया का वही कर सहसा पकड़ कर उसे फिर-फिर चूम कर इन शब्दों में अपनी पराजय स्वीकार कर लेता है :

एक भी उपमा तुम्हें भाती नहीं,
ठीक भी है, वह तुम्हें पाती नहीं।

'प्रौढ़ि' कालखंड की प्रतिनिधि रचनाएं हैं—'कुणाल-गीत', 'अर्जन और विसर्जन', 'काबा और कर्बला', 'विश्व-वेदना', 'अंजलि और अर्घ्य', 'अजित', 'जयभारत', 'राजा प्रजा', 'विष्णुप्रिया' और 'रत्नावली'। यहाँ गुप्तजी की काव्यभाषा में (उसकी पूर्ववर्ती सीमाओं—संस्कृतप्रेम तथा प्रांतीयता के साथ-साथ) प्रकर्षकालीन सभी विशिष्टताएं—

पात्र तथा प्रसंगानुकूलता, मार्दव तथा मधुरिमा, अलंकृति तथा आर्जव आदि—यथावत् विद्यमान हैं। कुछ अवतरण उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं :

पानी नहीं, अन्न यह बरसा !
व्यर्थ न गई बूँद भी भू पर, शस्य पुलक-सा सरसा !
हुई रसायन-सिद्धि नई यह,
वह मृण्मयी हिरण्मयी यह !
कायाकल्प हो गया आहा ! किस पारस ने परसा !
पानी नहीं, अन्न यह बरसा··· (कुणालगीत)

× × ×

गांधी, तू तो गया, हाय क्या
गया साथ ही तेरा गंध ?
अथवा क्या अनुभूति शक्ति ही
खो बैठे अपनी हम अंध ? (अंजलि और अर्घ्य)

× × ×

साम्य राज्य ही इष्ट, नहीं साम्राज्य हमें है,
सच्चा वही स्वराज्य और सब त्याज्य हमें है।
('अजित')

× × ×

आगे बढ़ती हुई तनिक तिरछा तन मोड़,
रूप गंध की फलित ललित लपटें-सी छोड़।
चलती फिरती कल्पलता रस-रंग विभोर,
आकर्षित-सी हुई आप नव नर की ओर। ('जयभारत')

इन विशिष्टताओं के अतिरिक्त, इस अवधि की रचनाओं में एक अन्य गुण—वाक्संयम—का भी सन्निवेश हो गया है। इस शब्द-लाघव का बाह्य अथवा शाब्दिक रूप हमें 'विश्व वेदना' में दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि इसकी तो रचना ही समस्तशब्दप्रधान शैली में की गयी है :

काचनयनी, कृत्रिमदशना,
यथा रुचि अखिलजन्तुअशना,
प्रलयपिंडा, विद्युद्हसना,
वाष्पनिःश्वसना, बहुवसना,
नई संक्रान्ति आ गई ऊल,
उड़ा वह धुवाँ, उड़ी यह धूल !

और इसका आन्तरिक वैभव स्थान-स्थान पर परिलक्षित होता है। गौतम के महाभिनिष्क्रमण तथा निमाई (चैतन्य महाप्रभु) के गृहत्याग के प्रसंगों की परस्पर तुलना से यह स्पष्ट हो जायेगा।

गौतम निज राज-पाट-धन-धरणि-धाम से विदा लेकर, वैभव यशःलोभ, कीर्तिलोभ और क्षोभ—सभी से मुक्त होकर प्रसुप्ता गोपा से यह कहकर चले जाते हैं, "सो, अभी स्वप्न ही तू निहार !" और इस प्रकार गोपा को इस परित्याग के संदर्भ में आत्माभिव्यक्ति का अवसर ही नहीं मिलता। दूसरी ओर निमाई विष्णुप्रिया को सोती छोड़ कर नहीं जाते, अत्यंत प्रेमपूर्वक सुला कर जाते हैं :

···हाथ फेर प्रभु सहलाने लगे उसको,
छाया एक मद सा मधुर कर स्पर्श से।
इष्ट उसको जो न था, सहसा वही हुआ।
आया जड़ स्तम्भ भाव और निद्रा आ गई,
प्रभु-पद छाती पर रख वह सो गई।
किन्तु कैसा स्वप्न एक देख घड़ी भर में
चौंक कर जाग उठी, तब तक धीरे से
चरण उठा कर निमाई थे चले गये।

इस प्रकार चले जाने से तत्काल पूर्व उसी रात को निमाई विष्णुप्रिया के गले में प्रसाद पुष्प-हार पहनाते हैं, अंक में बिठाकर प्यार करते हैं और कहते हैं "रो लिया बहुत, अब हँसकर कुछ बोल दो।" और पति के ये शब्द सुनकर 'क्या हुआ न जाने वधू रोती हुई हँस दी।' यहाँ 'क्या हुआ न जाने' में विष्णुप्रिया का संपूर्ण—वर्तमान तथा भावी—अंतर्चित्र विद्यमान है, क्योंकि उस समय अपांग व्यंग्य करके (जिस व्यंग्य में आसन्न विपत्ति की पूर्वाशंका संश्लिष्ट है) शब्दों द्वारा वह इतना ही कह पाती है—

यह बलिपूर्व बलि-पशु का खिलाना है !
शाक्त तुम मेरे, क्यों न वैष्णव हो औरों के,
पशु नहीं, नर बलि देते नहीं, लेते हो !

इतने कम शब्दों में इतना अधिक और कैसे कहा जा सकता था ? इतने में ही सब कुछ कह कर 'मौन हुई मानिनी उभर फिर डूबी-सी।'

यह वाक्संयम गुप्तजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व, दोनों की अपनी ही विभूति है।

इस प्रकार गुप्तजी ने अपनी काव्यभाषा (खड़ीबोली) को आदितः अंगीकार कर अन्ततः भारत-भारती में परिणत कर दिखाया।

मूल्यांकन

किसी भी कवि-कलाकार के कर्तृत्व के विषय में प्रत्येक युग के प्रबुद्ध पाठक को यह प्रश्न करने का अधिकार होता है कि हमारे लिए उसकी प्रासंगिकता या सार्थकता क्या है? अतः वर्तमान काल में मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की प्रासंगिकता का निर्णय करने के लिए उनके कृतित्व का पुनर्मूल्यांकन करना, प्रकारान्तर से काफी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हो सकता है।

गुप्तजी ने जब काव्य-रचना प्रारम्भ की थी, उस समय काव्य-कला का आदर्श था :

हा, लेखनी : हृत्पत्र पर लिखनी तुझे
है यह कथा,
दृक्कालिमा में डूबकर तैयार होकर सर्वथा।
स्वच्छंदता से कल तुझे करने पड़ें
प्रस्ताव जो,
जग जायं तेरी नोंक से,
सोये हुए हों भाव जो—

वह राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण का युग था। प्रबुद्ध राष्ट्र की चेतना समग्र रूप से इसी एक लक्ष्य पर केन्द्रित थी। देशभक्ति से प्रेरित बृहत् जन-समुदाय जहाँ कर्म के क्षेत्र में अनेक प्रकार से इसकी पूर्ति के लिए संघर्ष कर रहा था, वहाँ विभिन्न प्रदेशों और भाषाओं के कवि-लेखक अपनी वाणी के द्वारा इसी लक्ष्य का संधान कर रहे थे।

हिन्दी के जिन कवियों ने राष्ट्रजागरण के इस समवेत गायन में महत्वपूर्ण योगदान किया, उनमें सबसे अधिक प्रभावी स्वर मैथिलीशरण गुप्त का था। जैसा कि स्वाभाविक है आरम्भ में देशभक्ति के उच्चार में वाणी का वेग अधिक था किन्तु धीरे-धीरे वह प्राणों की ऊर्जा में अन्तर्व्याप्त होता गया और काव्य में क्रमशः अधिक अर्थ-गाम्भीर्य तथा उदात्त संकल्पनाओं का समावेश होने लगा। मैथिलीशरण गुप्त का कृतित्व राष्ट्रीय काव्य की इसी अन्तर्यात्रा का स्थायी मान-चित्र है जिसमें एक ओर भावोच्छ्वास से प्राणशक्ति के उद्वेलन तक, और दूसरी ओर प्रत्यक्ष कथन से संश्लिष्ट-व्यंजना तक की विकास रेखाएँ स्पष्ट रूप से लक्षित हैं।

उस समय से अब तक काव्य के मूल्य और प्रतिमान काफी बदल चुके हैं। इनमें सबसे अधिक चर्चित हैं : समाज-शास्त्रीय प्रतिमान, रूपवादी प्रतिमान और भाषिक प्रतिमान।

समाजशास्त्रीय साहित्य-चिन्तन सामाजिक जीवन के संदर्भ में, सामाजिक मूल्यों के आधार पर, काव्य की सार्थकता का आकलन करता है। इस चिंताधारा के अनुसार काव्य का मूल प्रयोजन है जनहित—समाज-कल्याण : धर्मनीति और सदाचार का मूल्यांकन है जनहित, लेकिन कल्याण की धारणा के विषय में इसके पुरोधाओं में काफी मतभेद है। इसका एक सीमांत, जो मार्क्सवादी जीवन-दर्शन का स्पर्श करता है, सामाजिक यथार्थ अर्थात् प्रत्यक्ष भौतिक जीवन की परिधि में ही कल्याण की कल्पना करता है। उधर आस्तिक विचार-परम्पराओं से प्रभावित दूसरा सीमांत है, जिसमें भौतिक योग-क्षेम के साथ-साथ आत्मिक उत्कर्ष-अभ्युदय और निःश्रेयस—दोनों की समेकित कल्पना की गयी है। कला के नैतिक-सांस्कृतिक मूल्य-मानकों का उद्भव और विकास इसी समेकित चिंतन-पद्धति से होता है।

उदारवादी समाजशास्त्र के मूल्य-मानकों के अनुसार मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का महत्त्व आज भी अक्षुण्ण है। यह कवि आरम्भ से अंत तक उद्देश्यमूलक काव्य-कला की साधना करता रहा—और यह उद्देश्य था जन-हित या लोक-कल्याण। किंतु उसकी लोक-कल्याण की भावना भौतिक परिवेश तक ही सीमित नहीं है। मानववाद में उनकी पूर्ण आस्था है परन्तु उनका मानववाद वैष्णव मानववाद ही है और वे गांधी की तरह ईश्वरैक्य के रूप में ही मानवैक्य की भावना को सार्थक मानते हैं। हो सकता है कि समाजशास्त्र की किसी विशेष चिंतन-पद्धति—मार्क्सवादी चिंतन-पद्धति के अनुसार उनके ये सामाजिक मानक-मूल्य निर्दोष सिद्ध न हों, किंतु भारतीय लोक-मानस इस आस्तिक समाजवाद को ही शायद आज भी बहुमत से स्वीकार करता

है और जब तक राष्ट्र की इस मन:स्थिति में आमूल परिवर्तन नहीं होता तब तक मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की सार्थकता पर ज़रब नहीं आयेगा।

वर्तमान युग में काव्य के मूल्यांकन की दूसरी बहुचर्चित प्रवृत्ति है रूपवादी समीक्षा। इसके अनुसार कविता मूलतः एक मूर्त वस्तु है—कृति है जिसका अस्तित्व उसके रूप में ही निहित है—रूप के अतिरिक्त कविता का कोई अन्य अर्थ नहीं है। इस रूप की अपनी स्वायत्त सत्ता है—वह किसी भाव या विचार का माध्यम या प्रतीक नहीं है। अत: काव्य का सत्य रूपान्विति का ही सत्य है—अर्थात् काव्य की सार्थकता उसकी रूपान्विति की परिपूर्णता में ही निहित है। बाह्य-जीवन के अनुभवों और क्रिया-व्यापारों के साथ संवाद या विसंवाद उसके लिए प्रासंगिक नहीं हैं। प्रस्तुत समीक्षा-प्रवृत्ति वास्तव में सौंदर्यवादी या कलावादी समीक्षा का ही रूपान्तर है जो सौंदर्य या कला को निरपेक्ष सत्य मानकर चलती है।

ज़ाहिर है कि मैथिलीशरण गुप्त जैसे 'सोद्देश्य रचनाकार' के लिए काव्य के इस निरपेक्ष रूप का कोई अर्थ नहीं हो सकता। रूप की उसने उपेक्षा नहीं की। उदाहरण के लिए 'साकेत' में रामायण की संपूर्ण कथा का केन्द्र साकेत—अयोध्या—को बनाकर कवि ने कुंतक की प्रबंध-वक्रता का एक नया रूप प्रस्तुत किया है। रामायण की सभी घटनाओं का, चाहे उनका संबंध मिथिला से रहा हो या किष्किंधा से या लंका से, उर्मिला के स्मरण, हनुमान के वर्णन और वसिष्ठ के योग-बल द्वारा साकेत के राजनिवास में ही उपस्थापन महाकाव्य के विस्तीर्ण कलेवर में स्थानैक्य का अपूर्व उदाहरण है। यूनान-रोमी आचार्यों ने स्थानैक्य की प्रकल्पना नाटक के सीमित कलेवर में ही की है— महाकाव्य के दिगंत-विस्तार में नहीं। किन्तु यहाँ महाकाव्य के कथा-विधान के अंतर्गत उसका सफल प्रयोग किया गया है। चित्रकूट प्रसंग उसका अपवाद अवश्य है लेकिन कवि ने यह कह कर कि संप्रति 'साकेत समाज वहीं है सारा'—अर्थात् चित्रकूट का साकेत में ही रूपांतर कर, इस समस्या का समाधान कर दिया है। जब संपूर्ण साकेत-समाज चित्रकूट पहुँच गया तो वही साकेत बन गया। इसी प्रकार 'यशोधरा' में कवि ने संगीत-रूपक शैली और 'द्वापर' में एकालाप शैली का कुशल प्रयोग किया है।

मैथिलीशरण गुप्त वास्तव में कथा-शिल्पी हैं, शब्द-शिल्पी नहीं। पुराण तथा इतिहास के विविध प्रसंगों में नाटकीय रूपों का संधान या आविष्कार करने में वे अत्यन्त प्रवीण हैं। उनके विविध कथा-काव्यों में इस कला का उत्कर्ष कहीं भी लक्षित किया जा सकता है। किन्तु यह रूपविधान स्वायत्त अथवा निरपेक्ष नहीं है। विविध पात्रों की जीवन-गाथा के साथ उसका अनिवार्य संवाद है। उदाहरण के लिए 'साकेत' में स्थानैक्य का विधान उर्मिला की जीवन-गाथा का ही प्रतिफलन है : वहाँ रामायण की कथा साकेत से बाहर इसलिए नहीं जाती क्योंकि उसकी सूत्रधार उर्मिला साकेत छोड़कर नहीं जाती।

गुप्तजी सामान्यत: सिद्धांत-चर्चा के प्रपंच में नहीं पड़ते, लेकिन कभी-कभी उपयुक्त प्रसंग आने पर अपने विचारों को अत्यन्त स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है। कला के विषय में उनकी स्पष्ट मान्यता है—

मानते हैं जो कला के अर्थ ही,
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।
वह तुम्हारे और तुम उसके लिए,
चाहिए पारस्परिकता ही प्रिये।

(साकेत)

पिछले कुछ दशकों से साहित्य के क्षेत्र में भाषा विज्ञान का प्रवेश बड़े वेग से हुआ है, जिसके फलस्वरूप समीक्षा के भाषिक प्रतिमान विविध रूपों में उभर कर सामने आये हैं। इन भाषाविद् समीक्षकों के मत से काव्य मूलत: भाषिक कला है : काव्य (केवल) भाषा है[1]। भारतीय शास्त्रकार भी स्पष्ट शब्दों में कह चुका था : 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्'। किन्तु इस सूत्र की व्याख्या उसने अत्यंत व्यापक रूप में की थी। काव्य के आत्मवादी संप्रदायों ने भी रस-ध्वनि को काव्य का प्राण-तत्त्व मानते हुए भी शब्दार्थ के महत्त्व को यथावत् स्वीकार किया है। आधुनिक भाषाविद् आलोचक और भी जोरदार शब्दावली में, एक नये तेवर के साथ, इसे रेखांकित करता है। उसका आग्रह है कि भाषा से भिन्न काव्य की कोई सत्ता नहीं है : लक्षणाकारों ने काव्य के जिस रमणीय अर्थ या भाव-सौंदर्य का उल्लेख किया है उसका प्रतिपादक शब्द से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है।

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक काव्य-भाषा के निर्माता हैं। खड़ीबोली को जिन कृती कवियों ने काव्य-भाषा का रूप प्रदान किया है उनमें मैथिलीशरण गुप्त का नाम अग्रगण्य है। आधुनिक काव्य-भाषा के विकास-क्रम की प्रामाणिक रूप-रेखा का निर्माण इस अकेले कवि की रचनावली के आधार

१. पोयट्री इज़ लैंग्वेज (क्रो रेन्सम)

पर किया जा सकता है। फिर भी भाषा विज्ञान के क्षेत्र से आयातित धारणाओं को यथावत् स्वीकार कर लेना उनके सद्विवेक की परिधि में नहीं आता।

रमणीय अनुभूति शब्द-मूर्त्त होकर ही काव्य में रूप ग्रहण करती है—इस तथ्य को वे पूर्णत: स्वीकार करते हैं और इस प्रकार माध्यम-रूप भाषा के प्रति—उसके निर्माण और विकास में उनकी पूर्ण आस्था है। किन्तु वही काव्य का सर्वस्व है, यह उन्हें मान्य नहीं है। भारतीय दर्शन के अनुसार, व्याकरण, भाषाशास्त्र आदि 'वैखरी' भाषा को ही आधार मानकर चलते हैं जबकि अनुभूति का आविर्भाव उससे पूर्व 'पश्यन्ती' में ही हो जाता है जो दर्शन और मनोविज्ञान का विषय है—इसलिए भारतीय मनीषा और उधर पाश्चात्य काव्य-दर्शन की गंभीर परंपरा, उपर्युक्त अतिवादी स्थापनाओं को स्वीकार न कर, काव्य के वृत्त में भाषा को माध्यम के रूप में ही महत्त्व-प्रतिष्ठा करती आई है। मैथिलीशरण गुप्त इस विवाद में नहीं पड़े, किन्तु उनका दृष्टिकोण इस विषय में निर्भ्रान्त है।

इन बहु-चर्चित प्रतिमानों के अतिरिक्त काव्य का एक व्यापक प्रतिमान भी है–रागात्मक प्रतिमान। इसके अनुसार राग-तत्त्व ही काव्य का सार-सर्वस्व है : काव्य का आस्वाद मूलतः भाव का ही आस्वाद है—'निर्विघ्नप्रतीतिग्राह्यो स्थाय्येव रस:।' मैथिलीशरण गुप्त मानव-सम्बन्धों के कवि हैं। आचार्य शुक्ल ने शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंध की रक्षा और उसके निर्वाह को काव्य का मूल प्रयोजन माना है। काव्य की मूल्यवत्ता उसमें अंतर्मुक्त भाव-संपदा पर ही मुख्यतया निर्भर करती है। भारतीय आचार्यों में भरत से लेकर आनंदवर्द्धन—अभिनव गुप्त और बाद में जगन्नाथ तक, कवियों में वाल्मीकि से लेकर रवीन्द्रनाथ तक, और उधर पश्चिम में अरस्तू-लोंजाइनस से लेकर आई० ए० रिचर्ड्स तक सभी ने इस मत का समर्थन किया है। मानव-संवेदना पर आधृत होने के कारण ये रागात्मक प्रतिमान सार्वभौम तथा सार्वकालिक मानव-मूल्यों के अभिन्न अंग हैं।

शेष सृष्टि से शुक्ल जी का अभिप्राय चराचर जगत् का है—जिसमें नर-क्षेत्र और प्राकृतिक क्षेत्र अर्थात् मानव जीवन तथा प्राकृतिक जीवन दोनों का ही अंतर्भाव है। गुप्त जी के काव्य में रागात्मक सम्बन्धों की व्याप्ति प्रायः मानव जीवन तक ही है और उसके अन्तर्गत भी उनकी वृत्ति सबसे अधिक पारिवारिक जीवन में ही रमी है। वास्तव में, मानव भावना के रमण के लिए परिवार ही एक प्रकार से जगत् का संक्षिप्त संस्करण है। पारिवारिक संबंधों के विविध रूपों के जैसे मधुर-तिक्त चित्र मैथिलीशरण गुप्त ने पूर्ण तन्मयता के साथ अंकित किये हैं वैसे हिन्दी में तुलसीदास के अतिरिक्त किसी अन्य कवि के काव्य में प्राप्त नहीं होते।

उनके अकेले काव्य 'साकेत' में ही इस प्रकार के मार्मिक प्रसंगों का विविध रूपों में अपूर्व चित्रण किया गया है। 'यशोधरा', 'सिद्धराज' तथा 'जयभारत' आदि वृहत्तर काव्यों में और इधर पंचवटी, दिवोदास तथा अन्य लघुतर काव्यों में इस प्रकार के भाव-द्रवित चित्र विभिन्न कथा-प्रसंगों को हृदय-रस से अभिषिक्त कर रहे हैं। जैसा कि मैं अनेक संदर्भों में स्पष्ट कर चुका हूँ गुप्त जी के काव्य का प्रमुख गुण है कथा-रस। पुराण इतिहास तथा सामयिक परिवेश से भी सार्थक प्रसंगों का चयन कर वे उन्हें अपनी प्रबुद्ध संवेदना के द्वारा मानव-जीवन के रागात्मक संबंधों से भाव-सिक्त कर देते हैं। उनकी सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना का विकास भी मानव-संबंधों के आधार पर ही हुआ है। समाज और राष्ट्र को उन्होंने परिवार के परिवर्द्धित रूप में ही चित्रित किया है। इस प्रकार उनकी विस्तीर्ण काव्य-भूमि मानव जीवन के मधुर-अम्ल और तिक्त रसों से सिंचित है।

वे 'प्रसाद' की तरह भावों का दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक विवेचन नहीं करते और न पन्त तथा महादेवी की तरह भावों की कल्पना-रमणीय अभिव्यक्ति ही उनको अभीष्ट है। वे जीवन के विविध व्यापारों और मानवीय संदर्भों के अन्तर्गत, सामान्य व्यावहारिक स्तर पर अनुभूत भावों की सहज अभिव्यक्ति करके ही कृतकार्य हो जाते हैं।

यही उनकी अपनी भूमि है, इसी पर विचरण करना उनकी प्रतिभा का स्वधर्म है। सौंदर्यवादी प्रतिमानों के आधार पर या एकांत भौतिकवादी सामाजिक मूल्यों के आधार पर उनके काव्य का मूल्यांकन करना अन्याय होगा। वे कालिदास, रवीन्द्रनाथ और प्रसाद की परंपरा के कवि नहीं हैं। छायावादी कवियों का रमणीय शिल्प-विधान उनके काव्य में खोजना व्यर्थ है—माइकेल मधुसूदन, इकबाल और निराला के काव्य में उद्वेलित प्राणों की ऊर्जा भी यहाँ नहीं है। यह कवि तो वाल्मीकि, व्यास, भवभूति और तुलसी की परंपरा का कवि है जो मानव-जीवन की रागात्मक अभिव्यक्ति में ही अपने कवि-कर्म की सार्थकता मानता रहा है।

□□

खण्ड २

ग्रन्थसार

अंजलि और अर्घ्य

आकाशवाणी पर गांधीजी की हत्या का समाचार सुन कवि स्तब्ध रह गया, रात-भर चैन से सो न सका और प्रातः-काल उनके मुख से जो पद्यबद्ध पंक्तियाँ निकलीं, वही इस शोकगीत की आरंभिक पंक्तियाँ बनीं। गांधीजी की निर्मम एवं अविवेकपूर्ण हत्या से हतचेत कवि चाहते हुए भी इस विषय पर कुछ न लिख सका। अन्त में कर्त्तव्यभावना से प्रेरित हो, वह दो वर्ष में इस शोकान्तिका की रचना कर पाया।

इस काव्य-रचना की मूलवर्ती भावना राष्ट्रपिता गांधी के निधन से उद्भूत कवि की मनःपीड़ा है। एक ओर उसने गांधीजी के चारित्रिक गुणों और उनके व्यापक अवदान को स्मरण कर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है और दूसरी ओर लोकहितार्थ प्रत्यावर्तित होने की कामना से वह उनकी स्मृति को स्वागत का अर्घ्य चढ़ाते हैं, अपनी पूजा-भावना को वाणी देते हैं। अतः काव्य-पुस्तक का नाम रखा गया है, "अंजलि और अर्घ्य।" 'अंजलि' में कवि की शोकाभिव्यंजना है और 'अर्घ्य' में विश्ववेदना को निवारित करने के लिए कवि उनकी विश्वबंधुत्व, समदृष्टि, करुणाशीलता के प्रत्यावर्तन की कामना करता है। जिस प्रकार ईसा के भक्त उनके पुनरुज्जीवन (Resurrection) में विश्वास करते हैं, उसी प्रकार गुप्तजी गांधी के पुनरावर्तन की आशा करते हैं। कवि के लिए गांधी आराध्य थे। उन्होंने गांधी के व्यक्तित्व और कृतित्व में अवतारी पुरुष के महान गुण और बहुमुखी कार्य देखे थे। गांधी के मानवतावाद, उनकी क्रांतिदर्शी दृष्टि, सत्य-अहिंसा के प्रति उनकी अडिग निष्ठा, वचन और कर्म में एकरूपता और विश्व-कल्याण की भावना से प्रभावित कवि उनकी आकस्मिक, निर्मम और अविवेकपूर्ण हत्या से क्षुब्ध हो उठा। इसमें एक ओर आत्म-ग्लानि, पश्चात्ताप और दैन्य भाव हैं तथा दूसरी ओर शोक, पीड़ा और क्षोभ हैं।

यद्यपि इसमें अनेक भावों की अभिव्यक्ति हुई है पर इसका मुख्य विषय है शोक-वृत्ति। अतः काव्यरूप की दृष्टि से इसे शोकगीत (Elegy) कहा जाएगा। गांधीजी के परम-भक्त गुप्तजी ने उनके निधन से अत्यधिक व्यथित मनः-स्थिति में यह रचना की है फिर भी इसे व्यक्तिगत (Personal) शोकगीत नहीं कहा जा सकता। इसके अनेक कारण हैं—प्रथम तो कवि ने अपने भावोद्रेक को सप्रयास नियंत्रित किया है और दो वर्ष के अन्तराल के बाद लिखे जाने के फल-स्वरूप वह इसमें सफल भी हुआ है। दूसरे कवि राष्ट्रकवि है, वह अपनी व्यक्तिगत भावनाओं से अधिक राष्ट्र की भावनाओं को वाणी दे रहा है। तीसरे वह प्रकारान्तर से अपने जीवन-दर्शन को व्यक्त कर रहा है और चौथे उसकी मूल कवि-चेतना गीतिकार की न होकर प्रबन्धकार की है। अतः वह व्यक्तिगत शोक को वाणी देने से अधिक आलम्बन के गुणों के श्रद्धापूर्वक स्मरण और माहात्म्य-वर्णन पर बल देता है। आत्मानुभूति की सीधी और तीव्र व्यंजना न होने के कारण उसे वस्तुनिष्ठ शोकगीत कहना अधिक उपयुक्त होगा।

अजित

'अजित' भारत के स्वाधीनता संग्राम का काव्यवृत्त है। कवि ने राजनीतिक बंदी के रूप में भोगे गये कारावास की स्मृति के रूप में इसका प्रणयन कारागार में आरंभ किया था और इसका मूल अभिधान 'कारा' ही रहा। कालांतर में जब गुप्तजी इसे पूरा कर सके "तब इसके प्रमुख पात्र के नाम पर ही इसका नाम-संस्कार कर देना उचित जान पड़ा।" अजित के माध्यम से गुप्तजी ने उन सौ-सौ बंदियों की करुण कहानी को कथा-योग्य वाणी प्रदान की है, जिन्हें किसी न किसी कारण से यह यातना भोगनी पड़ती है।

अजित एक दिन सवेरे जाग कर सँभलने भी नहीं पाता कि

दरोगा का दल-बल उसे औचक आ धरता है और वह एक वर्ष के लिए काराभोगी हो जाता है। कारागार के जिन पिंजड़ों में एक-एक में सौ-सौ बंदी वास कर रहे थे वहाँ उनका परस्पर परिचय होता है और इस प्रकार अजित विविध आचार-विचार के व्यक्तियों के संपर्क में आता है। सभ्य शासकों की इस कारा में, जिसे सारा दोषी दल 'ससुराल' कहकर पुकारता है जो लोग दंड पाकर प्रविष्ट होते हैं उनमें से ९० प्रतिशत ऐसे निर्दोष होते हैं, जिन्हें द्वेषवश फँसा लिया जाता है और दस प्रतिशत ऐसे शूर साहसी होते हैं जो चोरी-जुआ आदि उद्यमों के फलस्वरूप यहाँ प्रवेश पाते हैं। यहाँ अजित की भेंट पुनू डाकू से होती है, जो अपने खेत की रक्षा के प्रयत्न में हत्यारा बनता है। उसकी भेंट फांसी की बाट जोहते उस बंदी से भी होती है जो दो दिन का मेहमान होने पर भी जहाँ-तहाँ के समाचारों से अवगत होने के लिए अखबार की तलाश करता है। यहाँ का एक साथी अजित को मगन रखने के लिए भाँग का गोला पेश करता है और एक दिन उसे एक ऐसे सज्जन के भी दर्शन होते हैं जिन्हें उस स्थान पर इस-लिए ले आया गया कि 'संशयी हुए शासक मेरे प्रति।' यहाँ अजित दादा श्यामसिंह से मिलता है, जिन्होंने भारत माँ के प्रति अपने कर्त्तव्य-निर्वाह के लिए, परिवार के बंधनों से मुक्त होने के लिए अपनी रुग्णा माँ को विषपान करा दिया। यहीं उसका साक्षात्कार एक विचित्र व्यक्ति से होता है जो मुँह से गिन्नियाँ निकाला करता था। यह व्यक्ति अजित के सरल सौजन्य से इतना अधिक प्रभावित होता है कि वह उसे अपने गुप्त धन का पता बता देता है।

अजित का ममेरा भाई धनराज उसे जमानत पर छुड़ा लेने का प्रयत्न करता है। जिस व्यक्ति ने झूठी साख देकर उसे दंड दिलाया था, वही बावना ताल और नकद धन लेकर उसकी समयपूर्व निष्कृति में सहायक होता है। बंदीघर से मुक्त होकर अजित अपने उस घर में आता है जो उसे पिता तथा पत्नी के अभाव में फाँसी-घर-सा जान पड़ता है। गाँव की नदी में हाथ-मुँह धोते समय अनायास उसके हाथ में अपनी पत्नी का पैंजना आ जाता है। उसे विश्वास हो जाता है कि पत्नी नदी की प्रखर धारा में विलीन हो गयी है।

घर की बाधा से मुक्त हो जाने पर अजित उस महत्कार्य की ओर प्रवृत्त होता है जिससे 'भारत माता का घोर घिनौना बंधन-जाल कट सके।' वह मुखिया, दारोगा तथा अन्य अधि-कारियों को देश का शत्रु मानकर उनके अन्त के लिए सन्नद्ध हो जाता है। इन कामों के लिए धनराज एक दल का गठन कर लेता है और अजित को उसका दलपति बना लिया जाता है। अब वे लोग आतंक-धर्म अपनाकर लूटमार करने लगते हैं। एक दिन एक बम-परीक्षण करते समय अजित के माथे पर चोट आ जाती है तथापि अजित और उसके साथी अपने लक्ष्य के प्रति अविचल बने रहते हैं। अब यह स्थिति आ जाती है, 'लूटी जो तहसील मिला अच्छा धन उसमें, लुटे स्वयं भी किंतु हमारे दो जन उसमें।' अन्त में उनके समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है 'पर कब तक यह लुकाछिपी यों चला करेगी ? और अन्त में क्या स्वदेश का भला करेगी ?'

आतंकधर्म पर चल चुकने के उपरांत अजित को यह अनुभव हो जाता है कि 'क्षण विशेष का मरण भला क्षण-क्षण के भय से।' इस प्रकार वह महात्मा गांधी द्वारा प्रवर्तित खुले विद्रोह के पथ पर अग्रसर हो जाता है। वह योजना बनाता है कि साथी बंदी-जन द्वारा उसे जो गुप्त धन सौंपा गया है उसे वह रचनात्मक कार्यों में लगाएगा। यहीं उसे पता चलता है कि उसकी पत्नी उजियारी और पुत्र जीवित हैं। रजू उसे बताता है कि उनका चाकर चतरा आज भी यही मानकर उनके घर को झाड़-पोंछ कर रखता है कि उसका लल्लू चार धाम की यात्रा पर है। चार धाम की इस यात्रा से पुनः घर लौटते समय अजित की आँखों में हेमकूट की तपस्थली की उस शकुन्तला का चित्र झूल जाता है जिसके 'लिपट पगों में वत्स डगमगाता जाता है, भारत का वह भरत जगमगाता जाता है।'

अनघ

'अनघ' मघ का काव्याख्यान है। सर्व-सेवा-व्रत-व्रती मघ सबका भला चाहता है, सबका भला करता है। अपने कर्म-क्षेत्र में सर्वप्रथम उसकी भेंट एक ऐसे जन से होती है जो उसे भगवान समझता है और उससे मनचाहा वरदान प्राप्त करना चाहता है। वह बहुत धन पाना चाहता है और यह मानता है कि यदि मघ 'तथास्तु' कह देंगे तो उसकी यह कामना पूरी हो जाएगी। मघ कहता है कि यथार्थ श्रम ही इसका उचित उपाय है। वह जन मानता है कि भगवान ने उसे इच्छित वर प्रदान कर दिया। वह जाकर मघ के पूजन के लिए चाँदी के थाल में सामग्री लाता है। मार्ग में ही चोर उसे घेर लेते हैं। वह सहायता के लिए पुकारता है। मघ वहाँ पहुँच जाता है। यह जानकर कि चोर धन चाहते हैं,

वह उन्हें पूजा का वह रजत थाल दे देता है। चोर भिक्षा या दान के रूप में कुछ लेना स्वीकार नहीं करते। मघ उन्हें उपहार के रूप में वह थाल देता है। उन्हीं चोरों से मघ को पता चलता है कि वहाँ पानी का अभाव है, अत: वहाँ खेती नहीं हो पाती। मघ को वांछित काम मिल जाता है। वह कुएँ खोदता है तथा अन्य लोकोपकारी कार्यों के लिए अपना जीवन समर्पित कर देता है। गाँव में कुछ लोग उसकी सराहना करने लगते हैं, कुछ आलोचना। गाँव का मुखिया और ग्राम-भोजक आदि उसके प्रति शत्रु-भाव रखने लगते हैं पर मुखिया का लड़का शोभन मघ का अनुयायी और सहयोगी बन जाता है और ग्राम-भोजक की पत्नी मघ को चोरी-चोरी कारागार से निकाल देने तक के लिए कटिबद्ध हो जाती है।

मघ अपनी माँ के लिए विशेष चिंता का विषय बन जाता है। वह न समय पर खाता है न सोता है, यह सब देखकर माँ बहुत चिंतित और दुखी रहती हैं। वह फूलों की माला सरीखी किसी सुशीला बाला से मघ को बाँधकर जीवन का फल चखने का निश्चय कर लेती हैं। दुर्लभसुता सुरभि प्राप्त होते ही वह उसके साथ मघ का गठबंधन कर देती हैं।

विवाह के उपरांत मघ और सुरभि दुगुने उत्साह से सेवाकार्य में लग जाते हैं। उनके कामों से जनकल्याण जितना अधिक होता है, सरकारी अधिकारियों का ईर्ष्या-द्वेष और क्रोध-विरोध उतना ही अधिक बढ़ता जाता है। वे मघ को अनेक प्रकार से कष्ट देने लगते हैं। उसका घर जला दिया जाता है। तरह-तरह के झूठे आरोप लगाकर उसे बंदी बना लिया जाता है। किंतु वह स्वधर्म से विचलित नहीं होता। उसे न्याय के लिए मगधशासक के सामने लाया जाता है। यहाँ सुरभि तथा मघ के अन्य सहयोगियों द्वारा प्रस्तुत किये गये तर्कों तथा साक्ष्यों द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि मघ निर्दोष है, निरपराध है, अनघ है।

अर्जन

विक्रम की सातवीं शती में अरबों ने दमिश्क पर हमला किया। सीरियन सेनानायक टमास ने डटकर अरब सेना का मुकाबला किया। किन्तु एक विधवा ने अपने बाण से उसका एक नेत्र बींधकर उसे युद्धभूमि छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। पुरवासियों में विषाद तथा नैराश्य छा गया। इन्हीं लोगों में एक युवक जोनस था, जो अपने पुरवासियों की पराजय निश्चित मान बैठा था। वह इउडोसिया नाम की युवती से प्रेम करता था और चाहता था कि वे दोनों वहाँ से कहीं भागकर अपनी जीवन-रक्षा कर लें। इउडोसिया यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं करती।

अरब सैनिक जोनस को बन्दी बनाकर अपने सेनानायक खालिद के सामने लाते हैं। जोनस कातर वाणी में खालिद से कहता है कि वह जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता और यदि उसे जीवन तथा इउडोसिया दोनों की प्राप्ति हो जाए तो वह इसके बदले अपना धर्म भी बदल सकता है। वह मुसलमान बनकर अपने देश का वैरी और देशवैरियों का बन्धु बन जाता है।

दमिश्कवासियों ने अपनी रक्षा के लिए पुरकोट के द्वार बन्द कर लिए। किन्तु उस समय जब पुरी में टमास के पुत्र-जन्म का समारोह मनाया जा रहा था, खालिद ने मौका पाकर कोट में प्रवेश कर द्वार खोल दिये और इस प्रकार असावधान सीरियनों पर मानो विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। वहाँ का राग-रंग भंग हो गया और भागदौड़, मारकाट और लूटपाट का बोलबाला हो गया। अरबों के न्यायनिष्ठ प्रमुख सेनापति अबूउबैदा के निर्देश से यह लूटमार बंद हुई और पुरवासियों को यह सुविधा प्रदान कर दी गयी कि यदि कोई व्यक्ति किसी कारण से मुसलिम राज्य में रहना न चाहे तो वह तीन दिन के भीतर सकुशल नगर छोड़ सकता है।

इउडोसिया नगर-परित्याग का निश्चय करके घर से निकल पड़ती है। तभी उसे जोनस मिलता है। वह इउडोसिया से आग्रह करता है कि वह उसके साथ उसी नगर में सुखपूर्वक निवास करे। इउडोसिया तिरस्कारपूर्वक वह प्रस्ताव अस्वीकार कर वहाँ से चली जाती है।

जोनस रुँआँसा-सा होकर खालिद के पास पहुँचकर अपना दुखड़ा उसे सुनाता है। खालिद उसे विश्वास दिलाता है कि अभय की तीन दिन की अवधि समाप्त होते ही वह सेनासहित नगर पर धावा बोल देगा। जोनस उनके साथ था। पुन: एक छोटामोटा युद्ध होता है। दमिश्क के शूर सैनिक गौरवपूर्वक मरण का वरण करते हैं और महिलाओं को बन्दिनी बना लिया जाता है।

इउडोसिया भी बंदिनी के रूप में जोनस के सामने उपस्थित होती हैं। जोनस चाहता है कि इउडोसिया अपने को उसे सौंप दे। इउडोसिया अपने करों से अपनी छाती में छुरी भोंककर अपनी वह निर्जीव देह—जोनस की अर्जित निधि—जोनस को सौंप देती हैं।

आस्वाद

प्रकाशक के अनुसार 'आस्वाद' गुप्तजी की चुनी हुई कविताओं का सरस संग्रह है और काका कालेलकर का अभिमत है कि वह 'भारतीय हृदय के कवि' की काव्य-रचनाओं का मंगलघट है, जिससे रसिकजन काव्यामृत का पान कर सकते हैं। इन कविताओं में विविध रस हैं, जिनका आस्वादन कर पाठक-वृन्द तृप्ति लाभ करता है; कदाचित् इसीलिए इस संग्रह का नाम 'आस्वाद' रखा गया है।

'आस्वाद' में संकलित कविताओं को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। प्रथम, वे कविताएँ जिनमें राष्ट्रीय भावों की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। ये भी दो प्रकार की हैं—एक वे जिनमें भारत के विगत वैभव, समृद्धि एवं महान संस्कृति का स्मरण कराकर पाठकों को आलस्य और प्रमाद त्याग वर्तमान दुरवस्था से उबरने के लिए आह्वान दिया गया है। 'विशाल भारत' कविता ऐसी ही है। दूसरी कविताओं जैसे 'निवेदन', 'विनय', 'शुभकामना' आदि में मूल भाव तो राष्ट्रप्रेम का ही है पर कहने की तर्ज भिन्न है। इनमें कवि का स्वर विनय-पूर्ण है, वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि देशवासियों को ऐसी सद्‌बुद्धि प्रदान करे कि वे अपना देश, अपनी भाषा, अपनी वेशभूषा और अपने भाव न भूलें और देशवासियों को अपनी शरण में लेकर, उनके दोषों का परिमार्जन कर उन्हें सच्चरित्र, सुखी, स्वावलम्बी और कर्मठ बनाये।

दूसरे विभाग की कविताएँ 'साकेत', 'यशोधरा' एवं 'द्वापर' से चुने गये मार्मिक अंश हैं। 'साकेत' के नवें सर्ग से चुने हुए अंशों में यदि उर्मिला की विरह-पीड़ा को वाणी दी गयी है तो यशोधरा से चुने हुए अंशों में यशोधरा का स्वाभिमान, क्षत्राणी का दर्प, माँ की ममता, कर्त्तव्य-भावना और पति-भक्ति मुखरित हुए हैं। 'कुब्जा' गुप्तजी की 'कृति 'द्वापर' से लिया गया एक अंश है जिसमें एकनिष्ठ निरीह भक्त के हृदय की करुण पुकार सुनाई देती है। ये तीनों रचनाएँ ही पाठक को करुणाप्लावित कर देती हैं।

तीसरी श्रेणी में वे कविताएँ आती हैं जिनका संबंध अध्यात्म से है, जिनके भाव रहस्यवादी कविता के अनुरूप हैं और जिनकी भाषा-शैली छायावादी कवियों का स्मरण दिलाती है। 'विराट वीणा', 'बाल बोध', 'अर्थ', 'जीवन का अस्तित्व' ऐसी ही रचनाएँ हैं। पर यहाँ भी कवि की वैष्णव भावना, भक्ति-भाव एवं दैन्य स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। वह माया-मोह, तृष्णा, ढोंग आदि से मुक्त हो हृत्तंत्री के तार को विश्व-वीणा के तारों में मिला देना चाहता है। उसके लिए एक ओर बाह्य पूजा-विधान और दूसरी ओर वैराग्य, संन्यास बेकार हैं। वैराग्य की शांति को वह भ्रांति कहता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के समान गुप्तजी भी ईश्वर के दर्शन भूखों, पीड़ितों, दीन-दरिद्रों, श्रमिकों और खेत में पसीना बहाते किसान में करते हैं और सरल जीवन में ही सुख-शान्ति समायी मानते हैं—

छोटा खेत द्वार होता
स्वजनों का समवाय
थोड़ा-सा व्यय होता मेरा
थोड़ी-सी ही आय।

उच्छ्‌वास

यद्यपि उच्छ्‌वास का प्रकाशन १९६० ई० में हुआ परंतु उसमें संग्रहीत कविताओं के प्रणयन का समय १९१४ से १९३५ ई० है। स्वयं कवि के अनुसार संकलन की कविता 'नक्षत्र-निपात' सन् १९१४ में लिखी गयी और अधिकांश कविताएँ १९३५ में। पुस्तक को तीन शीर्षकों—उच्छ्‌वास, सान्त्वना और छिन्न-दल में विभक्त किया गया है। पहले खंड 'उच्छ्‌वास' में १८ कविताएँ हैं और प्रत्येक कविता का शीर्षक दिया गया है। उनके विषय में कवि का कथन है, "यह मेरे बहुकालिक उच्छ्‌वासों का संग्रह है।" कवि को आरंभिक जीवन में अनेक कष्ट भोगने पड़े—अपने और छोटे भाइयों की संतान-मृत्यु, निकट संबंधियों, मित्रों और आत्मीयजनों के निधन ने उसके हृदय को बार-बार मर्मान्तिक आघात पहुँचाया। जब-जब कवि की हृदय-वीणा को आघात पहुँचा उससे करुण-रागिनी फूट पड़ी और इन शोक-गीतियों ने आकार ग्रहण किया। इन गीतों में कवि ने अकाल मृत्यु से होनेवाली पीड़ा, बेबसी, नियति की कठोरता, लाख प्रयत्न करने पर भी मन को समझाने में विफलता, पर अंत में ईश्वरीय न्याय में आस्था के कारण ढाढस पाने की व्यथा-कथा कही है। 'प्रतिशोध' कविता में एक कथा का आश्रय लिया गया है और मन को समझाने का प्रयास किया गया है कि जो कुछ हम इस जन्म में भोगते हैं उसका मूल कारण हमारे पिछले जन्म के कर्म होते हैं।

तीसरे खंड 'छिन्न दल' में १४ कविताएँ हैं और उनमें शोकपूर्ण मनोदशा में कवि ने ईश्वर से करुणा की याचना करते हुए जीवन-मार्ग पर संयम से चलने का संकल्प किया है, दुःख और पीड़ा को श्रेयस्कर माना है क्योंकि वह हमारे चित्त को परिमार्जित करते हैं।

संकलन की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है 'सान्त्वना' जो १९२२ की जन्माष्टमी को संपूर्ण हुई। १५६ रोला छंदों के इस शोक-गीति (Elegy) में कवि ने अपने तीन पुत्रों—श्री हर्ष, सुदर्शन और सुमंत्र की असामयिक मृत्यु से उत्पन्न हृदय-विदारक पीड़ा को वाणी दी है।

कविता के आरंभ में मृत्यु की रात के वातावरण की सृष्टि के बाद कवि ने पारिवारिक वातावरण की सृष्टि की है और फिर अपनी तथा पत्नी की पीड़ा का मार्मिक वर्णन किया है। इस शोक-गीति में वस्तु-व्यंजक, दृश्य-चित्रण और नाटकीय पद्धतियों को अपनाया गया है। विलाप और संलाप शैलियों में लिखी गयी यह रचना एक ओर प्रकृति-चित्र प्रस्तुत करती है और दूसरी ओर उस अट्टालिका का चित्र जहाँ तीन चारपाइयों पर पड़े तीन प्राणी मृत्यु के प्रहार की प्रतीक्षा करते हुए कभी ईश्वर से दया की प्रार्थना करते हैं, कभी पति-पत्नी एक दूसरे को धैर्य बँधाते हैं और कभी ईश्वर की क्रूरता पर क्षोभ प्रकट करते हैं। माता की निराशा और पिता की विवशता से उद्भूत व्याकुलता को साकार करने वाली इस कविता को पढ़ते हुए पाठक के नेत्र भी अश्रुपूर्ण हो उठते हैं। कविता से स्पष्ट हो जाता है कि वैष्णव संस्कारों में पले और ईश्वरीय न्याय में अडिग विश्वास रखने वाले इस आस्थावान कवि की जीवन-निष्ठा घोर से घोर संकट में भी अक्षुण्ण बनी रहती है। वह अन्त में शोक पर विजय लाभ करने की सामर्थ्य रखता है और इसीलिए जीवन को कृष्णार्पित कर कामना करता है, "दिन उल्टे हों, किंतु चलें हम सीधी गति से।"

भावानुबंध की दृष्टि से भी कविता सफल है। उसमें शोक का उदय, विकास और उदात्तीकरण सफलतापूर्वक अभिव्यंजित हुआ है और यह क्रम-विकास उसे उत्तम प्रबंध-काव्य बना देता है। सारांश यह कि 'सांत्वना' वात्सल्य रस की अप्रतिम शोक-गीति है क्योंकि निराला की 'सरोज-स्मृति' बहुत बाद की रचना है। वैयक्तिक जीवन के यथार्थ विवरणों ने उसे और भी मार्मिक बना दिया है।

काबा और कर्बला

'काबा और कर्बला' में 'काबा' और 'कर्बला' शीर्षक से दो सहसम्बद्ध प्रबन्धात्मक रचनाएँ संकलित हैं। ये कृतियाँ इस अवधारणा पर आधारित हैं कि मूलतः सब धर्मों के एक ही उद्देश्य होते हैं और उनके प्रवर्त्तक अपनी विशेषता रखते हैं। भारत में हिन्दू और मुसलमानों के चिरकालिक सह-अस्तित्व के कारण यह आवश्यकता ही नहीं, अपरिहार्य हो गया है कि हमें एक-दूसरे के प्रति उदार और सहिष्णु होना होगा, एक-दूसरे से परिचय और प्रेम बढ़ाना होगा। हमारी मैत्री भावना प्रेम एवं परोधर्म पर ही प्रतिष्ठित हो सकती है। इसीलिए वैष्णव कवि ने काबा और कर्बला की रचना को एक 'यात्रा' की संज्ञा दी है, "जिसमें अनेक तीर्थ-पुरोहितों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में पथप्रदर्शन किया है।"

'काबा और कर्बला' के प्रणयन द्वारा गुप्तजी ने एक ओर आक्रान्त लोगों (हिन्दुओं) को इस्लामविषयक भ्रान्त धारणाओं से मुक्त करने का प्रयत्न किया है और दूसरी ओर, स्वयं मुसलमान भाइयों को भी अन्धकारमुक्त करके इस तथ्य से अवगत कराना चाहा है कि उच्चता, उदारता और विनम्रता के प्रतीक हज़रत मुहम्मद के चौथे खलीफ़ा हज़रत अली के पुत्र हज़रत हुसैन, उनके परिजन तथा अनुयायियों ने कर्बला में हुए धर्मयुद्ध में वीरगति पाकर बलिदान के अक्षय कीर्तिमान स्थापित करने का जो विश्वविश्रुत कार्य संपन्न किया, उसमें अनेक आर्य भी उनके साथ थे। इस प्रकार हिन्दू तथा मुसलमानों का पारस्परिक सौहार्द्र तथा भाईचारा ही इन रचनाओं का मूल प्रतिपाद्य है।

'काबा' के अंतर्गत स्वतंत्र शीर्षकों से युक्त ३१ कविताएँ संग्रथित हैं। इन मनकों को एक माला में पिरोने वाला सूत्र यही है कि इन सबका सम्बन्ध हज़रत मुहम्मद, उनके संबंधियों अथवा अनुयायियों के साथ है।

'कर्बला' वीर-करुण-प्रधान खंडकाव्य है, जिसमें हज़रत मुहम्मद के उत्तराधिकारियों में उग्र उठने वाले गृहदाही कलह का निरूपण है। मुहम्मद के प्रतिनिधि अबूबक्र अंत में स्वपद उमर को सौंप देते हैं और गुणधर उमर लोक में अतुल जय-कीर्ति अर्जित करते हैं। एक बद्ध रिपु उमर की हत्या कर देता है। तदनंतर उसमान अरब के खलीफा बनते हैं पर वे भी सबके विश्वासपात्र नहीं बन पाते। उमर को वैरी ने मारा था, 'निअत हुए उसमान आप अपनों के द्वारा।' अब अली

आस्वाद

प्रकाशक के अनुसार 'आस्वाद' गुप्तजी की चुनी हुई कविताओं का सरस संग्रह है और काका कालेलकर का अभिमत है कि वह 'भारतीय हृदय के कवि' की काव्य-रचनाओं का मंगलघट है, जिससे रसिकजन काव्यामृत का पान कर सकते हैं। इन कविताओं में विविध रस हैं, जिनका आस्वादन कर पाठक-वृन्द तृप्ति लाभ करता है; कदाचित् इसीलिए इस संग्रह का नाम 'आस्वाद' रखा गया है।

'आस्वाद' में संकलित कविताओं को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। प्रथम, वे कविताएँ जिनमें राष्ट्रीय भावों की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। ये भी दो प्रकार की हैं—एक वे जिनमें भारत के विगत वैभव, समृद्धि एवं महान संस्कृति का स्मरण कराकर पाठकों को आलस्य और प्रमाद त्याग वर्तमान दुरवस्था से उबरने के लिए आह्वान दिया गया है। 'विशाल भारत' कविता ऐसी ही है। दूसरी कविताओं जैसे 'निवेदन', 'विनय', 'शुभकामना' आदि में मूल भाव तो राष्ट्रप्रेम का ही है पर कहने की तर्ज भिन्न है। इनमें कवि का स्वर विनय-पूर्ण है, वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि देशवासियों को ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करे कि वे अपना देश, अपनी भाषा, अपनी वेशभूषा और अपने भाव न भूलें और देशवासियों को अपनी शरण में लेकर, उनके दोषों का परिमार्जन कर उन्हें सच्चरित्र, सुखी, स्वावलम्बी और कर्मठ बनाये।

दूसरे विभाग की कविताएँ 'साकेत', 'यशोधरा' एवं 'द्वापर' से चुने गये मार्मिक अंश हैं। 'साकेत' के नवें सर्ग से चुने हुए अंशों में यदि उर्मिला की विरह-पीड़ा को वाणी दी गयी है तो यशोधरा से चुने हुए अंशों में यशोधरा का स्वाभिमान, क्षत्राणी का दर्प, माँ की ममता, कर्त्तव्य-भावना और पति-भक्ति मुखरित हुए हैं। 'कुब्जा' गुप्तजी की 'कृति 'द्वापर' से लिया गया एक अंश है जिसमें एकनिष्ठ निरीह भक्त के हृदय की करुण पुकार सुनाई देती है। ये तीनों रचनाएँ ही पाठक को करुणाप्लावित कर देती हैं।

तीसरी श्रेणी में वे कविताएँ आती हैं जिनका संबंध अध्यात्म से है, जिनके भाव रहस्यवादी कविता के अनुरूप हैं और जिनकी भाषा-शैली छायावादी कवियों का स्मरण दिलाती है। 'विराट वीणा', 'बाल बोध', 'अर्थ', 'जीवन का अस्तित्व' ऐसी ही रचनाएँ हैं। पर यहाँ भी कवि की वैष्णव भावना, भक्ति-भाव एवं दैन्य स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। वह माया-मोह, तृष्णा, ढोंग आदि से मुक्त हो हृत्तंत्री के तार को विश्व-वीणा के तारों में मिला देना चाहता है। उसके लिए एक ओर बाह्य पूजा-विधान और दूसरी ओर वैराग्य, संन्यास बेकार हैं। वैराग्य की शांति को वह भ्रांति कहता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के समान गुप्तजी भी ईश्वर के दर्शन भूखों, पीड़ितों, दीन-दरिद्रों, श्रमिकों और खेत में पसीना बहाते किसान में करते हैं और सरल जीवन में ही सुख-शान्ति समायी मानते हैं—

छोटा खेत द्वार होता
    स्वजनों का समवाय
थोड़ा-सा व्यय होता मेरा
    थोड़ी-सी ही आय।

उच्छ्वास

यद्यपि उच्छ्वास का प्रकाशन १९६० ई० में हुआ परंतु उसमें संग्रहीत कविताओं के प्रणयन का समय १९१४ से १९३५ ई० है। स्वयं कवि के अनुसार संकलन की कविता 'नक्षत्र-निपात' सन् १९१४ में लिखी गयी और अधिकांश कविताएँ १९३५ में। पुस्तक को तीन शीर्षकों—उच्छ्वास, सान्त्वना और छिन्न-दल में विभक्त किया गया है। पहले खंड 'उच्छ्वास' में १८ कविताएँ हैं और प्रत्येक कविता का शीर्षक दिया गया है। उनके विषय में कवि का कथन है, "यह मेरे बहुकालिक उच्छ्वासों का संग्रह है।" कवि को आरंभिक जीवन में अनेक कष्ट भोगने पड़े—अपने और छोटे भाइयों की संतान-मृत्यु, निकट संबंधियों, मित्रों और आत्मीयजनों के निधन ने उसके हृदय को बार-बार मर्मान्तिक आघात पहुँचाया। जब-जब कवि की हृदय-वीणा को आघात पहुँचा उससे करुण-रागिनी फूट पड़ी और इन शोक-गीतियों ने आकार ग्रहण किया। इन गीतों में कवि ने अकाल मृत्यु से होनेवाली पीड़ा, बेबसी, नियति की कठोरता, लाख प्रयत्न करने पर भी मन को समझाने में विफलता, पर अंत में ईश्वरीय न्याय में आस्था के कारण ढाढस पाने की व्यथा-कथा कही है। 'प्रतिशोध' कविता में एक कथा का आश्रय लिया गया है और मन को समझाने का प्रयास किया गया है कि जो कुछ हम इस जन्म में भोगते हैं उसका मूल कारण हमारे पिछले जन्म के कर्म होते हैं।

तीसरे खंड 'छिन्न दल' में १४ कविताएँ हैं और उनमें शोकपूर्ण मनोदशा में कवि ने ईश्वर से करुणा की याचना करते हुए जीवन-मार्ग पर संयम से चलने का संकल्प किया है, दुःख और पीड़ा को श्रेयस्कर माना है क्योंकि वह हमारे चित्त को परिमार्जित करते हैं।

संकलन की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है 'सान्त्वना' जो १९२२ की जन्माष्टमी को संपूर्ण हुई। १५६ रोला छंदों के इस शोक-गीति (Elegy) में कवि ने अपने तीन पुत्रों—श्री हर्ष, सुदर्शन और सुमंत्र की असामयिक मृत्यु से उत्पन्न हृदय-विदारक पीड़ा को वाणी दी है।

कविता के आरंभ में मृत्यु की रात के वातावरण की सृष्टि के बाद कवि ने पारिवारिक वातावरण की सृष्टि की है और फिर अपनी तथा पत्नी की पीड़ा का मार्मिक वर्णन किया है। इस शोक-गीति में वस्तु-व्यंजक, दृश्य-चित्रण और नाटकीय पद्धतियों को अपनाया गया है। विलाप और संलाप शैलियों में लिखी गयी यह रचना एक ओर प्रकृति-चित्र प्रस्तुत करती है और दूसरी ओर उस अट्टालिका का चित्र जहाँ तीन चारपाइयों पर पड़े तीन प्राणी मृत्यु के प्रहार की प्रतीक्षा करते हुए कभी ईश्वर से दया की प्रार्थना करते हैं, कभी पति-पत्नी एक दूसरे को धैर्य बँधाते हैं और कभी ईश्वर की क्रूरता पर क्षोभ प्रकट करते हैं। माता की निराशा और पिता की विवशता से उद्भूत व्याकुलता को साकार करने वाली इस कविता को पढ़ते हुए पाठक के नेत्र भी अश्रुपूर्ण हो उठते हैं। कविता से स्पष्ट हो जाता है कि वैष्णव संस्कारों में पले और ईश्वरीय न्याय में अडिग विश्वास रखने वाले इस आस्थावान कवि की जीवन-निष्ठा घोर से घोर संकट में भी अक्षुण्ण बनी रहती है। वह अन्त में शोक पर विजय लाभ करने की सामर्थ्य रखता है और इसीलिए जीवन को कृष्णार्पित कर कामना करता है, "दिन उल्टे हों, किंतु चलें हम सीधी गति से।"

भावानुबंध की दृष्टि से भी कविता सफल है। उसमें शोक का उदय, विकास और उदात्तीकरण सफलतापूर्वक अभिव्यंजित हुआ है और यह क्रम-विकास उसे उत्तम प्रबंध-काव्य बना देता है। सारांश यह कि 'सांत्वना' वात्सल्य रस की अप्रतिम शोक-गीति है क्योंकि निराला की 'सरोज-स्मृति' बहुत बाद की रचना है। वैयक्तिक जीवन के यथार्थ विवरणों ने उसे और भी मार्मिक बना दिया है।

काबा और कर्बला

'काबा और कर्बला' में 'काबा' और 'कर्बला' शीर्षक से दो सहसम्बद्ध प्रबन्धात्मक रचनाएँ संकलित हैं। ये कृतियाँ इस अवधारणा पर आधारित हैं कि मूलतः सब धर्मों के एक ही उद्देश्य होते हैं और उनके प्रवर्त्तक अपनी विशेषता रखते हैं। भारत में हिन्दू और मुसलमानों के चिरकालिक सह-अस्तित्व के कारण यह आवश्यकता ही नहीं, अपरिहार्य हो गया है कि हमें एक-दूसरे के प्रति उदार और सहिष्णु होना होगा, एक-दूसरे से परिचय और प्रेम बढ़ाना होगा। हमारी मैत्री भावना प्रेम एवं परोधर्म पर ही प्रतिष्ठित हो सकती है। इसीलिए वैष्णव कवि ने काबा और कर्बला की रचना को एक 'यात्रा' की संज्ञा दी है, "जिसमें अनेक तीर्थ-पुरोहितों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में पथप्रदर्शन किया है।"

'काबा और कर्बला' के प्रणयन द्वारा गुप्तजी ने एक ओर आक्रान्त लोगों (हिन्दुओं) को इस्लामविषयक भ्रान्त धारणाओं से मुक्त करने का प्रयत्न किया है और दूसरी ओर, स्वयं मुसलमान भाइयों को भी अन्धकारमुक्त करके इस तथ्य से अवगत कराना चाहा है कि उच्चता, उदारता और विनम्रता के प्रतीक हज़रत मुहम्मद के चौथे खलीफ़ा हज़रत अली के पुत्र हज़रत हुसैन, उनके परिजन तथा अनुयायियों ने कर्बला में हुए धर्मयुद्ध में वीरगति पाकर बलिदान के अक्षय कीर्तिमान स्थापित करने का जो विश्वविश्रुत कार्य संपन्न किया, उसमें अनेक आर्य भी उनके साथ थे। इस प्रकार हिन्दू तथा मुसलमानों का पारस्परिक सौहार्द तथा भाईचारा ही इन रचनाओं का मूल प्रतिपाद्य है।

'काबा' के अंतर्गत स्वतंत्र शीर्षकों से युक्त ३१ कविताएँ संग्रथित हैं। इन मनकों को एक माला में पिरोने वाला सूत्र यही है कि इन सबका सम्बन्ध हज़रत मुहम्मद, उनके संबंधियों अथवा अनुयायियों के साथ है।

'कर्बला' वीर-करुण-प्रधान खंडकाव्य है, जिसमें हज़रत मुहम्मद के उत्तराधिकारियों में उग्र उठने वाले गृहदाही कलह का निरूपण है। मुहम्मद के प्रतिनिधि अबूबक्र अंत में स्वपद उमर को सौंप देते हैं और गुणधर उमर लोक में अतुल जय-कीर्ति अर्जित करते हैं। एक बद्ध रिपु उमर की हत्या कर देता है। तदनंतर उसमान अरब के खलीफा बनते हैं पर वे भी सबके विश्वासपात्र नहीं बन पाते। उमर को वैरी ने मारा था, 'निअत हुए उसमान आप अपनों के द्वारा।' अब अली

अनिच्छापूर्वक खिलाफत-भार अंगीकार करते हैं। किंतु उसमान के पक्षधर यह मान बैठते हैं कि उनकी हत्या में अली का हाथ है। उधर, साम का सामंत मुआविया अपने को खलीफा घोषित कर देता है जिसके परिणामस्वरूप 'चला महा गृहयुद्ध, बहा लहराकर शोणित।' अली बली होने पर भी प्रकृत्य: सरल थे। अतः 'विजय-निकट ही अली पराजित हुए अगत्या, मसजिद में ही हुई एक दिन उनकी हत्या।' अली के पुत्र हसन मुआविया के साथ संधि कर लेते हैं। मुआविया, इस संधि के विपरीत अपने पुत्र को अपना खलीफा बना देता है। कूफा के नगरनिवासी इसका तीव्र विरोध करते हैं। वे दूत भेजकर हठपूर्वक अली के छोटे पुत्र हुसैन को वहाँ बुलाते हैं और उन्हें यह विश्वास दिलाते हैं कि 'हम यजीद को नहीं, आपको ही मानेंगे और आपके लिए मरण जीवन जानेंगे।' हुसैन सकुटुंब वहाँ जाते हैं। उधर धन का लोभ कूफा-निवासियों को यजीद का पक्षसमर्थक बना देता है। सहयोगियों के बीच पहुँचने की आशा लेकर कूफा जाने वाले हुसैन वहाँ पहुँचकर सभी ओर से शत्रुओं तथा विरोधियों से घिर जाते हैं। कर्बला-क्षेत्र में दानवता का नग्न नृत्य होता है। हुसैन के संगी-साथियों को फरात नदी के पानी तक से वंचित कर दिया जाता है। हुसैन अपने साथियों को परामर्श देते हैं कि वे उन्हें उनके भाग्य पर छोड़कर जीवन-रक्षा के लिए अन्यत्र चले जाएँ किंतु 'गया न कोई उन्हें छोड़ मरने के डर से, आए उलटे और नये कुछ जन बाहर से।' विस्मित हुसैन के यह पूछने पर कि वे कौन हैं और वहाँ क्यों आए हैं, वे उन्हें बताते हैं 'हम भारत के आर्य, अरब के ही चिरवासी।' और 'वही हमारा कार्य यहाँ जो आप कहेंगे।' वे स्त्रियों तथा बच्चों को प्यास से मरता देख सहन न कर उनके लिए जल लाने के लिए जाते हैं पर जब तक वे जाँय 'आप अरि ही बढ़ आए, सौ-सौ मिलकर एक-एक पर वे चढ़ धाए।'

हुसैन के सभी करचुंबी एक-एक कर वीरगति को प्राप्त हो गए और बाल-वृद्ध तक कोई कुटुंबी शेष न बचा। उनके सात बरस के भतीजे को भी 'ताक तीर बेपीर किसी ने ऐसा मारा, मरा तड़पकर एक बार बच्चा बेचारा।' हुसैन का एकमात्र पुरुष साथी—उनका असगर नाम का घोड़ा ही बाकी बच रहा था। उसने सेना को रौंदकर हुसैन को नदी-तट तक पहुँचा दिया और चाहा कि वह पानी पी लें। 'सब प्यासे ही गए, पियूँ मैं ही फिर क्योंकर?' यह सोचकर हुसैन ने पानी नहीं पिया और स्वामी को पानी पिलाये बिना स्वामिभक्त अश्व कैसे पानी पीता? रवि ढल गया और हुसैन का जाज्वल्य-मान जीवन-सूर्य भी सदा-सदा के लिए वहीं अस्त हो गया।

किसान

किसान नामक खण्डकाव्य का रचनाकाल सन् १९१६ है। यह काव्य आठ सर्गों में विभाजित है तथा सर्गों के शीर्षकों के नाम हैं—प्रार्थना, बाल्य और विवाह, गार्हस्थ्य, सर्वस्वांत, देशत्याग, फिजी, प्रत्यावर्तन तथा अन्त। जिस समय कवि ने इस काव्य की रचना की थी उस समय इस देश के कृषक रोगी, निर्बल, गरीब, निरुपाय, अभावग्रस्त, अशिक्षित, रूढ़ि-वादी और अंधविश्वासी थे। वे कृषि-यंत्रों को मंत्र, माया और छल समझते थे। वे पूर्णतया वर्षा पर ही निर्भर थे। वे दब्बू एवं डरपोक थे तथा ऋण के बोझ से दबे रहते थे।

इस कृति के कथानायक का बचपन पशुधन चराते हुए प्रकृति की गोद में व्यतीत हुआ था। युवावस्था में उसने जिस बालिका के तेंदुए से प्राण बचाए थे उसका नाम कुलवंती था। कुलवंती के साथ कथा-नायक का विवाह तो हुआ किंतु पहले के ऋण और विवाह-खर्च के लिए उसके पिता ने पशुधन आदि को बेच दिया। विवाह के साथ ही कथा-नायक को एक महान संकट का सामना करना पड़ा। सुहागरात को ही उसे पुलिस पकड़कर ले जाती है। इसका कारण तेंदुए को एक डंडे से मार डालने से फैली उसकी ख्याति थी। जिस स्थान पर कलुआ ने तेंदुए को मारा था, उसी स्थान पर दो पथिक लूट लिए गये थे। इसको ही पुलिस ने सबूत मान लिया था। रिश्वत देकर कलुआ को तो जेल से छुड़ा लिया गया किंतु अंततः जमींदार-महाजन की लूट, अनावृष्टि, और महामारी (प्लेग) का यह परिवार शिकार हो गया। माता-पिता की मृत्यु, पशुधन आदि के चले जाने से कलुआ निराश हो गया। पुलिस, जमींदार और महाजनों के अत्याचारों से दुखी होकर, वह डाकू बनकर, लूटमार की बातें भी सोचने लगता है। कुलवंती द्वारा सांत्वना दिए जाने पर दोनों गाँव छोड़कर काशी आ जाते हैं।

'देशत्याग' शीर्षक से इस कथा-काव्य के दृश्य में परिवर्तन आता है। काशी में कलुआ एक आरकाटी के चंगुल में फँस जाता है। वह मजदूरों को फुसलाकर उन्हें फिजी आदि द्वीपों में भेजकर अपना कमीशन बनाता था। इस तरह कलुआ और लोगों के साथ फिजी भेज दिया जाता है। फिजी में भारतीयों के साथ अमानुषिक व्यवहार, गर्भिणी कुलवंती के साथ

ओवरसियर द्वारा बलात्कार और उसकी मृत्यु से कलुआ अत्यंत व्यथित हो उठता है। संयोग ही था कि एंड्रयूज और ग्रियर्सन की रिपोर्ट से अंग्रेजी शासन ने कुली-प्रथा को बंद कर दिया तब कहीं कलुआ को स्वदेश लौटने का अवसर प्राप्त हुआ।

यह वह समय था जब महायुद्ध आरंभ हो गया था। महात्मा गांधी ने इस युद्ध में अंग्रेजी शासन का साथ देने के लिए देशवासियों को सेना में भर्ती होने का आह्वान किया। इस कृति के अंतिम सर्ग 'अंत' में कलुआ भी इसी प्रेरणा से सेना में भर्ती हो जाता है'। टिगरिस के तट पर वह बेहोश हो जाता है। कुछ चेतना आने पर वह देखता है कि उस समय का सर्वोच्च पदक विक्टोरिया क्रास उसकी छाती पर लटक रहा है। वह इससे प्रसन्न तो होता है किंतु उसकी प्रसन्नता बुझते हुए दीपक की प्रज्ज्वलित-शिखा के समान है। मरते-मरते भी वह स्वदेश-चिंतन ही करता है—

भारतीय मेरे बांधव हैं घर है मेरा सारा देश,
वह यह मेरा आत्म-चरित ही है मेरा अंतिम संदेश
इससे अधिक और क्या अब मैं कह सकता हूँ
हे भगवान,
मेरे साथ देश के सारे दुःखों का भी हो अवसान।

काव्यरूप की दृष्टि से किसान काव्य को मात्र आख्यान-काव्य कहना संभवतः उचित नहीं है। कवि ने इस कृति में दो स्थानों पर आरंभ और अंत में इसे 'आत्मचरित' की संज्ञा दी है। इस तरह कहा जा सकता है कि किसान आत्म-चरितात्मक खंड काव्य है जिसमें एक आख्यान के माध्यम से किसानों की दुर्दशा, पुलिस, जमींदारों और महाजनों के अत्याचारों का वर्णन तो किया ही गया है साथ ही कुली-प्रथा, कुलियों को भर्ती करने के हथकंडों, कुलियों के साथ होनेवाले दुर्व्यवहार आदि का भी चित्रण किया गया है।

आस्थावादी कवि यदि एक ओर ईश्वर और भाग्य पर विश्वास करता दिखलाई पड़ता है तो दूसरी ओर वह वाचक-वृंद से सहृदय होने की भी गुहार करता है—

तुम भी वाचक-वृंद तनिक सहृदय हो जाओ।
अपने दुर्विध बंधु-जनों को यूँ न भुलाओ।

गुप्तजी यदि एक ओर नायक की डाकू और लुटेरा बनने वाली भावनाओं को प्रकट कर कुड़क-अमीन, पुलिस, जमींदार, महाजन के विरुद्ध आक्रोश प्रकट करते हैं, तो दूसरी ओर—'अब भी गांधी जैसे सुत की जननी भारत-माता' कहकर गांधी, एंड्रयूज, ग्रियर्सन जैसे समाज-सुधारकों की जय-जयकार करते हैं। यदि एक ओर वह ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रचलित कुली-प्रथा और उसके चलाने वालों की भर्त्सना करता है तो दूसरी ओर उस प्रथा के समाप्त करनेवालों के प्रति कृतज्ञ होकर यह भी कह उठता है—

पड़ी आजकल रणसंकट में वह मेरी उदार सरकार।

इस तरह इस काव्य में कवि ने विरोधी परिस्थितियों और भावनाओं का तो कुशलता के साथ समन्वय किया ही है साथ ही नायक ने जिस तरह से और जिन परिस्थितियों में देश पर प्राणोत्सर्ग किया है, वह घटना कवि की देशभक्ति, राष्ट्रीय-भावना, समन्वय-भावना और उसकी समसामयिक सामाजिक चेतना को भी व्यक्त करती है। वास्तव में यह दुखांत काव्य कारुण्य भाव से ओत-प्रोत होकर एक प्रेरक काव्य है।

कुणाल-गीत

कुणाल देवानांप्रिय सम्राट् अशोक का पुत्र था। तन तथा मन, दोनों में ही वह अप्रतिम था। सीमाप्रांत में विद्रोह उठ खड़ा होने पर सम्राट् अशोक कुणाल को ही विद्रोह शांत करने के लिए वहाँ भेजते हैं। कुणाल की बलबुद्धि के फल-स्वरूप तथाकथित 'विद्रोह यहाँ का हुआ सहज ही शांत।' किंतु इस उपलब्धि पर उसे कोई पुरस्कार न मिलकर अप्रत्याशित दंड ही प्राप्त होता है। कुणाल के रूप पर आसक्त विमाता अपने निकृष्ट मनोरथ में विफल रहकर यह राजादेश जारी करा देती है कि कुणाल की आँखें निकाल ली जाएँ। पुत्र माँ द्वारा दिया गया यह अनुचित आदेश शिरोधार्य कर लेता है, क्योंकि वह जानता है कि 'वे अबला हैं और प्रबल हैं ईर्ष्या-द्वेष-विकार।'

कुणाल को नेत्रहीन तथा निष्कासित कर दिया जाता है। अशोक का जीवनधन उनसे छिन जाता है, उनका 'सुंदर' उनसे बिदा हो जाता है और उनके पास प्रायश्चित के अति-रिक्त और कुछ शेष नहीं रहता।

स्वयं कुणाल इस नेत्रदान को व्यवसाय ही मानता है। वह इसे मूलधन की वृद्धि का एक नियमित उपाय समझता है क्योंकि उसकी मान्यता है कि 'आज जो दे जायेंगे हम, कल प्रवर्द्धित पायेंगे हम।' उसका कहना है कि अपने आराध्य को अंध-भाव से टोहना अब उसके लिए संभव हो गया है।

कुणाल पत्नी कांचनमाला को साथ लेकर भिक्षुक के रूप

में ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगर जाता है। एक दिन अनजाने में ही वे दोनों पाटलिपुत्र जा पहुँचते हैं। रात के अँधियारे में उसके गीत की ध्वनि से खिंचकर पिता अशोक महल से निकलकर उसके पास आते हैं। पिता के पुण्य से पुत्र को पुनः दृष्टिलाभ होता है। उसके दृग-मंत्र दीप की भाँति जाग जाते हैं और 'निज जन-नगर-निवास' के दृश्य उसे पुनः दृष्टि-गत होने लगते हैं। पिता से वह यही विनय करता है कि 'माँ को क्षमा करें ये बस अब पूरे मेरी आस।' दृष्टि-लाभ के रूप में पुनः नवजीवन पाकर कुणाल अपना मनुजकाय बहु-जन-हिताय बहुजन-सुखाय, समर्पित कर देता है।

गुरुकुल

गुप्तजी 'गुरुकुल' की रचना में सन् १९२५ के आस-पास प्रवृत्त हुए। उसके लिखने की प्रेरणा उन्हें एक सिक्ख सज्जन से मिली जिसने उन्हें उलाहना दिया था कि हिन्दी के कवियों ने सिक्ख गुरुओं पर कुछ नहीं लिखा है तथा उन्हें उस विषय पर लिखना चाहिए। इन सज्जन से प्रेरणा पा उन्होंने सिक्ख जाति एवं सिक्ख गुरुओं से संबद्ध पुस्तकें पढ़नी आरंभ कर दीं। गोकुल चंद नारंग कृत 'सिक्खों का परिवर्तन', शिवनंदन सहाय रचित 'सिक्ख गुरुओं की जीवनी', डा० वेणीप्रसाद कृत 'महाराज रणजीत सिंह', भाई परमानंद द्वारा लिखित 'वीर वैरागी', ज्वालादत्त शर्मा कृत 'सिक्खों के दस गुरु' आदि पुस्तकों का अध्ययन कर उन्होंने अपने इस ग्रंथ के लिए सामग्री जुटाई तथा उसमें कल्पना और काव्य-प्रतिभा का मणि-कांचन संयोग कर प्रस्तुत काव्य-ग्रंथ से हिन्दी साहित्य को तो संपन्न किया ही, राष्ट्रीय भावना एवं धर्म-समन्वय की भावना को भी दृढ़ किया। पुस्तक के नाम-करण के विषय में कवि ने बताया है कि पहले उन्होंने उसका नाम 'गुरुवंश' और 'गुरु-शिष्य' सोचा था, पर अन्त में 'गुरु-कुल' उपयुक्त लगा।

इस ग्रंथ के लिखने का एक और भी कारण था। गुप्तजी तत्कालीन साम्प्रदायिक दंगों और झगड़ों से क्षुब्ध और व्यथित थे। वह एक ओर मुसलमानों को राष्ट्रीय धारा में सम्मिलित करना चाहते थे और दूसरी ओर हिन्दुओं और सिक्खों के पारस्परिक विरोध को दूर करना चाहते थे। सामाजिक एकता, राष्ट्रीय अखंडता और देश को मुक्त कराने की लालसा से ही उन्होंने इस काव्य की रचना की। उन्होंने बताया कि सिक्ख-संघ हिन्दु-कुल का ही रक्षार्थ संघटन था और वास्तविक धर्म मानव-धर्म है—

मनुष्यत्व सबसे ऊपर है
मान्य महीमण्डल के बीच।

कवि चाहता था कि पाठक सिक्ख-गुरुओं के जीवन-चरित तथा उनके धार्मिक और सामाजिक कार्यों का वर्णन पढ़ अन्याय तथा अत्याचार का वीरतापूर्वक विरोध करें और देश की आज़ादी के लिए एकजुट होकर संघर्ष करें।

'गुरुकुल' सिक्ख-गुरुओं के जीवन-चरित पर धारावाहिक शैली में लिखा गया आख्यानात्मक काव्य है जिसमें सिक्ख गुरुओं के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। उसमें घटनाओं का वर्णन कालक्रम से न होकर प्रसंगानुसार है, अतः वह इतिहास न होकर इतिवृत्त है।

द्विवेदी-युग के हिन्दी कवियों ने युग की विचारधारा, विज्ञान के प्रभाव से लोगों के हृदय में अलौकिक और चमत्कार-पूर्ण घटनाओं एवं कृत्यों के प्रति अविश्वास को अनुभव कर पौराणिक प्रसंगों को मानवीय तथा विश्वसनीय बनाने का प्रयत्न किया था। इन कवियों में हरिऔध तथा मैथिलीशरण गुप्त प्रमुख थे। 'गुरुकुल' में कवि ने गुरु नानक, गुरु तेग बहादुर और बन्दा वैरागी से संबद्ध अलौकिक घटनाओं को विश्वसनीय रूप देकर इन ऐतिहासिक महापुरुषों को मानवीय एवं उच्च चरित्र वाले पुरुषों का रूप दिया।

जयद्रथ-वध

सात सर्गों में विभाजित गुप्तजी का खंडकाव्य जयद्रथ-वध सन् १९११ में प्रकाशित हुआ था। डॉ. श्रीकृष्ण लाल यह मानते हैं कि आधुनिक काल में काव्यों (प्रबन्ध काव्यों) का प्रारम्भ जयद्रथ-वध से होता है। यह महाभारत की कथा पर आधृत एक खंड काव्य है। इसके प्रथम सर्ग में युधिष्ठिर के आदेश से पन्द्रहवर्षीय अभिमन्यु, अपने पिता अर्जुन की अनुपस्थिति में, पत्नी की अनुमति से, चक्रव्यूह-भेदन के लिए युद्ध-स्थल पर जाता है। दुर्योधन की बहन दुःशला के पति जयद्रथ द्वारा द्वार की रक्षा किए जाने के कारण युधिष्ठिर, भीम आदि पाण्डव चक्रव्यूह के अन्दर नहीं जा पाते। अभिमन्यु वीरता से शत्रुओं का सामना करता है। उसके युद्धकौशल से कौरव सेना में खलबली मच जाती है। द्रोणाचार्य तक उसके

कौशल की प्रशंसा करने लगते हैं। अतः कौरव सेनापति उसके वध की योजना बनाते हैं। कृपाचार्य, कर्ण, दुःशासन, दुर्योधन, शकुनि, अश्वत्थामा तथा द्रोणाचार्य (सप्त महारथी) उसे घर कर एक साथ प्रहार करते हुए उसका वध कर देते हैं।

दूसरे सर्ग में उसकी पत्नी उत्तरा का विलाप और पांडवों के शोक की व्यंजना हुई है। कवि ने उत्तरा के शोक और विलाप को उत्तरोत्तर विकसित करते हुए कारुणिक चित्र प्रस्तुत किए हैं—

मैं हूँ, वही जिसका हुआ था ग्रंथि बंधन साथ में
मैं हूँ, वही जिसका लिया था हाथ अपने हाथ में
मैं हूँ, वही जिसको किया था विधि विहित अर्द्धांगिनी
भूलो न मुझको नाथ, हूँ मैं अनुचरी चिरसङ्गिनी।

इसी सर्ग में अन्य पांडवों के साथ शोकाकुल अर्जुन की व्यथा और श्रीकृष्ण के प्रबोधन को भी चित्रित किया गया है।

तीसरे सर्ग में कृष्ण के उद्बोधन से प्रेरित होकर अर्जुन जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा करता है। इसी सर्ग में द्रौपदी और सुभद्रा के विलाप ने अर्जुन की क्रोधाग्नि में घी डालने का कार्य किया है। इस विलाप के पश्चात् अभिमन्यु के शव के दाह-संस्कार की योजना की गई है।

चौथे सर्ग में महाभारत की कथा के अनुसार कृष्ण अर्जुन को कैलाश पर्वत पर ले जाते हैं—

कर योगमाया को सजग निद्रित जगत की व्याप्ति को,
झट ले चले वे पार्थ को शिव निकट अस्त्र प्राप्ति को।

इतना ही नहीं, इसी सर्ग में कृष्ण की कृपा से अर्जुन को अभिमन्यु के साथ-साथ भगवान विष्णु, लक्ष्मी व अन्य देवी-देवताओं के दर्शन भी हो जाते हैं और कवि के माध्यम से पाठकों को भी। इस तरह श्रीकृष्ण की कृपा से अर्जुन को दिव्यास्त्र की प्राप्ति हो जाती है। तात्पर्य यह है कि जयद्रथ-वध के चौथे सर्ग की कथा की नियोजना कवि ने लौकिक धरातल पर न करते हुए अलौकिक तथा दिव्य धरातल पर की है।

पाँचवें सर्ग में युद्ध तथा दुर्योधन के क्रोध का चित्रण है। अपनी सेना को पराजित होते देख कर खिन्न दुर्योधन द्रोणाचार्य पर बरस उठता है, द्रोणाचार्य उसे शान्त कर दिव्य कवच पहना देते हैं। उसी सर्ग में युधिष्ठिर की चिंता, सात्यिकी का छल से शकट-व्यूह में प्रस्थान, तथा भीम द्वारा द्रोणाचार्य के रथ को उठाकर दूर फेंकने आदि का चित्रण अत्यंत सजीव है।

छठे सर्ग में कथा फिर अलौकिक धरातल पर पहुँच जाती है। युद्ध करते-करते अर्जुन थक जाते हैं। दिन ढलने लगता है। किन्तु यह माया थी। कृष्ण ने कुछ समय के लिए सूर्य को ओझल कर दिया था और फिर ठीक अवसर पर उसे प्रकट कर दिया। इस तरह भगवान् भक्त की रक्षा करते हैं और अन्यायी को दण्ड मिल जाता है। अर्थात् "गांडीव गुण से भिन्न होकर अर्जुन का शर जयद्रथ का सिर छिन्न कर देता है।"

सातवें सर्ग में तो है ही भक्तों की भगवान के प्रति अर्चना। युद्धभूमि में मृत एवं घायलों को दिखलाते हुए कृष्ण अपने भक्त अर्जुन के शौर्य की प्रशंसा करते हैं किन्तु भक्त अर्जुन तो अपनी शक्ति को जानता है, इसलिए कह उठता है—

"क्या कार्य कर सकता हरे ! मैं आप अपनी शक्ति से।"

और उसके बाद युधिष्ठिर भी कृष्णमहिमा का बखान तथा उसका स्तवन करने लगते हैं। तब कृष्ण उन्हें हृदय से लगा लेते हैं। इस तरह कवि के शब्दों में—

वह भक्त का भगवान से मिलना नितांत पवित्र था,
प्रत्यक्ष ईश्वर जीव का संगम अतीव विचित्र था।

'रंग में भंग' के बाद प्रकाशित कवि की यह दूसरी रचना है। इसकी कथा महाभारत के एक प्रसंग पर आधृत है। कथा इस तरह की है कि इसमें परिवर्तन के लिए स्थान था ही नहीं, तब भी वस्तुविन्यास की क्रमबद्धता, भावनापूर्ण वर्णन-शैली, नाटकीय संवाद, अभिमन्यु की वीरता, उत्तरा का करुण विलाप, नारी-पात्रों में द्रौपदी, सुभद्रा आदि के शोका-लाप चित्रण के द्वारा कवि ने इस प्राचीन कथा को एक नवीन धरातल प्रदान किया है। कवि ने भावव्यंजना के लिए हरि-गीतिका छंद का चयन कर अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। डॉ० श्रीकृष्णलाल ने अपने आधुनिक साहित्य का विकास में लिखा है "उन्होंने रामचरितमानस में प्रयुक्त हरिगीतिका को सरल, साहित्यिक और ओजपूर्ण खड़ीबोली में ढाल दिया। वास्तविकता यह है कि जयद्रथ-वध गुप्तजी के प्रारम्भिक काव्यों में से एक है किन्तु ओजपूर्ण शैली, भाषा के प्रवाह, करुण, शांत, वीर और श्रृंगार रस की व्यंजना, अभिमन्यु की वीरता और उत्तरा के विलाप के कारण आज भी पाठकों में प्रिय है। हाँ, इस काव्य में निहित दिव्यता, अलौकिकता और अतिप्राकृत तत्त्वों का निरूपण आज के वैज्ञानिक युग में अवश्य कुछ खटकने वाला है।"

जयभारत

महाभारत की कथा पर आधारित 'जयभारत' का प्रकाशन वर्ष सन् १९५२ है। गुप्तजी के काव्यों में यदि सिद्धराज को खंड काव्य और संस्कृत महाभारत को महाकाव्य कहा जा सकता है, तब साकेत के पश्चात रचित यह दूसरा महाकाव्य है। इस काव्य के प्रथम चार सर्ग अथवा शीर्षकों में कौरव पांडवों के पूर्वजों की कथा ही व्याख्यायित है। अतः इन चार सर्गों को मूल कथा की भूमिका अथवा पृष्ठभूमि कहा जा सकता; सर्ग पांच या बंधुविद्वेष शीर्षक से सर्ग सैंतालीस या स्वर्गारोहण शीर्षक तक केवल एक ही व्यक्ति के चरित्र का उत्तरोत्तर विकास दिखलाया गया है और वे हैं—धर्मराज युधिष्ठिर। ऐसा लगता है संपूर्ण जयभारत की कथा उनके ही इर्द-गिर्द घूमती है अथवा जिस सर्ग में प्रत्यक्ष रूप से वे नहीं भी हैं वहाँ भी उनकी संवेदना अनस्यूत है। जयभारत की कथा के फल के भोक्ता भी वही हैं। चार पुरुषार्थों में सर्वोच्च अंतिम पुरुषार्थ अर्थात मोक्ष भी उन्हें ही प्राप्त है। वे स्वयं भारत हैं और उनकी जयजयकार ही जयभारत है।

कवि ने संपूर्ण महाभारत की कथा को सैंतालीस शीर्षकों में विभाजित किया है—नहुष, यदु और पुरु, योजनगंधा, कौरव पांडव, बंधुविद्वेष, द्रोणाचार्य, एकलव्य, परीक्षा, याज्ञसेनी, लाक्षागृह, हिडिम्बा, वक संहार, लक्ष्य वेध, इंद्रप्रस्थ, वनवास, राजसूय, द्यूत, वन गमन, अस्त्र लाभ, तीर्थ यात्रा, द्रौपदी और सत्यभामा, वन वैभव, दुर्योधन का दुःख, वनमृगी, जयद्रथ, अतिथि और आतिथेय, यक्ष, अज्ञातवास, सैरंध्री, वृहन्नला, उद्योग, विदुर वार्ता, रणनिमंत्रण, अनाहूत, मद्रराज, केशों की कथा, शांति-संदेश, कुंती और कर्ण, युयुत्सु, समर सज्जा, अर्जुन का मोह, युद्ध, हत्या, विलाप, कुरुक्षेत्र, अन्त, स्वर्गारोहण।

जयभारत काव्य में नहुष शीर्षक से कौरव-पांडव शीर्षक तक की कथा एक तरह से जयभारत की पृष्ठभूमि ही है। इसमें कौरवों-पांडवों के पूर्वज नहुष के स्वर्ग के राजा होने और इंद्राणी के प्रयत्नों से उनके स्वर्ग से पतित होने की कथा है। कवि ने यदु और पुरु के जन्म के लिए देवयानी-वध, शर्मिष्ठा देवयानी, ययाति और देवयानी के विवाह आदि प्रसंगों की ओर भी संकेत किया है। इसी पृष्ठभूमि में गुप्तजी ने महाराज शांतनु से सत्यवती के विवाह, भीष्म प्रसंग और पांडु, धृतराष्ट्र और विदुर के जन्म की कथा का वर्णन किया है। इसके साथ ही पांडु के कुंती तथा माद्री के साथ और धृतराष्ट्र के गांधारी के साथ विवाह का संकेत करते हुए कौरव-पांडवों के जन्म का भी वर्णन कुछ पंक्तियों में किया गया है—

> कुंती के सुत तीन युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन हुए
> धर्म वायु वासव के उनमें अंश पूर्ण सब गुण हुए
> माद्री के दो नकुल और सहदेव अश्विनी सुत यथा
> कहने सुनने योग्य सर्वथा पांच पांडवों की कथा
> इसी बीच द्वैपायन मुनि के वर से आशीर्वाद से
> सौ सुत पाए गांधारी ने वह यों बची विषाद से।

कौरव-पांडवों की वास्तविक कथा 'बंधु विद्वेष' शीर्षक से आरंभ होकर इंद्रप्रस्थ शीर्षक तक चलती है। बंधुविद्वेष में दुर्योधन भीम को विष देकर अपने विद्वेष का परिचय देते हैं। इसके पश्चात कथा में द्रोणाचार्य द्वारा शिक्षा, एकलव्य से अंगूठा माँगने, शस्त्र की परीक्षा, कर्ण का प्रसंग, द्रौपदी और धृष्टद्युम्न के जन्म की कथा, लाक्षागृह आदि प्रसंगों को लिया गया है। इंद्रप्रस्थ तक की कथा के बीच में कवि ने अंतर्जातीय विवाह की नियोजना कर युगानुकूल आदर्श को भी व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। संभवतः हिडिम्बा शीर्षक में हिडिम्बा और भीम के विवाह का यही उद्देश्य है। हिडिम्बा के बाद कवि ने बक का सांकेतिक वध करा कर कुंती के आदर्शों को अभिव्यक्ति दी है। लक्ष्यभेद में द्रौपदी-स्वयंवर और कुंती के आदेश से द्रौपदी के पांचों पांडवों की पत्नी बनने की कथा है। इसके बाद विदुर के प्रयास से पांडवों को राज्यप्राप्ति की कथा है।

वनवास से लेकर बृहन्नला तक की कथा पांडवों के उत्थान-पतन की कथा है। इंद्रप्रस्थ का वैभव भोगने और राजसूय यज्ञ करनेवाले युधिष्ठिर जुए में सर्वस्व हार जाते हैं। द्रौपदी का चीर-हरण होता है और पांडवों को बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवास प्राप्त होता है। कवि का संकेत है कि इस तेरह वर्ष के काल में पांडवों को एक ओर तो अस्त्र-शस्त्रों का लाभ हुआ, दूसरे उन्होंने तीर्थ आदि के बहाने से देश-भ्रमण भी किया। अन्त में विराट नगर में एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा कर राज्य-प्राप्ति के लिए उद्योग प्रारंभ हुआ। अतः उद्योग शीर्षक से अर्जुन-मोह तक की कथा महाभारत के युद्ध की पृष्ठभूमि है जिसमें धृतराष्ट्र को समझाए जाने, शांति का संदेश लेकर कृष्ण के हस्तिनापुर जाने, मोहग्रसित अर्जुन को गीता का उपदेश आदि दिए जाने की कथा है। युद्ध शीर्षक तो है ही महाभारत के युद्ध की संक्षिप्त कथा। हत्या, विलाप, कुरुक्षेत्र

और अन्त शीर्षकों में महाभारत का उपसंहार दिया गया है। अश्वत्थामा छिपकर पांडव-पुत्रों का वध कर देता है और अन्त में वह भी निकृष्ट जीवन झेलने पर विवश कर दिया जाता है। धृतराष्ट्र के पश्चात्ताप और गांधारी के विलाप की योजना भी कवि ने इसी प्रसंग में की है। अन्त में अश्वमेध यज्ञ, कृष्ण के देह-त्याग आदि के संकेत द्वारा गुप्तजी ने पांडवों के स्वर्गारोहण की भूमिका तैयार की है। सुभद्रा क्योंकि मात्र अर्जुन की पत्नी है इसलिए वह पांडवों के साथ सहगमन नहीं कर सकती। उसकी यही विवशता पाठकों को बेचैन कर देती है—

नर घर छोड़ निकल जाता है, नारी घुटती रहती,
लज्जा, भय, विषाद की मारी दुखियारी सब सहती।

उसका रोदन और हाहाकार पांडव सुनते हैं किंतु वे भी विवश हैं—

मैं सबकी धात्री, मेरा भी कोई धाता त्राता ?
अगति अभद्रा को जगती में तू न भूल ओ भ्राता !

किंतु कृष्ण तो कृष्ण-लोक में हैं और द्रौपदी के साथ पांडव देह-त्याग के लिए हिमालय को प्रस्थान कर चुके हैं।

ये धर्म राज्य-संस्थापन कर उद्यापन कर सब छोड़ चले।
उद्योगों के ये आश्रय से सब भोगों से मुँह मोड़ चले।

तात्पर्य यह है कि स्वर्गारोहण जयभारत का अन्तिम शीर्षक है। उसमें द्रौपदी सहित पांचों पांडवों के स्वर्ग की ओर प्रस्थान करने तथा एक-एक करके देह त्यागने की कथा है। इस प्रसंग में युधिष्ठिर के लिए नारायण स्वयं प्रकट होते हैं—

सस्मित नारायण प्रकट हुए— "आओ, हे मेरे नर आओ।
जो कुछ है जहाँ, तुम्हारा है मुझको पाकर सब कुछ पाओ।"

अर्थात नर के आयण ही नारायण हैं और नर का अभिप्रेत भी नारायण ही हैं।

रामायण और महाभारत भारतीय कवियों के लिए सदा से प्रेरणा-स्रोत रहे हैं किंतु गुप्तजी का आदर्श अपने युग और युगीन भावनाओं का चित्रण भी रहा है। इसी आदर्श की पूर्ति के लिए उन्होंने महाभारत की कथाओं के आधार पर 'जयभारत' की रचना की है। उन्होंने इस काव्य के लिए महाभारत के प्रत्येक पर्व से कथा का संग्रहण किया है किंतु कथा की यथावत् आवृत्ति उन्हें स्वीकार्य नहीं है। युग-धर्म की रक्षा के लिए तथा पात्रों को युगानुकूल बनाने के लिए उन्होंने महाभारत से केवल अपेक्षित प्रसंगों को ही लिया है। इसीलिए उसके क्रम और कथा आदि में अपने ढंग से संक्षेपण, स्थानांतरण, परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन भी किया है। उक्त प्रक्रिया को अपनाते हुए भी कवि ने इस तथ्य की ओर बराबर ध्यान रखा है कि कथा की मूल संवेदना में अंतर न आए।

काव्यरूप की दृष्टि से जयभारत की यह विशेषता है कि युधिष्ठिर के संदर्भ से यह महाकाव्य प्रतीत होता है, विभिन्न शीर्षकों को जोड़ने पर डॉ० कमलाकांत पाठक इसे "वृहत काव्य" की संज्ञा दे देते हैं और जब इसके प्रत्येक शीर्षक पर विचार करते हैं तो यह अनेक खंड काव्यों का एक संकलन बन जाता है। इस काव्य में आरंभ से अन्त तक समास शैली का प्रयोग किया गया है तथा रस की दृष्टि से भी जय-भारत में काव्यशास्त्रीय नौ रसों के अतिरिक्त भक्ति और वात्सल्य रस का भी यथा-प्रसंग परिपाक हुआ है किंतु इसका अंगीरस युधिष्ठिर के चरित्र के अनुरूप शांत ही है।

जयिनी

'जयिनी' में दाम्पत्य के सुरम्य वातावरण में मनीषी कार्ल मार्क्स की मूल मान्यताओं की एक झलक प्रस्तुत की गयी है। स्वयं कवि के शब्दों में, यह 'मार्क्स दम्पति के प्रति श्रद्धांजलि है।' विषम वैषम्य तथा शोषण के विरोध में क्रांति का डंका बजा देने के लिए कटिबद्ध मार्क्स इस कंटकाकीर्ण पथ से अपनी पत्नी जेनी को दूर रखना चाहते हैं, किंतु जेनी तो काँटों में खिलने वाली कली है। इन दोनों का समवेत संकल्प है : "चलो, अभावों में भी सबके उचित भाग हम ले लें।" यही संकल्प जयिनी का सार है।

झंकार

६४ छोटे-बड़े गीतों के संग्रह 'झंकार' का प्रकाशन-काल तो १९३० है, परंतु उसमें संकलित प्रगीतों की रचना सन् १९१३ और १९२५ के बीच हुई। इनमें से अधिकांश रचनाएँ १९२० के पूर्व 'सरस्वती' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। 'झंकार' की रचनाओं से पूर्व गुप्तजी रायकृष्णदास की 'साधना' पुस्तक के गद्य-गीतों का पद्य रूपांतर कर चुके थे। दूसरे, 'झंकार' का रचना-काल रवीन्द्रनाथ टैगोर के हिंदी कवियों को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला काल था और गुप्तजी भी उससे मुक्त नहीं हो पाये, अतः 'झंकार' की रहस्यमयी प्रगीतियाँ नवयुग के साहित्यिक प्रभाव से प्रेरित होकर लिखी गयी हैं। वे कवि की स्वाभाविक प्रवृत्ति का परिणाम नहीं हैं क्योंकि उन्हें अज्ञेय की अपेक्षा ज्ञेय, अमूर्त के स्थान पर मूर्त और अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म की जगह प्रत्यक्ष जीवन अधिक रुचिकर रहा है, उसीमें उनकी वृत्ति अधिक रमी है।

'झंकार' के प्रगीत स्वानुभूतिमयी रचनाएँ तो हैं, पर वे छायावादी काव्य से इसलिए भिन्न हैं कि उनमें न तो विशुद्ध रहस्य-दर्शन है और न वे परोक्ष-सौंदर्य-बोध का परिणाम हैं। कवि परमसत्ता को राम, कृष्ण और मानवता के त्राता रूप में ही अनुभव करता है, उसको असहायों, विपन्नों आदि की याचना, उनके रोदन में पहचानने की चेष्टा करता है। उसके लिए मानव-सेवा ही ईश्वर-पूजा है। वह अपने आराध्य में उन्हीं गुणों—दया, कृपा, दीनवत्सलता, अनुग्रह आदि का उल्लेख करता है जिनका वर्णन सगुण भक्तिकाव्य में मिलता है; कहीं नैतिकता पर बल है तो कहीं सगुणोपासना स्वतः स्फूर्त हो उठी है और कवि तुलसी, सूर आदि की तरह दीनतापूर्ण वाणी में विनय करता प्रतीत होता है। जीवन, जगत्, ब्रह्म, ज्ञान, भक्ति, माया आदि के संबंध में गुप्तजी के विचार प्रायः वे ही हैं जिनसे साधारण भारतीय पूरी तरह परिचित हैं। उन्होंने जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है—विराट वीणा, हिंदोल, आँख-मिचौनी, तंत्री आदि, वे भी सुपरिचित हैं। यहाँ आध्यात्मिक खोज के स्थान पर भक्ति की पुकार ही अधिक तीव्र है, अतः 'झंकार' में जो रहस्य-भावना दृष्टिगत होती है, वह भक्ति-मूलक ही है। हाँ, उसकी अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक है। इसीलिए कवि कहीं कबीर और मीरा की भाषा में लिखता है तो कभी रवीन्द्रनाथ टैगोर की मानव-सेवा की भावना और उनकी आध्यात्मिक प्रेम की अनुभूति से प्रभावित दिखाई देता है, और स्वयं पर नारी-भाव का आरोप कर अपनी रहस्यमयी माधुर्यानुभूति व्यक्त करता है। कहीं चरण-शरण में लेने की विनती करता है, कहीं भव-बाधाओं से मुक्त करने की, तो कहीं प्रिय के प्रति सर्वस्व-समर्पण का भाव प्रकट करता है और बाह्य-साधना के स्थान पर आत्मदर्शन को महत्त्व देता है। कुल मिलाकर अपने वैष्णव संस्कारों के कारण कवि के अन्तःसंस्कार अद्वैत वाद की अपेक्षा अवतारवाद की ओर अधिक झुके हैं। अतः कवि-कल्पना रहस्योन्मुख होते हुए भी 'झंकार' की रचनाएं उस अर्थ में रहस्योन्मुख नहीं हैं जिस अर्थ में छायावादी कवियों की रचनाएं। इनमें व्यक्त सौंदर्य का भावनाशील चित्रण तो है पर सूक्ष्म सौंदर्य की चित्रोपम प्रतीक-व्यंजना नहीं है। यहाँ स्वानुभूति व्यंजना के पीछे दार्शनिक चिंतन या मानसिक एकरूपता एवं तन्मयता के स्थान पर भावुकता-जन्य उच्छ्वास अधिक है।

आज का पाठक 'झंकार' के गीति-शिल्प को देखकर न तो मुग्ध होता है और न प्रभावित क्योंकि उसमें भाषा की मसृणता, पद-लालित्य, संगीत-माधुरी, उपचार-वक्रता लाक्षणिकता और सूक्ष्म कल्पना का वह जादू नहीं है जो छायावादी काव्य के उत्कर्ष-काल में उपलब्ध होता है। शिथिल तथा ग्राम्य प्रयोग, व्याकरण-दोष, पाद-पूर्ति अथवा तुक-निर्वाह के लिए निरर्थक शब्दों का प्रयोग अखरते हैं, तथापि जिस युग की यह रचना है उसे देखते हुए गुप्तजी की नई गीति-साधना को साहसपूर्ण ही कहा जायेगा।

दिवोदास

सन् १९५० में प्रकाशित इस पद्य-नाट्य में कवि ने मनुष्य को परावलंबन त्यागकर स्वावलंबी बनने का संदेश दिया है और मानव को सर्वोत्कृष्ट प्राणी बताया है। 'दिवोदास' का आख्यान गुप्तजी को 'स्कंदपुराण' और संपूर्णानंदजी कृत 'गणेश' पुस्तक में उपलब्ध हुआ जिसमें गणेशजी द्वारा काशी बसाये जाने का प्रागैतिहासिक वृत्तांत मिलता है। इस आख्यान के अनुसार काशीराज दिवोदास ने देवों को अपने राज्य से निष्कासित कर अपनी पौरुष-पताका फहराई थी।

'दिवोदास' की कथा इस प्रकार है—काशी के राजा रिपुंजय ने घोर तपस्या की। उसी बीच काशी में अनावृष्टि के कारण घोर अकाल पड़ा। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। समाधिस्थ राजा को बोध हुआ कि मानव का आदर्श है पुरुषार्थ और मर्यादा-पालन। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्मा प्रकट हुए और उन्होंने राजा से वरदान मांगने को कहा और उनको नया नाम 'दिवोदास' भी दिया। ब्रह्मा के परामर्श से वह निवृत्तिःमार्ग त्याग राजा बनकर प्रजा-पालन के कार्य में जुट जाने के लिए सन्नद्ध हो गये। राजा ने एक शर्त रखी कि काशी से सब देवता चले जायँ, उनको उनका यज्ञ-भाग मिलता रहेगा। देवताओं के निष्कासन का कारण यह बताया गया कि मनुष्य देवताओं के भरोसे रहकर, स्वयं अकर्मण्य बन गये हैं, पौरुष खो बैठे हैं, सदा देवताओं की कृपादृष्टि की याचना करते रहते हैं। इस परावलंबन-भाव को दूर कर मनुष्य को स्वावलंबी और पुरुषार्थी बनना होगा—

ऊपर शून्य तको क्यों, नीचे भरे सिंधु गंभीर,
करो सींचने के उपाय ही, अक्षय है निज नीर।

ब्रह्मा वरदान देकर अंतर्धान हो गये।

उसी समय नागकन्या अनंगमोहिनी अपनी सखी रंगिणी के साथ शिवपूजन के लिए काशी आयी और दिवोदास के आश्रम में पहुँची। तरुण तपस्वी दिवोदास को देख वह मुग्ध हो गयी और दिवोदास भी उसके रूप-लावण्य पर आसक्त हो गया। प्रथम दृष्टि का यह प्रेम परवान चढ़ा और दोनों विवाह के सूत्र में बंध गये। दोनों ने राष्ट्र-सेवा का व्रत लिया, नाम जपना छोड़ काम करने का संकल्प किया। दुष्काल से पीड़ित काशी की जनता का नेतृत्व करते हुए उन्होंने प्राकृतिक साधनों से भरपूर लाभ उठाने और देश को संपन्न बनाने का उद्‌बोधन दिया और आदर्श राज्य का मूल मंत्र बताया—"राजवंश भी रहे प्रजा के साथ सदा समभक्त।"

द्वापर

द्वापर का रचना-काल सन् १९३६ है। इस रचना के निर्माण के समय स्वयं कवि की स्थिति भी बहुत ही संकल्प-विकल्पमय रही है। एक ओर तो इस अवधि में उसके दो पुत्रों का निधन हुआ दूसरी ओर उसने इसी काल में पारिवारिक ऋण से भी मुक्ति पाई। राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से भी यह युग संशय का युग था। एक ओर सांप्रदायिकता पनप रही थी तो दूसरी ओर ग्रामोद्धार के कार्यक्रम का सूत्रपात किया जा रहा था। तात्पर्य यह कि कवि की निजी मनःस्थिति तथा देश की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति का परिणाम ही द्वापर है।

द्वापर के प्रतीकात्मक संलापों में विविध पात्रों की मानसिकता का उरेहण है। कृष्ण क्रांति का पांचजन्य न बजाकर मुरली की मादकता में जन-जीवन को डुबा देना चाहते हैं। उनका उद्घोष है "सब धर्म छोड़ तू आ, बस मेरा शरण धरे।" राधा केवल समर्पण की मूर्ति, भक्ति और प्रेमिका है। उसे कृष्ण पर अटूट विश्वास है। गार्हस्थ्य भाव के कवि की यशोदा में ममत्व और कृष्ण पर विश्वास है। वह उसके विस्मयकारी चरित्रों और उसकी रूप-माधुरी पर मुग्ध है। वह कृष्ण के कारण ही वृन्दावन की प्राकृतिक सुषमा पर भी मुग्ध है।

राधा और यशोदा के समान ही कृष्ण के गोप तथा बाल-रूप पर मुग्ध याज्ञिक पत्नी विघृता को भी कवि ने कृष्ण के परिकर रूप में चित्रित किया है। विघृता के रूप में विद्रोहिणी नारी के जिस रूप का चित्रण गुप्तजी ने किया है वह सम-सामयिक चेतना का ही प्रतिफलन है। यह युग वास्तव में नारी-जागरण का युग था। विघृता का पति एक ओर तो पति-पत्नी के सहयोग का पक्षधर है और यत्र नार्यस्तु पूज्यंते की दुहाई देता है तो दूसरी ओर वह पत्नी पर अविश्वास करता है, उसे दुःशीला घोषित कर गालियां देता है। पुरुष का यह दुहरा मानदंड संपूर्ण नारी जाति का अपमान है, अतः विघृता इसे सहन करने में असमर्थ है। इसीलिए वह पुरुष के अत्याचारों के प्रति समर्पित होने की अपेक्षा देह-त्याग करती है। विघृता में पातिव्रत्य है किन्तु वह आधुनिक युग की विदुषी नारी भी है।

बलराम के वक्तव्य में ग्रामोद्धार एवं जनजीवन में सुधार के संबंध में एक सशक्त चिंतन रूपायित हुआ है। यह चिंतन मात्र कवि का न होकर उस युग के राष्ट्रपिता गांधी का भी था। गांधी जी के उस समय के भाषणों में सांप्रदायिकता का विरोध, हरिजन उद्धार, ग्राम-सुधार, लघु उद्योग और कुटीर उद्योगों की चर्चा रहती थी। द्वापर का बलराम भी संकीर्ण मानसिकता, जीर्णशीर्ण परंपराओं और रूढ़ियों, याज्ञिक कर्मकांड आदि का विरोधी है। उसके वक्तव्य में लोक-कल्याण, ग्राम-कल्याण, प्रजातंत्र की स्थापना का स्वर तो मुखरित है ही, साथ ही उसका नारा है—

अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी।

वह केवल समाज सुधारक ही नहीं बल्कि उस भू का पुत्र है जिसके—

सरस-गंध गुण के हैं आप अमर आश्वासी।

क्योंकि उसकी भारत माँ धात्री, गोरूप धारिणी, शस्य शालिनी, सर्वसहा, क्षमा-क्षमता तथा ममता की प्रतिमा है। वही हमारी प्रमुख देवता है इसलिए—

एक एक सौ सौ अन्यायी कंसों को ललकारो
अपनी पुण्य भूमि के ऊपर धन जीवन सब वारो।

द्वापर के ग्वाल-बाल तो हैं ही कृष्ण के सखा तथा प्रजा। वे आश्वस्त हैं क्योंकि खेल उसी का, वही खिलाड़ी और खिलौना भी वही, इसीलिए—"चिंता करे बलाय हमारी जगती के जंजाल की।" हाँ, द्वापर के नारद भी बलराम के समान ही क्रांति के समर्थक हैं "शांति अन्त में आप आएगी व्यर्थ जन्म जो क्रांति नहीं।" उनकी क्रांति का स्वर बलराम से अधिक मुखरित है। वे कूटनीतिज्ञ भी हैं। उनका विश्वास है कि जीवन के लिए संघर्ष, निर्माण के लिए ध्वंस आवश्यक है। कठिनाई में पड़ कर ही कौशल का प्रयोग होता है। कूड़ा कर्कट (अन्याय) को नष्ट करने के लिए आग लगाना (क्रांति करना) भी आवश्यक है। इस तरह बलराम सामाजिक क्रांति के पक्षधर हैं तो नारद राजनीतिक क्रांति के।

देवकी के आत्मसंलाप में पतिपरायण-भावना और समसामयिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। इस वक्तव्य में कारागृहा जीवन, बंदी की विवशता, जेल से बाहर रहने वाले व्यक्तियों के मनोभाव, राजा द्वारा प्रजा पर किये गये अत्याचार आदि के विषय में चिंतन है। द्वापर लिखते समय कवि के दो पुत्र सुमंत्र और सुदर्शन का निधन हो गया था। संतति-वियोग के दुःख को गुप्तजी ने देवकी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इस दुःखाभिव्यक्ति के लिए कवि ने सोलह छंदों का सृष्टि का है। इन छंदों में बालकों के मृत्युविषयक चिंतन की ही प्रधानता है।

कंस के पिता उग्रसेन के स्वर में युग की चेतना मुखरित है। लगता है कंस के शासन को ब्रिटिश शासन मान कर ही उग्रसेन ने वक्तव्य दिया है। मानो गांधीवाद का कोई प्रबल प्रवक्ता कारागृह से सांत्वना, क्षमाशीलता, क्रोध-परिहार, समयानुसार कार्य-संपादन, उत्साह, धैर्य आदि के संबंध में प्रवचन दे रहा हो। इनके संलाप में शक्तिशाली की दयनीयता, अनासक्ति, योग्य व्यक्ति को उसके अधिकारों की प्राप्ति अथवा उन्नति के उचित अवसर का प्राप्ति, अगली पीढ़ी के लिए पिछली पीढ़ी के त्याग, दीर्घसूत्रता का विरोध, शिव-हीन शक्ति का विरोध, मनुष्य में मनुष्यत्व की आकांक्षा आदि भावों की अभिव्यक्ति हुई है। इसके बाद कंस का वक्तव्य तो है ही तत्कालीन गृह-सचिव हैलट की हैलटशाही का मूर्तिमंत रूप। उसका कथन है "नियति कौन है? नियत्ता मैं ही अपना आप।' वह राज्यसत्ता की प्राप्ति के लिए सभी हथकंडों को न्यायोचित मानता है। वह छल, शक्ति, अन्याय मत्स्यन्याय का विश्वासी है। वह दया को दुर्बलता मान कर बाहुबल को सर्वोपरि मानता है। किंतु कवि ने मनोविज्ञान का आश्रय लेते हुए उसके मन में भी संशय उत्पन्न कर दिया है—

भित्ति चित्र भी चलते से क्या दीख गए क्षण काल?
द्वापर ही द्वापर है मेरे चारों ओर अराल!

अक्रूर के संलाप में देश की मिट्टी की सुगंध है। वह कृष्ण-भक्त कृष्ण की रूप-माधुरी पर आसक्त है। अक्रूर धार्मिक पवित्रता और निर्माण का पक्षधर है। अक्रूर के संलाप के समान ही नंद का संलाप भी स्थिर है। वह भोला भाला एक ओर वात्सल्य भाव में आकंठ मग्न है तो दूसरी ओर वृन्दावन के रूप पर न्यौछावर। कुब्जा के वक्तव्य का स्वर भी आसक्ति प्रधान है। वह कृष्ण के रूप का चित्रण करती हुई उसे विश्वबिहारी मानती है। इस वक्तव्य में कवि ने कुब्जा के कूबड़ के उपचार के लिए अस्थिविकृति विज्ञान का आश्रय लिया है। कवि की कुब्जा राधा की व्यथा से व्यथित और राधा के समान ही अनन्य भक्ति की प्रतिमूर्ति है—

हाँ, हाँ, मैं चेरी, मैं चेरी तेरी ही तेरी ही।

कुब्जा के वक्तव्य के पश्चात् मंच पर उद्धव आते हैं। एक ओर उनका कार्य यशोदा को प्रबोधन देना है तो दूसरी ओर गोपियों को। यशोदा के प्रसंग में वे माँ के वात्सल्य वियोग के दुःख को शमन करने का प्रयास करते हैं, उनके अनुसार कृष्ण भवबंधन त्राता, मनुष्यत्व पर छाए प्रेत पिशाच को झाड़ने वाले और पर दुःखकातर हैं। तात्पर्य यह है कि यशोदा के दुःख के शमनार्थ गुप्तजी मनोवैज्ञानिक पद्धति का आश्रय लेते हैं। दूसरी ओर गोपियों को सांत्वना देने के संदर्भ में उद्धव उनकी मनोव्यथा, भावमग्नता, प्रेम आदि की सराहना करते हुए कह उठते हैं—"धन्य दूरता ही प्रिय की जो और निकट ले आवे।"

गोपी शीर्षक के माध्यम से कवि ने राधा की वियोग-दशा का चित्रण किया है। गुप्तजी की गोपियाँ राधा की सखियाँ होने के कारण स्वतंत्र अस्तित्व की स्वामिनी नहीं हैं, अतः

राधा की विरह-व्यथा की व्यंजना के व्याज से ही वे अपनी हार्दिक व्यथा को व्यक्त करती हैं। उनके तर्कों में तार्किकता के स्थान पर भावप्रवणता है।

गोपी-प्रसंग के पश्चात् एक तरह से द्वापर काव्य का समापन ही समझना चाहिए किंतु गुप्तजी ने द्वापर की रचना तीन खंडों—गोपाल, द्वारिकाधीश और योगीराज–में करने का विचार किया था। कवि की यह कल्पना पूरी न हो सकी। द्वारिकाधीश खंड में कवि केवल सुदामा की ही रचना कर सका था। अत: द्वापर के प्रकाशन के समय कवि ने सुदामा के वक्तव्य को भी द्वापर में ही जोड़ दिया। सुदामा की व्यथा-कथा एक भिन्न धरातल पर स्थित है। उनके वक्तव्य में पत्नी के असंतोष और निज के संकोच तथा संतोष की अभिव्यक्ति है। उसके अनुसार कृष्ण ईश्वर हैं इसलिए उसके घर के सभी भिखारी हैं, तब भी वह उनसे तुच्छ विषयों की भिक्षा माँगकर उन्हें लज्जित नहीं करना चाहता। उसके द्वारिका-गमन का उद्देश्य है—

"जाऊँगा क्यों नहीं इस मिष उसे देख आऊँगा।
पावे और न पावे तू पर मैं अभीष्ट पाऊँगा।"

वास्तव में द्वापर देश की समसामयिक स्थिति और चिंतन को चित्रित करने वाली एक आवेशमयी रचना है। डॉ० कमला कान्त पाठक ने उसे आत्मसंलाप (Dramatic Monologue) की संज्ञा दी है और द्वापर में प्रत्येक पात्र अपनी बात कहता भी है किंतु तब भी इसके संलाप मात्र आत्मसंलाप नहीं हैं। जिस तरह गुप्तजी ने साकेत को केन्द्र मान कर एक ही स्थान पर संपूर्ण राम कथा की नियोजना की है, कुछ-कुछ उसी तरह से द्वापर के केन्द्र में कृष्ण हैं और अन्य पात्र उनके तेज को विकीर्ण करने वाली किरणें। कृष्ण-कथा के सहयोगी पात्रों में चिंतन का प्रकाश एक तेजस्वी प्रभामंडल के समान कृष्ण के इर्द-गिर्द घूमता प्रतीत होता है। कृष्ण-कथा के ये सहयोगी पात्र केवल एक जैसी प्रभा या तेज विकीर्ण नहीं करते बल्कि उनमें से किसी का स्वर शांत और स्थिर, मात्र भावपूर्ण है तो किसी का स्वर उपदेश-पूर्ण और ओजपूर्ण है। सुदामा को छोड़ कर द्वापर के सभी पात्रों के चिंतन में तत्कालान युग की आहट, समाज में व्याप्त सुगबुगाहट, देशोन्नति के स्वप्न तथा कंस-शासन (विदेशी शासन) के कारण बेचैनी और रोष है, इसी कारण इस काव्य में रूपक-तत्व की भी खोज की जा सकती है—

१. श्रीकृष्ण—गांधी के सैद्धांतिक पक्ष के निरूपक अथवा गांधी का आत्मरूप।

२. उग्रसेन—गांधी के व्यावहारिक पक्ष के निरूपक अथवा गांधी का वाह्य-रूप।

३. बलराम—गांधीवाद का प्रबल प्रवक्ता अथवा नेहरू जी आदि।

४. नारद—क्रांतिकारी नेता या क्रांति में विश्वासी यथा सुभाष बाबू।

५. देवकी—समाज-सुधार का पक्षधर स्त्री-नेता जो देश-हित में मारे गए पुत्रों के लिए व्याकुल है यथा माता कस्तूरबा गांधी।

६. विधृता—बुद्धिजीवी वर्ग की शिक्षित नारी।

७. कंस—ब्रिटिश शासन का प्रतिनिधि।

८. राधा, यशोदा, कुब्जा तथा गोपी—गांधी विचार-धारा की पक्षधर।

९. याज्ञिक (विधृता का पति) समाजवादी नेता जो गांधीवाद का घोर विरोधी है।

१०. अक्रूर—समझौतावादी नेता।

११. उद्धव—बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधि।

१२. नंद—द्विविधाग्रस्त नेता।

१३. ग्वाल-बाल—सामान्य प्रजा।

शिल्प अथवा गीति-काव्य की दृष्टि से द्वापर में अनेक न्यूनताएँ भी दिखलाई जा सकती हैं किंतु संपूर्ण कृष्णकथा को, गुप्तजी ने विभिन्न चरित्रों द्वारा दिये गए भाषणों और वक्तव्यों को माध्यम बनाकर, जिस रूप में प्रस्तुत किया है, शिल्प की दृष्टि से यह कवि-कौशल का ही नहीं बल्कि एक नये शिल्प-प्रयोग का भी परिचायक है। द्वापर में दिये गए संलाप मात्र कृष्ण-कथा संबंधी वक्तव्य नहीं है, उनमें पात्रों का अपना व्यक्तित्व, चिंतन तथा द्वापर-युग (संशय युग) के आदर्श भी अभिव्यक्त हैं। साथ ही इस काव्य में कवि के अपने संस्कार और चिंतन को भी स्वर मिला है। शिल्प द्रष्टा चाहे इसे गीति-काव्य कहें, आत्म-संलाप या एक अभिनव प्रबंध कहें, हिन्दी काव्य के लिए तो द्वापर एक नया शिल्प प्रयोग ही है।

नहुष

अपने बालसखा मुंशी अजमेरी के निधन के पश्चात् मन को शांत करने के लिए कवि ने श्रीमद् बाल्मीकि रामायण और महाभारत का पारायण किया था। महाभारत के उद्योग पर्व में नहुष के प्रसंग को पढ़कर गुप्तजी को लगा कि मनुष्य बार-बार ऊंचा उठने का प्रयत्न करता है किंतु मानवीय दुर्बलता बार-बार उसे नीचे ले आती है। मनुष्य को उन पर विजय पानी ही होगी। इसके लिए उसे साहसपूर्वक फिर-फिर उठ खड़ा होना होगा।

नहुष रचना की प्रेरणा यही चिंतन है और नहुष का संदेश भी यही है। नहुष कौरव-पाण्डवों के पूर्व-पुरुष थे। इन्द्रासन के इच्छुक त्रिसरा का इन्द्र द्वारा वध किए जाने पर उसके भाई वृत्रासुर ने स्वर्ग पर चढ़ाई कर दी। इन्द्र को उससे संधि करनी पड़ी, किंतु बाद में इन्द्र ने धोखे से वृत्रासुर का वध कर दिया। ब्रह्महत्या और विश्वासघात के कारण ऋषियों के निर्देश से उन्हें इन्द्रलोक छोड़ना पड़ा तथा प्रायश्चित्त के लिए जल में समाधि लगानी पड़ी। इसी प्रसंग में स्वर्ग की रक्षा के लिए, महाराज नहुष को योग्य समझकर देवताओं ने उन्हें इन्द्र-पद पर प्रतिष्ठित किया था।

कवि ने नहुष काव्य को पात्रानुसार और कार्यानुसार सर्गों में विभाजित किया है। प्रथम सर्ग में इन्द्राणी अर्थात् शची की मनोदशा का वर्णन है। कवि ने शची के रूप-सौंदर्य और इन्द्रलोक की सुषमा का वर्णन करते हुए शची की मानसिकता का प्रकटीकरण किया है। वह नहुष पर इसलिए विश्वास नहीं कर सकती क्योंकि—

देव सदा देव तथा दनुज दनुज हैं।
जा सकते किंतु दोनों ओर ही मनुज हैं।

नहुष काव्य की शची केवल सुंदर ही नहीं, तर्कशीला, विदुषी, शक्तिमती तथा साहसी भी है। उसका कथन है—

शक्ति से जो साध्य होगा, साधेगी उसे शची।

इस काव्य के दूसरे सर्ग का शीर्षक नहुष है। इस सर्ग का आरंभ नारद के आगमन से होता है। वे विमना शची की अवस्था को देखकर दुःखी हो उठते हैं। शची के प्रणाम न करने पर क्षुब्ध भी हैं किंतु नारद नारद हैं दुर्वासा नहीं। नहुष उन्हें सम्मान देकर आसन देते हैं। नारद-नहुष वार्तालाप में नहुष धरती और उसके सुखों की प्रशंसा करते हुए यहाँ तक कह देते हैं—

मेरी भूमि तो है पुण्य भूमि वह भारती,
सौ नक्षत्र लोक करें आके आप आरती।

वह स्वर्ग की एकरसता, सुख आदि की चर्चा करते हुए अपनी एकाकी दशा की ओर भी संकेत करते हैं। नारद उनको मनोदुर्बलता त्यागने का परामर्श देते हुए कहते हैं—

मानों देवमन्दिर ही निज नर देह को।

रचना के तीसरे सर्ग का शीर्षक उर्वशी है। स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी नहुष को स्वर्ग के सुखों का उपभोग करने का परामर्श देती है किंतु नहुष अपनी पृथ्वी के लिए व्याकुल हैं—"कितने अभावों से भरी मही।" नहुष द्वारा जल-वृष्टि की चर्चा चलाने पर उर्वशी ने जो तर्क दिए हैं उनसे धरती पर फैली विषमता के कारणों का तो ज्ञान होता ही है, साथ ही उर्वशी के चरित्र का भी एक नया पक्ष उभरकर सामने आता है। उर्वशी मात्र गाने और नृत्य करने वाली अप्सरा न होकर, विदुषी भी है। उसके मत से मनुष्य के लिए श्रम, तप, त्याग, कर्म-यज्ञ, कौशल, पुरुषार्थ, स्पर्धा आदि आवश्यक हैं। इन्हीं गुणों से उसका विकास संभव है—

व्योम सा विशेष शेष अब भी विकास है
चाहता निरन्तर जो नर का प्रयास है।

नहुष के चौथे सर्ग का शीर्षक 'स्वर्ग-भोग' है। तीसरे सर्ग में नहुष का कथन है—"तो फिर तुम्हीं लो कुछ काम इस देह से"। उत्तर में उर्वशी के कथन में विभावध्वनि की व्यंजना हुई है।

आप में हमारा काम आज मूर्तिमंत है
चलिए न नन्दन में उत्सुक बसंत है।

यहीं से नहुष स्वर्ग-भोग के लिए सन्नद्ध हो गए हैं। रात-दिन स्वर्ग-भोग करने पर भी उन्हें तृप्ति नहीं हुई क्योंकि—"सेवन से और और बढ़ते विषय हैं"। अंत में शची की झलक पाकर उनके अधमुँदे नयन खुल गए। यहाँ कवि ने शची के रूप-सौंदर्य की मादकता और नहुष पर पड़े उसके प्रभाव का प्रसंगानुकूल चित्रण किया है। नहुष के मन में शची-प्राप्ति की इच्छा उत्तरोत्तर प्रबल होती दिखलाई गई है।

पांचवें सर्ग में नहुष शची के पास संदेश भेजते हैं। अतः इस सर्ग का शीर्षक 'संदेश' है। उनका संदेश है—

दूना-सा अकेले मुझे शासन का भार है,
आधा कर दे जो उसे ऐसा सहचार है।
अतः सह नहीं सकता विलम्ब और अब मैं।

शची के लिए यह सन्देश त्रासदायक बन जाता है। वह

नहुष को मात्र 'भृत्य' और 'प्रतिनिधि' ही मानती है। इन्द्राणी के विचार जानकर नहुष आपे में न रहकर क्षुब्ध हो उठते हैं—

अपना अनादर परन्तु यदि मैं सहूं,
तो फिर पुरुष हूं मैं किस मुँह से कहूं ?

इसी प्रसंग में इन्द्राणी को उसकी सखी देवगुरु आचार्य बृहस्पति के पास ले जाती है।

छठे सर्ग का शीर्षक 'मंत्रणा' है। इस सर्ग में नहुष शची को इन्द्र के आवास में बुलवाने के लिए देवगुरु के पास सन्देश भिजवाता है और देवगुरु इस सन्देश का उत्तर बाद में प्रेषित करने की बात करते हुए मुख्य देवों से मंत्रणा करते हैं। इस देवमंत्रणा में शची के मत को भी जानने का प्रयत्न किया जाता है। शची नहुष को इन्द्रलोक का राजा बनाने के विरुद्ध थी किंतु देवताओं के व्याज से कवि ने मनुष्य के ऊंचे उठने वाले भावों की प्रशंसा करते हुए धरती के विभाजन, भाषा-समस्या, हिंसाभाव आदि की ओर संकेत किया है। शची नहुष के प्रस्ताव का घोर विरोध करती है और अन्त में निष्कर्ष निकलता है कि ऋषिगण अपने कंधों पर नहुष की शिविका उठाकर शची के निवास-स्थान तक लाएं। इस तरह से इस विवाह में अपूर्वता रहेगी।

नहुष के अन्तिम सर्ग का शीर्षक 'पतन' है। इसमें ऋषियों द्वारा पालकी उठाने, नहुष के मनोभावों के प्रकटीकरण, कथन, त्वराभाव आदि का चित्रण है। और इस उतावली में—

क्षिप्त पद हाय ! एक ऋषि को जो जा लगा
तो वरदायी ऋषि श्राप देने पर उतर आए—
"पामर पतित हो तू होकर भुजंग ही।"

इस श्राप को सुनकर एकबारगी तो नहुष हतचेत हो जाते हैं किंतु संभलकर वह श्राप को शिरोधार्य करते हुए, खेद प्रकट करते हैं। वह काम-विकार को त्याज्य बतलाते हुए शची से क्षमा प्रार्थित हैं, किंतु अपराध मानते हुए भी वे अपने को पराजित नहीं मानते—

आज मेरा भुक्तोज्झित हो गया है स्वर्ग भी,
लेके दिखा दूंगा कल मैं ही अपवर्ग भी।

इतना ही नहीं, धरती के मानव नहुष गिर-गिरकर उठने को ही मानव की परिणति मानते हैं—

गिरना क्या उसका उठा ही नहीं जो कभी,
मैं ही तो उठा था आप गिरता हूं जो अभी
फिर भी उठूंगा और बढ़के रहूंगा मैं,
नर हूं, पुरुष हूं मैं, चढ़ के रहूंगा मैं।

नहुष की कथा का मूल स्वर है पुरुषार्थ का निदर्शन। कवि ने महाभारत के इस प्रसंग को एक नया मोड़ देते हुए जहाँ मनुष्य की गरिमा का उपस्थापन किया है वहीं शची के मन की आशंका का भी चित्रण किया है। शची के संदर्भ में महाभारत में जहाँ नहुष का स्वर आज्ञावाचक है, नहुष में यह प्रार्थनापरक है। इस प्रकार कवि ने मूल कथा में परिवर्तन करते हुए शची के हृदय की आशंका, नारद के समक्ष पुरुषार्थ की महिमा तथा उर्वशी-नहुष प्रसंग में धरती के अभावों के संबंध में नहुष की चिंता को व्यक्त कर प्रस्तुत काव्य को अधिक लौकिक और युगानुकूल रूप दे दिया है।

इस काव्य में दो ही प्रधान-पात्र हैं—नहुष और शची। नहुष जहाँ मनुष्यता और पुरुषार्थ का प्रतीक है वहाँ शची का चरित्र एक सामान्य नारी का चरित्र है जो पति-वियोग से व्याकुल और नहुष से आशंकित है किंतु है पतिव्रता।

गुप्तजी संवाद-योजना और विभिन्न प्रसंगों को नाटकीय मोड़ देने में सिद्धहस्त हैं। इस काव्य में भी ये गुण यथा-स्थान मिलते हैं।

पंचवटी

'पंचवटी' शूर्पणखा-प्रसंग पर आधारित खंडकाव्य है। श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित पंचवटी में निवास कर रहे है। यहाँ 'विजन देश है, निशा शेष है, निशाचरी, माया ठहरी।' अतः जबकि 'भुवन भर सोता है, उस समय भोगी कुसुमायुध योगी सा' एक धनुर्धर जागकर उस कुटीर की रक्षा कर रहा है जिसमें 'तीन लोक की लक्ष्मी' तथा 'वीर-वंश की लाज' सीता आज निवास कर रही है—मन-ही-मन बातें करते इस धीर धनुर्धर—लक्ष्मण—का विचारप्रवाह विगत तेरह वर्ष में हुए घटनाचक्र पर से होता हुआ उस 'बेचारी' उर्मिला पर पहुंच कर पल-भर ठहर जाता है जो हमारे लिए व्यर्थ रोती होगी। एक निमेष नेत्रनिमीलित करके वह भावनिमग्न हो जाते हैं और फिर आँखें खोलते हैं तो अपने सामने एक 'अनुपम रूप, अलौकिक वेश' विद्यमान पाते हैं। 'निःसंकोच खड़ी वह हास्यवदिनी बाला' शूर्पणखा थी,

जिसके दीर्घ दृगों से अत्यन्त अतृप्त वासना झलक रही थी। वह लक्ष्मण से प्रणय-निवेदन करती है। लक्ष्मण का उत्तर है: 'पाप शांत हो, पाप शांत हो, कि मैं विवाहित हूं बाले!' इस पर वह राम से अनुनय करती है कि 'पहनो कांत, तुम्हीं यह मेरी जयमाला सी वरमाला।" इस पर—

प्रभु ने कहा कि तब तो तुम को दोनों ओर पड़े लाले,
मेरी अनुज वधू पहले ही बनी आप तुम हे बाले!

शूर्पणखा का प्रेमाभिनय भयंकर आक्रोश में परिणत हो जाता है। 'वह अति रम्य रूप पल भर में सहसा बना विकट-विकराल।' लक्ष्मण तत्काल एक 'शाणित तीक्ष्ण कृपाण' लेकर उस आक्रमणकारिणी के नाक-कान काट डालते हैं और वह कुरूपा होकर रुधिर बहाती, चिल्लाती वहाँ से भाग निकलती है। कुटिया में फिर आमोद-प्रमोदमय वातावरण व्याप्त हो जाता है।

पत्रावली

'पत्रावली' गुप्तजी की ऐतिहासिक आधार पर लिखी गयी सात पत्र-गीतियों का संग्रह है। इनमें से तीन पत्र—राजसिंह, पृथ्वीराज और औरंगजेब के पत्र 'सरस्वती' पत्रिका में क्रमश: फरवरी, मार्च और अप्रैल १९१२ में, राणाप्रताप का पत्र सरस्वती के नवंबर १९१३ के अंक में और अहल्याबाई का पत्र सरस्वती के मई १९१४ अंक में प्रकाशित हुआ था। शिवाजी, रूपवती और महाराना सीसोदनी के पत्र १९१५-१६ में लिखे गये थे। जब १९१७ में 'पत्रावली' का प्रकाशन हुआ तो राजसिंह का पत्र उसमें संकलित नहीं किया गया। अतः 'पत्रावली' में सात ही पत्र-गीति संग्रहीत हैं।

इन सात पत्रों में चार पुरुषों के तथा तीन महिलाओं के हैं। प्रथम पत्र पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप के निराश और भग्न हृदय में पुन: वीरोत्साह और कर्त्तव्य-भाव जगाने के लिए लिखा है; दूसरे पत्र में राणा प्रताप को अपनी भूल समझ जातीय गौरव और मातृभूमि की रक्षा के लिए आश्वस्त होकर संघर्ष के लिए सन्नद्ध दिखाया गया है; तीसरे पत्र में महाराज शिवाजी जज़िया कर के विरुद्ध औरंगजेब को लिखते हैं; चौथा पत्र मृत्यु के कुछ दिन पूर्व औरंगजेब अपने पुत्र को लिखता है जिसमें वह अपने पाप-कर्मों के लिए अनुतप्त दिखाया गया है; पांचवें पत्र में सिसौदिया रानी अपने पति जोधपुर-नरेश को रणभूमि से पीठ दिखाकर भागने पर अपना शोक, क्षोभ और आक्रोश प्रकट करती दिखायी गयी है; छठे पत्र में मराठा रानी अहल्याबाई पेशवा राघोवा को बताती है कि उसका अभियान अनीतिमूलक है और जिस मंत्री के कहने पर पेशवा आक्रमण करने की सोच रहा है, वह उसे भी धोखा देगा; अंतिम पत्र रूपनगर की राजकुमारी रूपमती का महाराजा राजसिंह के नाम है जिनको उसने मन-ही-मन वरण किया था और जिन्हें वह इस पत्र के माध्यम से आमंत्रित करती है कि वह आयें और कुचक्री औरंगजेब से उसके धर्म और मर्यादा-भाव की रक्षा करें।

यद्यपि इन पत्र-गीतियों की रचना की प्रेरणा गुप्तजी को माइकेल मधुसूदन दत्त के 'व्रजांगना' काव्य को पढ़ते तथा उसका अनुवाद करते समय मिली थी, परंतु चूंकि गुप्तजी मूलतः प्रबंधकार तथा आख्यान-लेखक हैं, अतः इस रचना में गीति-काव्य की विशेषताएं—मानसिक एकतानता, आवेग, भावोत्कटता, स्वानुभूति-निरूपण आदि नहीं हैं। प्रबंधात्मकता, वस्तु-वर्णन पर आग्रह, उपदेश-तत्त्व आदि के कारण वह ऐतिहासिक पत्राख्यान बनकर रह गया है। स्वयं कवि ने भी उसे पद्यात्मक पत्र कहा है। औरंगजेब के पत्र में उसके अनुताप, शोक-व्यंजना और आत्म-निरीक्षण वाले अंश अवश्य गीति-काव्य के अनुरूप हैं, पर ऐसे स्थल विरल हैं। अधिकतर वर्णनात्मकता और इतिवृत्तात्मकता ही हावी है, अत: उसे गीतिकाव्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। अन्य रचनाओं के समान पत्रावली में भी जातीय जीवन के उत्थान की भावना है।

पद्य-प्रबन्ध

पद्य-प्रबंध समय-समय पर विविध विषयों पर लिखी गयी स्फुट कविताओं का संग्रह है जो पहली बार संवत् १९६९ में प्रकाशित हुआ। स्वयं कवि के शब्दों में, "खड़ीबोली में, भिन्न-भिन्न विषयों पर अब तक हिंदी-पत्रों में—मुख्यतया 'सरस्वती' में—मेरे जो पद्य-प्रबंध प्रकाशित हुए हैं, उनका यह संग्रह, अनेक मित्रों की आज्ञानुसार पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाता है।" वक्तव्य से स्पष्ट है कि प्रतिपाद्य की दृष्टि से इन कविताओं में कोई साम्य नहीं है। इस संकलन में रामायण के दो आख्यान हैं—वनवास और मुनि का मोह। प्रथम में चित्रकूट-प्रवास के समय

सीता-राम के संवादों के माध्यम से वनवास के गुण और सरल जीवन का महत्त्व बताया गया है। दूसरे का विषय नारद-मोह प्रसंग है और इसके द्वारा कवि अहंकार भाव की निन्दा करता है। 'भागवत' से चुना गया प्रसंग है—गोवर्द्धन धारण। इसमें इंद्र के कोप से ब्रजवासियों की रक्षा के लिए कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन-धारण की लीला का संक्षिप्त वर्णन है और दृष्टि यहाँ भी नीतिवादी हैं—शक्तिशाली का घमंड चूर होता है। 'न्यायादर्श' और 'बाजीप्रभु देशपांडे' ऐतिहासिक विषयों पर लिखी गयी लघु आख्यानक कविताएं हैं। प्रथम में बुन्देलखंड के राजा वीरसिंह की न्यायप्रियता दिखायी गयी है जो अपने पुत्र को भी कठोर दंड देने में संकोच नहीं करता और दूसरी में स्वामिभक्ति का आदर्श प्रस्तुत करते हुए शिवाजी की प्राण-रक्षा के लिए देशपांडे को युद्ध में वीरगति पाते दिखाया गया है। तीन नीतिवादी आख्यान हैं—शिक्षा, मक्खीचूस तथा निन्नानवें का फेर। प्रथम में अशिक्षा को सब दोषों का मूल बताते हुए पिता के प्रति पुत्र का क्रूर आचरण दिखाया गया है, दूसरे में अपव्यय और लोभ की निन्दा की गई है तथा तीसरे में संचयशीलता और मितव्ययता का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। इन तीनों की शैली निबंधात्मक है। कुछ विनय की कविताएं हैं, जैसे विनय, कारुण्य-भारती, संबोधन आदि जिनमें कवि का आत्म-निवेदन और भारत के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गयी है। यदि मातृभूमि और स्वर्ग सहोदर देशभक्ति की कविताएं हैं, तो आशीष, स्वागत, बधाई और राजभक्ति उपशीर्षकों वाली कविता 'राज्याभिषेक' उनकी राजभक्ति का प्रमाण है। देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित होकर ही उन्होंने 'नागरी लिपि' और 'हिंदी भाषा' तथा 'हिंदी की वर्तमान दशा' जैसी निराख्यानक कविताएं लिखीं और सुकवि-संकीर्तन, सुकवि कीर्तन तथा ग्रंथ-गुणगान जैसी रचनाओं के माध्यम से सद्-साहित्य के उत्थान और देश में राष्ट्रीय एकता लाने का प्रयास किया। 'पंजरबिद्ध कीट' प्रतीक काव्य-रचना है जो देशभक्तों की कारावास-यंत्रणा का संकेत देते हुए कष्टमय स्वतंत्र जीवन को सुख-भोगविलास पूर्ण परतंत्र जीवन से श्रेयस्कर बताते हुए देशवासियों को स्वतंत्र होने का आह्वान देती है। कुछ कविताएं धार्मिक उत्सवों की महिमा बताती हैं तो कुछ में भारत की ऋतुओं विशेषत: ग्रीष्म ऋतु के शुभ और अशुभ पक्षों को प्रस्तुत करते हुए भारत के दीन-हीनों की कष्ट-कथा कही गयी है। कवि ने क्रोध, प्रेम-प्रणय जैसी मनोवृत्तियों पर रचनाएं लिखकर उनके गुण-दोष बताये हैं।

पद्य-प्रबंध की आख्यानक कविताएं और निराख्यानक रचनाएं दोनों कवि की आदर्शवादी जीवन-दृष्टि का परिचय देती हैं। स्पष्ट है कि आरंभ से ही वह नीति और मर्यादा का समर्थन करने वाला कवि है जो प्राचीन आदर्शों और चारित्रिक सद्गुणों की आग्रहपूर्ण रक्षा करना चाहता है।

यह काव्य-संग्रह प्रांजल और मधुर खड़ीबोली में लिखी गयी कविताओं का संग्रह है यद्यपि जहाँ-तहाँ ब्रजभाषा और बुन्देलखंडी के प्रयोग भी मिलते हैं जैसे 'दाबो', 'थाम के', 'लीजो' आदि।

गुप्तजी मूलत: इतिवृत्त और आख्यानक रचनाओं के कवि हैं। पद्य-प्रबंध उनकी प्रारंभिक रचनाओं का संग्रह है, अत: यहाँ उनका आख्यानक कवि का रूप ही अधिक निखरा है। इस संकलन की कविताओं में विषय का वैविध्य है, अत: उनमें प्राय: सभी रस आ गये हैं, पर विशेष रूप से श्रृंगार, रौद्र, करुण और वीर प्रधान हैं। कहीं-कहीं स्थान, पात्रों की मुद्रा और कार्य के चित्र भी आकर्षक बन पड़े हैं। पर काव्य-कला और शिल्प की दृष्टि से ये रचनाएं सामान्य ही कही जाएंगी। उनका महत्त्व केवल आरंभिक खड़ीबोली की रचनाओं के रूप में ही है। जहाँ तक आख्यानक रचनाओं का संबंध है, वे अवश्य कवि की भावी वृहद् प्रबंध-रचनाओं के विकास की ओर संकेत देती हैं।

प्रदक्षिणा

'प्रदक्षिणा' में साकेतकार ने अपने प्रभु की प्रदक्षिणा की है। इसमें सम्पूर्ण राम-कथा सूत्र-रूप में काव्यबद्ध है। चार पुत्रों के रूप में राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को पाकर कृती पिता दशरथ सफल काम हो गये और चारों धामों की यात्रा को अयोध्या में विश्राम मिल गया। यह जानकर कि प्रभु धर्म-हेतु अवतीर्ण हुए हैं, कौशिक ने मख-रक्षा-हेतु दशरथ से श्रीराम को माँग लिया। राम ने राक्षसों की प्रथम शक्ति के रूप में ताड़का का संहार किया। मिथिलाधिपति के निमंत्रण पर राम-लक्ष्मण जनकपुर पधारे। मार्ग में राम ने अहिल्या का उद्धार किया। जनकपुर में आयोजित स्वयंवर में राम ने अपने अद्वितीय बल-वैभव का परिचय दिया। चारों भाइयों का विवाह हुआ। महाराज दशरथ राम को राज्य-भार सौंप देना चाहते हैं किंतु कैकेयी उनसे यह वचन माँग लेती है कि 'भरत भूप हों, रहें राम वन चौदह वर्ष।' दशरथ वचन नहीं टालते,

प्राण त्याग देते हैं, और राम, लक्ष्मण तथा सीता वन के लिए प्रस्थान करते हैं। भरत उन्हें मनाने के लिए चित्रकूट पहुँचते हैं और राम के न लौटने पर उनकी पादुकाएँ अपने साथ ले आते हैं। राम दंडकवन में पहुँचकर धर्म-रक्षा का भार ग्रहण करते हैं, और फिर पंचवटी में रहकर आर्य-संस्कृति का विकास करते हैं। यहीं शूर्पणखा राम-लक्ष्मण से प्रणय-निवेदन करती है और नाक-कान कटा कर अपने भाई रावण के पास पहुँचती है। शूर्पणखा की बातें सुन कर मानी रावण क्षुब्ध हो जाता है और वह वैर-शुद्धि के मिष सीताहरण का निश्चय करता है। मायावी मारीच हेम हरिण बन कर राम को दूर ले जाता है और सीता के आग्रह पर लक्ष्मण राम की सहायता के लिए चले जाते हैं। अवसर पाकर दशानन उस शून्याश्रम से सीता को हर ले जाता है। आश्रम में लौटकर और वहाँ सीता को न पाकर राम-लक्ष्मण सीता के उच्छिन्न कुसुमाभरण के सहारे उनकी खोज में लग जाते हैं। मार्ग में राम जटायु का अंतिम संस्कार करते हैं, कबंधासुर का वध करते हैं और शवरी का आतिथ्य अंगीकार करते हैं। ऋष्यमूक पर्वत पर उनकी भेंट हनूमान तथा सुग्रीव से होती है। यहीं उन्हें पता चलता है कि सीता का हरण रावण ने किया है। राम अपनी मुद्रिका देकर हनूमान को लंका भेजते हैं। हनूमान सीता के पास पहुँचकर उन्हें अपना परिचय, प्रत्यय तथा धैर्य प्रदान करते हैं। रावण के पक्षधरों को परास्त कर हनूमान लंका में आग लगा देते हैं। इसके उपरान्त ऋक्ष-वानर सेना लंका पर चढ़ाई कर देती है। विभीषण रावण को समझाता है कि वह राम के साथ संधि कर ले किन्तु रावण उसे अपमानित करके वहाँ से निकाल देता है। राम वैरी के भाई विभीषण को बंधु-समान ग्रहण करते हैं। राम की सेना रावण के अगणित वीरों का संहार कर देती है। उन सबको काल की भेंट हुआ देखकर क्रुद्ध इन्द्रजीत मानो लंका की सारी शक्ति समेटकर लक्ष्मण पर छोड़ता है जिससे उनका शरीर निश्चेष्ट हो जाता है। संजीवनी उन्हें पुन: नवजीवन तथा नवोत्साह प्रदान कर देती है। दोनों पक्षों के बीच हुए युद्ध में मेघनाद, कुंभकर्ण तथा रावण का वध होता है। लंका का राज्य विभीषण को प्राप्त हो जाता है। राम पुष्पक विमान में बैठ कर विपद्‌बंधु-जन-वृंद समेत व्योम-मार्ग से साकेत लौटते हैं। माताएँ पुत्रों को पुन: प्राप्त कर लेती हैं और 'मिली राम के साथ लोक में सबको मूर्तिमती माया।' अयोध्या का राम-राज्य आदर्श राज्य का पर्याय बन जाता है।

पृथिवीपुत्र

विगत शताब्दियों में मनुष्य ने वैज्ञानिक प्रगति, भौतिक समृद्धि और पार्थिव इष्टसाधन की दृष्टि से असाधारण सफलताएँ प्राप्त की हैं। आज जल-थल-व्योम में उसकी अबाध गति है। मंगलनिवासी बंधुओं से भेंट करके वह आज सारे ग्रह-लोक घूमने के लिए व्यग्र है। वाष्प तथा विद्युत को उसने अपना किंकर बना लिया है और 'सिद्ध सी हुई है महा-शक्ति उस शाक्त को।'

मनुष्य ने अपनी सृजनात्मक शक्ति का तो अद्‌भुत विकास किया ही है अपनी संहारक शक्ति का भी अभूतपूर्व तथा अकल्पित विकास कर लिया है। आज परमाणु तथा नाभिकीय अस्त्र उसके करतलगत हैं जिनमें सैकड़ों ज्वालामुखियों से भी अधिक ज्वाला छिपी है। आज वह युद्ध से ही युद्ध को समाप्त करने के सपने देखने लगा है।

'पृथिवीपुत्र' में इस सपने की भयावहता का सजीव चित्र है और इस मोह-भंग का यह मार्ग सुझाया गया है :

नाश में लगी जो बुद्धि, बिलसे विकास में।

भारत-भारती

सन् १९१२ में प्रणीत भारत-भारती गुप्त जी की पहली काव्य-रचना है जिसने हिंदी जगत् का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। कुर्री सुदौली के राजा रामपालसिंह जी का पत्र था जिसमें गुप्तजी से अनुरोध किया गया था कि वह 'पूर्व दर्शन' जैसी हिंदू-जागरण की कविता लिखें, कवि ने मौलान हाली के 'मुसद्दस' और अल्लामा दत्तात्रय कैफी के 'भारत-दर्पण' को आधारभूमि बनाकर भारत-भारती लिखना आरंभ की।

सात सौ से अधिक छंदों में लिखा यह काव्य-ग्रंथ तीन खंडों में विभाजित है—अतीत खंड, वर्तमान खंड और भविष्यत् खंड। पहले खंड में प्राचीन भारत की सभ्यता, संस्कृति, कला, साहित्य, चारित्रिक उदात्तता आदि का गौरव

गान है। दूसरे खंड में सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक क्षेत्रों में देश के पतन पर क्षोभ और दुःख प्रकट किया गया है तथा तीसरे खंड में उन्नति की कामना करते हुए पुरुषार्थ के मार्ग पर चलने का उद्‌बोधन दिया गया है। जातीय जीवन के नवोत्थान का संदेश सुनाने वाला यह काव्य चरित्रोन्नयन, स्वार्थ-त्याग और उद्योगनिष्ठता पर बल देते हुए आदर्शों में आस्था और ईश्वर में विश्वास रखने का आह्वान करता है। एक ओर वह युग का दर्पण है और दूसरी ओर युग-चेतना को स्पंदित करने वाली रचना है।

उपदेशात्मक काव्य-कृति होने तथा इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा जाने के कारण भारत-भारती काव्यत्व की दृष्टि से रसमग्न करने वाली रचना नहीं है फिर भी १६१२ के लगभग खड़ीबोली कविता का जो स्तर और स्वरूप था, उसे देखते हुए उसे एक विशिष्ट और युगान्तरकारी रचना कहा जायगा। खड़ीबोली को मात्रिक छंदों में ढालने और उसे लयात्मक सौन्दर्य प्रदान करने की दिशा में भारत-भारती का योगदान अविस्मरणीय है। उसका हरिगीतिका छंद इतना लुभावना है कि उसने अनेक कवियों को इसी छंद में लिखने को प्रोत्साहित किया। राष्ट्र की आकांक्षाओं को प्रतिध्वनित करने वाला यह काव्य अपनी विषय-वस्तु, काव्य-कौशल, प्रांजल भाषा और गेयता के कारण शीघ्र ही जनता का कंठहार बन गया।

भूमि भाग

यह रचना सन् १६५३ में प्रकाशित भूदान-संबंधी सामयिक गीतों का संग्रह है। इस गीतिकाव्य में २१ गीत हैं। कवि की मान्यता है कि परमपूज्य बापू के अनन्तर सन्तप्रवर पूज्य विनोबा उसे नया प्रकाश दे रहे हैं। × × × उनके द्वारा अनुष्ठित भूमिदान-यज्ञ ने अहिंसक क्रांति के लिए सारे संसार का ध्यान अपनी ओर खींचा है। यह रचना विनोबाजी के पुण्य कार्य के लिए दी गई कवि की विनम्र श्रद्धा है।

कवि ने प्रथम गीत में 'भूमि वंदन' करते हुए 'भूमिहीन' गीत में भूस्वामियों को आकर्षित किया है और "बलिवंदन" में कवि ने समन्वयात्मिका बुद्धि से राक्षसराज बलि की वंदना की है। "धन्य दनुज बलिहारी! नवबा दिया स्वतनु तक तूने देकर वसुधा सारी।" वह उससे मत्ति, अनुगति और प्रबोधन की याचना करता है। "जगजगती के जाये!" गीत में नर के नारायण अर्थात् विनोबा की प्रार्थना पर भूस्वामियों को जगाने की प्रेरणा दी गई है। 'भूमियज्ञ' गीत में लक्ष्मी की नश्वरता और धरती की अचलता की ओर संकेत कर कवि भूदान की प्रेरणा देता है। इसके बाद के ग्यारह गीत—एक खेत, अनुपम, कवि के प्रति, आह्वान, वंचित, भूमिहीन, भूमि का अधिकार छोड़ेंगे न तृण भी, असंभव, श्रमजीवी, आए देवदूत से बाबा, ऐसे में—भूमिहीन की वेदना के व्यंजक हैं। 'कवि के प्रति गीत' में कवि ने—विवश वृथा हम नर-संख्या की वानर वृद्धि किया करते हैं, कहकर जनसंख्या की वृद्धि की ओर भी संकेत किया है। कवि ने इन गीतों में "वैष्णव जन तो तैणे कहिए जे पीर पराई जाणे जे" का आदर्श प्रस्तुत करते हुए, देश के शोषित, उपेक्षित और दलित भूमिहीनों की दुर्दशा का चित्रण करते हुए उनकी निर्धनता को कम करने तथा उन्हें जमीन का एक टुकड़ा देने की भरपूर वकालत की है। अगले गीत 'चढ़ौती' में एक भूस्वामी की पत्नी विनोबा के भूदान का समर्थन करती है और अकिंचनों के दुःख से पिघलकर यहाँ तक कह देती है—

कौन बचेगा, निरुद्यमों, जब निर्मम विद्रोह जगेगा
किसके ऊपर क्या बीतेगी जाने अन्तर्यामी।

'हृत मातृक', 'अन्न समस्या', 'भू-भ्रष्ट', गीतों में भी भूमिहीनों के दारिद्र्य और अभाव का चित्रण है। 'भू-भ्रष्ट' गीत में एक भूमिहीन अपने बच्चे के पालन-पोषण में अपने को असमर्थ पाकर धनियों से निवेदन करता है—

कितने खग-मृग-कूकर-विड़ाल रखते हो तुम सप्रेम पाल
ये तो फिर भी हैं मनुज-बाल, बन सकते हैं गोपाल लाल
क्या बहुत तुम्हें हैं तनिक प्यार ले लो ये शिशु कोई उदार!

इस गीत में वेदना, व्यंग्य, आक्रोश आदि भावों का कवि ने कुशलतापूर्वक उरेहण किया है। इस लघु रचना का अंतिम गीत उत्तरप्रदेश के प्रति है। इस गीत में कवि विनोबा के उत्तरप्रदेश आगमन पर यहाँ के भूस्वामियों से उन्हें भूदान करने की प्रेरणा देते हुए कहता है—

राम-कृष्ण की पुण्यभूमि तू, भूल न निस्त्रैगुण्य भूमि तू
तेरा प्रहरी हर-गौरी का धवल हिमालय भू धरेश।
उत्तर दे हे उत्तरप्रदेश।

उक्त पंक्तियों में धर्म-समन्वय के साथ-साथ कवि की राष्ट्रीय भावना और अपने जन्म-प्रदेश उत्तरप्रदेश के प्रति ममता भी प्रकट है।

'भूमि भाग' के गीतों में वस्तुनिष्ठता के साथ-साथ आत्माभिव्यंजकता भी द्रष्टव्य है। आदर्शवादी कवि ने इस काव्य में भी पौराणिक संदर्भ, गार्हस्थ्य भावना, समसामयिकता, सामाजिक चेतना, नवीन अर्थ-व्यवस्था आदि की ओर संकेत करते हुए अपनी राष्ट्रीयता एवं प्रगतिशीलता का परिचय दिया है।

मंगल-घट

मंगल-घट मैथिलीशरण गुप्त की भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखी गयी तथा पूर्व काव्य-संग्रहों में प्रकाशित रचनाओं का संकलन है, जो प्रकाशक के अनुसार पाठकों की माँग पर प्रकाशित किया गया। इस संकलन में प्रकाशित कुछ कविताएँ 'पद्य-प्रबंध' (१९१२) में, कुछ 'स्वदेश संगीत' (१९२५) में प्रकाशित हो चुकी थीं तो 'नकली किला' नामक रचना 'रंग में भंग' (१९०९) का अंश है और 'महाराज पृथ्वीराज का पत्र' 'पत्रावली' (१९१६) के सात पत्र-गीतों में से एक है। 'विकट भट' नामक रचना सन् १९२८ में स्वतंत्र पुस्तक रूप से प्रकाशित हो चुकी थी। 'मंगल घट' की कुछ कविताएँ जैसे 'विशाल भारत', 'क्षार पारावार' और 'शब्द के प्रति' उनके निधन के पश्चात् प्रकाशित काव्य-संग्रह 'स्वस्ति और संकेत' में पुन: प्रकाशित की गयी हैं।

मंगल-घट की सर्वाधिक आकर्षक रचनाएँ हैं आख्यानक लघु निबंध। भीष्म-प्रतिज्ञा, द्रौपदी दुकूल, वरदान, उत्तर और बृहन्नला, केशों की कथा, कुन्ती और कर्ण और रण-निमंत्रण महाभारत से चुने गये कथा-प्रसंगों पर आधारित हैं। भारत के मध्यकालीन इतिहास के वीर क्षत्रियों, राजपूतों तथा मराठों की वीरता और उनके शौर्य की गाथा 'विकट भट', नकली किला, बाजीप्रभु देशपांडे, न्यायादर्श और महाराजा पृथ्वीराज का पत्र में गायी गयी हैं। लोकवार्ता पर आधारित आख्यानक गीत हैं—दस्ताने तथा निन्नानवे का फेर। वर्तमान युग के साहस, त्याग, बलिदान, देशप्रेम और कर्त्तव्यनिष्ठा को दिखलाने वाली रचना है—टाइटानिक की सिंधु-समाधि जिसमें बताया गया है कि किस प्रकार अटलांटिक सागर में डूबते हुए जहाज के अंग्रेज वीर मृत्यु-गीत गाते हुए जलमग्न हो गये। 'चंडाल' में वर्ण-व्यवस्था की गुण-कर्म-स्वभाव प्रधान स्थिति प्रकट की गयी है। कवि ने इन रचनाओं के लिए मार्मिक प्रसंग चुने हैं, भावोद्वेलन करने वाली घटनाओं का भावनाशील वर्णन किया है, नाटकीय शैली, दृश्य-योजना एवं संवादों द्वारा रचना को आकर्षक बनाया है। इनकी भाषा-शैली सरल, स्पष्ट तथा धारा-प्रवाह है और भाषा में संगीतात्मकता भी है। घटना-वैचित्र्य द्वारा चमत्कार लाने की कला में भी कवि ने अपनी क्षमता का सफल प्रमाण दिया है। इन रचनाओं के पीछे कवि का उद्देश्य सद्-गुणों की शक्ति बताना, आदर्श-पालन पर बल देना और समाज की बुराइयाँ बताकर पाठकों को उद्बुद्ध करना है।

आख्यानक-निबंधों के अतिरिक्त मंगल-घट में अनेक स्वानुभूति-व्यंजक प्रगीत हैं। कुछ में जैसे नक्षत्र-निपात, कीट, सांत्वना, झंकार में कवि की उस विषण्ण मन:स्थिति के दर्शन होते हैं जिसमें संतान-मृत्यु या परिचितों-संबंधियों के असामयिक निधन पर वह कातर और शोक-विह्वल हो गये थे। संसार, जीवन, मृत्यु, करुणा आदि के संबंध में उनके विचार 'जीवन की जय', 'संसार', 'आंसू' आदि रचनाओं में मिलते हैं। इनसे उनके जीवन-दर्शन पर प्रकाश पड़ता है। कविता और शब्द नामक रचनाओं से कवि का कविता और भाषा-विषयक दृष्टिकोण ज्ञात होता है।

वर्तमान भारत की दुर्दशा पर क्षुब्ध और उसके उद्धार के लिए चिंतित कवि देशवासियों को कर्मण्यता, पुरुषार्थ, परमार्थ, मानव-सेवा, अतीत गौरव की रक्षा का उद्बोधन देता है तो समन्वयवादी दृष्टि के कारण पूर्व और पश्चिम तथा वैदिक और बौद्ध धर्म एवं दार्शनिक सिद्धांतों के समन्वय पर बल देता है। 'स्वर्गीय संगीत' शीर्षक से चार लम्बी रचनाएं इसका निदर्शक हैं। कुछ रचनाओं में भारत के स्वर्णिम अतीत एवं संस्कृति का स्तवन है तो कुछ में जैसे 'याञ्चा' में भगवान से देशोद्धार की प्रार्थना की गयी है।

व्यास-स्तवन, बुद्ध भगवान एवं तुलसीदास कविताओं में भारत के मनीषियों का स्मरण कर उन्हें श्रद्धा-सुमन अर्पित किये गये हैं।

कहीं-कहीं प्रतीक योजना और प्रगीत-कला का परिचय अवश्य मिलता है पर कुल मिलाकर ये कविताएँ स्वानुभूति-परक गीतों से अधिक वर्णनात्मक पद्य-रचनाएँ ही कही जायेंगी। इनकी काव्य-कला आरंभिक, अत: अपरिपक्व है दूसरे, इनमें अतीत का गौरवगान और प्राचीन के प्रति ललक अधिक है, युग-चेतना का संचार कम है।

यशोधरा

बालक गौतम के रूप में भगवान अमिताभ कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोधन के घर अवतरित होते हैं। उन्हें जन्म देकर ही उनकी जननी मायादेवी अपनी जीवनलीला समाप्त कर देती हैं। शुद्धोदन की दूसरी रानी महाप्रजावती बालक का लालन-पालन करती है।

गौतम में बाल्यकाल से ही वीतराग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। शिक्षा प्राप्त करने पर उनकी और भी वृद्धि होती है। पिता पुत्र को संसारी बनाने के लिए उसका विवाह देवदह

की रूप-गुण-शील-सम्पन्न राजकुमारी यशोधरा के साथ कर देते हैं। किन्तु एक वृद्ध को देखकर गौतम के मन में अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं—'हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा ?' 'सूख जायगा मेरा उपवन जो है हरा-भरा ?' और वह निश्चय कर लेते हैं; 'कुछ न किया, यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा।'

गौतम मुक्ति के लिए भव-भुक्ति का परित्याग कर देते हैं। जागरूक गौतम राज-पाट-धन-धरणि-धाम के स्वप्न-जाल से मुक्त होकर त्रिविध-दुःख-विनिवृत्ति-हेतु अपना पुरुषार्थ-सेतु बांधने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। गौतम सिद्धि हेतु चले जाते हैं। यह यशोधरा के लिए गौरव का ही प्रसंग है किन्तु उसे यह बड़ा व्याघात सहन करना पड़ता है कि उसके स्वामी 'चोरी चोरी गये।' महाप्रजावती, शुद्धोदन और समस्त प्रजाजन यही कहते-कलपते रह जाते हैं—

"गये आज सिद्धार्थ हमारे, जो थे इन प्राणों के प्यारे।"

वर्षों की तपस्या और कष्ट-साधना के पश्चात् गौतम अपना प्राप्य पा लेते हैं। सिद्धियाँ उनके पदों पर प्रणत हो जाती हैं। गोपा के स्वामी आनंदाग्रगामी शुद्ध बुद्ध हो जाते हैं। तथागत के तप तथा त्याग सफल हो जाते हैं।

यह शुभ समाचार श्रुति-पथ से यशोधरा तथा पुर-परिवार को प्राप्त हो जाता है। सबके भाग्य जाग जाते हैं। सारी सृष्टि पुलकित हो जाती है। सिद्धार्थ कपिलवस्तु पधारते हैं। यशोधरा के सामने एक ही प्रश्न है—'क्या देकर मैं उनको लूंगी ?' और जब सिद्धार्थ उसके समक्ष स्वयं समुपस्थित होकर यह कहते हैं, 'दानिनि, आया स्वयं द्वार पर यह तव तत्रभवान' तो राहुल-जननी यह कह कर अपने राहुल को उनके चरणों पर चढ़ा देती है, 'आ राहुल, बढ़ बेटा, पूज्य पिता से परंपरा पा तू।'

युद्ध

युद्ध काव्य का प्रकाशन-वर्ष भी जयभारत के समान सन् १९५२ है, बल्कि यह रचना जयभारत का ही अंश है। इसमें लिखा भी है—जयभारत से उद्धृत। तब भी यह एक स्वतंत्र आख्यान है शैली और संवेदना दोनों ही दृष्टियों से। कवि ने जयभारत की भूमिका में कहा भी है—"युद्ध का प्रकरण मैंने और ही प्रकार से लिखा।" इसके मंगलाचरण में ही कवि ने यह संकेत कर दिया है कि वह युद्ध के विरुद्ध है। बार-बार रावण रूपी दुष्प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं, वह बार-बार पराजित भी होती हैं किन्तु संघर्ष के कारण कितना ही विनाश अपने पीछे छोड़ जाती हैं। कितना अच्छा हो कि दुष्प्रवृत्तियाँ उत्पन्न ही न हों अथवा वे भी सत् के साथ मिलकर अपना तमस त्याग दें—

एक बार प्रेम करके तो देख राम से
रच-रच हेम-पुरी होने दे न छार-छार।

कवि ने अपने समय में दो-दो महायुद्ध देखे हैं, हिरोशिमा और नागासाकी को ध्वंस होते देखा, भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध में हुआ विनाश देखा। अतः वह नहीं चाहता महाभारत जैसा युद्ध धरती पर पुनः हो। इसीलिए बलराम कृष्ण से पूछते हैं—

हाय चक्री, क्या हुई तुम्हारी वह मुरली ?
क्या हुआ तुम्हार व्रज ! कालिन्दी कहाँ रही
कैसे दिन थे वे कनू, कैसा यह काल है
गाएँ ही भली न थी क्या स्यंदन के घोड़ों से

आगे उन्होंने यहाँ तक कह दिया है—

सिहर उठा मैं यहाँ सुनकर ही जिसे।
कैसे वह देखा गया तुमसे, सहा गया ?
वीररस भाव रखता हो युद्ध आदि में,
रौद्र भाव मध्य में, भयानक है अंत में,
और परिशिष्ट में तो है वीभत्स ही सदा।

तात्पर्य यह है कि बलराम के द्वारा गुप्त जी ने युद्ध की विभीषिका का एक विस्तृत फलक पर अत्यंत सशक्त और सजीव चित्र चित्रित किया है और कृष्ण ने ठीक उस तरह से जैसे अनिष्ट का दोष भगवान अपने सिर नहीं लेता, कह दिया है—

पाँच गुना पातिव्रत पाला यहाँ जिसने
मेरी उस एक शीलशालिनी बहिन की
घर्षणा का कर्षणा का यह परिणाम है।
कल भी मरेंगे, जो न लेंगे सीख आज से।

अर्थात् युद्ध का कारण नारी का अपमान है, अतएव नारी का सम्मान प्रत्येक समाज के लिए अनिवार्य है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है—

युद्ध की अशोभनता जन यदि जान लें,
तो न होगा व्यर्थ यह इतना अनर्थ भी।

महाभारत के भीष्मपर्व से लगाकर शल्यपर्व तक के महाभारत को गुप्तजी ने अपनी एक कृति 'युद्ध' में ही स्थान दिया है और विस्तार में न जाकर प्रमुख घटनाओं का संकेत भर दिया है। इसी कारण इस ओज-

पूर्ण रचना में अत्यधिक कसाव भी है। कवि ने सूच्य, आत्म-संलाप, संवाद-शैली का आश्रय लेते हुए पंद्रह वर्णों के मुक्तक छंद में इस काव्य की रचना की है। जयभारत जैसे कथा-परक वृहत् काव्य में कवि ने केवल युद्ध के लिए ही इस छंद का प्रयोग किया है। इस दृष्टि से भी इस प्रसंग को एक स्वतंत्र प्रसंग माना जा सकता है। संपूर्ण जयभारत के समान ही कवि ने इस काव्य में भी युधिष्ठिर के चरित्र को एक आदर्श भावभूमि पर चित्रित किया है किंतु साथ ही दुर्योधन को संतापित दिखलाकर निन्द्य पात्र होने के दोष से उसे उबारा ही नहीं है, बल्कि उसके चरित्र को पर्याप्त उत्कर्ष प्रदान किया है। अर्जुन के चरित्र में वीरोचित गरिमा है किंतु भीम आद्यंत प्रतिशोधभाव से पूरित हैं। कृष्ण तो लीलामय, नटवर और सारी कथा के सूत्रधार हैं ही।

'युद्ध' गांधीवादी विचारधारा का एक सफल काव्य है। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने कहा है, "मानव की युद्ध-लिप्सा की निंदा करते हुए कवि ने युद्धसर्ग में जो विचार व्यक्त किये हैं, उन पर गांधीवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव लक्षित होता है।"

रंग में भंग

यह कवि की प्रथम प्रकाशित रचना है जो 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। तदुपरांत सन् १९०९ में वह परिवर्द्धित होकर पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुई। राजपूत इतिहास की एक रोचक घटना को आधार बनाकर लिखी गयी इस रचना का महत्त्व इसलिए और अधिक है कि वह उस समय लिखी गयी जिस समय खड़ीबोली का कोई स्थिर रूप नहीं था। गुप्तजी की इस प्रथम प्रबंध-रचना में बूंदी और चित्तौड़ के संघर्ष की कहानी है जिसके द्वारा कवि ने राजपूतों के गुण-दोषों पर प्रकाश डाला है—एक ओर उनकी वीरता, मान पर मर-मिटने, सती-धर्म और देशभक्ति का गुणगान किया है और दूसरी ओर उनकी संकीर्णता, झूठी शान और चाटुकारिता की निंदा की है। संवत् १३९३ में बूंदी-नरेश हामा जी का स्वर्गवास होने पर वरसिंह गद्दी पर बैठे। उनकी पुत्री का विवाह चित्तौड़ के राजकुमार से तय हुआ। विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। इसी समय चित्तौड़ में भूगर्भ से एक सुंदर स्त्री-मूर्ति निकली। जब मूर्ति दरबार में लायी गयी तो राजकवि बारू जी ने राणा की प्रशंसा में एक पद्य रचकर सुनाया जिसका अर्थ था कि मूर्ति अपनी भावभंगिमा से कह रही है कि राणा जैसा दानी त्रिलोक में नहीं है। उस समय दरबार में बूंदी के कन्यापक्ष के लोग भी उपस्थित थे। उन्होंने बूंदी लौटने पर सारी घटना बूंदी-नरेश को सुनाई।

यथासमय बारात आई और विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। बिदा के समय वरसिंह के भाई लालसिंह ने राजकवि की काव्यशक्ति की प्रशंसा की पर उन्हें चाटुकार कहा। यह आक्षेप राजकवि को चुभ गया और उसने अपना शीश काट डाला। फिर क्या था, दोनों पक्षों के बीच घमासान युद्ध होने लगा। युद्ध में राणा खेतल ने वीरगति पाई। वरसिंह की बेटी पति को मरते देख सती होने की जिद कर बैठी और लाख समझाने-बुझाने पर भी सती हो गयी, रंग में भंग हो गया।

राणा खेतल के बाद चित्तौड़ के राज्य-सिंहासन पर राणा लाखा बैठे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे जब तक बूंदी पर विजय प्राप्त नहीं कर लेंगे। यह प्रतिज्ञा पूरा करना असंभव था, अतः मंत्रियों ने राणा को परामर्श दिया कि वह बूंदी का नकली किला बनवा-कर उसे ध्वस्त करें, अन्न ग्रहण करें और बाद में असली किले पर आक्रमण करें। राणा सहमत हो गए। नकली किला बनाया गया और राणा उसको ध्वस्त करने के लिए आगे बढ़े। उन दिनों चित्तौड़ में हाड़ा लोगों की एक छोटी सेना थी जिसका सेनापति था कुम्भावैरसी। जिस समय राणा नकली किले को तोड़ने जा रहे थे, संयोगवश कुम्भावैरसी शिकार खेलकर लौट रहा था। जब उसने राणा को बूंदी का कृत्रिम किला तोड़ने के लिए तैयार देखा तो उसे वह मातृभूमि का अपमान लगा और वह उस किले की रक्षा करने लगा, उसने राणा को रोका। युद्ध हुआ और उसमें कुम्भा युद्ध करते-करते अपने साथियों के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ।

रत्नावली

गोस्वामी तुलसीदास की धर्मपत्नी बदरिया ग्रामनिवासी श्री दीनबंधु पाठक की कन्या थी। शैशव में उसने माता-पिता और स्वजनों का भरपूर प्रेम प्राप्त किया। माता की इस स्नेह-पुतली ने उन्हीं से कुछ-कुछ अक्षर-बोध पा लिया। इतना ही नहीं—

मिल सकता है यहाँ जिसे जो
सो सब कुछ मुझको मिला।

माता-पिता चाहते थे कि अपनी इस पुत्री के लिए उन्हें एक

ऐसा वर मिल जाए जिसके जीवन में सात्विकता हो। उन्हें ऐसा वर मिल भी जाता है। तत्त्वदर्शी दीनबंधु को यह देख लेने में देर नहीं लगती कि जो बालक (भावी गोस्वामी तुलसीदास) मूर्त अमंगल समझा जाकर अल्पावस्था में ही स्वजनों द्वारा परित्यक्त कर दिया गया, वह वस्तुतः इतना सद्गुणसंपन्न है कि 'चिंतामणि हो पारस भी उसके छुए।' मन के साथ बुद्धि से भी पति की सहगामिनी पत्नी सहज भाव से पति का निश्चय अङ्गीकार कर लेती है और—

तब उनकी इस कन्या ने भी
अनदेखा वर वर लिया।

इस प्रकार बारहवर्षीया रत्ना अपने जीवननाथ को समर्पित हो जाती है। यह सुखमय विवाहित जीवन पंद्रह वर्ष तक निर्विघ्न चलता रहता है। इसके उपरांत दंपति के जीवन में एक ऐसी घटना होती है जो पति की जीवनधारा को एक भिन्न दिशा की ओर प्रवाहित कर देती है।

रत्नावली पति से अनुमति पाकर भाई के घर राखी बाँधने जाती है। वहाँ वह अपेक्षित से अधिक समय ठहर जाती है। नवाह्निक कथा-वाचन के लिए अन्यत्र गया पति ग्यारह दिन के बाद घर लौटने पर यह देखता है कि पत्नी अभी तक घर नहीं लौटी। बेचैन पति अर्धरात्रि में ही पत्नी से मिलने के लिए चल पड़ता है। अकस्मात् तथा असमय में पति को वहाँ देखकर रत्नावली कुछ क्रुद्ध हो जाती है और कहती है—

करते हो जो प्यार हाय ! इस
चार दिनों के चाम को,
जन्म सफल कर कोई उससे
पा सकता है राम को।
धिक् है मुझे और तुमको भी।

यह कहकर रत्नावली 'अनुरक्त पति के उस अपनाते हाथ' को स्वयं झटक देती है और इस प्रकार उसने 'अपने हाथों आप अचानक अपना सब कुछ खो दिया।'

'रत्नावली' इसी घटना के प्रभाव-परिणाम तथा तज्जन्य अंतर्द्वन्द्व की काव्यकथा है।

राजा-प्रजा

इस काव्य को डॉ० कमला कांत पाठक ने निराख्यानक काव्य की संज्ञा दी है। सन् १९५६ में प्रकाशित १६९ पदों के इस काव्य में दो पात्र या वर्ग हैं—राजा और प्रजा। राजा प्रतिनिधित्व करता है भारत के उन राजाओं का जिन्होंने युगों से प्रजा पर शासन किया था किंतु अन्ततोगत्वा वे हैं तो प्रजा ही और प्रजा है जनता और जन-साधारण। स्वतंत्रता के पश्चात् उन्हीं के मतों के द्वारा जन-प्रतिनिधियों का निर्वाचन होता है। इस काव्य में इन दोनों वर्गों के प्रतिनिधि व्याख्यान देते प्रतीत होते हैं। प्रथम व्याख्यान में ७६ पद और दूसरे में ९३ पद हैं। अतः इसे निराख्यानक निबंध काव्य न कह कर 'व्याख्यान-काव्य' की संज्ञा दी जा सकती है जो अपने में एक नया काव्य-रूप है।

इस काव्य का राजा उस समय का राजा है जो जनतंत्र का अंग बनकर जनतंत्र की न्यूनताओं को देख चुका है। वह अपने द्वारा किए गए रासरंग, अत्याचार और मनमानी पर पश्चात्ताप करता है किंतु उसने चाहे अपने मनोविनोद के लिए ही सही, शिल्पकला और संगीत को भी प्रश्रय दिया है। वह कृषकों की दुर्दशा, फूट, पत्रकारों की स्वार्थ-परता, पूंजीपतियों के हथकण्डों, चुनावी हथकण्डों, गुटबंदी, पदलोलुपता, वर्गवाद, अवसरवादिता, पुलिस, न्यायालय, गुप्तचर विभाग और अधिकारीवर्ग में व्याप्त भ्रष्टाचार, शिक्षा-नीति, अयोग्य नेता, दुरभिसंधियों आदि के संबंध में सावधान करता है।

यह तो था राजा अर्थात् राजतंत्र पद्धति का व्याख्यान जिसे राष्ट्र-निर्माण का पूर्वपक्ष भी कहा जा सकता है। इस संवादात्मक पक्ष में विषाद और पश्चात्ताप का स्वर सतत प्रवाहित है। इस रचना का दूसरा व्याख्यान प्रजा द्वारा दिया गया उत्तर है। इसमें राजतंत्र की न्यूनताओं पर दृष्टिपात करते हुए प्रजा के प्रतिनिधि ने राजतंत्र के विसर्जन को हितकर माना है। उसका कथन है कि देश में प्रजातंत्र का गठन प्रयोगात्मक है। प्रजातंत्र में अनेक कमियाँ हो सकती हैं लेकिन वह अंततोगत्वा प्रजा के हित में ही है। प्रजा के व्याख्यान में एक से बीस तक पदों में प्रजा के द्वारा राजा को दिया गया उत्तर है। इसमें कहा गया है कि राजा के समय में बहू-बेटियाँ सुरक्षित नहीं थीं। भूमि पर उसका एकाधिकार था। विदेशियों की दासता करते हुए वह हम पर राज्य करते थे। राज्य-प्राप्ति के लिए वे पिता और भाई का वध करने से भी नहीं डरते थे। उनके ही कारण प्रजा अयोग्य रही है किंतु तब भी वे हमारे अंग हैं। प्रजातंत्र में वे त्यागी होकर राष्ट्रनेता ही नहीं अपितु सत्ता का पद भी पा सकते हैं।

इक्कीसवें पद से छत्तीस पद तक वह परतंत्रता के कारण उत्पन्न कठिनाइयों का वर्णन करते हैं। उसका कथन है कि हमने स्वराज्य अभी पाया नहीं, छुआ-भर है। हमारे सामने अनेक कठिनाइयाँ हैं। पर वे दिन जब नहीं रहे, ये भी न रहेंगे। हममें आत्मविश्वास है। देश में यदि शोषक वर्ग रहा है तो श्रमिक वर्ग भी रहा है। यहाँ गांधी जी के देहावसान के बाद उनका स्थान विनोबा जी ने ले लिया। इसी के साथ प्रजा वामपंथियों और विरोधियों की ओर संकेत करते हुए, आशा करती है कि विरोधियों का विरोध रचनात्मक होगा।

सैंतीसवें पद से सैंतालीसवें पद तक स्वतंत्रता के बाद देश में बनी योजनाओं, जमींदारी-प्रथा के उन्मूलन, सिंचाई-सुविधा, बाँध-निर्माण, खानों का खनन-कार्य, मार्ग, सेतु, कुएँ, बीज-विकास, औषधि-उत्पादन, नये प्रयोग, परीक्षण, अन्वेषण, सामूहिक-श्रमदान, गृह-उद्योग, अम्बर-चरखा, छोटे-बड़े यंत्रों का निर्माण, समाज-कल्याण-कार्य, पाठशालाएँ, पंचायत, शासन का विकेन्द्रीकरण आदि की ओर संकेत किया गया है। अड़तालीसवें पद से उनसठ पद तक प्रजा ने राजा से निवेदन किया है कि आप देश की राज्यसभा के सदस्य बनकर देश-निर्माण में रचनात्मक सहयोग दें, पदलोभी बन प्रजातंत्र के पथ का रोड़ा न बनें। पद साठ से चौरासी तक प्रजा ने जनोद्बोधन करते हुए श्रम के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। पद पिचासी से अन्तिम पद तिरानवें तक प्रजा का प्रवक्ता, विश्व-बंधुत्व, अन्तर्राष्ट्रीयता, पंचशील, निश्शस्त्रीकरण, युद्ध की विभीषिका का वर्णन करते हुए मानव को विश्व-मानव बनने की प्रेरणा देता है।

वैसे तो देश राजा प्रजा की सामूहिक थाती है किंतु राजा के वक्तव्य में जिस तरह की तारतम्यता और ओज के दर्शन होते हैं वह प्रजा के वक्तव्य में बिखर-सा गया है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि प्रजा के विचार एक तो असंगठित हैं दूसरे एक नवीन प्रजातंत्र की प्रजा का कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उसे मात्र विरोधियों से ही नहीं, निर्धनता से भी लड़ना है। नई योजनाएँ बनाकर उनके क्रियान्वयन की ओर भी निहारना है तथा देश की प्रजा में एकता स्थापित करते हुए प्रजातंत्र को सुदृढ़ भी बनाना है।

सम्वादात्मक शैली में लिखे गए इस काव्य में कवि ने मानवतावाद, आदर्शवाद, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर तो संकेत किया ही है साथ ही वह प्रजा और देश की सतत् उन्नति का भी आकांक्षी है। इस काव्य की अन्यतम विशेषता है 'उपदेशहीनता'। कवि ने इस काव्य में अपनी ओर से कोई उपदेश न देकर अपनी राष्ट्रीय चिंता को राजा और प्रजा के व्याख्यान द्वारा प्रस्तुत किया है।

लीला

'लीला' की रचना संभवतः बालकांड की कथा-पूर्ति के उद्देश्य से की गई थी, (निवेदन)। रचना का श्रीगणेश पृथ्वी-देवी के उस गीत के साथ होता है जिसमें वह यह जानकर सुखसंतोष व्यक्त करती हैं कि लीलामय ने पृथ्वी का भार दूर करने के लिए अवधार धारण कर लिया है। दूसरे खंड में राम-लक्ष्मण आदि के बाल्य क्रीड़ा-कौतुकों के निरूपण के साथ-साथ उनके सहज गुणों का निदर्शन है। तीसरे खंड में विश्वामित्र महाराज दशरथ से अनुरोध करते हैं कि वह तपस्वियों के विघ्ननिवारण के लिए राम-लक्ष्मण को उनके साथ भेज दें। यहीं पिता दशरथ के ममतापूर्ण वात्सल्य का चित्रण है। विवश पिता यह कहकर अपने पुत्र विश्वामित्र को सौंप देते हैं—

> लीजे, अब से पिता आप हैं, ये दो सुत हैं।

'लीला' के चौथे खंड में कौशल्या और सुमित्रा के वार्तालाप द्वारा कवि ने कौशल्या के मातृरूप और सुमित्रा के लोकोपकारी क्षत्राणी रूप का प्रकाशन किया है और पाँचवें खंड में कराल और अराल नामक दो राक्षसों के वार्तालाप के माध्यम से कवि ने स्वदेशस्तवन किया है। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण तपोभूमि पर पहुँच कर ताड़का-वध करते हैं।

छठे खंड में कवि पुनः अयोध्या के राजभवन में लौट आता है। भरत, शत्रुघ्न आदि को वीर नामक दूत से यह जान कर प्रसन्नता होती है कि राम और लक्ष्मण जनकपुर जा रहे हैं। सातवें खंड में हम जनकपुर के राजोद्यान में जा पहुँचते हैं जहाँ उर्मिला अपनी सखी सुलक्षणा के साथ झूला झूल रही है। सुमन-संचय करती सीता भी अपनी सखी सुगंधिका के साथ वहाँ आ जाती हैं। यहीं राम और लक्ष्मण प्रथम बार क्रमशः सीता तथा उर्मिला को देखते हैं और वे परस्पर अनुराग के अटूट बंधन में बँध जाते हैं।

आठवें खंड में दो राजाओं की वार्ता के बहाने जनक द्वारा की गई प्रतिज्ञा की गुरुता-गंभीरता का आख्यान है, जिसका विशद काव्यचित्र नौवें खंड में प्राप्त है। महाराज जनक यह सोच कर चिन्तित हैं, 'हुआ विश्व क्या वीर्य-विहीन ?' यहीं

कवि ने लक्ष्मण के ओजस्वी व्यक्तित्व द्वारा वातावरण में एक विशेष गरिमा का सन्निवेश कर दिया है। विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राम शिवधनु भंग कर देते हैं, सर्वत्र हर्षोल्लास छा जाता है।

यहीं परशुराम का प्रवेश वातावरण में अकल्पित परिवर्तन ले आता है। परशुराम के साथ हुई वार्ता में लक्ष्मण शौर्य, चापल्य और प्रखर प्रगल्भता का परिचय देते हैं। राम अपनी सशक्त विनयशीलता से परशुराम पर विजय पाते हैं। जनकनंदिनी राम के गले में जयमाला डाल देती हैं और इस प्रकार साधन का सिद्धि से, स्वर्ग का धरा से और पुरुष का प्रकृति से मिलन हो जाता है।

वक-संहार

महाभारत के प्रसंग पर आधारित 'वक-संहार' काव्य का प्रकाशन वर्ष १९२७ है। इस काव्य की कथा कवि ने सर्गों में विभाजित न कर १०५ पदों में कही है। पद १ से ३ तक मंगलाचरण और भारत देश की महिमा का वर्णन है। पद ४ से ७ तक विप्र-गृह की सज्जा और पवित्रता का चित्रण है। पद ८ से १२ तक ब्राह्मण द्वारा पांडवों के अतिथि-सत्कार को व्यक्त किया गया है। पद १३ से ४४ तक वक राक्षस के यहाँ सामग्री ले जाने, ब्राह्मण के आत्मत्याग, ब्राह्मणी तथा कन्या के विलाप आदि का चित्र है। पैंतालीसवें पद में ब्राह्मण-पुत्र की तोतली वाणी मुखरित है। पद ४६ से ७० तक ब्राह्मण-विलाप से कुंती के द्रवित हो जाने, वक-कथा, राजा, देश और प्रजा की दशा के प्रति कुंती के रोष, ब्राह्मण के आदर्श आत्मत्याग भाव की अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रसंग में कुंती अपने पाँचों पुत्रों में से एक को वक के पास भेजने का आश्वासन देती हुई ब्राह्मण को आश्वस्त करती है। पद ७१ से ८८ तक कुंती के मनोभावों का चित्रण है तथा पद ८९ से ९८ तक में युधिष्ठिर, सहदेव, अर्जुन, भीम तथा कुंती के हार्दिक भावों की अभिव्यक्ति है। पद ९९ से १०५ तक कुंती के वात्सल्य, आशीर्वाद और भीम के उत्साह और वीरत्व भाव का व्याख्यान है।

जिस युग में इस काव्य की रचना हुई थी उसके राष्ट्रीय जीवन का स्वर, तप, त्याग और महत् आदर्शों से समन्वित तो था किंतु देश की अवस्था असहाय थी। राजा भीरु और दुर्बल-मना था। प्रजा बलि की अजा, भीरु ही नहीं असंगठित भी थी। इसीलिए ब्रिटिश शासन के नुमाइन्दे भारतीय प्रजा पर अत्याचार करते थे। इस तरह से वक-संहार एक काव्य-रूपक का भी आभास देता है। रूपक को इस तरह से व्यक्त किया जा सकता है—ब्राह्मण, उसका परिवार तथा नगर निवासी प्रजा हैं, छोटे-छोटे देशी रजवाड़ों के राजा—एकचक्रानगरी का राजा है, इंग्लैंड का शासक और उसके प्रतिनिधि—वक राक्षस हैं, कुंती—देश की नेतृत्व प्रदाता है (इसे गांधी जी की अंतरात्मा या उनका आदर्श भी स्वीकार किया जा सकता है।) तथा पांडव क्रांतिकारी अथवा गरम दल के सदस्य हैं और भीम उनका नेता। संभवतः इसी युगीन चेतना की अभिव्यक्ति के लिए गुप्त जी को महाभारत का वक-संहार प्रसंग उपयुक्त लगा होगा। इसी संदर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि कवि ने वक-वध को अध्याहार में रखा है। इसका एक मात्र कारण गांधी जी का अहिंसक युद्ध ही प्रतीत होता है। इस काव्य का अंगीरस करुण है किंतु उत्साह, वात्सल्य, प्रेम आदि भावों की सुंदर व्यंजना भी इस काव्य में हुई है।

महाभारत के आदि पर्व में यह कथा इस प्रकार है—भगवान वेदव्यास के आदेश पर कुंती सहित पांडव एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण के यहाँ निवास करते हैं। ब्राह्मण के परिवार के सदस्य हैं—स्वयं ब्राह्मण, उसकी पत्नी, कन्या तथा अल्पायु पुत्र। इस नगर का राजा वेत्रकीभगृह में निवास करता है, वह प्रजापीड़क और अन्यायी है। इसी नगर के निकट वक नामक एक राक्षस रहता है। उसके भोजनार्थ प्रतिदिन नगर से एक गाड़ी अन्न तथा दो भैंसे भेजे जाते हैं। इतना ही नहीं वह खाद्य सामग्री लानेवाले व्यक्ति का भी भक्षण कर जाता है। एक दिन उस ब्राह्मण परिवार में रोना-पीटना प्रारंभ हो जाता है। इस कोहराम का कारण था कि अगले दिन वक राक्षस के लिए खाद्य पदार्थ ले जाने की बारी उस ब्राह्मण की थी। ब्राह्मण कर्त्तव्य-पालन और वक के साथ हुए समझौते के कारण वक के पास जाने को उद्यत है किंतु ब्राह्मण-पत्नी अपने पति के बदले में इसलिए जाना चाहती है कि पति के लिए मरना स्त्री का धर्म है, पतिविहीना के लिए समाज में कोई स्थान नहीं है और उसके मरने से कुल की आपदा दूर होगी आदि-आदि। ब्राह्मण पुत्री भी अपने पिता के बदले में वक के पास जाना चाहती है क्योंकि कन्या पराया धन है, और तो और छोटा ब्राह्मण-पुत्र तो वक-वध के लिए ही उद्यत है।

कुंती ब्राह्मण-परिवार के इस विलाप को सुनकर द्रवित

हो जाती है। उसके मन में परोपकार और कृतज्ञता के भाव उत्पन्न होते हैं। अतः वह उसे आश्वस्त करती है और उसके बदले में भीम को वक के पास भेजने का प्रस्ताव रखती है। ब्राह्मण इस प्रस्ताव को काफी आनाकानी के बाद मान लेता है और भीम वक राक्षस के पास जाकर उसका वध कर देते हैं।

महाभारत और वक-संहार की कथावस्तु लगभग समान ही है। जहाँ महाभारत में कुंती भीम को वक के पास भेजने का आदेश देती है वहाँ वक-संहार में कुंती ब्राह्मण को दिए गए आश्वासन को अपने पुत्र के सामने रखती है। पांडव उसके मातृ-हृदय की परीक्षा लेते हैं और अंत में भीम अपने आपको वक के पास भेजे जाने का प्रस्ताव रखते हैं। दोनों ही कथाओं में नारी और ब्राह्मण के आदर्श, तेज, त्याग, अतिथि और आतिथेय कर्त्तव्य, करुणा, दया, औदार्य आदि आदर्श भावों की व्यंजना हुई है किंतु वक-संहार काव्य में कुंती के आदर्शों का व्याख्यान ही कवि का अभिप्रेत है। वक-संहार की कथा का उद्देश्य मात्र आदर्श उपस्थापन नहीं है। कवि इस कथा के माध्यम से कुछ और ही व्यंजित करना चाहता है—

१. आधुनिक युग में अतिथि और आतिथेय धर्म नष्ट हो गया है। अतिथि भिक्षुक अज्ञ और अपात्र है। भिक्षा व्यवसाय बन गया है। देश से धर्म भाव अर्थात कर्त्तव्य भावना समाप्त हो गई है।

२. नारी अबला और सुकुमारी होने के कारण सदा रक्षणीया है किंतु यह आदर्श सबको स्वीकार्य नहीं है।

३. नारी समर्थ भी है, वह संसार में बहुत कुछ कर सकती है क्योंकि उसमें करुणा, ममता, सेवा और क्षमता है।

४. कुंती का चरित्र राष्ट्रीय भाव व कर्त्तव्य भावना का आदर्श है। उसके अनुसार—"हा देश यह असहाय है, मरता न करता हाय है।" उसे इस बात का क्षोभ है कि राजा न तो अपना कर्त्तव्य करता है न ही प्रजा का पालन करता है। यदि वह भीरु और दुर्बलमना है तो वह राजा हो क्यों बना था? अपटु और असमर्थ राजा ही प्रजा के अहित और उत्पात का कारण होता है। उसका कर्त्तव्य है कि या तो वह वक से लड़े या राज्य छोड़ दे। वह लोक प्रतिनिधि है, यदि वह प्रजा-पालक नहीं है तो त्याज्य है। न्याय के लिए प्रजा को उससे लड़ना चाहिए, उसे कर नहीं देना चाहिए। वास्तव में तो राज्य की स्वामिनी प्रजा ही है, इसलिए उसे चाहिए कि वह दूसरा राजा चुने।

५. कुंती को प्रजा पर भी रोष है, उसकी दुर्दशा पर दुःख भी है क्योंकि वह जानती है कि वह बलि की अजा, भीरु, असंगठित होने के कारण कष्ट में है, अन्यथा—

डालें नहीं तो यदि अभी भर धूल मुट्ठी भर सभी
तो धूल में मिल जाए वक सो स्पष्ट है।

६. गुप्त जी की कुंती शक्ति-संग्रह में विश्वास रखती है क्योंकि—निर्बल जनों का विश्व में कोई नहीं।

वन वैभव

महाभारत के वनपर्व के एक प्रसंग पर आधारित वन वैभव का प्रकाशन सन् १९२७ में हुआ। कवि ने इसकी कथा को पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो खंडों में विभाजित किया है। पूर्वार्द्ध में तिरपन तथा उत्तरार्द्ध में बावन छंद हैं। प्रथम छंद के मंगलाचरण में कवि ने रामायण में वर्णित सीता-हरण प्रसंग की ओर संकेत करते हुए सीता को जानकी रूपी आगार कहा है। यह मंगलाचरण स्तुत्यात्मक न होकर कथा के फल का निर्देश दे रहा है। पूर्वार्द्ध के २ से ५ पद में शकुनि दुर्योधन को वन में जाकर पांडवों की दुर्दशा देखकर आनंद लेने का परामर्श देता है। पद ६ से १० तक में दुर्योधन पिता धृतराष्ट्र को सूचना देता है कि इस वन में जहाँ हमारी गाएं हैं, सिंह के उत्पात की सूचना मिली है, अतः गौरक्षका के लिए घोष-यात्रा करने की अनुमति दें। धृतराष्ट्र इन्हें अनुमति तो दे देते हैं किंतु पांडवों से सावधान रहने की चेतावनी भी देते हैं। पद १० से १३ में कौरवों की घोषयात्रा के उत्साह का तथा पद १४-२७ तक पांडवों के तपस्यारत जीवन, द्रौपदी के औदास्य, सेवा, प्रतिशोध भाव, पांडवों की उन्नति और यज्ञरत युधिष्ठिर का चित्रण है। पद २८ में वनचारियों द्वारा वन में दुर्योधन के आगमन का समाचार है। पद २९ से ३३ तक वन में दुर्योधन के आगमन से पांडवों तथा द्रौपदी के मन की प्रतिक्रियाओं का चित्रण है। पद ३८ से ५३ तक में युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के उपकारों का स्मरण करते हुए दुर्योधन को भाई कहकर क्षमा का पात्र मानते हैं किंतु अधिकारों के लिए नहीं, धर्म के लिए कौरवों के साथ युद्ध की कामना करते हैं। वे शिशुपाल और कृष्ण के प्रसंग को लेकर द्रौपदी और पांडवों को सान्त्वना देते हैं। इसके पश्चात अर्जुन और भीम के मनोभावों का चित्रण है।

वन वैभव (उत्तरार्द्ध) के पद १ से ५ तक में कौरवों तथा गन्धर्वों के वन एवं सरोवर विहार का संकेत है; पद ६-१० में गन्धर्वों द्वारा कौरवों को रोकने, गन्धर्वराज चित्ररथ

को कौरवों के उत्पात की सूचना देने तथा चित्ररथ के दुर्योधन के पास जाने की सूचना है। पद ११ से २० में दुर्योधन के दम्भ, अन्याय और स्वार्थ का व्याख्यान चित्ररथ द्वारा किया गया है। दोनों के युद्ध, सम्मोहन-अस्त्र द्वारा दुर्योधन को बंदी बनाने तथा कौरव पक्ष की स्त्रियों के रोदन की अभिव्यक्ति है। पद २१-२८ तक आगे होनेवाली घटना के लिए पांडवों को मानसिक रूप से तत्पर रहने के लिए कवि ने एक पृष्ठभूमि की नियोजना की है। इन पदों में युधिष्ठिर धैर्य को ही धर्म-परीक्षा बताते हैं। धर्म पर दृढ़ रहना, धर्म के लिए दुःख सहना, लोभ पर विजय, धर्म की शक्ति की चर्चा करते हुए वह सुयोधन के प्रति सदय रहने की बात कहते है। पद २९ तथा ३० में गन्धर्वों द्वारा दुर्योधन को बाँधे जाने की सूचना है। पद ३१ से ४० तक दुर्योधन की पराजय पर भीम के उद्‌गारों, युधिष्ठिर द्वारा शरणागत की रक्षा का प्रस्ताव, तथा अपने भाइयों से दुर्योधन की रक्षा के निमित्त जाने का निर्देश है। अर्जुन आदेश को शिरोधार्य करते हुए अकेले ही चित्ररथ से लड़ने की बात कहते हैं तथा द्रौपदी से केश बाँधने का निवेदन करते हैं। बेचारी द्रौपदी शोकाश्रु पीकर रह जाती है। इस संदर्भ में युधिष्ठिर का कथन है—

> कौरवों ने जो अत्याचार किए हैं हम पर बारंबार
> करेंगे उनका हमीं विचार नहीं औरों पर इसका भार
> क्रूर कौरव अन्यायी हैं हमारे फिर भी भाई हैं।
> जहाँ तक है आपस की आँच वहाँ तक वे सौ हैं हम पाँच
> किंतु यदि करें दूसरे जांच गिनें तो हमें एक सौ पाँच।

पद ४१-५० तक अर्जुन और चित्ररथ की मैत्री और युद्ध का चित्रण है। अन्त में चित्ररथ अर्जुन के धर्माचरण की प्रशंसा करता है। पद ५१ तथा ५२ में चित्ररथ से कौरवों की मुक्ति, दुर्योधन के मुख पर छाए दैन्य-भाव और युधिष्ठिर के भ्रातृ-प्रेम का अंकन है।

गुप्तजी का काव्य कला कला के लिए सिद्धान्त का पालन न करते हुए सोद्देश्य है। उसमें युगीन सत्यों का संकेत मिलता है। जिस युग में इस काव्य की रचना हुई है वह युग सांप्रदायिक विद्वेष का युग था। २६ दिसम्बर १९२४ को हुए एकता „सम्मेलन में सांप्रदायिक मतभेदों को सुलझाने के लिए राष्ट्रीय पंचायत बोर्ड की नियुक्ति का प्रस्ताव किया गया था। कांग्रेस-अधिवेशन में हिंदू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया गया था। सन् १९२६ में कई स्थानों पर सांप्रदायिक दंगे हुए थे। दिल्ली में एक मुसलमान नवयुवक ने स्वामी श्रद्धानंद की हत्या कर दी थी। इस युगीन सत्य के उद्‌घाटन हेतु ही कवि ने महाभारत से इस प्रसंग का निर्वाचन किया था। महाभारत का यह प्रसंग बंधुविद्वेष एवं युधिष्ठिर तथा पांडवों के औदार्य को ही प्रकट करता है।

महाभारत के वन पर्व के अनुसार कौरवों के गौओं के गोष्ठ द्वैतवन में ठहरे हुए थे। उनको देखने के बहाने कर्ण और शकुनि ने धृतराष्ट्र की स्वीकृति प्राप्त की थी, वन वैभव में सिंह का भय दिखलाया गया है। महाभारत में द्वैतवन के सरोवर-द्वार पर ही गन्धर्वों ने कौरवों के मुखिया को रोक दिया तब दुर्योधन ने गन्धर्वों से युद्ध करने के लिए सेना को भेजा था। गन्धर्वों द्वारा सेना को भगा दिए जाने पर दुर्योधन के आदेश से उसके भाई और अनेक योद्धा गंधर्वों से लड़ने गए थे। इस पर गन्धर्वों ने चित्रसेन को कौरवों के बारे में बतलाया तब चित्रसेन की आज्ञा से और उसके मायास्त्र से दुर्योधन, दुःशासन, विनु, अनुविंद आदि को भी पकड़ लिया। वन वैभव में चित्ररथ और दुर्योधन के वार्तालाप के बाद युद्ध होता है। इस कृति में गंधर्व कौरव पक्ष की स्त्रियों को नहीं बाँधते। वन वैभव में कवि ने पांडव द्वारा कौरवों की सहायता करने.से पूर्व एक पृष्ठभूमि की नियोजना की है जिससे पांडवों में सहायता करने की मानसिकता तैयार हो सकी है। महाभारत में गन्धर्वों तथा चित्ररथ से चारों पांडवों ने युद्ध किया है और अर्जुन के शब्दबेधी बाणों से घायल होकर ही वह अर्जुन के सामने आया है। महाभारत में दुर्योधन आदि के दुष्ट अभिप्राय के बारे में चित्ररथ ने ही पांडवों को बतलाता है। वह स्वयं भी युधिष्ठिर के पास जाकर कौरवों के बुरे अभिप्राय के विषय में धर्मराज को बतलाता है। धर्मराज गंधर्वों की प्रशंसा करते हुए कौरवों को छुड़वा देते हैं। वन वैभव में अर्जुन अकेले ही चित्ररथ से मैत्रीयुद्ध अथवा धर्मयुद्ध करता है और कौरवों को मुक्त कराकर धर्मराज के पास लाता है। तात्पर्य यह है कि गुप्तजी का उद्देश्य युद्ध और अहिंसा के विषय में कहकर केवल शिक्षा देना है। इसीलिए वे अनावश्यक प्रसंग-विस्तार से बचे हैं। दूसरे गुप्तजी का उद्देश्य मानव के सद्‌गुणों का चित्रण रहा है। इसीलिए वन वैभव काव्य में शक्ति और संगठन के साथ-साथ नैतिक आदर्श यथा धैर्य, वीरत्व, धार्मिकता, कर्त्तव्य-भावना, शरणागत की रक्षा, सदाचरण, शील, अडिग आस्था आदि की भी अभिव्यक्ति हुई है। 'जैसा करोगे वैसा भरोगे' संदेश के साथ इस काव्य में उपदेश-कथन का बाहुल्य है।

वस्तु-चित्रण में कवि ने दुर्योधन के वैभव प्रदर्शन तथा आश्रम के पवित्र जीवन को रेखांकित किया है। इस काव्य का नायक तो युधिष्ठिर है और प्रतिनायक के रूप में दुर्योधन

तथा चित्ररथ दोनों को लिया जा सकता है। पात्रों में महाभारत के लगभग सभी मुख्य पात्र इस कथा में आए हैं, किंतु इस काव्य के प्रमुख पात्रों में युधिष्ठिर, दुर्योधन, चित्ररथ, द्रौपदी, भीम, अर्जुन, शकुनि, कर्ण और धृतराष्ट्र का ही उल्लेख किया जा सकता है। यह वीर रस का काव्य न होकर आद्यन्त करुण भाव से पूरित है। युधिष्ठिर के आदर्श, शील, सात्विक भाव और उपदेशात्मकता के चित्रण के कारण इस काव्य का अंगी रस शांत माना जा सकता है।

विकट भट

जोधपुर-नरेश विजयसिंह ने एक दिन सहसा पोकरण वाले सरदार देवीसिंह से प्रश्न किया, "कोई यदि रूठ जाय मुझसे तो क्या करे?" देवीसिंह ने उत्तर दिया कि कोई व्यक्ति ऐसा कभी कर ही नहीं सकता, फिर भी यदि कोई ऐसा कर ही बैठेगा तो वह 'जीवन से हाथ धोवे और मरे मुझसे।' नरेश ने पूछा कि 'यदि तुम रूठ जाओ तो बताओ, क्या करोगे?' देवीसिंह बार-बार यही कहते रहे कि ऐसा कदापि संभव नहीं है, किंतु बार-बार यही प्रश्न किए जाने से वह क्रुद्ध होकर बोले, "पृथ्वीनाथ, यदि मैं रूठ जाऊँ तो जोधपुर की तो बात ही क्या (क्योंकि वह तो मेरी कटारी की पर्तली में ही रहता है) मैं नवकोटी मारवाड़ को उलट दूँ।"

दूसरे दिन देवीसिंह दरबार में जाने के लिए सिंहपौर पार करके जब पीनस से उतरे तो 'एक जन पीछे से उठा के खंग उनका भाग गया।' देवीसिंह अविलम्ब यह जाने गये कि विजयसिंह के इशारे पर उन्हें इस प्रकार अपमानित किया गया है। महाराज ने आज्ञा दी कि देवीसिंह को जीवित बंदी बना लिया जाय। देवीसिंह को फंदों में फँसा कर एक खंभे से बाँध दिया जाता है। किंतु वह बली एक झटके में ही बंधन तोड़ डालता है—यह दूसरी बात है कि इसी प्रयत्न में उसका मस्तक खंभे से जा टकराता है और उसका जीवन-दिनेश अस्त हो जाता है।

विजयसिंह देवीसिंह के पुत्र सबलसिंह पर आक्रमण करता है और उस रण में सबलसिंह सहित अनेक योद्धा वीरगति प्राप्त करते हैं।

देवीसिंह का पौत्र और सबलसिंह का बारहवर्षीय पुत्र सवाईसिंह अपने पितामह तथा पिता के प्रति किये गये उस अनुचित व्यवहार का उचित बदला लेने के लिए जोधपुर जाने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। सवाईसिंह की माँ जानती है कि वह जीवित जोधपुर से नहीं लौट सकेगा तथापि वह उसे यही मंत्र देकर विदा करती है, "कहना वही जो कहा तेरे पितामह ने।"

उधर, जोधपुर-नरेश पोकरण को जीत लेने के पश्चात् एक दिन आहुए के सरदार जैतसिंह से पूछते हैं कि क्या कोई ऐसा ठौर है जहाँ वह डंका बजा कर चढ़ाई कर सकें? जैतसिंह विनयपूर्वक यही उत्तर देते हैं कि ऐसा कोई स्थान नहीं है जिस पर महाराज को सहज अधिकार सुलभ न हो (नरेश के बार-बार वही प्रश्न करने पर जैतसिंह भृकुटियाँ तरेर कर कहते हैं कि उदयपुर तथा जयपुर जैसे स्थानों की बात तो दूर, जहाँ जाने पर विजयसिंह के दाँत खट्टे हो जाएंगे) वह यदि आहुए पर भी आक्रमण करें तो उन्हें मुंह की खानी पड़ सकती है। विजयसिंह आहुए पर आक्रमण करते हैं परंतु उसे जीत नहीं पाते। वह जैतसिंह से यह कहला भेजते हैं, "वह उन्हें दुर्ग में आने दे, रोके नहीं।" ठाकुर जैतसिंह यह स्वीकार कर लेते हैं और वह मित्र के रूप में विजयसिंह के साथ जोधपुर लौटते हैं। यहाँ जैतसिंह "मारे गये सोते हुए महल में रात को।" सबने यही कहा "राजा, बुरा काम किया।"

बालक सवाईसिंह को विजयसिंह के सामने लाया जाता है। विजयसिंह उससे प्रश्न करता है—"बालक, जिस कटारी की पर्तली में जोधपुर रहता था वह अब भी तुम्हारे पास है या नहीं?" सवाईसिंह निःशंक होकर उत्तर देता है कि पितामह तथा पिता की वह धरोहर उसके पास यथावत् सुरक्षित है। बालक का यह वंशोचित उत्तर जोधपुर-नरेश को पराभूत कर देता है। वह उस विकट भट को छाती से लगा लेते हैं।

विजय पर्व

इस रचना को निराख्यानक लघु निबंध भी कह सकते हैं और संबोधन गीत या उद्बोधन गीत भी। यह चौंतीस पदों का पद्य-निबंध सन् १९६३ में प्रकाशित हुआ था। राष्ट्रकवि की यह अन्तिम रचना है जो चीन के आक्रमण पर संसद में सुनाई गई थी। इस रचना के प्रथम छंद में कवि ऋषि दधीचि से गांधी जी तक मिली शिक्षा की परीक्षा करने की

प्रेरणा दे रहा है—

ऋषि दधीचि से गांधी जी तक मिली हमें जो शिक्षा है
बंधुजनों ! प्रस्तुत हो, उसकी फिर आ गई परीक्षा है ॥

इस रचना में कवि ने दधीचि की अस्थियों से वज्र निर्माण कर राक्षसों के विनाश की ओर तो संकेत किया ही है साथ ही वह गांधीजी की उस अहिंसा का भी पक्षधर है जो कायरों की अहिंसा न होकर वीरों की अहिंसा है। जैसा कि गांधी जी ने स्वयं कहा था कि यदि मुझसे कायरता और हिंसा में किसी एक वस्तु के चुनाव के लिए कहा जाए तो मैं निश्चित रूप से हिंसा को चुनूँगा।

इस रचना के प्राथमिक छंदों में कवि का कथन है जब हम सबका पंचशील-सम्मत सहयोग चाहते थे, निर्माण निरत थे, अणुबम न बनाकर दूसरों की भी शांति और समृद्धि के पक्षधर थे, उसी समय उस देश ने जिसे हमने धर्म की शिक्षा दी थी और हमने ही शुद्ध भाव से राष्ट्र-संघ में जिस देश का पक्ष लिया था, उसी देश चीन ने नयी भौतिकता में चूर होकर हम पर आक्रमण किया है, अतः उस मदांध भूले-भटके को ठिकाने लगाने के लिए उठो ही नहीं बल्कि—

ठोकर मार चितादो उनको देख रहे हैं जो सपने
भूले नहीं प्रताप, शिवाजी गुरु गोविंद हमें अपने।

कवि ने चीन को कौरव, टिड्डी दल, पागल पशु बताने के साथ-साथ यह कहा है कि पुरखों की खाई हुई अफीम की पीनक के कारण ही वह विचारशून्य हो गया है। इसलिए उसका सामना करने हेतु कृष्णा, गोदावरी, पंचनद, गंगा और यमुना उमड़ पड़ी हैं। साथ ही कवि आस्तीन के सांपों से भी सावधान रहने का संकेत करता है —

घर के सांप पंचमांगी हैं बाहर के रिपु से भी घोर
आपस के मतभेद भुलाकर सजग रहें सब दोनों ओर

आक्रांता का मुकाबला करने के लिए वह हिंदू, जैन, बौद्ध, सिख, मुसलमान, ईसाई सभी का आह्वान करता है। साथ ही उसे देश के सैनिकों पर भी गर्व है—

बढ़ते हुए हमारे सैनिक पिछड़ा हमें न पावेंगे
जो स्वदेश पर बलि जाते हैं हम उन पर बलि जावेंगे।

वह देश-रक्षा के लिए बलिदान का पक्षधर है।

बलि देकर ही बल लेंगे हम भीम भामिनी भीमा से
जो पर है वे रहें परे ही हटें हमारी सीमा से।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि विजय पर्व नामक यह रचना ओजपूर्ण उद्बोधन शैली में लिखा एक संबोधन गीत है जिसमें कवि ने एक ओर पौराणिक संदर्भों की ओर संकेत किया है तो दूसरी ओर पंचशील, राष्ट्रसंघ, अणुबम की ओर संकेत कर अपनी उस राष्ट्रीयता का भी परिचय दिया है जो देश-चिंताहित सतत् उद्बुद्ध है।

विश्व-वेदना

'विश्व-वेदना' का आरम्भ यूरोप का पहला युद्ध समाप्त होने पर हुआ था और यह रचना पूरी हुई 'वर्तमान युद्ध के प्रभाव की प्रेरणा से ही।' इस प्रकार 'विश्व-वेदना' एक समय-विशेष की रचना है और 'लेखक चाहता है, वह सामयिक ही रहे।'

'विश्व-वेदना' में जिस समय का निरूपण है उसकी कुछ विशिष्टताएँ हैं : इस समय के प्राणी भरपूर आगे बढ़ आये हैं। गति-गृह बने विमान गगन में, दुर्ग-सदृश जलयान जलधि में गतिशील हैं और मनुष्य भूमि पर लोह-पथ पर प्रस्थान कर रहा है। यह प्रगति अपने आप में महत्त्वहीन नहीं है। किंतु यहीं कवि ने एक मार्मिक प्रश्न उपस्थित किया है कि इससे भ्रमण का संवर्द्धन हुआ है या भ्रांति का ? इस प्रगति में यति का नाम ही नहीं है। इसीलिए मनुष्य को धन और धरा तो प्राप्त हैं, धाम प्राप्त नहीं है। आज उसके शयन में भी विश्राम नहीं है। वाहनों में गतिशीलता आ जाने पर भी मनुष्य की गति यह हो गयी है कि लोग भगते से जाते हैं, ठगे ठगते से आते हैं।' सर्वत्र एक नाटक-सा हो रहा है जिसमें सभी कुछ अद्भुत है। लोगों को नव-नव भौतिक सिद्धियां प्राप्त हो रही हैं, औद्योगिक उत्पादन तथा कृषि में अनोखी वृद्धि हो रही है किंतु वह समृद्धि जाती कहाँ है ? उसका सर्जक श्रमिक और किसान तो उसे देखता ही रह जाता है ! उत्पादन उदार होने पर भी विभाजन तथा वितरण तो कृपण-कठोर ही रह गया है। इसी का यह दुष्परिणाम है कि यंत्र जी रहे हैं, लोग मर रहे हैं। जीवन के सम्य साधन जीवन से अधिक अलभ्य हो गये हैं।

धर्म, शासन, समाज, व्यापार तथा उद्योगधंधे, कला-कौशल सभी पर इस समय का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित है। धर्म अब धन में परिणत हो गया है। शासन ने विकट वाणिजता का रूप ले लिया है और इस प्रकार आज पूंजी-पतियों का ही राज्य हो गया है। सभी को चलानेवाले यंत्रों ने

स्वतंत्र गृहशिल्प का अंत कर दिया है।

यह स्थिति देशों की अपनी सीमाओं तक ही सीमित नहीं है, इसका विस्तार उससे बहुत अधिक हो गया है। एक जाति दूसरी जाति को और एक देश दूसरे देश को हड़प लेने के लिए विशेषतः व्यग्र है। विषमता-क्षमता के आवेश के कारण किसी के मन में ममता का लेश भी शेष नहीं रहा है और सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि हम उच्च उद्देश्यों का उद्घोष करके भी मन में नीच शोषण का ही पोषण कर रहे हैं। इसीलिए यह भुवन भयंकर भाड़ बन गया है।

क्या यही 'उन्नत' युग है ? मिथ्या का प्रबल प्रचार देख कर आज तो सत्य ने भी हार मान ली है। नर ने अंबर में उड़ कर भी अपनी इस वसुंधरा पर तो गाज ही गिरायी है। लोक-स्वातंत्र्य का नाम लेकर लोग वास्तव में कहीं निज राज्य बचाने के लिए और कहीं पर राज्य पचाने के लिए भीषण संग्राम कर रहे हैं और इस प्रकार सर्वत्र प्रलय का अट्टहास हो रहा है।

कवि की कामना है कि यह विश्व-व्यापिनी वेदना प्रसव की पीड़ा में परिणत हो जाए और वैषम्य रूपी यह वेन उस पृथुराज को जन्म दे जो इस वसुधा को समुचित नाम-रूप-गुण धाम बना सके।

विष्णुप्रिया

सन् १६५७ में रचित विष्णुप्रिया को डॉ० कमलाकांत पाठक ने कथाश्रित प्रगीत कहा है और यशोधरा को खंडकाव्य जबकि ये दोनों ही कृतियां प्रबंध काव्य हैं। यशोधरा में तो कथा का संकेत है और विष्णुप्रिया में अनवरत महाप्रभु चैतन्य की कथा रूपी सलिला प्रवाहित है और वीचियों के समान विष्णुप्रिया की अंतर्व्यथा उभरती और तिरोहित होती चलती है। अतः यशोधरा को खंडकाव्य कहा जा सकता है। डॉ० पाठक ने अन्यत्र इसे वर्णनात्मक खंडकाव्य माना भी है। तो विष्णुप्रिया को कथाश्रित प्रगीत कहना अन्याय होगा। वैसे दोनों काव्यों में प्रबंधात्मकता होते हुए भी वे प्रबंध काव्य या खंडकाव्य न होकर काव्य-रूप की दृष्टि से कुछ और ही हैं। हाँ, एकार्थ काव्य कहना चाहें तो कह लें।

विष्णुप्रिया काव्य का प्रारम्भ गुप्तजी ने देव प्रेम के अधिष्ठातृ चैतन्य महाप्रभु के स्तवन से किया है। उसके बाद चैतन्य की जन्मदात्री भूमि बंगाल, उनके माता-पिता, परिवार, चैतन्य-जन्म, उसके क्रीड़ा-कौतुक, शिक्षा-दीक्षा का संकेत किया है। चैतन्य के सहपाठी रघुनाथ को तुष्ट करने के लिए, न्याय पर लिखी अपनी रचना को गंगा अर्पित करने वाली तथा दिग्विजयी काश्मीरी पंडित आचार्य केशव को तर्क में परास्त करने वाली घटना को किंचित विस्तार दिया गया है।

उक्त वर्णन के पश्चात् बिना अध्याय या सर्ग-परिवर्तन किए हुए केवल × × × का आश्रय लेकर कथा को दूसरा मोड़ दिया गया है। इस प्रसंग में विष्णुप्रिया और उसकी सखी के वार्तालाप के माध्यम से विष्णुप्रिया की आसक्ति गौर हरि में दिखलाई गई है। विष्णुप्रिया भावविभोर होकर कह उठती है, "मेरे भगवान सबके हों, मैं इन्हीं की हूं।" इस कथन में आगामी कथा का बीज भी निहित दिखलाई पड़ता है। विवाहोपरांत गृहप्रवेश के समय विष्णुप्रिया के ठोकर खाने और—

> वर ने अगूठे से अंगूठे को दबा दिया,
> रक्त रुका किंतु बढ़ी दूनी अनुरक्तता ॥

का यह प्रसंग बंगाल में अत्यंत प्रचलित है। गुप्तजी ने 'त्याग पर तेरी नींव टिकी' गीत के माध्यम से विष्णुप्रिया के मनोभावों का उरेहण किया है।

इसके बाद पिंडदान करने के लिए चैतन्य के गया जाने का प्रसंग है और चैतन्य के गया-गमन के पश्चात् विष्णुप्रिया तथा उसकी सखी का वार्तालाप चित्रित किया गया है। इसी संदर्भ में कवि ने दो गीतों की सृष्टि भी की है। 'अब तक लौटा नहीं प्रवासी' गीत में विष्णुप्रिया की प्रतीक्षा और आतुरता का मार्मिक चित्रण है। चैतन्य गया से लौटते हैं और यह भी स्वीकार करते हैं कि 'वस्तुतः तुम्हारा ही दिया वह मिला मुझे।' इसके पश्चात् पुनः परम्परित कथा की योजना है जिसमें श्री अद्वैत, श्रीनिवास, नित्यानन्द अवधूत, मुस्लिम जाति के हरिदास, नगर काजी, मुरारिगुप्त आदि के चैतन्य की शरण में आने, चैतन्य की भक्ति के प्रचार व प्रसार तथा भक्ति-दशा में चैतन्य के अचेत होने की कथा है। इस प्रसंग में कवि की मौलिकता के दर्शन उस समय होते हैं जब चैतन्य मूर्च्छित होकर गिरते हैं, नित्यानन्द उन्हें सँभालते हैं किंतु चोट सहती थी विष्णुप्रिया उनकी। इस स्थिति में यह गीत—

> मानों अब निज से भी न्यारे, सोए-से रहते हैं प्यारे।

हृदय में एक विचित्र प्रकार की करुणा का उद्रेक करता है।

और इस गीत के साथ ही गुप्तजी ने जिस प्रसंग की सृष्टि की है वह अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। चैतन्य अग्रज का अनुज बनने अर्थात् संन्यासी होने की बात कहते हैं। मां इम्बा कह कर सन्न हो जाती है। और विष्णुप्रिया तो इस प्रसंग पर—

विष्णुप्रिया स्तब्ध हुई सुनकर पहले।
भ्रांत-सी उन्हीं की ओर कुछ क्षण देखारी।
कांपी फिर और गिरी पैरों पर उनके
निराड़ लता-सी गतिरोध कर लिपटी।

चैतन्य के समझाने पर उसका कथन—रो-रोकर मरना ही नारी लिखा लाई है, सहसा यशोधरा के इस कथन का स्मरण करा देते हैं—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी !

किंतु विष्णुप्रिया यशोधरा न होकर विष्णुप्रिया है। वह स्वयं गृह-त्याग की बात करती है, उनके दूर से दर्शन करने की बात करते हुए कह उठती है—

मेरे त्याग में ही तो तुम्हारा त्याग पूरा है,
यद्यपि तुम्हारे देव ऐसा नहीं करते।
नारायण लक्ष्मी को, यतीन्द्र हर गौरी को,
इन्द्र इन्द्राणी को, त्यों वरुण वरुणानी को
संग रखते हैं, वे असंग नहीं तुमसे
छल सकते हैं क्रूर कृष्ण भोली राधा को,
किंतु रुक्मणी को एक बार छल देखें वे,
गांठ वह खोल नहीं सकता विधाता भी
वेदी के समक्ष, साक्षी कर सब देवों को
ग्रहण किया था यह पाणि क्या इसीलिए
कौन याग पूर्ण होगा त्यागकर मुझको
धर्म के विरुद्ध ही तुम्हारा यह कर्म है।

और अंत में तो यहाँ तक कह देती है—

कृपया बता दो तुम्हीं, रोकूं तुम्हें कैसे मैं ?
मेरी मति और गति केवल तुम्हीं-तुम्हीं
किसके शरण जाऊं आज मैं अभागिनी
मेरे प्राण मांग लो, प्रयाण ही न मांगो यों।

यहाँ कवि ने चैतन्य के चरित्र में भी किंचित् परिवर्तन किया है। उनका कथन है कि वह भोग के लिए नहीं त्याग के लिए एक सैनिक के समान जाना चाहते हैं। नारी ही सैनिक को सजाती है, नारी ही त्याग करती है, नर नहीं। नारी का धर्म प्रेम है, चैतन्य उसी के प्रसार हेतु जाना चाहते हैं। श्रद्धाभक्ति लुप्त-सी नास्तिकता फैली है और डूब गए यज्ञ बलि-पशु के रुधिर में ! ब्राह्मण धनार्थ बने धर्म व्यवसायी हैं। लाखों आर्तजन मेरा आह्वान कर रहे हैं—सबके हितार्थ हँस मेरा दान कर दो। आगे उसे मनाते हुए कहते हैं, चाहोगी मुझे जब, समीप तुम पाओगी, इतना ही नहीं तुमने वरा था मुझे, आज मैं तुम्हें वरूं। यह कहकर उसे पुष्पहार पहिनाते हैं, अंक में बैठाकर प्यार करते हैं। नारी-हृदय पिघल तो जाता है किंतु—उसने कहा भी यों अपांग व्यंग्य करके—

यह बलि पूर्व बलि-पशु का खिलाना है।
शाक्त तुम मेरे, क्यों न वैष्णव हो औरों के,
पशु नहीं, नर-बलि देते नहीं लेते हो।

यदि ये संवाद प्रेक्षागृह में मंच से सुनाई पड़ते तो दर्शक संभवतः अपनी सीत्कार रोक नहीं पाते।

यहाँ भी यशोधरा जैसा ही दृश्य उपस्थित होता है—"पर चोरी-चोरी गए···।" विष्णुप्रिया भी कह उठती है—हाय ! मैं छली गई हूं, छिपकर ही भागे वे। किंतु स्वयं धैर्य धारण कर वह भी मां को संभालती है और जब मां के मुंह से निकलता है—

देखती बहू, मैं आज गोद-भरी तेरी ही,
तो भी झेल लेती मैं अनन्त शून्य अपना।

ऐसा लगता है कि गुप्तजी ने कोई दुखती रंग पर हाथ रख दिया है, इसीलिए तो उसका मौन अंदर-ही-अंदर चीख उठता है—

भरी गोद ही होती मेरी तो रात-दिन सह लेती मैं
तिनके का भी कहाँ सहारा जिसके बल पर बह लेती मैं।

कवि ने विष्णुप्रिया के मनोभाव व्यक्त करने के लिए इसी प्रसंग में सात गीतों की रचना की है। चैतन्य के संन्यासी हो जानेवाले समाचार ने तो विष्णुप्रिया को पागल-सा बना दिया है। विष्णुप्रिया की मानसिकता इस संदर्भ में दिए गए चार गीतों में मुखरित हो उठी है।

शांतिपुर में चैतन्य आते हैं। मां के लिए तो निमंत्रण मिलता है किंतु विष्णुप्रिया के लिए वर्जन। मां गई, लौट भी आई। दोनों सास-बहू श्रम में लग गई हैं। विष्णुप्रिया सास को ही प्रत्यक्ष देवता मानने लगी। बीच-बीच में चैतन्य के समाचार प्राप्त हो जाते हैं, मानो वही दोनों के लिए सहारा हैं। इस प्रसंग में ग्यारह गीतों में विष्णुप्रिया की वेदना का गायन है। चैतन्य द्वारा वस्त्र भेजे जाने पर वह कह उठती है इसमें अग्निबाण जड़े हैं। इससे आगे के पांच गीतों में पार्वती, उर्मिला और यशोधरा के स्मरण के साथ-साथ विष्णुप्रिया की कर्त्तव्य-निष्ठा का चित्रण है।

इन गीतों के बाद विष्णुप्रिया और उसकी सखी का वार्तालाप है जिसमें संन्यास-मार्ग पर व्यंग्य हैं। इसके बाद पर्व एवं उत्सवों के संबंध में एक गीत की सृष्टि की गई है। यहाँ भी यशोधरा के समान ही कवि ने ऋतु-वर्णन किया है। इस वर्णन का क्रम है—हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा। यहाँ ध्यातव्य यह है कि श्राद्ध-पक्ष के पश्चात् नवरात्रों व विजयादशमी पर्व से कवि ने उत्सवों का वर्णन किया है। इसके बाद चैतन्य के दक्षिण के लौटने के बाद उनके उन्माद के बढ़ जाने की सूचना विष्णुप्रिया व शची को प्राप्त होती है। यहाँ एक गीत में विष्णुप्रिया की व्यथा का चित्रण है। राय रामानन्द से भेंट, कोढ़ी से भेंट, तीर्थ राम, वारवनिताओं रूप जीवा सुवर्णावलि, देवदासियों के उद्धार की कथा के समाचार से विष्णुप्रिया एवं शची आश्वस्त होती हैं। चैतन्य के साथी नित्यानन्द के गृहस्थ होने वाले समाचार से तथा चैतन्य के आगमन के समाचार से दोनों ही आनन्दित होती हैं। इस प्रसंग में कवि ने जिन तीन गीतों की रचना की है वे भावोद्रेक में अत्यंत समर्थ हैं।

दोनों के पुनर्मिलन के चित्रांकन में कवि-कौशल की प्रशंसा करनी ही पड़ती है—

बोले—"तुम कौन हो ? उठी वह तुरंत ही
क्षुब्ध फणिनी सी नहीं, आकुल हिलोर सी
× × × ×
जानती नहीं मैं अब कौन, किंतु पहले
एक दूसरे को जानते थे हम दोनों ही।
भूले तुम, हाय ! मैं ही भूल नहीं पाई क्यों ?

इस मर्मस्पर्शी कथन का अपेक्षित प्रभाव पड़ना ही था। चैतन्य क्षमा मांगते हैं और भगवान का ध्यान करने की शिक्षा देते हैं। किंतु विष्णुप्रिया के लिए यह संभव ही नहीं था क्योंकि—

देते नहीं करने कृपण तुम वह भी !
आ-आकर बीच में स्वयं ही बैठ जाते हो।

चैतन्य निरुत्तर हैं। लगता है उनके परकीया भाव पर एक प्रश्नचिह्न लग गया है। "ओहो ! क्या प्रबल ऐसा है स्वकीया भाव भी ?" और विष्णुप्रिया चैतन्य की खड़ाऊँ लेकर लौट आती है। आगे उसके द्वारा गाए गए दस गीत आत्माभिव्यंजना की दृष्टि से अत्यंत सुन्दर बन पड़े हैं। इन गीतों के पश्चात् चैतन्य-कथा का वह अंश है जिसमें गोविन्द घोष, रूप सनातन आदि के साथ उन्होंने वृन्दावन का उद्धार किया है और संन्यासी प्रकाशानन्द स्वामी को कृष्ण भक्त बनाया है। श्री बल्लभाचार्य से भी उनकी भेंट का वर्णन है। इसी अंश में शची का निधन भी दिखलाया गया है।

इस सर्गहीन प्रबंध काव्य में परिशिष्ट की योजना अवश्य की गई है जिसमें चैतन्य के दिव्योन्माद बढ़ने और प्रभुमूर्ति में विलीन होने का संकेत है। इसके पश्चात् कथा का उपसंहार है। विष्णुप्रिया ने घर में मंदिर बनाकर प्रतिमा स्थापित की है और उसके जीवन-यापन का नियम बन गया था—

प्रतिदिन मंत्र श्लोक जपती थी जितने
गिनती के उतने ही धन्य कण लेती थी।

राम-भक्त कवि की विष्णुप्रिया अंतिम दो गीतों में सीता और राम का भी स्मरण करती है।

यह काव्य गुप्तजी की प्रौढ़ावस्था की कृति है। उर्मिला और यशोधरा ही इसकी आधारभूमि हैं और उनकी मानसिकता का विकास ही विष्णुप्रिया है। एक सीमा में ही उसके चरित्र का विकास दिखलाते हुए उसके चारित्रिक गौरव की रक्षा की जा सकती थी। कवि ने यही किया भी है। उन्होंने उसके चरित्र के विकास के लिए वैषम्य पद्धति का आश्रय लिया है। विष्णुप्रिया राजवधू न होकर साधारण परिवार की निःसंतान कुलवधू है, अतः गार्हस्थ्य धर्म की मर्यादाएं उसके हाथ-पैरों और मुंह को ही नहीं प्रत्येक क्रियाकलाप को जकड़े हुए हैं। तब भी पति के कर्त्तव्य के संबंध में तर्क देते हुए चैतन्य को शाक्त तक कह देना विष्णुप्रिया पर पड़े युगीन प्रभाव को व्यक्त करता है। यह ठीक है कि यह काव्य विवरणात्मक अथवा वर्णनात्मक है, किंतु इस काव्य की शक्ति इसके गीत हैं जो गेय तो हैं ही आत्माभिव्यंजक भी हैं। चरित्र-परिवर्तन के लिए इस काव्य में अवसर नहीं था, तब भी गुप्तजी ने न तो चैतन्य की पहली पत्नी के संबंध में कोई संकेत किया है न ही पुनर्मिलन के प्रसंग पर चैतन्य के द्वारा विष्णुप्रिया को तिरस्कृत अथवा अपमानित दिखलाया है। इस संदर्भ में चैतन्य के हृदय-परिवर्तन की ओर भी कवि ने संकेत किया है जो उसकी मौलिक उद्भावना है। चैतन्य स्वकीया भाव को भी परकीया के समान ही गौरव देने के लिए विवश हो गए हैं। इस काव्य की यह एक कमी ही है कि इस नायिकाप्रधान काव्य में कथा का तीन चौथाई अंश विष्णुप्रिया के इर्द-गिर्द घूमता है अथवा चैतन्य के कार्य-व्यापारों में परोक्षरूप से उसे प्रभावित भी दिखलाया गया है। लेकिन चैतन्य का व्यक्तित्व इस समूचे काव्य पर हावी रहता है। इसी कारण संयोग-चित्र भी गुदगुदाहट न देकर रुलाते हैं,

करुण रस का ही उद्रेक करते हैं। मेरी सम्मति में करुण विप्रलम्भ रस के इस नायिकाप्रधान काव्य को प्रबंध काव्य या खंडकाव्य की संज्ञा देना तथ्य से परे हटना है। कथा की भंगिमा, नाटकीय मोड़ों की तीव्रता और गीतों की व्यंजना इसे गीत नाट्य के समीप रखने को विवश करती है न कि प्रबंध अथवा खंडकाव्य के।

विसर्जन

हज़रत मुहम्मद ने जब अरबों को एक पन्थ के रूप में संगठित कर दिया तो उनकी शक्ति बहुत बढ़ गयी। इस शक्ति का उग्र प्रदर्शन करके उन्होंने अनेक साम्राज्यों का विध्वंस कर दिया, अनेक वंश निर्मूल कर दिये और धर्मांध होकर अन्य मतावलम्बियों पर अनेक प्रकार के अत्याचार करना आरंभ कर दिया। विक्रम की आठवीं शती में उनका यह प्रलयंकर वेग रोम राज्य तक बढ़ा। उत्तरी अफ्रीका में वहाँ की महारानी काहिना ने वीर मूरों की सहायता से उस प्रवाह के प्रतिरोध में सफलता पायी। अरबों को हार कर वहाँ से भाग जाना पड़ा।

विजयी मूरों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। किंतु मूर महिषी काहिना अपने को निश्चित न मान सकीं। उन्हें विश्वास था कि पराजित अरब चैन से नहीं बैठेंगे और वे जल्दी से जल्दी अपना खूनी पंजा उत्तरी अफ्रीका पर फैलाएँगे। वह चाहती हैं कि उस समय भी शत्रु के हाथ करारी हार ही लग पाए। उनकी दृष्टि में इसका निश्चित उपाय यह है कि तन के बल पर शत्रु को पराजित कर दिखाने वाले मूर विलक्षण मनोबल का भी परिचय दें। महारानी उन्हें निदेश देती हैं कि वे सभी प्रलोभनों से मुक्त होकर स्वयं अपना वह धन नष्ट कर दें जिस पर शत्रुओं की दृष्टि गड़ी है और जिसे प्राप्त करने के लिए वे पुनः वहाँ आएँगे। महारानी का परामर्श है कि मूर तपस्वियों की भाँति अपनी मातृभूमि पर निवास करें और उस भूमि से सहज रूप से उन्हें जो उपलब्ध हो उसी पर निर्वाह करें। इस प्रकार वे सही अर्थों में निश्चिन्त तथा स्वतंत्र बने रह सकेंगे।

विजयी मूर अपने ही हाथों से अपने प्रासाद तथा भवन तोड़ डालते हैं और सारे देश को उजाड़ कर देते हैं—केवल मुक्ति की कामना लेकर वे अपनी समस्त भौतिक सम्पदा का अपने ही हाथों विसर्जन कर देते हैं।

वैतालिक

वैतालिक एक लम्बा उद्बोधन या जागरण-गीत है जिसमें गुप्तजी ने १९१५-२०ई०के काल-खंड की अपनी राष्ट्र-भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की है। मुखपृष्ठ पर छपी पंक्तियाँ इसी ओर संकेत करती हैं—

फिर अपने को याद करो
उठो, अलौकिक भाव भरो।

'वैतालिक' की रचना तो सन् १९१७ में हुई और वह जुलाई-अगस्त के 'सरस्वती' के अंकों में छपी थी पर उसका पुस्तकाकार प्रकाशन १९१८ में हुआ। १४-१४ मात्राओं के चरण वाले हाकलि छंद में लिखी इस रचना में केवल १२५ छंद हैं और उसका कथ्य है राष्ट्रवादी भावनाएँ और प्रकृति-चित्रण। यह रचना भावात्मक से अधिक विचारात्मक है और उसमें कवि भारतवासियों को उद्बुद्ध करते हुए पूर्व और पश्चिम की संस्कृति, आध्यात्मिकता और भौतिकता का सामंजस्य करने का परामर्श देता है—

हृदय और मस्तिष्क खिलें,
ज्ञान और विज्ञान मिलें।

कवि ने प्रकृति को निकट से देखा है, उसके नैसर्गिक सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन भी किया है। कहीं-कहीं मानवीकरण द्वारा प्रकृति का भावग्राही चित्रण भी प्रस्तुत किया है—

उषा ने आंगन लीप दिया
नव किरणों ने चौक पूर कर मङ्गल-कलश लिया

पर कुल मिलाकर यहाँ प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र नहीं हैं और प्रकृति-वर्णन के माध्यम से कवि उपदेश देता प्रतीत होता है—

तम की सब कालिमा धुली
आँख तुम्हारी क्यों न खिली

जगह-जगह विचारात्मकता एवं दार्शनिकता भी दृष्टिगत होती है—

मैं भी स्वाधीनात्मा हूँ
परमात्मा लीनात्मा हूँ।

आचार्य शुक्ल का वैतालिक के संबंध में कथन है, "वैतालिक की रचना उस समय हुई जब गुप्तजी की प्रवृत्ति खड़ीबोली

में गीति काव्य प्रस्तुत करने की ओर भी हो गई थी।" पर वस्तुत: गुप्तजी की मूल प्रकृति गीतिकार की न होकर आख्यानकार की थी। अत: वैतालिक का अनुबंध प्रगीतात्मक न होकर निबंधात्मक है। इसमें एकांतिक आत्माभिव्यक्ति नहीं है। लेखक की दृष्टि अंतर्मुखी न होकर बहिर्मुखी है। वह उच्छ्वसित होकर भावोद्गार प्रकट करने के स्थान पर उप अधिक देता प्रतीत होता है। अत: 'वैतालिक' का महत्त्व व की वैचारिकता, राष्ट्रभावना और जनता को उद्बुद्ध क की दृष्टि से है, न कि गीति-कला की दृष्टि से।

शक्ति

इसका प्रकाशन वर्ष १६२७ है। जिस समय कवि ने शक्ति काव्य की रचना की, देश की परतंत्रता का समय तो था ही, साथ ही चारो ओर क्रांति का स्वर मुखरित था। भारत देश को भारत माँ की संज्ञा देकर उसमें शक्ति का अधिष्ठान कर दिया गया था। कवि ने केवल दुर्गा का स्तवन करने के लिए इस काव्य की रचना की है या अपनी अथवा देश की दुर्दशा को देखकर प्रतीक रूप में दुर्गा को ऐसी शक्ति के रूप में देखने की चेष्टा की है जो संघ-शक्ति है, देवताओं की शक्ति का समन्वित रूप है। कवि ने वर्तमान दुर्दशा का प्रत्यक्ष चित्रण किया है—

अमर परन्तु विफल जीवन को बार-बार धिक्कार
दुष्ट दैत्यगण मचा रहा है दारुण अत्याचार
कुछ कर सकते नहीं, विवश हैं, बैठे हैं हम हार
छिने हाय ! घर-बार हमारे, छिने सभी अधिकार

कवि के अनुसार भारत की जनता भूखे मरने, मारे-मारे फिरने और त्रास भोगने के लिए विवश थी। तत्कालीन आदर्श था मरे और झंझट से छूटे। इसी समय उसे प्रेरणा दी गई कि आघात से न डरकर आघात को जूझते हुए जिओ—

जियो अर्थ के अर्थ, धर्म के अर्थ, काम के अर्थ।
जियो मुक्ति के अर्थ और निज अमर नाम के अर्थ।

इस जीवनादर्श के साथ-साथ कवि संघ-शक्ति का भी विश्वासी है—

"संघ-शक्ति ही कलि दैत्यों का मेटेगी आतंक।"

और इस तरह पौराणिकता का निर्वाह करते हुए कवि की शक्ति का निर्माण हुआ है—

ब्रह्म रुद्र इंद्रादि सुरों के तनु से भी तत्काल
निकले ज्योति:पुंज और सब-मिले उसी में हाल

इस तरह वह शक्ति महाशक्ति की पूर्ति के रूप में प्रकट हुई। इस काव्य-रचना में कवि पौराणिक स्वरूप की रक्षा करते हुए भी देश की स्थिति और संघ-शक्ति के आदर्श को नहीं भूल पाता—

व्यक्ति व्यक्ति में शक्ति अलौकिक रहती है सर्वत्र।
संभव क्या है विश्व शक्ति का वर्णन फिर एकत्र ?

साथ ही इस काव्य में कवि ने पौराणिक संदर्भों की भी र की है।

चक्रपाणि ने चक्र, शंभु ने शूल, काल ने दंड,
यम ने चर्म कृपाण, वरुण ने निज नवपाश प्रचंड,
स्वयं पुरंदर ने पवि, रवि ने रोमच्छवि अविखंड,
हविर्वहन ने शक्ति, पवन ने शर, निषंग कोदंड,
यक्षराज ने गदा, गरुड़ ने वेग रूप बहु पंख,
सुरगज ने घंटा, जलनिधि ने दिया उसे जय शंख।

तथा क्षीर सिंधु, वासुकि, चंद्र, विश्वकर्मा, हिमगिरि, वनदे प्रजापति आदि देवी-देवताओं ने भी देवी की रूपसज्जा व इस रूपसज्जा से संभवत: यही अभिप्रेत है कि ब्रिटिश र की समाप्ति के लिए संघ-शक्ति की आवश्यकता है और तभी संभव है जब पूरा देश संगठित होकर अपनी शक्ति प्रदर्शन करे।

इस रूपसज्जा के पश्चात् देवी ने शुम्भ-निशुम्भ अ राक्षसों का संहार किया है जो पुराणाश्रित ही है। हाँ, इ अवश्य है—

प्रकटे अपने प्रकृत रूप में वह पशुता भी धन्य,
धिक् है वह नरता जो दीखे आप अन्य की अन्य।

कहकर कवि ने एक ओर महिषासुर के चरित्र का परिष किया है तथा दूसरी ओर उन व्यक्तियों की ओर भी स किया है जो स्वातंत्र्य-यज्ञ में भितराघात कर रहे थे।

कवि दुष्ट संहार के लिए तो हिंसा का पक्ष लेता है देवी के आगे बलि दिए जाने के विरुद्ध है। इसके अति वह ऐसे संहार को इसलिए भी आवश्यक मानता है—

पागल होने पर होता है ऐसा व्याकुल श्वान
उसके वध में स्वयं उसी का है कल्याण-विधान

महिषासुर-वध की कथा से आगे चंड-मुंड के वध की कथा की भी गुप्तजी ने इस काव्य में नियोजना की है। वह चामुंडा बन कर रक्तबीज का भी संहार करती है।

गुप्तजी के शक्ति काव्य में वीररस का तो परिपाक् हुआ ही है किंतु पौराणिक संदर्भ होते हुए भी कवि यथासंभव अलौकिक वर्णन से बचा है। चमत्कारपूर्ण वस्तुशिल्प, नाटकीय प्रसंगों एवं संवादों के कारण भी यह काव्य सुंदर बन पड़ा है।

शकुन्तला

कवि ने शकुन्तला नामक काव्य की रचना सन् १९१४ में की थी। इस काव्य में सर्गों के स्थान पर शीर्षकों का प्रयोग किया गया है। रचना का आरंभ उपक्रम नामक शीर्षक से होता है तथा अन्य शीर्षकों के नाम हैं—जन्म और बाल्यकाल, दर्शन, पत्र, अवधि, अभिशाप, विदा, त्याग, स्मृति, कर्त्तव्य, मिलन। इस तरह यह कृति ग्यारह शीर्षकों में विभाजित है।

कवि ने इस काव्य की कथा के लिए महाभारत अथवा श्रीमद्भागवत को आधार न बनाकर महाकवि कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तलम् से ही प्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त की है। इस संबंध में 'उपक्रम' में उन्होंने कहा भी है—

मृग बदले मृगनयनी को वहाँ महीपति ने पाया,
और यहाँ श्रीकालिदास ने श्रवण सुधारस बरसाया।

'जन्म और बाल्यकाल' शीर्षक में विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए इंद्र द्वारा मेनका के भेजे जाने और शकुन्तला के जन्म का संकेत देते हुए काव्य का आरंभ किया गया है। इसी शीर्षक में शकुन्तला के बाल्य-जीवन और उसके पशु-पक्षी, वृक्ष आदि से प्रेम का चित्रण है। 'दर्शन' शीर्षक में शकुन्तला और दुष्यंत के मिलन की कथा है। चौथे सर्ग में दोनों के विरह-उत्ताप तथा शकुंतला द्वारा पत्र-रचना की कथा है। यह सर्ग 'कुंडलियाँ' नामक छंद में रचा गया है। 'अवधि' शीर्षक में शकुन्तला और दुष्यंत के गांधर्वविवाह तथा दोनों के हास-परिहास का चित्रण है। 'अभिशाप' सर्ग में शकुन्तला दुष्यंत-विषयक चिंतन में लीन दिखलाई गई है। इस सर्ग में दुर्वासा ऋषि के आगमन और शाप का वर्णन है। शापमोचन के लिए कवि ने दुर्वासा ऋषि से कहलवाया है—

आवेगी सुध मुद्रिका निरख के उद्भ्रांत दुष्यंत को।

'विदा' शीर्षक में शकुन्तला की आश्रम से विदा, सखियों वृक्षों आदि से उपहारों की प्राप्ति और कण्व के उपदेश आदि का वर्णन है। 'त्याग' शीर्षक के अतंर्गत दुष्यंत द्वारा शकुन्तला के त्याग और आश्रमवासियों द्वारा शकुन्तला को अकेले पथ पर छोड़ कर चले जाने का प्रसंग है। इसी सर्ग में शकुन्तला को उसकी माँ मेनका उड़ा कर ले जाती है तथा हेमकूट पर्वत पर कश्यप ऋषि के आश्रम में छोड़ देती है। 'स्मृति' सर्ग में मछली के पेट से प्राप्त मुद्रिका को देखकर दुष्यंत को शकुंतला की स्मृति हो आती है। इस सर्ग तथा 'कर्त्तव्य' सर्ग में दुष्यंत के विरह का चित्रण है। 'कर्त्तव्य' शीर्षक में ही सुरसूत मातलि के आगमन तथा दुष्यंत के इंद्रलोक जाने का प्रसंग है।

इस रचना का अंतिम शीर्षक 'मिलन' है। देवकार्य संपादित कर दुष्यंत मातलि के साथ हेमकूट पर्वत पर कश्यप के दर्शन के लिए आते हैं। अभिज्ञान शाकुन्तलम् के समान दुष्यंत को सर्वप्रथम सर्वदमन बालक के दर्शन होते हैं। वह दूध पीते सिंह-शावक को खींचता है तो कभी दाँत गिनने के लिए उससे मुँह खोलने का आग्रह करता है। यह दृश्य देखकर पूर्व-स्मृतियाँ जागृत हो जाने से दुष्यंत मूर्छित हो जाते हैं। मूर्च्छा की समाप्ति पर उनकी भेंट शकुन्तला से होती है और इस प्रकार विषाद हर्ष में परिणत हो जाता है और कथा समाप्त होजाती है।

अभिज्ञान-शाकुन्तलम् में यह कथा सात अंकों में निबद्ध है। कवि अनुसूया के मुख से शकुन्तला-जन्म का परिचय देता है। किंतु गुप्तजी ने 'जन्म और बाल्यकाल' शीर्षक के अतंर्गत शकुन्तला के जन्म और उसके क्रीड़ा-विनोद का चित्रांकन कर दिया है। कालिदास ने गांधर्व विवाह की सूचना-भर दी है। किंतु गार्हस्थ्य धर्म के उपासक गुप्तजी ने नारी-सम्मान और प्रेम के मर्यादित रूप की रक्षा के लिए दुष्यंत और शकुन्तला के विधिवत् गांधर्व विवाह का वर्णन किया है।

कवि ने यद्यपि प्राचीन आख्यान का इतिवृत्त शैली में ही वर्णन किया है फिर भी यहाँ उसके प्रबंध-कौशल के स्पष्ट संकेत मिल जाते हैं। उन्होंने इस पौराणिक कथा-काव्य में भी अपनी राष्ट्र-भावना की अभिव्यक्ति का अवसर खोज ही लिया है। काव्य के अंत में उनके हृदय की देशविषयक पीड़ा पाठक के हृदय में भी एक टीस उत्पन्न कर देती है—

भारत ! अब वह समय तुम्हें क्या याद है
होता उसका कभी सहर्ष विषाद है।
वे दिन अब क्या तुम्हें मिलेंगे फिर अहो !
इसका उत्तर और कौन देगा कहो।

साकेत

'साकेत' का श्रीगणेश उस साकेत नगरी के अत्यंत मनोरम काव्यचित्र द्वारा किया गया है जो 'स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही।' अवनि की अमरावती अयोध्या के राजमहल में हमें 'अरुण पट पहने हुए आह्लाद में' एक बाला खड़ी दिखाई देती है। यह 'साकेत' की नायिका उर्मिला है, जिसका अलौकिक रूप पालित कीर को भी विस्मित-विमुग्ध कर देता है। उर्मिला तोते से प्रश्न करती है : 'रे सुभाषी, बोल, चुप क्यों हो रहा ?' और इस प्रश्न का उत्तर देते हैं पार्श्व से अकस्मात् आ पहुँचने वाले लक्ष्मण। इस अवसर पर दोनों के बीच हुए संवाद द्वारा कवि ने न केवल उनके प्रफुल्लित दाम्पत्य जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है अपितु निकट भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का आभास भी दे दिया है। लक्ष्मण उर्मिला को बताते हैं, 'कल प्रिये, निज आर्य का अभिषेक है।' किंतु उर्मिला तो उन्हें स्वरचित चित्र द्वारा आज ही वह दृश्य दिखा देती है। इस दृश्य में लक्ष्मण की चित्र-रचना करते-करते उर्मिला की उमंग रुक नहीं पाती। रंग बिखर जाता है और एक पीत तरंग रेखा अभिषेक-घट पर जा गिरती है।

उधर मंथरा अपने कुटिल तर्कों द्वारा कैकेयी को यह विश्वास दिला देती है कि 'भरत के सुत पर भी संदेह, बुलाया तक न उन्हें जो गेह।' संशय का यह नाग भरत की माँ को अधीर कर देता है। अब वह शांत नहीं रह पाती और प्रचंड आँधी की भाँति उठ खड़ी होती है। राम के राज्याभिषेक के रंग में भंग हो जाता है। कैकेयी पति से दो वर माँग लेती है : १. 'भरत का करो राज्य-अभिषेक' और २. 'चतुर्दश वर्ष राम-वनवास।'

ऐसे क्रूर कराल वचन सुन कर महाराज दशरथ पर मानो वज्र टूट पड़ता है। वस्तुस्थिति से अवगत होकर राम पिता को समझाते हैं कि उनमें तथा भरत में कोई अंतर है ही नहीं, अतः भरत अयोध्या में निज कर्त्तव्यपालन कर लेंगे और वह (राम) विपिन में धर्मपालन कर सकेंगे। किंतु लक्ष्मण इस स्थिति को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि—'मुकुट है ज्येष्ठ ही पाता हमारा।' राम के समझाने पर लक्ष्मण शांत होकर इस बात के लिए तैयार हो जाते हैं, 'बने नूतन अयोध्या नाथ वन में।'

राम वन के लिए प्रस्थान करते हैं। सीता यह सोचकर उनके साथ हैं कि 'स्वर्ग बनेगा अब वन में' और वियोगजयी लक्ष्मण प्रेममयी उर्मिला को विवश भाव से अयोध्या में ही रहने के लिए तैयार करके उसी प्रकार राम के पीछे चल प हैं जैसे भाद्रपद के पीछे आश्विन।

परिजन तथा पुरजन को शांत करते हुए राम विपिन में पहुँचते हैं। 'प्रभु आये हैं' यह समाचार पाकर गुहराज सप वार भेंट लिए उनकी सेवा में उपस्थित होता है। राम संदेश देकर सुमंत्र को अयोध्या लौटा देते हैं कि वनवास दिन अधिक नहीं हैं, अल्प ही हैं, वह अवधि पूर्ण हो जाने पुनः सबसे मिलेंगे।

राम प्रयाग पहुँचते हैं। भरद्वाज मुनि के यह कहने कि उन्हें चित्रकूट में निवास करना चाहिए क्योंकि व 'अचल सुख, शांति और आरोग्य है' राम, लक्ष्मण तथा सी विकट वन को चले जाते हैं। मार्ग में महामुनि वाल्मीकि मिलकर वे चित्रकूट पहुँचते हैं जो 'अटूट गढ़ गहन वन-श्री बना।' लक्ष्मण वहाँ तत्काल एक मंदिराकृति कुटी की रच कर लेते हैं और मुनियों तथा वनचारियों के साथ रहकर र जंगल में मंगल कर देते हैं।

राम, लक्ष्मण और सीता के साकेत से चले जाने पश्चात् यह नगरी मानो सौख्य, शांति तथा सौभाग्य से वंि हो जाती है। पुरजन प्रवंचित-से हो जाते हैं। भोली-भा नई वधू उर्मिला कैरवाली की भाँति कुम्हला जाती है। शो हत जर्जर-कृश भूप आँधी से उखड़े वृक्ष सदृश हो गये माताओं को रोने तक का अवकाश न था। ज्यों-त्यों कर शं सहन करके कौशल्या दशरथ को सांत्वना देकर कहती 'गौरव-बल से यह शोक सहो।' किंतु नृप निरंतर 'राम-र ही रट रहे थे। सूना रथ लेकर सुमंत्र के अयोध्या लौटने सर्वत्र एक ही कठोर ध्वनि गूँज जाती है—'नहीं लौटे महीप की हृत्तंत्री टूट जाती है।

महाराज दशरथ का शव सुरक्षित भाव से तैल में रख दिया जाता है और दक्ष दूत भेजे जाते हैं जो प्रकृत वृत्त बिना भरत को बुला लावें। भरत-शत्रुघ्न अयोध्या लौटत किंतु नगर में प्रवेश करते हुए उनका हृदय काँप उठता गेह ज्यों-ज्यों निकट आता-जाता है, देह न जाने क्यों सिहर जाती है। उन्हें आभास हो जाता है, 'कुछ-न-कुछ विघ्न हुआ विभ्राट।' तातशून्य निकेतन में पहुँचकर भरत पितः' कहकर गिर पड़ते हैं। कैकेयी उन्हें शांत करती अ बता देती है कि 'माँग मैंने ही लिया कुलकेतु, राजसिंहा तुम्हारे हेतु।' और उसी के परिणामस्वरूप 'प्रभु गये सुर-ध वन को राम।'

यह सब सुन-समझकर भरत लज्जा तथा परिताप में डूब जाते हैं और न्याय का अवलम्ब लेकर शत्रुघ्न भी स्पष्ट कह देते हैं, 'मैं तुम्हारा राज्यशासन-भार, कर नहीं सकता यथा स्वीकार।' भरत उन्हें समझाते हैं कि वह स्वयं उस राज्य को कभी स्वीकार नहीं करेंगे। महाराज दशरथ की अंत्येष्टि के समय पितृचिता के पादतल में लीन भरत सबसे अनुरोध करते हैं कि राम को मनाकर अयोध्या लौटा लाने के लिए वे सब उनके साथ वन चलें।

संपूर्ण साकेत-समाज को साथ लेकर भरत चित्रकूट पहुँचते हैं। दल-बल के साथ भरत को वहाँ आया सुनकर लक्ष्मण को संदेह होता है कि संभवतः भरत 'कुमतिवश' वहाँ आये हैं। राम उन्हें समझाते हैं कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि भरत राज्य तथा मातुश्री से मुँह मोड़कर वहाँ आये हों और प्रजा पुरी को शून्य करके उनके साथ चित्रकूट चली आयी हो। अंततोगत्वा राम का विश्वास ही सत्य सिद्ध होता है।

चित्रकूट में उटज के आगे आयोजित सभा में राम भरत से उनका 'अभीप्सित' पूछते हैं। भरत अपने हृदय की संपूर्ण व्यथा, वेदना, परिताप तथा ग्लानि अग्रज के चरणों पर उड़ेल कर उनसे विनय करते हैं कि वह अयोध्या लौट चलें। कैकेयी भी उनसे यही आग्रह करती है, 'हो तुम्हीं भरत के राज्य, स्वराज्य सँभालो।' राम का उत्तर है कि जब उन्होंने माँ का आदेश मानकर वनवास अङ्गीकार कर लिया तो फिर उन्हीं के आदेश पर प्रजा का भार अवश्य स्वीकार करेंगे—'पर यह पहला आदेश प्रथम हो पूरा।' इस पर भरत दूसरा प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं, 'जब तक पितुराज्ञा आर्य यहाँ पर पालें, तब तक आर्या ही चलें, स्वराज्य सँभालें।' इस प्रस्ताव को सीता स्वीकार नहीं करतीं। इस पर भरत अपना अन्यतम प्रस्ताव करते हैं, 'बस मिले पादुका मुझे।' भरत को उनका अभीप्सित प्राप्त हो जाता है।

भरत और सभी साकेतवासी अयोध्या लौट आते हैं। भरत एक मणिमय पादपीठ पर युगल पादुकाओं को प्रतिष्ठित कर देते हैं। सारा साकेत राम के विछोह में विकल हो जाता है। अवधि का वह भार उर्मिला के हृदय पर तो एक शिला के समान पड़ जाता है, जिसे वह तिल-तिल करके काटती है। वह जागती, सोती और सपने देखती, सभी अवस्थाओं में लक्ष्मण के चिंतन में लीन रहती है। पूर्वस्मृतियों में निमग्न उर्मिला का विरह-वर्णन 'साकेत' की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है।

साकेतवासियों को एक व्यवसायी से यह संवाद मिलता है कि राम ने सबके लिए अगम दक्षिण का पथ सुगम कर दिया है। उन्होंने निशाचरों के साथ युद्ध करके खर, दूषण आदि राक्षसों का वध कर दिया है। अयोध्या पर से एक मायावी राक्षस को उड़ता देखकर भरत तत्काल उस ओर शर-संधान करके उसे नीचे गिरा लेते हैं। किंतु गिरने वाले के मुख से 'हा लक्ष्मण, हा सीते!' का दारुण आर्त्तनाद सुनकर सब चौंक उठते हैं। संजीवनी महौषधि के प्रयोग से वह आहत जन मानो नये प्राण प्राप्त कर लेता और उन्हें बताता है कि वह हनुमान है तथा वह लक्ष्मण की प्राण-रक्षा के लिए संजीवनी प्राप्त करने के लिए कैलाश की ओर जा रहा है। हनुमान संक्षेप में राम-राक्षस-युद्ध का वृत्तांत उन्हें सुना देते हैं। सीता-हरण और लक्ष्मण-मूर्च्छा आदि की सूचना पाकर भरत, शत्रुघ्न, उर्मिला—और उनके साथ सभी साकेतवासी राम-लक्ष्मण की सहायतार्थ रण का साज सजा लेते हैं किंतु कुलगुरु वशिष्ठ उन्हें शांत करके योग-बल द्वारा उन्हें राम-रावण युद्ध आदि के दृश्य अयोध्या में ही दिखा देते हैं।

वनवास की अवधि पूरी हो जाने पर राम, सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटते हैं। नगर तोरण के आगे भरत और शत्रुघ्न उनकी अगवानी करते हैं। वर विमान से कूदकर 'मिले भरत से राम क्षितिज में सिंधु-गगन-सम।' माताओं के भाग आज सोते से जाग गये थे। आनंदविह्वल माताएँ 'रोकर लिपटीं उठा-उठा उन प्रणति युतों को।' और लक्ष्मण तथा उर्मिला उस अंतःपुर में मानो विश्व-विरह लेकर एक-दूसरे के उर में समा जाते हैं।

सिद्धराज

चरित्र-प्रधान काव्य सिद्धराज की रचना का प्रारम्भ गुप्तजी ने सन् १९२९ में किया था किंतु इसका प्रकाशन सन् १९३६ में हो सका। कवि ने इस काव्य-रचना के लिए महामहोपाध्याय गौरीशंकर ओझा के निबंध, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के उपन्यासों, श्री सी० बी० वैद्य के मध्ययुगीन भारत से ऐतिहासिक तथ्यों को ग्रहण किया और रानकदे के संबंध में एडवोकेट एच० पी० शाह से जानकारी प्राप्त की।

संपूर्ण काव्य के केन्द्र में राजा जयसिंह, जिसकी उपाधि सिद्धराज थी, के शौर्य और वीरता का निदर्शन है। इसे

खंड काव्य की संज्ञा देते हुए पांच सर्गों में विभाजित किया गया है। लेकिन इस रचना में पांचों सर्ग एक-दूसरे से असंबद्ध तो हैं ही उनमें व्यक्त कथा भी स्वतंत्र है। इस तरह सिद्धराज काव्य पांच कथाओं वाला एक ऐसा काव्य है जिसके फल का भोक्ता या केंद्रीय पात्र सिद्धराज जयसिंह हैं। कवि ने इस रचना के मंगलाचरण में धर्म, दया, दान और युद्ध-वीर राम की ओर संकेत किया है। वास्तव में उन्होंने सिद्ध-राज जयसिंह के चरित्र में उपर्युक्त चारों गुणों को देखने की चेष्टा की है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज का समय सम्वत् ११५०-११९९ तक मानते हुए सिद्ध हेमचंद्र शब्दानुशासन के रचयिता सिद्ध हेमचंद्र सूरि को सिद्धराज जयसिंह का समकालीन माना है। श्री कन्हैया-लाल माणिकलाल मुंशी के अनुसार मध्य काल में गुर्जर साम्राज्य की नींव डालने वाला मूलराज सोलंकी था। मूल-राज सोलंकी के प्रपौत्र का नाम भीमदेव था। उसके दो रानियां थीं। बकुला देवी जो वणिक कन्या थी, के पुत्र क्षेमराज का प्रपौत्र कुमारपाल था जो सिद्धराज जयसिंह का उत्तराधिकारी बना था। भीमदेव की दूसरी रानी उदयामती का पुत्र कर्णदेव था। कर्णदेव की पत्नी का नाम मीनल देवी था। इसी कर्णदेव का पुत्र जयसिंह था। साक्ष्य मिलते हैं कि कर्णदेव के स्वर्गारोहण के समय सिद्धराज जयसिंह बालक था। मेहता मुंजाल नामक मंत्री की सहायता से मीनल देवी ने अपने पुत्र के राज्य की व्यवस्था की थी।

गुप्तजी ने सिद्धराज काव्य के प्रथम सर्ग में इस ओर संकेत भी किया है। इस सर्ग की कथा मीनल देवी की सोमनाथ यात्रा पर जाने से प्रारम्भ होती है। मार्ग में ही उसकी भेंट एक स्त्री और उसके पुत्र से होती है। वे दोनों महोबा राज्य के जुझौती ग्राम के निवासी हैं। ये दोनों बिना सोमनाथ के दर्शन किए लौट रहे थे। इनके लौटने का कारण था सोमनाथ जाने वाले यात्रियों पर लगने वाला यात्री-कर। मीनल देवी माता और पुत्र के तर्कों से प्रभावित होती है तथा युवक को तलवार भेंट करती है। यात्री-कर से उसका मन व्यथित हो उठता है। अतः वह भोजन त्याग कर उपवास ही नहीं करने लगती, अपितु बिना सोमनाथ के दर्शन किए लौटने को तत्पर हो जाती है। जयसिंह मार्ग में माता से मिलते हैं और उसे सोमनाथ के दर्शन के लिए लौटा लाते हैं। इतना ही नहीं, मातृभक्त जयसिंह मां की इच्छा पूरी करने के लिए कर-संबंधी आज्ञा-पत्र को अपनी मां के चरणों पर चढ़ा देते हैं। इस सर्ग में जयसिंह की मातृभक्ति और उसकी दानवीरता का निदर्शन हुआ है।

जयसिंह आन-बान रखने वाले युद्धवीर भी हैं। सोम गए हुए जयसिंह की अनुपस्थिति में मालवराज नरवर्मा पर चढ़ाई करता है और जयसिंह के मंत्री सांतू से उ प्रमाण-पत्र के रूप में सोमनाथ यात्रा का फल लेकर जाता है। सोमनाथ से वापिस आने पर जब राजा ज को इस घटना का पता चलता है तो वह क्रोधाभिभूत ह मालवा पर घेरा डाल देते हैं। कुछ वर्षों बाद नरवम मृत्यु हो जाती है। उसका पुत्र यशोवर्मा मालवा के सिंह पर बैठता है। राजा जयसिंह इस अवसर पर अपना निधि यशोवर्मा के पास भेजकर संवेदना प्रकट करते हैं। वर्ष तक युद्ध चलता रहता है और एक दिन राजा जयसि यश-पटह नामक हाथी दुर्ग के किवाड़ तोड़ने में सफ जाता है। इस तरह यशोवर्मा पराजित होता है किंतु ज उसे अवंती का राज और गुजरात की सुंदर जड़ाऊ वाली तलवार देकर हाथी पर पार्श्व में बिठाकर पाट प्रवेश करते हैं। इस युद्ध में वह अपनी युद्धवीरता, सहानु आदि गुणों के कारण मालवा के प्रसिद्ध वीर जगदेव अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो जाते हैं। ज उनका प्रधान अंगरक्षक और मित्र बन जाता है।

'सिद्धराज' के उपर्युक्त दोनों सर्ग जहाँ जयसिंह की शीलता और युद्धवीरता पर प्रकाश डालते हैं वहीं तीसर उनके मानवीय गुणों को भी उद्घाटित करता है। सौरा राणा नवघन जयसिंह के हाथों पराजित हो चुका था। समय तक उसे जयसिंह से बदला लेने की आकांक्षा रही। उसके चारों पुत्रों में से कोई भी ऐसा वीर न थ पिता की यह इच्छा पूरी कर सकता। इसी कारण उसके और महीपाल के पुत्र खंगार ने प्रतिशोध लेने की शपथ सत्ता सम्हाल ली।

सौराष्ट्र के एक सामंत सिंधुराज के यहाँ एक का जन्म हुआ, किंतु उसके ग्रहदोष के कारण राजा ने वन में विसर्जित कर दिया। इस कन्या का पालन-पोषण निःसंतान कुम्हार दंपती ने किया और उसका नाम दे रख दिया गया। उसके रूप की चर्चा चारों ओर फैल राजा जयसिंह भी उसे प्राप्त करना चाहते थे किंतु ग्र आदि कुछ कारणों से उसे प्राप्त करने में असमर्थ रहे खंगार ने उससे विवाह कर लिया। उसके दो पुत्र भी उ हुए। राजा जयसिंह उस पर इतने मुग्ध थे कि विवाहिता के बाद भी वे रानक दे को पाने की इच्छा करते रहे। उ सौराष्ट्र की राजधानी जूनागढ़ पर चढ़ाई की और ख

के भांजों को लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। इस तरह जयसिंह ने जूनागढ़ जीत लिया। इस लड़ाई में उन्होंने खंगार की ही हत्या नहीं की बल्कि रानक दे के दोनों मासूम बच्चों को भी सपोलिया समझते हुए मौत के घाट उतार दिया। इतना ही नहीं, संज्ञाहीन रानक दे को भी एक साँड़नी पर बैठा कर वे बढ़वान नामक स्थान पर ले गए। मानक दे जब चैतन्य अवस्था में आयी तो उसने जयसिंह को उसके घिनौने कृत्यों के लिए प्रताड़ित किया। राजा जयसिंह तो हर कीमत पर रानक दे को अपनी रानी बनाना चाहते थे। वे बलात्कार के लिए तैयार हो गए। सिद्धराज काव्य के अनुसार इस अवसर पर वीर जगदेव ने वहाँ पहुंचकर रानक दे के सतीत्व की रक्षा की और वह अपने पति खंगार के सिर को गोद में रखकर सती हो गई। श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने भी इसी प्रसंग को अपने उपन्यास में दिया है। उनके अनुसार रानक दे के सतीत्व की रक्षा जयसिंह के मंत्री काक-भट्ट ने की थी। इस प्रसंग में कवि जयसिंह के उदात्त चरित्र की रक्षा करने में असमर्थ रहा है। इस सर्ग में खंगार का चरित्र अपेक्षित उदात्तता और वीरत्व की गरिमा से मंडित है और रानक दे को तो कवि ने सौन्दर्य, प्रेम, सतीत्व की मूर्ति के रूप में ही चित्रित किया है।

चौथे सर्ग में राजा जयसिंह के अन्तर्द्वंद्व को उभारने का प्रयास किया गया है। लगता है वह रानक दे के कांड से टूट से गए हैं और उनका उत्साह भंग-सा हो गया है। उसकी मां मीनल दे अपने पुत्र को मानसिक रूप से अस्वस्थ नहीं देखना चाहती थी। अतः मेहता मुंजाल की सम्मति से वह अस्वस्थ हो जाती हैं। ऐसा लगता है कि उनकी मरणावस्था निकट है। इस अवसर पर वह जयसिंह के सामने सपादलक्ष जीतने की अन्तिम इच्छा प्रकट करती हैं। मातृभक्त राजा जयसिंह मां की इच्छापूर्ति हेतु सपादलक्ष जीत कर उसके राजा अर्णोराज को बंदी बना लेते हैं। अर्णोराज के रूप-सौन्दर्य, शक्ति, शिष्टाचार आदि गुणों से मीनल दे अत्यन्त प्रभावित हो जाती हैं। दूसरी ओर राजा जयसिंह की एक मात्र कन्या अर्णोराज को देखते ही मोहित हो जाती है। इतना ही नहीं, अर्णोराज के शील, तर्कशीलता और वीरत्व से राजा जयसिंह के मंत्री मुंजाल मेहता और काक-भट्ट भी उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं तथा कांचन दे का विवाह अर्णोराज से सम्पन्न हो जाता है। इस सर्ग में कवि ने राजा जयसिंह की मातृभक्ति, मीनल दे की पुत्र-हित-चिंता तथा कूटनीतिज्ञता, कांचन दे के रूप-सौन्दर्य तथा प्रेम, अर्णोराज के शील, सौन्दर्य, शिष्टाचार, वीरत्व आदि गुणों का निदर्शन किया है।

सिद्धराज का पाँचवाँ सर्ग राजा जयसिंह के हृदय-परिवर्तन का सूचक है। कवि ने इस सर्ग में जयसिंह के प्रताप, तेज, शिवभक्ति, धर्म-समन्वय भाव की ओर संकेत करते हुए कहा है कि वे मल्ल क्रीड़ा, मंदिर-निर्माण, ललित कलाओं की उन्नति, प्रजापालन, दया, धर्म, दान की ओर प्रवृत्त हो गए थे किंतु एक दिन जब एक बारछट (भाट) ने महोबा के राजा मदन वर्मा के गुणों आदि का वर्णन किया तो वे उससे मिलने को आतुर हो गए। वे दलबल सहित महोबा की ओर चल दिए। मार्ग में ही महोबा के गृह-सचिव क्षेत्रवर्मा से उनकी भेंट होती है। यह क्षेत्रवर्मा वही युवक है जिसे सोमनाथ के दर्शन करने जाती हुई मीनल दे ने संरक्षण प्रदान करते हुए राज-तलवार दी थी। राजा जयसिंह क्षेत्रवर्मा के शिष्टाचार पर मुग्ध हो जाते हैं और महोबा के राजा का प्रेम प्राप्त करने के लिए महोबा चल पड़ते हैं। महोबा में उनका उचित सत्कार होता है। दूसरी भेंट में राजा जयसिंह और मदन वर्मा में राजनीति के संबंध में विचार-विमर्श होता है। यहाँ राजपूतों की दुर्दशा, पारस्परिक कलह और युद्ध, धार्मिक विरोध आदि के संबंध में मदन वर्मा अपने विचार प्रकट करता है और सिद्धराज—

देखता था सिद्धराज विस्मय से श्रद्धा से
भोगी है मदन वर्मा किंवा एक योगी है।

'जयभारत' के समान ही 'सिद्धराज' में कथा के पूर्वापर की ओर ध्यान न देकर कवि ने कथात्मक-पद्धति से जयसिंह के चरित्र की अभिव्यक्ति की ओर ही विशेष ध्यान दिया है। इस कथा-काव्य के पुरुष पात्रों में जयसिंह के अतिरिक्त नरवर्मा, यशोवर्मा, नवघन, खंगार, जगदेव, अर्णोराज आदि का चित्रण हुआ है तथा नारी पात्र तो तीन ही हैं मीनल दे, रानक दे और कांचन दे। ये सभी पात्र प्रसंग विशेष में ही प्रस्तुत किए गए हैं। कतिपय प्रसंगों में जगदेव, खंगार, और मदन वर्मा के चरित्रों के समक्ष जयसिंह का चरित्र हीन-सा प्रकट होता है। ऐसा लगता है कि इस काव्य में कवि का उद्देश्य जयसिंह के चरित्र का उरेहण मात्र है न कि उसके चरित्र-विकास की रेखाओं की सृष्टि। कवि ने जहाँ उसकी मातृभक्ति, देश-प्रेम, शौर्य, धार्मिक औदार्य आदि की प्रशंसा की है, वहीं रानक दे के संबंध में उसकी क्रूरता की निंदा भी की है।

वीररस प्रधान इस काव्य में कथा का विकास संवादों के माध्यम से किया गया है। पंद्रह वर्णों के गण-मुक्त छंद में लिखी अतुकांत रचना होने पर भी इस काव्य का प्रवाह देखते ही बनता है।

सैरन्ध्री

महाभारत के आदिपर्व में द्रौपदी को असाधारण व्यक्तित्व की स्वामिनी और साक्षात दुर्गा कहा गया है। यज्ञवेदी से उत्पन्न होने के कारण द्रौपदी महाराज द्रुपद की अयोनिजा पुत्री हैं। स्वयंवर में वह अर्जुन के गले में वर-माला डालती हैं किंतु माता कुंती की आज्ञा के कारण उन्हें पांचों पांडवों की पत्नी बनना पड़ा। द्यूत प्रसंग में महाराज युधिष्ठिर उन्हें जुए में हार गए थे, अतः दुःशासन ने उनका चीरहरण भी किया था। 'सैरंध्री' काव्य में द्रौपदी का चित्रण नारी-आदर्शों की प्रतिमूर्ति के रूप में किया गया है। रामभक्त कवि का आदर्श सीता है। 'सैरंध्री' के मंगला-चरण में गुप्तजी ने उनकी स्तुति भी की है किंतु इस मंगला-चरण में परोक्ष रूप से "आर्य जनों की सुरुचि सभ्यता सिद्धि पुनीता" के रूप में द्रौपदी का ही स्मरण किया गया है। 'सरंध्री' काव्य की मूलकथा महाभारत के विराट पर्व से ली गई है। द्यूत-प्रसंग में पांडवों के द्वारा की गई प्रतिज्ञा के अनुसार उन्हें बारह वर्ष तक वन में तथा तेरहवाँ वर्ष अज्ञात-वास के रूप में काटना पड़ा था। अज्ञातवास के समय पांडव छद्मनाम से विराट नगर के राजा के यहाँ रहे। राजा की रानी का नाम सुदेष्णा तथा उसके साले का नाम कीचक था। कीचक राजा विराट का सेनापति भी था। विराट के यहाँ पांडवों के छद्मनाम इस प्रकार थे—युधिष्ठिर का कंक, भीम का वल्लव, अर्जुन का बृहन्नला, सहदेव का अरिष्टनेमि, नकुल का ग्रंथिक और द्रौपदी ने अपना नाम सैरंध्री रखा था। वह सुदेष्णा की दासी बन गई थी।

कथावस्तु की दृष्टि से 'सैरंध्री' की कथा महाभारत की कथा पर ही आधारित है। सुदेष्णा के भवन में रहते हुए एक दिन कीचक की दृष्टि द्रौपदी पर पड़ती है और वह उस पर आसक्त हो जाता है। वह उससे उसका परिचय पूछकर प्रेम-प्रस्ताव रखता है। सैरंध्री अपने को पांच गंधर्वों की पत्नी बतलाते हुए कीचक को संयम का उपदेश देती है। एक दिन जब वह वल्लव और गज-युद्ध के चित्र निर्माण में व्यस्त है तभी सुदेष्णा उसके कक्ष में आ जाती है। वह चित्र की प्रशंसा करते हुए बल्लव के प्रति उसके मनोभावों को जानना चाहती है। तात्पर्य यह है कि सुदेष्णा की इच्छा है कि सैरंध्री उक्त चित्र को ले जाकर कीचक से मिले। सैरंध्री सुदेष्णा के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती, किंतु अन्त में उसे सुदेष्णा की आज्ञा को मानना ही पड़ता है। कामुक कीचक सैरंध्री से प्रार्थना करता है, उसे प्रलोभन देता है और भय दिखलाता है और बाद में उसका दा हाथ पकड़ लेता है। इस कृत्य से क्रुद्ध होकर सैरंध्री ः हाथ को झटक देती है जिससे कीचक जमीन पर पड़ता है। सैरंध्री वहाँ से भाग कर राजा विराट की सः जाती है और राजा से अपनी रक्षा की प्रार्थना करती विराट इस प्रार्थना को अनसुनी कर देते हैं। कीचव वहाँ पहुंचकर सैरंध्री पर पद-प्रहार करता है। तब सै कंक के संकेत को समझकर बल्लव से मिलती है और बर उसे आश्वस्त कर देते हैं। अगले दिन पुनः कीचक उससे छेड़खानी किए जाने पर वह उसे रात्रि में नृत्यश में आने का निमंत्रण देती है। यथासमय कीचक नृत्यश में आता है। वहाँ भीम तथा कीचक का युद्ध होता है कीचक मारा जाता है। कीचक-वध पर सैरंध्री भी सदः जाती है—

कीचक के भी लिए खेद उसको हो आया,
कहाँ जाय वह सदय हृदय की ममता माया!

महाभारत के विराट पर्व की कथा में कवि ने तीन स्‍ पर परिवर्तन किया है। महाभारत की सुदेष्णा मद्य-लाने के लिए सैरंध्री को कीचक के प्रासाद में भेजती मर्यादावादी कवि की सद्‌गृहस्थ नारी मद्य-पात्र का र नहीं कर सकती थी, अतः इस प्रसंग के चित्रण के लिए बल्ल गज युद्ध के चित्र की योजना की गई। दूसरे, महाभारत अनुसार विराट की सभा में कीचक द्वारा सैरंध्री का अपः किए जाने के समय सभा में युधिष्ठिर के साथ भीम उपस्थित थे। सैरंध्री काव्य में इस स्थल पर भीम को दिखला कर कवि ने उनके चरित्र की रक्षा की है। तीः परिवर्तन गुप्तजी ने कीचक-वध के अवसर पर किया है। म भारत की सैरंध्री कीचक-वध पर प्रसन्न दिखलाई गई किंतु मानव गरिमा के प्रस्तोता गुप्तजी की सैरंध्री के ह में इस अवसर पर कीचक के लिए भी ममता जाग जाती

यह नायिकाप्रधान वर्णनात्मक खंड काव्य है। इस नायिका सैरंध्री और प्रतिनायक कीचक है। इस काव्य पात्रों विशेष कर सैरंध्री के चरित्र-चित्रण के लिए कवि वैषम्य पद्धति, वर्णन, संवाद या नाटकीय परिस्थितियों आश्रय लिया है। रस की दृष्टि से इसका अंगीरस करुण इस काव्य की रचना का प्रारम्भ तो सन् १९०१ में हो ग था किंतु प्रकाशन सन् १९२७ में हो सका।

स्वदेश-संगीत

१९२५ ई० में प्रकाशित 'स्वदेश-संगीत' गुप्तजी के ६५ राष्ट्रवादी गीतों का संग्रह है। कवि की राष्ट्रीयता आरम्भ में उदार, सुधारवादी एवं अनुग्र थी। अत: ये गीत राष्ट्रवाद की प्रार्थनात्मक अभिव्यक्ति हैं, उनमें संघर्ष और आक्रोश का स्वर अनुदात्त है। सामयिक राजनीतिक चेतना और समाज-सुधार की भावना से लिखी गयी इन रचनाओं के पीछे पुनरुत्थानवाद की प्रवृत्तियों की प्रेरणा प्रमुख है, अतः विचार उदार, कल्पना सौम्य एवं स्वर मंद्र है।

बारह वर्ष की अवधि में रची गयी इन कविताओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—गांधीजी के राजनीतिक मंच पर प्रकट होने से पूर्व लिखी गयी रचनाएँ और उनके नेतृत्व-काल में लिखी गयी रचनाएँ। प्रथम वर्ग की कविताओं के विषय हैं—भारत की वन्दना, देश का प्राकृतिक सौंदर्य, धन-संपदा, संस्कृति, पर्व-त्यौहार, अध्यात्म, पूर्वजों के शौर्य, त्याग और बलिदान की प्रशस्ति। प्रार्थना-परक गीतों में ईश्वर से देशोद्धार तथा देशोत्थान की प्रार्थना की गयी है, तो महाशक्ति से शक्ति का वरदान मांगा गया है। कुछ गीतों में देशवासियों को मोह-निद्रा से जागने और निराशा एवं आलस्य त्याग पुरुषार्थ एवं उद्यम के मार्ग पर चलने का उद्बोधन दिया गया है—

उठो, सींचते हो जिसको क्यों उसे नहीं बोते हो !

कुछ कविताओं में सामाजिक ह्रास के प्रति क्षोभ व्यक्त करते हुए सामाजिक कुरीतियों—अल्पवय में विवाह, वृद्ध-विवाह, छुआछूत आदि को त्यागने का परामर्श दिया गया है।

गांधी के नेतृत्व-काल में लिखी गयी रचनाओं के विषय हैं—सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, हरिजन-उद्धार, साम्प्रदायिक एकता, स्वदेशी आदि। कवि निज भाषा, भाव और वेश अपनाने का आग्रह करता है तथा अफरीका-प्रवासी भारतीयों के प्रति संवेदना प्रकट करता है। एक ओर ध्वज-वंदन करते हुए कामना की गयी है कि मातृ-मंदिर का झंडा कभी न झुके तो दूसरी ओर विदेशी शासन की शोषण-नीति पर आक्रोश व्यक्त किया गया है। नारी के प्रति गुप्तजी संवेदनशील ही नहीं रहे हैं, उन्होंने उसकी शक्ति को भी पहचाना है और उसका आह्वान किया है—

हे माताओ आओ, उठकर हमें उठाओ।

कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जो गुप्तजी के मानवतावाद, समन्वय भाव, कर्मण्यता, आत्मनिर्भरता जैसे सार्वभौम सिद्धान्तों पर लिखी गयी हैं। वह मानव-सेवा को सर्वोपरि धर्म मानते हैं तथा पूर्व एवं पश्चिम, भौतिकता और अध्यात्म का समन्वय चाहते हैं।

ये गीत केवल बाह्याकार की दृष्टि से गीत हैं, वस्तुतः वे विषयप्रधान पद्य-रचनाएँ हैं। भावात्मक होते हुए भी वे वर्णनात्मक अधिक हैं। दो रचनाएँ रूप-शिल्प की दृष्टि से अन्य रचनाओं से भिन्न हैं—बंगला के त्रिपदी छंद में लिखी 'ब्रह्मचर्य' और अन्योक्तिपरक 'काले बादल' जिसमें बादल के माध्यम से काले रंग वाले भारतीयों का गुणगान किया गया है।

स्वस्ति और संकेत

यह ऐसी कविताओं का संग्रह है जो कवि के निधन के उपरान्त १९८३ में प्रकाशित हुआ। ये कविताएं इससे पूर्व पुस्तकाकार-रूप में प्रकाशित नहीं हुईं। यद्यपि इनमें से अनेक कविताएं कवि के काराजीवन में लिखी गयी थीं परंतु उसमें अनेक काल-खण्डों की रचनाएं हैं जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपी थीं; कुछ ऐसी भी हैं जो पहले कभी नहीं छपीं। अत: इस संग्रह का ऐतिहासिक महत्त्व भी है।

राष्ट्रकवि का काव्य-पटल अत्यन्त विशद रहा है। उनकी रचना-प्रवृत्तियों के वैविध्य को देखकर हम आश्चर्य-विमुग्ध हो उठते हैं। यह संग्रह पुनः हमें इस वैविध्य की ओर आकृष्ट करना है। इसमें राष्ट्रीयता और देशप्रेम के गीत हैं जैसे विजय पताका फहरे अथवा जय-जय भारतमाता; थोड़ी देर के लिए मार्मिक संवेदन से अवसन्न कर देने वाली कविताएँ भी हैं जैसे 'अब वे वासर बीत गये', यहाँ आपको कला की मार्मिक परिभाषा 'कला' शीर्षक कविता में मिलेगी, अतीत का गौरवगान और उद्बोधन पहले ही गीत 'उठ, ओ वृहद्, विराट् विशाल' में उपलब्ध होता है; गांधी, चरखा, छुआछूत, सत्याग्रह और अहिंसा से सम्बद्ध कविताओं में युग का प्रभाव दृष्टिगत होता है और भविष्य का सपना 'विश्व-राज्य' में देखा गया है। अतीत का गौरवगान कर कवि उससे प्रेरणा लेने का आह्वान करता है, तो भविष्य के निर्माण के लिए 'उलटी चाल बदलने और मिथ्या विश्वास न पूजने' का

परामर्श देता है। वह ऐसे भविष्य की कल्पना करता है जहाँ समता होगी, जब श्रम और उद्यम पुरस्कृत होंगे, विश्व-बंधुत्व की भावना से सब एक हो जाएंगे और सर्वत्र सत्यं, शिवं और सुंदरम् का सामंजस्य होगा। वह वैज्ञानिकों से विज्ञान की शक्तियों का प्रयोग मानव-कल्याण के लिए करने का आवाहन देता है (अणु), शक्तिशालियों को क्षमा का मार्ग अपनाने और नासमझों को यह समझाने की चेष्टा करता है कि सारा विश्व एक है, भिन्न होते हुए भी हम एक-दूसरे के पूरक हैं, अतः विग्रह व्यर्थ है। कुछ स्फुट रचनाओं में ज्ञान-भक्ति, दुःख, कर्मण्यता, कष्टसहिष्णुता आदि पर विचार व्यक्त किये गये हैं। जिन रचनाओं में मानव-कल्य का भाव निहित है उन्हें 'स्वस्ति' भाव की कविताएं अ जिनमें उसके लिए सुझाव दिये गये हैं उन्हें 'संकेत' कहा सकता है।

यद्यपि लोक-काव्य के प्रति रुचि 'साकेत' के कुछ गी की धुनों में भी परिलक्षित होती है, पर उत्तर-काल में व लोक-काव्य की ओर विशेष आकृष्ट हुए थे। इस संग्रह कुछ कविताएं बुंदेलखंडी लोक-गीतों की धुनों और छंदो लिखी गयी हैं।

हिडिम्बा

मैथिलीशरण गुप्त की 'रक्षः कुल' (राक्षस वंश) में जन्मी वैष्णवी हिडिम्बा महाभारत की वही हिडिम्बा है जो भीम की पत्नी और घटोत्कच की माँ थी। महाभारत के अनुसार लाक्षागृह से सुरक्षित बचकर पाण्डव गंगापार करते हुए एक भयानक वन में आए। युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम जल लेने के लिए चले गए और इधर पांडव थकावट के कारण सो गए। भीम अपने भाइयों एवं माता कुंती को सोता देखकर पहरा देने लगे। मनुष्यों को सोता देखकर वन में निवास करने वाले एक राक्षस ने भक्षण हेतु उनके वध का विचार किया। उनका वध करने के लिए उसने अपनी बहिन हिडिम्बा को पांडवों के पास भेज दिया किन्तु हिडिम्बा भीम की बलिष्ठ देह तथा रूप को देखकर काम-भाव से भर गई; साथ ही वह उसे अपना पति भी मान बैठी। अतः वह मानुषी रूप धारण कर भीम के पास पहुंची। भीम भी उसकी ओर आकृष्ट हुए। घटोत्कच की उत्पत्ति के लिए ही महाभारत में भीम और हिडिम्ब के युद्ध, हिडिम्ब की मृत्यु, भीम के साथ हिडिम्बा के विवाह और घटोत्कच के जन्म की नियोजना की गई है।

गुप्तजी के 'हिडिम्बा' काव्य का प्रकाशन सन् १९५० में हुआ था अर्थात् देश की स्वतंत्रता के पश्चात्। इसीलिए इस काव्य में कवि ने नारी के आदर्श, आर्यत्व की स्थापना तथा समसामयिक विचारधारा यथा अन्तर्जातीय विवाह को आधार बनाया है। महाभारतीय कथा की मूल संवेदना को यथावत् बनाए रखते हुए भी इस काव्य में अपेक्षित परिवर्तन किए गए हैं। महाभारत में हिडिम्ब अपनी बहिन हिडिम्बा को पाण्डवों के वध के लिए भेजता है। 'हिडिम्बा' में वन के कष्टों के संबंध में विचार करते हुए भीम पायल की ध्वनि सुनते हैं और देखते हैं :

दीख पड़ी सुंदरी समक्ष एक उनको
उत्थित वसुंधरा से रत्नों की शलाका थी
किंवा अवतीर्ण हुई मूर्तिमती राका थी।

और दोनों बातचीत करने लगते हैं। दोनों के संवा में शिष्टता और नागर भाव होते हुए भी कुछ इस तर की मीठी चुटकियां हैं मानो यह संलाप दो अपरिचितों का होकर दो प्रेमियों का पारिवारिक संलाप हो।

'हिडिम्ब' की हिडिम्बा राक्षसी नहीं है क्योंकि प्रिय प्रिय उसके लिए दुगने प्रिय हैं। महाभारत की हिडिम्बा मा कामविह्वला है किंतु यह हिडिम्बा मात्र इन्द्रिय-भोग व इच्छुक नहीं है। वह तो पारिवारिक स्नेह, समर्पण, त्या प्रेम और नारीत्व की मूर्ति है। कवि ने मनोविज्ञान का आश्र लेते हुए पांडवों तथा कुंती को भी हिडिम्बा के प्रति आकर्षि दिखाया है। पांडव देखते हैं कि भीम पर आक्रमण कि जाते समय हिडिम्बा उसका विरोध करती है। वे 'आगे मुझ मार' जैसे प्रतिरोधात्मक वाक्य भी सुनते हैं। 'हिडिम्बा' हिडिम्ब बहिन को भीम के सामने से हटाकर प्रहार करता और द्वन्द्वयुद्ध में भीम उसका वध कर देते हैं।

महाभारत का हिडिम्ब अन्त तक बहिन पर कुपि रहता है और हिडिम्बा मौन रहती है, किंतु इस काव्य हिडिम्ब उसे आशीर्वाद देता है—

बहिन सुखी हो वर तूने योग्य ही चुना।

और भाई के मरने पर हिडिम्बा भी बिलख उठती है—

हाय भैया ! किसने तुम्हारी रीढ़ तोड़ दी ?
खींची अनुजा ने सांस अग्रज ने छोड़ दी !

इसके बाद महाभारत के भीम अपने भाइयों के साथ

वारणावत के लिए प्रस्थान करते हैं और हिडिम्बा के अनुसरण करने पर उसके वध का प्रस्ताव करते हैं जिसे युधिष्ठिर अस्वीकार कर देते हैं। किंतु गुप्तजी के भीम हिडिम्ब के साथ युद्ध करते हुए क्रुद्ध हो गए, इसी कारण वे हिडिम्बा के पूर्व प्रेम भाव को भूलकर कह उठते हैं—

भगिनी भी संग जायगी क्या भाई के।

यह कथन सहज, स्वाभाविक, सात्विक और समयानुकूल ही है, इसीलिए यहाँ भीम के कथन के उत्तर में प्रसंग वक्रता की नियोजना हुई है—

अम्ब अम्ब, आर्य आर्य, आज्ञा मिले जावे भीम
दुर्योधन की भी यही दुर्गति बनावे भीम
मेरा पुरस्कार यही न्याय का निदेश हो
राज्य धर्मराज का हो, निष्कंटक देश हो।

इस प्रसंग को और अधिक स्वाभाविक बनाने के लिए युधिष्ठिर कह उठते हैं "भद्रे हम निज को छिपाए हुए हैं अभी।" हम तुझे मारना तो नहीं चाहते किंतु भयभीत हैं कि भेद न खुल जाए। इस पर हिडिम्बा उन्हें आश्वस्त करती हुई स्वयं दुर्योधन से युद्ध करने का प्रस्ताव रखती है। इस काव्य में कवि ने हिडिम्ब के दाह-संस्कार की योजना कर वातावरण को शोकमय तथा अधिक पारिवारिक बना दिया है। हिडिम्बा पांडवों के निवास की व्यवस्था कर, कुंती से आज्ञा लेकर तीन दिन का शोक मनाने के लिए चली जाती है। महाभारत में यह प्रसंग नहीं है। तीन दिन बाद आकर वह कुंती का निर्देश जानना चाहती है। क्योंकि—

न्याय से उन्हीं पर न भार मेरा सारा है
रक्षक जिन्होंने एक मात्र मेरा मारा है।

इस तरह यहाँ हिडिम्बा राक्षसी और सर्वसमर्थ न होकर असहाय नारी है। और उत्तर में कुंती जब कह देती हैं "किंतु हम मानव हैं और तुम।" तो वह होंठ काटकर तुरन्त स्वीकारती है "राक्षसी" अर्थात् छोटी जात, अछूत, अस्पर्श्य, हीन जाति आदि किंतु साथ ही वह कुंती के आर्यत्व को जगाते हुए अपने को स्वीकार किए जाने के संबंध में तर्क भी देती है—

यदि तुम आर्य हो तो दो हमें भी आर्यता
अपनी ही उच्चता में कैसी कृतकार्यता।

और जब हिडिम्बा पुलोप्नजा (इन्द्राणी) तथा शर्मिष्ठा आदि राक्षस-कन्याओं का हवाला देने लगती है तब तो कुंता निरुत्तर होकर युधिष्ठिर से परामर्श करती हैं और उसे पूर्ण काम होने का आशीर्वाद दे देती है। इतना ही नहीं, इसी प्रसंग में कुंती हिडिम्बा का हाथ भीम के हाथ में न देकर भीम का पाणि हिडिम्बा को ग्रहण करा देती हैं। इसी संदर्भ में कवि ने हास-परिहास का भी अवसर निकाल लिया है।

महाभारत के कथाक्रम का अनुसरण करते हुए भी कवि ने इस काव्य में अतिप्राकृत या अवैज्ञानिक तथ्यों से बचने की चेष्टा की है। यह नायिका-प्रधान खंडकाव्य है। इसकी नायिका हिडिम्बा और नायक भीम हैं। अन्य पात्रों में युधिष्ठिर, अर्जुन, कुंती, हिडिम्बा और नकुल भी यथा-प्रसंग चित्रित हैं। भीम का चरित्र मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत है। वह मातृभक्त, वीर एवं साहसी है। युधिष्ठिर इस काव्य में आदर्श मानव के साथ-साथ कूटनीतिज्ञ भी है। कुंती के चरित्र में महाभारत वाली कुंती जैसी गरिमा, कुलीनता और स्वाभिमान के दर्शन तो होते ही हैं, साथ ही इस काव्य में वह अधिक उदार, तार्किक, समझौतावादी ही नहीं, हास-परिहास करने वाली महिला भी है।

इस काव्य में कवि ने हिडिम्बा के चरित्र को अत्यन्त उच्च धरातल प्रदान किया है। उसमें पारिवारिक स्नेह, अधिकार-भाव और तार्किकता है। यह ठीक है कि महाभारत की हिडिम्बा अनार्या, अशिक्षित और वनचरी होने के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ेपन की मूर्ति प्रतीत होती है किंतु गांधीवादी विचारधारा के संस्पर्श ने उसके चरित्र को युगानुरूपता प्रदान की है। इसी कारण गुप्तजी की हिडिम्बा अनार्य न होकर आर्य है और राक्षसी न होकर वैष्णवी है।

हिंदू

'भारत-भारती' और 'हिंदू' के प्रकाशन (१९२७ ई०) में यद्यपि १५ वर्ष का अन्तराल है तथापि 'हिंदू' एक प्रकार से 'भारत-भारती' का ही परिशिष्ट कहा जा सकता है क्योंकि दोनों का प्रतिपाद्य लगभग एक है—प्राचीन गौरव का स्मरण कराकर तथा वर्तमान की दुर्दशा की ओर ध्यान आकृष्ट कर भविष्य को उज्ज्वल बनाने का उद्‌बोधन देना। 'भारत-भारती' की ही तरह कवि ने 'हिंदू' में उपशीर्षकों के अन्तर्गत पद्य लिखे हैं—हाँ, 'भारत-भारती' में विषय-सूची नहीं है जबकि 'हिंदू'

में यह सूची पुस्तक के आरंभ में ही दे दी गयी है। विषय भी लगभग समान हैं—सामाजिक, धार्मिक और जातीय। कवि ने यहाँ भी सामाजिक कुरीतियों—छुआछूत, विधवा, बाल-विवाह, जाति-बहिष्कार, अपव्यय, रूढ़िवादिता, कलह, फूट, आदि और उनसे उत्पन्न जड़ता, व्यक्तिगत निश्चेष्टता, आलस्य, धार्मिक असहिष्णुता, जातीय अनुदारता की ओर ध्यान आकृष्ट कर उनसे मुक्त होने, स्वावलंबी बनने, कर्म और पुरुषार्थ का मार्ग अपनाने का उद्‌बोधन दिया है। एकता पर बल देते हुए वह ईसाई, पारसी, मुसलमान सबसे एकसूत्र में बंधने का आग्रह करता है। पर्वों और त्योहारों का महत्त्व बताकर वह विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति करता है। उसमें एक ओर राष्ट्र की चिंता है और दूसरी ओर हिंदू जाति एवं धर्म की रक्षा का भाव। हिंदू का कवि साम्प्रदायिव दंगों, हिंदुओं के धर्म-परिवर्तन और हिंदू जाति की अपनी दुर्बलताओं से पीड़ित और चिंतित है, अतः उसमें हिंदू जातीयता का स्वर अधिक मुखर है।

भारत-भारती जैसा ओजपूर्ण स्वर भी यहाँ नहीं है। इसीलिए कहा गया है कि जहाँ भारत-भारती जागरण का काव्य है, वहाँ हिंदू आग्रह और अनुरोध की रचना है, जातीय जागृति का नीतिवादी काव्य है। 'कला कला के लिए' सिद्धांत से असहमत कवि ने यहाँ भी कला की उपेक्षा की है और इतिवृत्तात्मक उपदेशवादी शैली अपनायी है, अतः यह रचना पद्य-निबंध-संग्रह ही बन पायी है।

खण्ड ३

पात्र-परिचय

अजित

अजित गाँव का एक बालक है, जिसकी माँ छुटपन में ही उसे सदा के लिए छोड़ गयीं। पिता ने माता और पिता दोनों का दायित्व स्वयं सम्हालकर उसे पाला-पोसा और कुछ पढ़ा-लिखा भी दिया। खाना-पीना और अखाड़े में लड़ना ही उसकी दिनचर्या थी। जो व्यक्ति गाँव में रहकर पेट भर खाता हो और माथा ऊँचा किये हुए आता-जाता हो, उस पर पुलिस की शनि-दृष्टि कैसे न पड़ती? चोर-उचक्का न होने पर भी उसे पकड़ लिया जाता है और एक वर्ष के लिए कारा-भोगी बना दिया जाता है।

जिस अजित ने काम के नाम पर कभी सींक तक नहीं तोड़ी थी, वही कारागृह में बैल की तरह कोल्हू में जुतता है, बान बँटता और खेत गोड़ता है। इस प्रकार उसका तन तो अवश्य सूख जाता है किंतु 'हुआ मन गीला-गीला, मैंने पड़ने दिया नहीं अपने को ढीला।' दमन का उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। डंडा-बेड़ी पड़ने से उसकी कल्पना गतिशील हो जाती है और 'जैसा-जैसा कुटा-पिसा, दृढ़ता ही आई।'

कारागार में अजित का भाँति-भाँति के लोगों से परिचय होता है। वह सभी के प्रति स्नेह, सहानुभूति तथा सहयोग का भाव बनाए रखता है। वह सभी की व्यथा-कथा ध्यान से सुनता-गुनता है—'पुनू, हुए तुम डाकू कैसे?' 'भाई तुम भी कहो तनिक तुम पर क्या बीती?' यहीं उसका परिचय क्रांति-समिति के सदस्य दादा श्यामसिंह से होता है, जो उसके भावी जीवन-प्रवाह पर गहरा प्रभाव डालते हैं। सहबन्दी भी 'ऐसा मुँह भोला' लेकर जेलयात्रा करनेवाले अजित से बहुत प्रभावित होते हैं। गले में गिन्नियाँ रखकर वित्त-बल से जेल में भी नित्य नये रस चखने वाला एक बन्दी तो अजित को अपना अनुज ही मानने लगता है और वह अपना समस्त गुप्त धन उसे सौंप देता है।

विगत जीवन की स्मृतियाँ जेल-जीवन में अजित को निरंतर सालती रहती हैं। उसे अपने उन श्रम-सहिष्णु पिता का ध्यान आता है जिन्होंने उसके जीवन में माता और पिता दोनों की भूमिका निभाई, जो बहू के प्रति भी स्नेहशील तथा उदार हैं और सब धरम-करम का भी निष्ठापूर्वक पालन करते रहे हैं। चतरा के यह कहने पर, 'लो, अब हुक्का पियो, उठो, कुछ मुँह में डालो रात बहुत हो गयी, बहू बैठी है भूखी, तुम्हें देख यों देह और भी उसकी सूखी।' वह 'हाँ रे हाँ' कह-कर उठते और बहू से कहते हैं:

> बहू, ला बेटी, पानी,
> धोऊँ मैं मुँह-हाथ, गऊ को दूँ फिर सानी।

अखाड़े की मिट्टी अंग लग जाने के कारण अजित अपनी पत्नी की उपेक्षा ही करता रहा था। कारागार में उन गोरे-गोरे हाथों की स्मृतियाँ सजग हो जाती हैं जो काँसे के थाल और फूल के कटोरे में उसके लिए कढ़ी-भात के साथ दाल-रोटी परोसा करते थे। उसे जान पड़ता है मानो वह दुखिया मुँह से कुछ बोले बिना ही सब कुछ कह देती है। वह अपनी कुललक्ष्मी को इस रूप में देखता है:

> नीची-नीची प्रश्न-दृष्टि, आँखें दूखी-सी,
> पलकें सूजी हुईं और अलकें रूखी-सी।
> कोने की-सी दीपशिखा आँगन में जलती,
> बुझती-बुझती किसी भाँति कुछ काँप सँभलती।

यह ध्यानमूर्ति कातर वाणी में अजित से निवेदन करती है, 'कहीं यहाँ से निकल चलो।' अजित केवल इतना ही कह पाता है—

> अवश आज मैं, मुझे क्षमा कर मेरी देवी।

कारागार से मुक्त होने पर उसका ध्यान सबसे पहले इसी कल्याणी की ओर जाता है 'जो सांध्य दीप ले गयी न जाने किस मंदिर में, तब से लौटी नहीं आज तक शून्य अजिर में।' स्वामिभक्त चतरा उससे कहता है—

> कक्कू गए, परन्तु आज भी मैं बैठा हूँ
> हार खेत में चैत हुए से ही पैठा हूँ।
> लोगों से तुम निभो, ढोर-डंगर घेरूँ मैं,
> जो आँखों में बसा वही घर फिर हेरूँ मैं।

हाय तुम्हारी बहू, रही इस घर की रानी,
वैसी ही मैं खोज न लूँ तो मैंने जानी ।

अजित चतरा को यह समझाकर, 'दागी को कह, कौन बाप बेटी ब्याहेगा ?' उजियारी की खोज में निकल पड़ता है । गाँव की नदी में अचानक उजियारी का पैंजना उसके हाथ लग जाता है जिससे उसे विश्वास हो जाता है कि उजियारी यहीं आकर डूब गयी । वह अपनी लक्ष्मी का अनुसरण करना चाहता है किंतु चतरा उसे रोककर कह उठता है : 'लल्लू अब घर चलो, रात हो गयी अँधेरी ।' अजित यह कहते हुए पैंजना चतरा को सौंप देता है, 'ले, उजियारी बहू रही यह चतरा तेरी ।'

अब अजित अपने को पूर्णरूपेण उस धरती-माँ को समर्पित कर देता है 'जो बंधन में पड़ी प्रतीक्षा में है मरती ।' वह यात्रा के बहाने घर से निकल खड़ा होता है और अधिकारियों को आतंकित करने को अपना धर्म बना लेता है । इस दिशा में उनकी सर्वप्रथम मुठभेड़ मुखिया के लड़के रज्जू के साथ होती है जो दुलहिन के साथ स्टेशन से घर की ओर आ रहा था । वे बहू को एक ओर हटने का निर्देश देकर रज्जू को ललकारते हैं । अजित का साथी धनराज जैसे ही रज्जू को अपनी पिस्तौल का निशाना बनाता है, वैसे ही उसकी पत्नी यह कहती हुई बीच में आ जाती है, 'प्रथम मुझे ।' वह धाड़ मारकर अजित के पैरों पर यह कहती हुई गिर पड़ती है; 'उन्हें बचाओ, उन्हें बचाओ, ईश्वर मेरे ।' रज्जू के रूप में उस नववधू के सुहाग को मिटने से बचाकर अजित यह महसूस करता है मानो उसने अपनी पत्नी का श्राद्ध कर लिया ।

अंततः अजित के हृदय में यह विश्वास घर कर लेता है कि वर्तमान पशुशासन का अंत उन आतंकवादियों से नहीं हो सकेगा जिन्हें स्वयं प्रतिपल आतंकित रहकर छिप-छिपकर अपने काम करने पड़ते हैं । यह कार्य तो दृढ़ निश्चय तथा अविचल आसन से ही सम्पन्न हो सकेगा । अतः वह संकल्प करता है—

लक्षादिक दे गया मुझे साथी बंदी जन,
मैं रचनात्मक कार्य करूँगा लेकर वह धन ।
करके सौ उद्योग नवीन प्रयोग करूँगा,
हो सकता है, सौ विपत्तियाँ भोग मरूँगा ।

इस प्रकार अजित के चरित्रांकन द्वारा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत के स्वाधीनता-संग्राम के उस क्रमिक प्रवाह को रूपायित कर दिया है, जिसका आरंभ उग्रवाद अथवा आतंकवाद में हुआ किंतु जिसकी परिणति तथा पूर्णकामता सत्य और अहिंसा—सत्याग्रह तथा सविनय अवज्ञा—पर अवलंबित गांधीवाद में हुई ।

अनंगमोहिनी

'दिवोदास' पद्य-नाट्य की नायिका अनंगमोहिनी नागजाति की राजकुमारी है । वह माता के आदेश पर अपनी सखी मंत्रि-पुत्री के साथ शिव-दर्शन के लिए काशी आती है और वहाँ तरुण-तपस्वी रिपुञ्जय को देख उसके रूप-गुण पर मुग्ध हो मन-ही-मन उसे अपना पति मान लेती है । राजा को अनुकूल पा वह शीघ्र ही विवाह के लिए सहमत हो जाती है और दोनों राष्ट्र-निर्माण का कार्य करने का व्रत लेते हैं । कवि ने इस पात्र का चरित्र-विकास न कर केवल उसकी चारित्रिक विशेषताओं—रूप-सौंदर्य, नारी-सुलभ लज्जा-संकोच, मुग्धा नारी की आसक्ति आदि का उल्लेख किया है । वह स्थिर पात्र है ।

अब्बास (काबा और कर्बला)

अब्बास, हुसैन का चचेरा भाई और दृढ़ अनुयायी था । कर्बला के युद्ध-क्षेत्र में हुसैन और उनके संगी-संबंधियों को पानी से वंचित पाकर वह फरात नदी से पानी ले आने का अत्यंत संकटपूर्ण कार्य अपने कंधों पर उठाता है । वह अपने बुद्धिबल से रक्तपात के बिना जल भरकर ले भी आता है 'पर वह कब तक त्राण तृषानल से कर पाया ?' अरबनिवासी भारतीय आर्य भी जब हुसैन और उनके साथियों के लिए प्राणों का मोल चुकाकर जल लाने का निश्चय करते हैं तब भी अब्बास ही उनका पथ-प्रदर्शन करता है और उनसे यही कहता है—

किंतु अकेले तुम्हें कहाँ मैं जाने दूँगा ?

तीसरी बार पुनः अब्बास ही कंधे पर मशक डाले हुसैन के लिए रक्त देकर भी जल पाने के लिए प्रवृत्त होता है :

घोड़ा था वा मंत्र झपट उसने जो छोड़ा,
बादल-सा दल एक ओर का तोड़ा-फोड़ा।
कौन खड़ा रह सका झेल वह झोंका तीखा ?
तिनके से अरि-बाण, बवंडर-सा वह दीखा।

वीर अब्बास पानी तो भर लेता है किंतु लौटता हुआ शत्रुओं के घेरे में आ जाता है—

करने लगे प्रहार शत्रु उस पर अंधों से,
क्रम से दोनों हाथ कटे उसके कंधों से।
शुंडहीन गजतुल्य तुंड में मशक दबाये,
वह चलता ही रहा मत्त-सा दाँत चबाये।
शोणित-निर्झर इधर-उधर देते थे झटके,
पर उस भट के प्राण चर्म-घट में घुस अटके।

शत्रु-पक्ष के प्रहार से अंततः वह मशक भी कट जाती है और पानी भल-भल कर बह जाता है। यह देखकर अब्बास की मानो छाती ही फट जाती है और वह शूरवीर 'हा' कह-कर धराशायी हो जाता है।

अबूबक्र (काबा और कर्बला)

अबूबक्र हज़रत मुहम्मद के ससुर और चिरसंगी थे। हज़रत के देहावसान के उपरांत यह प्रश्न उठा कि मुहम्मद का प्रतिनिधि किसे माना जाए ? अबूबक्र के अतिरिक्त उमर और अली इस गौरव के अधिकारी थे। उमर ने अबूबक्र के अर्थ अपने अधिकार का परित्याग किया और अली उदार तथा उदासीन थे। अतः अबूबक्र मुसलमानों के प्रथम खलीफा बने।

अभिमन्यु

अभिमन्यु पाण्डव वीर अर्जुन का पुत्र था। इसकी माता का नाम सुभद्रा और इसकी पत्नी राजा विराट की पुत्री उत्तरा थी। महाभारत के द्रोणपर्व में अभिमन्यु का वर्णन है। इस वर्णन के अनुसार ही गुप्त जी ने कहा है—

प्रस्तुत हुआ अभिमन्यु रण को शूर षोडष वर्ष का
वह वीर चक्रव्यूह भेदन में सहज सज्ञान था
निज जनक अर्जुन तुल्य ही बलवान था, गुणवान था।

तात्पर्य यह कि उसे गर्भावस्था में ही चक्रव्यूह-भेदन का ज्ञान हो गया था। अतः जब द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह का निर्माण किया और अर्जुन कहीं दूसरे स्थान पर संसप्तकों से युद्ध करने गये हुए थे, तब युधिष्ठिर के सामने चक्रव्यूह-भेदन के के लिए अभिमन्यु को भेजने के अतिरिक्त कोई चारा न था। सोलहवर्षीय अभिमन्यु युधिष्ठिर के आदेश से युद्ध में जाने को तत्पर हो गया। सारथी ने जब उसे समझाने की चेष्टा की तो 'जयद्रथ-वध' के अभिमन्यु ने लवकुश और श्रीराम का उदा-हरण देते हुए कहा—

मैं सत्य कहता हूँ सखे सुकुमार मत जानो मुझे।
यमराज से भी युद्ध को प्रस्तुत सदा जानो मुझे।

जब उत्तरा ने अपने अपशकुन की बात करते हुए उसे युद्ध से रोकने की चेष्टा की तब उसके चरित्र का एक और पक्ष भी प्रकट होता है कि वह एक आदर्श पति था। उसने उसे सान्त्वना दी, क्षत्राणी के कर्त्तव्य का ज्ञान कराया, कौरवों के अत्याचार की बात कही। इस तरह उसने आदर्श पति का कर्त्तव्य पूरा करते हुए उत्तरा को धैर्य देकर युद्धभूमि की ओर प्रस्थान किया।

युद्धभूमि में रण करते हुए अभिमन्यु की उपमा राम से दी गई है। उसने युद्ध-क्षेत्र में कर्ण के कनिष्ठ भ्राता का वध किया और कर्ण को पराजित किया। दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण से कहे गए वाक्यों से उसके वीरत्व भाव का ही नहीं उसकी सम्भाषण-शिष्टता का भी आभास होता है। उसने युद्धभूमि में लक्ष्मण और बृहद्बल का ही वध नहीं किया, दुःशासन को भी घायल कर दिया। उसके शौर्य को देखकर कर्ण भी यह कहने पर विवश हो गया था—

आचार्य देखो तो नया यह सिंह सोते से जगा
रघुवर विशिख से सिन्धु सम सब सैन्य इससे व्यस्त है
यह पार्थ-नन्दन पार्थ से भी धीर बीर प्रशस्त है।

अभिमन्यु के युद्ध से संत्रस्त होकर द्रोण ने उसके वध का उपाय सोच लिया और कृपाचार्य, कर्ण, दु:शासन, दुर्योधन, शकुनि, अश्वत्थामा तथा द्रोणाचार्य इन सात महारथियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। उसके रथ के घोड़े मर गए। उसका धनुष तलवार, आदि सब नष्ट हो गए। उसने इन सात महारथियों को एक साथ वार करने के लिए भी धिक्कारा। निहत्थे पर वार करने के कारण उन्हें पामर भी कहा। उसने आचार्य को आचार्यत्व, वीरत्व, तात के शिक्षक होने का स्मरण कराते हुए यहां तक भी कहा—"मैं पूछता हूं, वीर का रण में यही क्या धर्म है।" किन्तु आचार्य मौन थे और अभिमन्यु यह कहकर धराशायी हो गया—

हे तात ! हे मात ! जहाँ हो है प्रणाम तुम्हें वहीं
अभिमन्यु का इस भांति मरना भूल मत जाना कहीं

उक्त विवेचन से यह सिद्ध है कि अभिमन्यु वीरत्व का आदर्श है, आत्म-बलिदानी है और उसमें लोकोपकार की भावना प्रबल है। उसके कृत्य से उसके चरित्र के वीरत्व, कर्त्तव्यनिष्ठा, साहस, निर्भीकता आदि गुण स्वत: ही प्रकट हैं। उत्तरा के विलाप में उसके चरित्र के अन्य गुण यथा क्षमाशीलता, पत्नी के अनुकूल होने का भाव, रसिक, कर्मवीर आदि प्रगट होते हैं। युधिष्ठिर के शब्दों में उसके समान अन्य कोई था ही नहीं—

क्या रूप में, क्या शक्ति में, क्या बुद्धि में, क्या ज्ञान में
गुणवान वैसा अन्य जन आता नहीं है ध्यान में।

वह आज्ञाकारी, शिष्ट, बड़ों का सम्मान करने वाला था।

तात्पर्य यह है कि गुप्तजी ने 'जयद्रथ-वध' में विस्तार से तथा 'जयभारत' के युद्ध-शीर्षक में अभिमन्यु के चरित्र को एक आदर्श चरित्र के रूप में रूपायित किया है।

अम्बा

काशि-नरेश की सबसे बड़ी कन्या अम्बा की माता का नाम कौशल्या था और दो छोटी बहिनों के नाम अम्बिका और अम्बालिका थे। सत्यव्रत (भीष्म) ने अपने भाई विचित्रवीर्य के विवाह के लिए स्वयंवर में आए अनेक राजाओं को हराकर अम्बा तथा उसकी दोनों बहिनों का अपहरण कर लिया था। अम्बा साल्व राजा के प्रति आसक्त थी। वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर भीष्म ने उसे साल्व के पास भेज दिया। किन्तु साल्व द्वारा अस्वीकृत किए जाने पर अम्बा ने भीष्म को ही दोषी माना और प्रतिशोध-भाव से भीष्म के गुरु परशुराम के पास गई। परशुराम ने भीष्म को समझाने की चेष्टा की। लेकिन भीष्म ने उनका आदेश नहीं माना। अत: दोनों में भीषण युद्ध हुआ। देवताओं, पितरों और गंगा (विचित्रवीर्य की माँ) के हस्तक्षेप से यह युद्ध समाप्त हुआ। युद्ध तो समाप्त हो गया, किन्तु परशुराम न तो अम्बा और भीष्म का विवाह करा सके और न ही भीष्म का वध कर सके। अन्त में निराश होकर अम्बा ने शिव की तपस्या की और यह वर प्राप्त किया कि वह द्रुपदकुल में शिखण्डी रूप में पुनर्जन्म लेकर भीष्म से प्रतिशोध ले सकेगी। इस तरह अम्बा ने शिखण्डी-रूप में जन्म लिया और महाभारत के युद्ध में भीष्म के वध का कारण बनी। 'जयभारत' काव्य में कौरव-पाण्डव प्रसंग के अन्तर्गत अम्बा का चरित्र-चित्रण किया गया है। यह सारा चित्रण अत्यन्त संक्षिप्त तथा महाभारत की कथा के अनुसार ही है, किंतु कवि का हृदय नारी पर हुए अत्याचार को देखकर क्षुब्ध हो जाता है। इस काव्य में भीष्म-परशुराम युद्ध में जब परशुराम पराजित हो जाते हैं तो अम्बा के सामने प्रस्ताव रखते हैं।

मुनि ने कहा—'शाल्व नृप को तो कर सकता हूं बाध्य मैं' इस स्थिति में दिया गया अम्बा का उत्तर महाभारत-कालीन नारी का उत्तर न होकर आधुनिक युग की उस तर्कशील नारी का उत्तर है जिसके स्वाभिमान को पुरुष-वर्ग ने निर्ममता के साथ कुचल दिया है—

अम्बा बोली—"नहीं मानती अब उसको आराध्य मैं
मैं वह वधू नहीं, जो ऐसे निर्मम वर को भी वरूं
त्यागा मुझे स्वयं ही, जिसने, क्यों स्वीकार उसे वरूं।

इस तरह गुप्तजी ने 'जयभारत' काव्य में अम्बा के परम्परित चरित्र को एक नवीन धरातल प्रदान कर उसके चरित्र में परिष्कार किया है।

अराल (लीला)

कविकल्पित पात्र अराल राक्षस होकर भी अत्यन्त उदार, सहृदय और गुणग्राही हैं। वह मूलतः लंकानिवासी है और वैरभाव से ही भारत में प्रवेश करता है, किन्तु यहां का आध्यात्मिक वैभव, त्यागभावना तथा परमार्थपूर्ण परिवेश उसे मुग्ध कर लेता है और भारत का यह शत्रु अनन्य भारत-भक्त बन जाता है। उसी के शब्दों में—

रक्खा है जबसे यहां पैर
मैं हुआ और का और आप।

अराल में यह असामान्य परिवर्तन देखकर उसके साथी देशवासी कराल को अत्यन्त खेद होता है और वह फिर उसके हृदय में स्वदेशप्रेम और स्वाभिमान जगाने का उपक्रम करता है :

क्या धरा यहाँ, बस है विरक्ति,
क्या अपनी-सी है कहीं शक्ति ?
मनुजों की तो क्या तुच्छ बात
सुर कम्पित हैं दिन और रात
सेवक से हैं मारुत, कृशानु,
बन्दी सम हैं ग्रह चन्द्र-भानु,
रखते हैं सब सिर पर निदेश,
अपना जैसा है कौन देश ?

किन्तु अराल ने भारत तथा लंका का मूलभूत अन्तर भली-भाँति समझ लिया है :

वह कहाँ लूट का विभव-पुंज
यह कहाँ सहज शोभा-निकुंज···

इस गौण राक्षस पात्र के माध्यम से राष्ट्रकवि ने स्वदेशाभिनन्दन का अनोखा अवसर ढूंढ निकाला है।

अर्जुन

अर्जुन महाराज पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र थे तथा इन्द्र के द्वारा कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वह युधिष्ठिर के अनुज, कृष्ण के मित्र, द्रौपदी, सुभद्रा, उलूपी और चित्रांगदा के पति थे। इनके पुत्रों का नाम श्रुतकीर्ति, अभिमन्यु, इरावान तथा बभ्रुवाहन था। इन्होंने महाभारत के युद्ध में जयद्रथ, कर्ण आदि वीरों का वध किया था और कृष्ण का दाह-संस्कार भी किया। अर्जुन राजर्षि शुक, कृपाचार्य तथा द्रोणाचार्य के शिष्य थे। महाभारत तथा राजसूय यज्ञ की समाप्ति के बाद उत्तरा के पुत्र परीक्षित को राज्य-सिंहासन सौंपकर वह अपने भाई युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव के साथ देह-त्याग के लिए हिमालय पर चले गए थे।

महाभारत के अर्जुन एक स्थिर पात्र हैं। वह दिव्य वीरत्व के प्रतीक और कृष्ण-सखा हैं। उनके मूल चरित्र में परिवर्तन करना सम्भवतः कवियों को अभिप्रेत नहीं रहा है। गुप्तजी के काव्यों में 'जयद्रथवध' के अर्जुन कृष्णाश्रित हैं। 'वन-वैभव' में वह युधिष्ठिर की आज्ञा का पालन कर चित्ररथ को पराजित कर कौरवों का उद्धार करते हैं। 'जयभारत' के एक अन्य प्रसंग में एकलव्य के शौर्य से उनके अभिमान को धक्का लगता है और परीक्षा के प्रसंग में "अर्जुन ने जो किया कर्ण भी कर सकता है"—सुनकर क्रुद्ध हो जाते हैं। हां, लक्ष्य-वेध प्रसंग में द्रौपदी द्वारा उनके गले में जयमाला डालने पर उनमें सरसता लक्षित होती है किन्तु द्रौपदी-पति होने से पहले वह निज धर्म-देव सेवी और मां की आज्ञा के पालक हैं। अतः वह अपनी पत्नी द्रौपदी के देवर बन जाते हैं—

"मैं कृष्णा को लाया भर हूँ, परिवेत्ता नहीं सुदेवर हूँ।"

वह नियम-पालक हैं इसीलिए वह इस नियम का पालन करने के लिए १२ वर्ष के लिए वनवास चले जाते हैं—कि यदि द्रौपदी के साथ एकान्त में कोई एक पांडव निवास कर रहा होगा तो दूसरा उस स्थान पर नहीं जा सकता, अन्यथा उसे बारह वर्ष के लिए वनवास जाना होगा।

अर्जुन कृष्ण के सखा कम, भक्त अधिक हैं। सुभद्रा-प्रसंग में वह कृष्ण से कह उठते हैं—

रस-विष जो हो, उसे तुम्हीं ने है भरा
मिट्टी का घट मात्र तुम्हारा मैं खरा।

उर्वशी-प्रसंग में अर्जुन द्रौपदी का स्मरण तो करते हैं परंतु हैं वे तटस्थ, वीत-राग, क्लीव से। इसीलिए प्रणययाचिका उन्हें क्लीवता का शाप दे देती है। स्वर्ग से लौटने पर द्रौपदी-

अर्जुन संवाद में अर्जुन की सरसता का संकेत तो मिलता है किंतु द्रौपदी के यह पूछने पर कि तुमको सुरपुर कैसा भाया, अर्जुन का धरती के प्रति मोह प्रकट हो जाता है—

ईश्वर की ईश्वर ही जाने वहाँ अनोखी माया
पर मैं पृथ्वीपुत्र, अन्त में जगती ही गति मेरी।

बृहन्नला रूपी अर्जुन और उत्तर के संवादों में उनकी वीरता और कर्त्तव्य-परायणता के दर्शन होते हैं और 'रण निमंत्रण' प्रसंग में तो वह हैं ही कृष्ण के भक्त। 'अर्जुन का मोह' प्रसंग और गीता का उपदेश 'युद्ध', 'स्वर्गारोहण' प्रसंग में भी अर्जुन का चरित्र स्थिर और महाभारत के समान ही है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुप्तजी के काव्यों में अर्जुन का चरित्र महाभारत के अर्जुन के समान ही है। वह आज्ञापालक, शौर्य, वीरता के आदर्श और आदर्श योद्धा हैं हाँ, अभिमन्यु की वीरता और उसके वध के प्रसंग में गुप्तज ने अर्जुन के द्वन्द्व को चित्रित करने का अवश्य प्रयत्न कि है। 'जयभारत' में बृहन्नला-रूप में उत्तर के सामने बाल अभिमन्यु के शौर्य का वर्णन—

होता कहीं सुभद्रा-नंदन यदि अभिमन्यु यहाँ इस काल।
तो यह अभी जान लेते तुम, कितना साहस रखते बाल।

तथा जयद्रथ-वध में अभिमन्यु के वध के समाचार से मूर्च्छि होने अथवा श्रीकृष्ण के उत्तर दिशा की ओर संकेत कर ही उत्तरा के शोक से अभिभूत हो जाने के प्रसंगों में अर्जु अवश्य ही दिव्यता के धरातल से कुछ नीचे उतरते दिखला पड़ते हैं।

अर्णोराज

अर्णोराज 'सिद्धराज' का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है। ऐतिहासिक दृष्टि से वह अजमेर राज्य का राजा था।

आज भी अनूप आना सागर है जिसका,
युवक सवाई धनी था सपादलक्ष का।

राजसिंह ने सपादलक्ष को जीतकर अर्णोराज को बंदी बना लिया था।

सिद्धराज काव्य के चार प्रसंगों में उसकी शिष्टता, नम्रता, साहस, विचारों की दृढ़ता, वीरोचित दर्प आदि गुणों के दर्शन होते हैं। मीनल दे के सामने लाए जाने पर वह उन्हें अपने कुल की वृद्धा मानकर प्रणाम करता है। उसका कथन है—

किंतु ऐसा हीन यह बच्चा नहीं आपका
मृत्यु-भय से भी कहीं हीनता दिखावे जो।

मंत्री मेहता जब राजातिथि के रूप में उसके निवास की व्यवस्था करते हैं तो वह कह उठता है—तो मैं अविश्वासी नहीं सिद्ध हूँगा आपका। कांचन दे के चिन्तन में अर्णोराज के चरित्र की रेखाएँ अत्यन्त स्पष्ट हो गई हैं—

कितना अभीत वह कितना विनीत है
कैसा भद्र कैसा भला और कैसा भोला है।
दीप्त भाल, काले बाल, नयन विशाल क्या
भृकुटी कुटिल और नासा क्या सरल है
लाल-लाल होंठ हँसना ही सदा चाहते
किंतु बीच-बीच में कठोरता झलकती।
हाथ लंबे-लंबे और वक्ष चौड़ा-चौड़ा है
डग हैं अडग जैसे धरती दबाए से
होकर अकेला भी विपक्षियों के बीच में
कहता है कैसे अनायास बात अपनी
हारा, किंतु आनबान हारी नहीं उसने
वाणी अर्थपूर्ण अहा! स्वर क्या गभीर है,
मानो किसी अन्य की अपेक्षा नहीं उसको
मानो परिपूर्ण वह आप अपने में ही।

इसलिए कांचन दे उसे हृदय दे बैठती है। भट्टकाक प्रसंग में भी अर्णोराज विनीत और सहृदय है। वह कांच दे के प्रति आसक्त भी है। उसका स्वाभिमान, वीरत्व भ और तर्कशीलता मुंजाल मेहता से वार्तालाप में स्पष्ट है उसका कथन है—"करद न हूँगा, मित्र होकर रहूँगा मैं। मुंजाल के समझाने पर वह कह उठता है—

किंतु किसी दृष्टि से भी कोई क्यों न देख ले,
हार नहीं मानता मैं व्यक्तिगत रूप से।

उसे राज्य से अधिक स्वतंत्रता और मन की स्वतंत्र की चिंता है। वह राजा जयसिंह की दया-स्वरूप स्वतंत्रता व कामी नहीं है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सिद्धराज काव का अर्णोराज शारीरिक रूप से ही सुंदर नहीं है बल्कि व साहसी, वीर, चरित्रवान तथा मनस्वी युवक है।

अली (काबा और कर्बला)

अली हज़रत मुहम्मद के चाचा अबूतालिब के पुत्र थे। वह उनके जामाता भी थे, क्योंकि उनकी पुत्री फातमा का विवाह अली के साथ हुआ था। हसन और हुसैन इन्हीं दंपति के पुत्र थे।

हज़रत मुहम्मद के देहावसान के उपरांत यह प्रश्न उपस्थित होने पर कि उनका प्रतिनिधि कौन माना जाए मुहम्मद साहब के श्वसुर अबूबक्र को इस पद (खलीफा) के लिए चुना गया और अबूबक्र ने कालांतर में अपना यह पद उमर को प्रदान किया। उमर को लोक में अतुल जयकीर्ति मिली किंतु 'एक बद्ध रिपु हुआ उमर का हत्याकारी।' तदनंतर उसमान अरब के खलीफा हुए परंतु वह भी सबके विश्वासपात्र न बन सके और 'निहित हुए उसमान आप अपनों के द्वारा।'

अरब जाति को आत्मकलह ने घेर लिया और लोगों ने जाति-रक्षा के लिए अली की सहायता चाही। धर्म के संकट से बाध्य होकर अली अनिच्छा पूर्वक खिलाफत-भार स्वीकार करते हैं किंतु वस्तुस्थिति इतनी बिगड़ जाती है कि लोग यही समझने लगते हैं कि उसमान की हत्या में अली का हाथ है। उसी समय साम का सामंत मुआविया शक्ति अर्जित करके केवल स्वतंत्र ही नहीं हो जाता, अपने को खलीफा भी घोषित कर देता है। इसके परिणामस्वरूप अली और मुआविया के पक्षधरों के बीच भयंकर गृह-युद्ध होता है। विजय की ओर बढ़ते अली अकस्मात् पराजित हो जाते हैं और मसजिद में ही एक दिन उनकी हत्या कर दी जाती है।

अश्वत्थामा

कृपी के गर्भ से उत्पन्न द्रोणाचार्य का पुत्र। इसने द्रोणाचार्य से ही शस्त्र-शिक्षा प्राप्त की थी। इसने युद्ध में पांडव-पक्ष के अनेक वीरों का वध किया था। अपने मामा कृपाचार्य से अपने पिता द्रोणाचार्य के वध की सूचना प्राप्त कर इसने पांडवों को मारने की प्रतिज्ञा की थी। इसने नारायण अस्त्र प्राप्त किया था तथा कर्ण के मरने के बाद दुर्योधन को संधि का परामर्श भी दिया था। महाभारत युद्ध में इसे कौरव सेना का सेनापति भी बनाया गया था। उल्लू का कौवों पर आक्रमण देखकर इसने छिपकर पांडवों पर आक्रमण करने की योजना बनायी थी। इस कृत्य में इसके सहयोगी कृतवर्मा तथा कृपाचार्य थे। इसने शिव की तपस्या करके उनसे दिव्य खड्ग प्राप्त किया था। इसने सोते हुए पाञ्चालों, सोमकों और द्रौपदी के पुत्रों का वध करके अपनी विजय का समाचार दुर्योधन को दिया था। वह दुर्योधन की दुर्दशा पर अत्यंत शोकाकुल हो गया था। श्रीकृष्ण से अभिशप्त होकर और पांडवों को मणि देकर वह वन को चला गया था। महाभारत के अश्वत्थामा के चरित्र की विशेषताएँ यह हैं कि वह उद्भट वीर, उत्साही, साहसी, मैत्रीपालक एवं उदार है किंतु छिपकर पांडवों पर आक्रमण करने के कारण उसका चरित्र कलंकित हो गया।

जयभारतकार गुप्त जी के अश्वत्थामा का चरित्र भी महाभारत के समान ही है किंतु हत्या के प्रसंग में उन्होंने कहा है—"अश्वत्थामा को नींद कहाँ, चिंतित था वह प्रतिकर्मा।" वह कोरे आदर्शवाद का पक्षधर नहीं है। वह पाप-पुण्य का ज्ञान न रखकर केवल प्रतिशोध की आग में जल रहा है, वह चाहे जैसे भी हो 'किंतु सिद्ध हो आज साध्य ही मेरा' का विश्वासी हो गया है। उसका कथन है—

मारें कल मुझको राम, आज मैं राक्षस बन जाऊँ
नख से शिख तक निज शत्रुजनों के शोणित से सन जाऊँ

गुप्तजी ने अश्वत्थामा को अंतर्द्वन्द्व से ग्रसित दिखलाकर एक सीमा तक उसके चरित्र को परिष्कृत किया है।

इउडोसिया

इउडोसिया रोम-राजनंदिनी है। जोनस नाम का युवक इस सुंदरी पर आसक्त है। इसके साथ गठबंधन करके वह कृतकृत्य हो जाना चाहता है, किंतु अकस्मात् दमिश्क पर अरबों का आक्रमण हो जाने के कारण उसे यह सपना टूटता-सा जान पड़ने लगता है—

मैंने यह जीवन का स्वप्न एक देखा था
केवल इसीलिए क्या, जागकर तरसूँ,
और निज मृत्यु की भी शांति गमा बैठूँ मैं ?

इउडोसिया भी जोनस से प्रेम करती है। वह उसे विश्वास दिलाती है कि जो उसका अर्जन है उसे कोई छल या बल से हर नहीं सकेगा। किंतु जिस समय देश बाहरी आक्रमण से आक्रांत होकर प्राणपण से आत्मरक्षा में सन्नद्ध हो, उस समय उसे कामियों के कातर क्रंदन उचित नहीं लगते। इस वीरांगना की यही कामना है कि मेरे भावी पति भी स्वदेश के संकट निवारण में वीरोचित भाग लें।

जोनस इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इउडोसिया की आकांक्षा के विरुद्ध वह सीरियन लोगों के निराशा-निरुत्साह का प्रतीक बन जाता है। इतना ही नहीं, वह तो इउडोसिया को भी उसके उच्चादर्श से गिरा देना चाहता है। वह चाहता है कि इउडोसिया भी स्वदेश की पराजय को ईश्वर की इच्छा मानकर धैर्यपूर्वक उसके साथ रह कर अपना घर बसा ले।

यह कायरतापूर्ण प्रस्ताव सुनकर इउडोसिया मुख ऊँचा करके खेदपूर्वक जोनस से कहती है—

ईश्वर की इच्छा शिरोधार्य करके ही मैं
जा रही हूँ, जानता वही है, कहाँ जाना है;
आप मैं न जानती न पूछती हूँ कुछ भी।

उसे अपने ईश्वर पर भी पूर्ण आस्था है और अपने ध
पर भी। इस्लाम स्वीकार कर लेने वाला जोनस उसे
मुसलमान बना लेना चाहता है। वह इस संबंध में कि
विवाद या गुण-दोष विवेचन में न पड़कर अपने धर्म के प्र
अविचल बनी रहती है : "जो हो, मुझे मेरा मत मान्य है
धर्म-परिवर्तित जोनस को तो वह घृणा की दृष्टि से
देखती है :

मैं सुन चुकी हूँ, पर-धर्म्म लिया तुमने
देखती हूँ आप अब छाप यह उसकी,
चूम रही ठोढ़ी जो तुम्हारी यह छोटी-सी
दाढ़ी, पहले ही यह पेट में छिपी थी क्या ?
मेरी कुछ हानि नहीं, तो भी जानती हूँ मैं
ग्लानि उस धर्म की भी हो न तुम जैसों से।

तुच्छ स्वार्थ-साधन के लिए जोनस वैरी-दल में
मिलता है और उनकी सहायता से स्वजनों पर आक्रमण
देता है। यह देखकर इउडोसिया दिव्य दूती-सी बन
उसका मुकाबला करती है। वह जानती है कि रोम-राजनं
आज बंदिनी है, कि जोनस के सहधर्मियों की दृष्टि में उस
मूल्य किंकरी से अधिक नहीं है, कि पक्का व्यवसायी होने
नाते जोनस अपना अर्जन छोड़ने के लिए तैयार नहीं
इसीलिए वह अपने उस प्रेमी को निराश नहीं करती—अ
करों से छुरी भोंक आप छाती में वह यह कह कर अ
देह अपने प्रणयी को अर्पित कर देती है, 'आओ वीर,
कर लो तुम निज वासना।' अपना अर्जन इस अलौकिक
में प्राप्त करके—

आहत अचेत-सा अभागा गिरा आप भी
शुष्क सैनिकों के भी दृगों में अश्रु आ गये।

उग्रसेन

उग्रसेन कंस के पिता, वृष्णि वंश के एक प्रतापी राजा और राजा कुन्तिभोज के फुफेरे भाई थे। कंस ने इन्हें बंदी बना कर राज्य हड़प लिया था। कृष्ण के पिता वसुदेव इनके मंत्री थे। कृष्ण ने बाद में कंस का वध करके इन्हें फिर से सिंहासन का भार सौंपा था। 'द्वापर' में गुप्तजी ने उग्रसेन के माध्यम से राजा-रानी पद को झूठा और त्याग-योग्य बतलाया
उनके स्वर में राष्ट्रपिता गांधी के सांत्वना स्वर, क्षमाशी
और क्रोध के परिहार का संकेत है। उग्रसेन शक्तिशाल
दयनीय बतलाते हैं। उनके अनुसार योग्य व्यक्ति को उ
अधिकार मिलना ही चाहिए अन्यथा वह क्रांति की

उन्मुख होगा—

योग्य वयस्क व्यक्ति की थाती कोई उसे न देवे
तो उसका अधिकार उसे वह बलपूर्वक ले लेवे।

उनका मत है कि समयानुसार ही काम होना चाहिए और मनुष्य में मनुष्यता का होना आवश्यक है; वह शिवहीन शक्ति के विरोधी तथा उत्साह के साथ धैर्य के पक्षधर हैं। उग्रसेन अगली या नई पीढ़ी की उन्नति के कामी भी हैं।

नये कहाँ बैठे सोचो, यदि हटे न यहाँ पुराने।

निष्कर्ष यह है कि कारागृह में बंदी उग्रसेन कारागृह में बंदी गांधी जी के समान ही हैं। उग्रसेन का चिंतन भा महात्मा गांधी के चिंतन के ही समान है। तात्पर्य यह है कि उग्रसेन के माध्यम से कवि ने युग के संदेश को व्यक्त किया है।

उमर (१) (काबा और कर्बला)

उमर हज़रत मुहम्मद के देहांत के बाद उनके प्रतिनिधि (खलीफा) चुने जाने के अधिकारी थे; किंतु उन्होंने अपना यह अधिकार त्याग कर इस पद पर अबूबक्र का निर्वाचन कराया। अंततः अबूबक्र ने यह पद उमर को सौंपा और इस प्रकार—

प्राप्त हुआ प्रतिदान उचित ही उस गुणधर को।
निर्वाचक ही हुआ अंत में यों निर्वाचित,
मिली अतुल जय-कीर्ति लोक में उसे अयाचित।

एक बद्ध-रिपु उमर का हत्याकारी बनता है।

उमर (२) (काबा और कर्बला)

उमर यज़ीद का बलाध्यक्ष था। हुसैन के निमंत्रण पर वह उनसे मिलने आता है। हुसैन उसे समझाते हैं—

मर रहे हमारे बच्चे प्यासे
अमर तुम्हारे बाल रहेंगे इस हत्या से ?…

उमर हुसैन के आगे दीन-सा होकर सिहर उठता है और नतमुख होकर कहता है—

सचमुच रुचता नहीं मुझे यह जो होता है,
देख आपका दुःख हृदय रह-रह रोता है
परवश होकर बलाध्यक्ष भी मैं अशक्त हूँ…

हुसैन उमर की यह शर्त स्वीकार नहीं करते कि वह शपथपूर्वक यज़ीद के अनुयायी होकर उसके साथ संधि कर लें। इसके विपरीत वह उस तक स्वयं जाने का निश्चय करते हैं। इस प्रकार मानो उमर को इस प्रसंग में अपनी जान छुड़ाने का अवसर मिल जाता है :

मिलकर दोनों आप निबट लें चाहे जैसे,
मुझे न करने पड़ें कर्म अप्रिय ये ऐसे।

उमर उबैदुल्ला नामक अधिकारी को समस्त स्थिति से अवगत करा देता है। उबैदुल्ला उससे सहमत भी हो जाता है किंतु उसी का एक सहायक सेनानायक शिमर उनके मार्ग में बाधक बन जाता है। उसे हुसैन के कार्यकलाप में किसी छल की ही आशंका होती है। अतः संधि-वार्ता का प्रस्ताव कार्य-रूप नहीं ले पाता है।

उर्मिला (लीला, साकेत, प्रदक्षिणा)

उर्मिला विदेह जनक की दुहिता है। पिता के घर में वह सर्वप्रिय है। वैसे तो वह तथा उसकी अन्य तीन बहिनें भी पितृगृह में 'कहलाकर दिव्य संपदा' सदा सुख से ही पलीं किंतु उर्मिला को 'अति प्यार से पिता कहते थे निज साम-संहिता।' वह अन्य बहिनों की तुलना में कुछ चंचल भी अधिक थी। उसकी इस चंचलता ने उसके नाम 'उर्मिला' को सार्थकता प्रदान कर दी थी।

जीवन के पहले प्रभात में जब उर्मिला आँख खोलती है तो वह हरी भूमि के पात-पात में अपनी हृद्-गति हेरती है। उस समय उसके नेत्रों में वह सृष्टि थी जिसे स्वर्ण-रश्मियों ने आरेखित किया था और जहाँ 'बढ़ा रहा था सुख की नौका समय-समीरण खेकर।' यह वह स्वर्णिम वेला थी जब उर्मिला स्वर भरती थी, मांडवी करताल देती थी, सीता गंभीर गीत गढ़ती थी और श्रुतिकीर्ति नाचती थी और

यह सब देख-सुनकर मां मग्न होकर निज नाथ से कहा करती थीं—

यह लो, अब तो बनी भली,
घर की ही यह नाट्य-मंडली !

किंतु, उर्मिला में केवल उर्मियों की उमंग ही नहीं, सागर की गहराई भी है। जनकपुर के राजोद्यान में झूला झूलती राजकुमारी उर्मिला को यह संसार इसलिए झूले-सा मनभावन जान पड़ता है, 'प्रभो, शून्य में तू ही इसको स्वगुणों से ठहराता है।" वह झूले की भांति समुन्नत होकर अवनि पर अनंत सुख ले आने के साथ-साथ स्वयं अपने जीवन में भी अनुपम गौरव की आकांक्षिणी है। जनकपुर की पुष्पवाटिका में मुनि हेतु प्रसून चुनते लक्ष्मण के प्रथम दर्शन पर ही उसे विश्वास हो जाता है कि उसकी 'शत पुण्यपूर्ति' समुपस्थित है। उस समय उसके 'दृग दर्शन-हेतु क्या बढ़े, उन पैरों पर फूल से चढ़े।' इतना ही नहीं, उनकी मुसकान देखकर तो वह मानो अपनी स्वीकृति आप ही लिख देती है।

सीतास्वयंवर के अवसर पर लक्ष्मण की शिखरस्थित सिंह-गर्जना सुनकर सब लोग सन्न रह जाते हैं। जनक नत होकर भी प्रसन्न होते हैं। वह सब सुन-देखकर उर्मिला विभोर हो जाती है और अपना परिधान-छोर बटने लगती है। उस समय की वह ऐंठ उसे जीवन-संग्राम में जूझने की अतुलित शक्ति प्रदान कर देती है।

जय-दुंदुभी बजती है। बारात सजती है। करपीड़न प्रेम-याग सम्पन्न होता है :

वह बंधन-मुक्ति मेल सा,
नर का अमरत्व तत्त्व था।

उर्मिला की आँखों में अब नये-नये अनेक सपने जाग उठते हैं। वस्तुतः उन सपनों से वह तब जागती है जब मां से विदा होने का समय उपस्थित होता है। मां उससे कह रही थीं—

सुन, मैं यह एक दीन मां,
तुमको हैं अब प्राप्त तीन मां,
पति का सुख मुख्य मानियो।

यही मातृमंत्र साथ लेकर उर्मिला साकेत के राजभवन में प्रवेश करती है। इस प्रकार 'प्रकट मूर्तिमती उषा' की कांति किरणें पतिगृह में उजेला बिखेर देती हैं। यहाँ वह एक ओर 'बनाती रसोई, सभी को खिलाती' तो दूसरी ओर पालित शुक से भी यह पूछना नहीं भूलती, 'कह अरे, क्या चाहिए तुझको भला ?' 'जो हो रहा सो हो रहा, पर्याप्त न मानकर वह अपनी कला तथा जीवन-साधना अपूर्ण को भी पूर्णता प्रदान कर देती है। जो उर्मिला प्रिय पति से प्रश्न कर लेती है, 'स्वप्न-निधि से नयन कब से ग गये ?' वही उर्मिला कमल-सा खिला अपना कर बढ़ा उनसे यह भी कह सकती है—

मत्त गज बन कर विवेक न छोड़ना,
कर कमल कह कर न मेरा तोड़ना !

उर्मिला के जीवन में ऐसे अवसर भरपूर रहे हैं जब—

चौंक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई ! मुख लज्जा उसी छाती में छिपाई थी।

किंतु रामवनवास के समय यह निश्चित हो जाने कि 'अनुज मुझसे न तुम न्यारे कभी हो' उर्मिला पल-भ भी धर्मसंकट में पड़े बिना यह निश्चय कर लेती है—

हे मन,
तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन।

उर्मिला इसे अपना दुर्भाग्य ही मानती है 'दे सकी न सा नाथ का भी', किंतु नारि-सुलभ-दुर्बलता या आकस्मिक वेग-विकलता उसे कर्तव्य-पथ से विरत नहीं कर पाती।

कहा उर्मिला से सीता ने, "बहन विरह सह लेगी तू
मैं न रह सकी जिस ज्वाला में क्या उसमें रह लेगी तू ?
"जीजी अन्य कौन गति मेरी, रह-सह सकूँ यही वर दं
चरणों पर माथा रखती हूँ, इस पर तुम निज कर धर दो

उर्मिला अपने 'उपवन के हरिण को वनचारी' बन जा देती है। चित्रकूट में लक्ष्मण को पल-भर के लिए पाकर व केवल अविचलित ही नहीं बनी रहती, अपना संकल्प औ भी सुदृढ़ कर दिखाती है, "मैं बांध न लूंगी तुम्हें तजो भ भारी।" उर्मिला के इस औदार्य से पराजित लक्ष्मण न केव प्रिया-पद तल में गिर पड़ते हैं अपितु यह भी स्वीकार कर हैं—

वन में कठिन तपस्या करके बनने दो मुझको निज योग्य,
भाभी की भगिनी, तुम मेरे अर्थ नहीं केवल उपभोग्य।

कहने के लिए बहुत कुछ होने पर भी उर्मिला कुछ कह नह पाती। वह तिल-तिल काटने के लिए अवधि शिला का गुरु भार अपने उर पर उठा लेती है। नव-वय में हुए इस आकस्मिक विश्लेष के कारण यौवन में ही यति-वेष हो जात है और यहीं से उसके जीवन का वह मध्याह्नकाल आरंभ हं जाता है—

श्रांति क्लांति जो लाया,
खेद और प्रस्वेदपूर्ण यह तीव्र ताप है छाया,
पाया था सो खोया हमने, क्या खोकर क्या पाया?
रहे न हममें राम हमारे, मिली न हमको माया !

इस प्रकार उर्मिला का यथार्थ सपना बन जाता है और अलीक अपना बन जाता है। विरह उर्मिला को गार देता है किंतु वह उस पर एक उपकार भी करता है। वह उसकी सुधबुध अवश्य हर लेता है लेकिन उसे काल, ज्ञान, विचार भी प्रदान कर देता है—

जना दिया है उसने मुझको जन जीवन है भार भी,
और मरण ? वह बन जाता है कभी हिये का हार भी।
जाना मैंने इस उर में थी ज्वाला भी, जलधार भी,
प्रिय ही नहीं यहाँ मैं भी थी, और एक संसार भी।

और उर्मिला का 'यह संसार' सचमुच बहुत ही बड़ा है। इसमें केवल कुछ कहे बिना शांत हो जाने वाली सारिका, अगार चखने वाली चकोरी, उड़ना भी भूल जाने वाले पक्षी, दीपक संग जलने वाला शलभ, अपने हिम-बिंदुओं को धरता-धरता हंस, ऊर्ध्व सांस लेने वाला वराक, बड़भाग जुगनू, सहानुभूतिवशा आने वाली जालगता मकड़ी के साथ-साथ पीतपत्र हैं, दांत दिखा रहा कुंद है, सब ओर तना आकाश, जाल है, मक्खी-सी भिन्ना रही मही है, लपट से जले रूख और सूखे नदी-नद भी हैं। उसके घर-संसार में आज तूली, पुस्तिका, वीणा और प्रवीणा सखी ही नहीं हैं, आज तो उसने प्रणयपुरस्सर उन सब प्रोषितपतिकाओं को अपने पास बुला लिया है जो उस सी हंसी-रोई हैं। उसने अपने उपवन में पुरबाला-शाला खुलवा दी है। उर्मिला के करुण का विस्तार आज 'लघुत्तम से महत्तम तक' है।

उर्मिला की मान्यता है—

प्रिय ने सहज गुणों से, दीक्षा दी थी मुझे प्रणय, जो तेरी
आज प्रतीक्षा द्वारा, लेते हैं वे यहाँ परीक्षा मेरी।

इसीलिए वह आज पहले से अधिक सचेत तथा सतर्क है :

भूल अवधि सुध प्रिय से कहती जगती हुई कभी-"आओ !"
किंतु कभी सोती तो उठती वह चौंक बोलकर—"जाओ !"

इसीलिए उर्मिला के विरह में चुभन है, चीत्कार नहीं है, व्यथा है विकलता नहीं है। वह तो वेदना में ही आज अपनी 'चाह घनी' पा रही है, अपनी ही पृथ्वी के पानी से अंतरिक्ष को दानी बना पा रही है। अनवरत बहते अश्रुप्रवाह से भी उसका यही आग्रह है "न जा अधीर धूल में।" वह तो आंसू की खारी बूंदों के भी सदुपयोग की आकांक्षिणी है। इसीलिए वह साकेत-निकेत-अंगिनी तथा रघुराज वंश की चिरकाल-संगिनी सरयू से निवेदन करती है—

तब ले दृग-बिंदु क्षुद्र ये,
बढ़ हो जायं स्वयं समुद्र ये,
घन पान करें कभी इन्हें,
रुचता है परमार्थ ही जिन्हें,
यह भी इस भांति धन्य हों,
जगती के उपकारजन्य हों !

संयोग की अवधि में उर्मिला ने 'नित नया रस पिया' था। उसका वह अतीत-विहार अविस्मरणीय है। संयोगावस्था में किये गये वापी-विहार के छींटों की सुध करके वह आज वियोगावस्था में सिहर-सिहर उठती है। इसीलिए वह एक ओर अपने चपल यौवन-बाल को यह समझाती है, 'अचल अंचल में पड़ा सो, मचलकर मत साल' और दूसरी ओर मधु के मीत मदन को चुनौती देकर कहती है—

नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारो,
बल हो तो सिंदूर-बिंदु यह—यह हरनेत्र निहारो।

आज तो उर्मिला की यही कामना है—

छोड़ धाम-धन जाकर मैं भी रहूँ उसी वन में,
बीच-बीच में उन्हें देख लूँ मैं झुरमुट की ओट,
जब वे निकल जाएं तब लेटूं उसी धूल में लोट,
रहें रत वे निज साधन में !

और हनुमान के मुख से लक्ष्मण-मूर्च्छा का वृत्त सुनकर सचमुच साकेतवासियों के लिए वहाँ जाने का अवसर उपस्थित हो जाता है। उर्मिला का प्रसुप्त उत्साह पुनः जाग उठता है। उसकी यौवन-सुलभ ऊर्जा फिर लौट आती है और वह राम-लक्ष्मण की सहायतार्थ सजी सेना में सबसे आगे आ खड़ी होती है। वियोगिनी उर्मिला का यह वीर-रूप उसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

जटा जाल से बाल विलम्बित छूट पड़े थे,
आनन पर सौ अरुण, घटा में फूट पड़े थे।
माथे का सिंदूर सजग अंगार-सदृश था,
प्रथमातप सा पुण्य गात्र, यद्यपि वह कृश था।

उर्मिला एक ओर अपने सैनिकों को सावधान करते हुए कहती है—

सावधान, वह अधम धान्य सा धन मत छूना,
तुम्हें तुम्हारी मातृभूमि ही देगी दूना।

और दूसरी ओर वह उन्हें विश्वास दिलाती है—

अपने हाथों घाव तुम्हारे धोऊंगी मैं,
पानी दूंगी तुम्हें, न पल भर सोऊंगी मैं,
गा अपनों की विजय, परों पर रोऊंगी मैं।

राम और सीता के साथ लक्ष्मण के अयोध्या लौटने पर उर्मिला के अंग उमंग पाकर पुनः भर उठते हैं। उस सुप्रभा में उर्मिला का वाम नेत्र फड़कता है और हृदय उच्छ्वसि हो जाता है—वह वन से लौटे स्वामी को अपना 'सुमः सौंप कर सदा-सदा के लिए उनके उर में समा जाती है।

उसमान (काबा और कर्बला)

उमर के बाद उसमान मुसलमानों के तीसरे खलीफा बने परंतु वह भी सबके विश्वासपात्र न बन सके। उमर के साथ ही मानो पूर्व परंपराएं भी समाप्त हो गयी थीं और 'आडंबर परिपूर्ण हुई अब अरब धरा भी।' पात्र-विरो पक्षपात उसमान को ले डूबता है और 'निहत हुए उसमा आप अपनों के द्वारा।'

एकलव्य

महाभारत में एकलव्य की कथा प्रसंगवत् ही आयी है इसीलिए संक्षिप्त और गौण है। जयभारतकार ने अपने काव्य में उसके आदर्श चरित्र की व्यंजना के लिए एक सर्ग का विधान किया है जिसका शीर्षक एकलव्य है।

गुप्तजी ने उसकी देहयष्टि का चित्रण करते हुए कहा है—

प्रौढ़ शबर रूपी शंकर का बाल्य रूप सा वाम
आया एक नवयुवक, उसने गुरु को किया प्रणाम।

कवि ने उसके रूप का वर्णन इस तरह किया है—वह हरिण-चर्म बाँधे था, उसकी मांसपेशियाँ कसी-गँसी थी, रंग सांवला तथा शरीर चिकना था। वह स्वयं में वरवर्म के समान था, उसका माथा बालों से ढँका था, सीना चौड़ा था। उसने आचार्य द्रोण को अपना परिचय देते समय कहा था कि वह वनचर, व्याध, कुमार, असंस्कृत और शिष्टाचारों से अनभिज्ञ है किंतु—

तब भी चेतन एकलव्य जब रखता है निज चित्त
लाया वही मुझे चरणों में लक्ष्य निपात-निमित्त।

और जब द्रोण ने उसे धनुर्वेद का अनाधिकारी बतलाया तब उसकी तेजस्विता इन शब्दों में व्यक्त हो उठी है—

गुरुवर, नहीं अराजन्यों में क्या ईश्वर का अंश
और नहीं है क्या उनका भी वही मूल मनु-वंश।

जयभारत का एकलव्य तेजस्वी, जिज्ञासु ही नहीं, तर्कशील भी है—

उनके लिए धनुर्विद्या है जो जयलोलुप मात्र
वा जो घिर सिंह पशुओं से वे हैं उसके पात्र?
और अधिक क्या कहूँ, आप ही करें विशेष विचार
कुश-तृण धारी भी रखते हैं बाणों का अधिकार
वेदों के वक्ता जो भी हों, विद्या सबके अर्थ
रख सकता है बांध कला को निज तक कौन समर्थ।

एकलव्य की यह तर्कशीलता युगीन है। उसके माध्यम से क ने अछूतोद्धार, जातिवाद का विरोध, समत्व भावना और व के महत्व का प्रतिपादन किया है। उनका एकलव्य निष्ठाव है—

सच्ची निष्ठा है मुझमें तो प्रतिभा ही पर्याप्त
जड़ में भी मेरा चेतन है, करूँ कहीं भी प्राप्त।

उसके कौशल की प्रशंसा कौरव-पांडव दोनों ही करते हैं—

कटा तालु तक न था स्वान का, कितना हल्का हाथ।

और जब द्रोणाचार्य स्वयं एकलव्य-आश्रम में जाते हैं—

आश्रम सा ही लगा उन्हें वह उसका कानन कोण
एक ओर थी कुंज-शिला पर उनकी मूर्ति गभीर

साधन और विलक्षण प्रतिभा के धनी एकलव्य के उस साध स्थल को देख आचार्य ठगे से रह गए और जब उनके भक्त कहा—

आज भक्त के यहाँ कहाँ से भूल पड़े भगवान,
मेरा सब कुछ स्वयं आपका, मैं क्या करूँ प्रदान।

तब जयभारत के द्रोण को यह साहस ही न हो सका कि उस

अँगूठा कटवा लें। वह केवल इतना ही कह सके—

वत्स दिखा दो मुझे अंगूठा, तो वह भी भरपूर।

और जब एकलव्य ने अँगूठा काट दिया तो वह दारुण विभ्राट (महाभारत के द्रोण) जड़ीभूत रह गए ! उसके दान की प्रशंसा तो उन्होंने की किंतु नाममात्र के गुरु होकर ऐसी गुरु-दक्षिणा की माँग पर उन्हें ग्लानि भी हो आयी—

हाय अभी जो हुआ, लगे क्यों उस पर मुझे न लाज।

उन्हें इस पश्चात्ताप से उबारने के लिए एकलव्य ने अपनी शिष्टता, विनीतता और शीलाचार का परिचय दे दिया—

···परंतु मैं उऋण हो गया आज
देव न मेरे लिए दुखी हों, और कहे क्या दास।

जयभारत के एकलव्य को ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भी ज्ञान है। अर्जुन को चाहे उससे ईर्ष्या हो किंतु वह जानता है—

मेरी अर्जुन की क्या तुलना, कितने मेरे अस्त्र।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कवि ने महाभारत की सीमाओं में रहते हुए भी एकलव्य के चरित्र को युगीन धरातल पर स्थापित किया है। वन्यकुल में जन्मा एकलव्य आज के आदिवासी, अछूत ग्रामीण और असंस्कृत युवक का आदर्श हो सकता है। उसका शील, गुरुभक्ति, आदर्श, दानशीलता और तर्कशीलता सभी अनुकरणीय हैं।

कर्ण

कुंती के गर्भ और सूर्य के अंश से कवच-कुण्डलधारी महाबली कर्ण की उत्पत्ति हुई थी। इनका नाम वसुषेण रखा गया। इन्द्र के माँगने पर कवच और कुण्डल दान दे देने के कारण इनको वैकर्तन नाम से भी पुकारा गया। कौमर्यावस्था में उत्पन्न होने के कारण कुंती ने इन्हें अश्व नदी में बहा दिया था। गंगा के प्रवाह से अधिरथ ने इन्हें निकाल लिया था। इनका पालन-पोषण अधिरथ की पत्नी राधा ने किया था। इन्होंने भी द्रोणाचार्य से अस्त्र-शस्त्र विद्या प्राप्त की थी। रंग-भूमि में शस्त्र-परीक्षा के समय इन्होंने अर्जुन से प्रतिस्पर्द्धा की। कृपाचार्य द्वारा परिचय पूछने पर कर्ण लज्जित हुए, तब दुर्योधन ने इन्हें अंग देश का राज्य दे दिया और इन्होंने उससे अटल मैत्री-संबंध स्थापित किए। वे द्रौपदी-स्वयंवर में द्रौपदी द्वारा सूत-पुत्र से विवाह करने से इंकार कर देने पर भी अपमानित हुए थे। इन्होंने अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा की थी। ये परशुराम के पास शस्त्रविद्या सीखने के लिए ब्राह्मण बन कर गए और भेद खुलने पर परशुराम ने शाप भी दिया कि अवसर पड़ने पर वे प्राप्त विद्या को भूल जाएँगे। इनकी पत्नी का नाम पद्मावती और पुत्रों का नाम वृषसेन, वृषकेतु, चित्रसेन, प्रसेन और सुषेण थे। संधि-प्रस्ताव लेकर आए कृष्ण ने रथ पर अपने साथ बैठा कर इन्हें इनके जन्म का रहस्य बतलाया था। इसके बाद में वह कुंती से भी मिले और युद्ध में अर्जुन को छोड़कर अन्य पांडवों का वध न करने का वचन इन्होंने कुंती को दिया था। शर-शय्या पर पड़े भीष्म ने युद्ध रोकने के लिए इन्हें समझाया था। कवच और कुण्डल के बदले में इन्द्र ने इन्हें अमोघ शक्ति प्रदान की थी, जिसको इन्होंने अर्जुन के लिए सम्हाल कर रखा था। परंतु घटोत्कच के भीषण युद्ध से घबराकर वह शक्ति उस पर चलाने के लिए वह विवश हो गए थे। द्रोणाचार्य के संहार के बाद इन्हें ही युद्ध में सेनापतित्व का भार मिला था और इन्होंने अपना सारथी शल्य को चुना था। युद्ध के समय इनके रथ का पहिया कीचड़ में धँस गया था। अर्जुन ने कृष्ण की प्रेरणा से उस समय कर्ण का वध कर दिया था। कर्ण अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं।

गुप्तजी ने 'जयभारत' काव्य में कर्ण की उक्त सभी चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित करने का प्रयास किया है। 'परीक्षा' शीर्षक में वह दिनकर, प्रौढ़ि के अधिकारी, दम्भी किंतु दृढ़ चरित और उदारमना हैं। उनके संभाषण में पौरुष की दीप्ति है और 'शांति संदेश' शीर्षक में कर्ण अपने जन्म का रहस्य सुनकर सन्न ही नहीं रह जाते, मुंह भी ढक लेते हैं। उन्हें खेद है कि सहोदरों से जूझना पड़ेगा, द्रौपदी के अपमान के लिए वह तापित है; उन्हें लगता है कि यदि युधिष्ठिर ने इस रहस्य को जान लिया तो वे उन्हें किसी-न-किसी तरह मना लेंगे किंतु वह दुर्योधन के प्रति कृतघ्न नहीं होना चाहते। उसके अन्तर्द्वन्द्व का गुप्तजी ने अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है :

मैं पानी से निकल आग में आज गिरा हूँ,
उठ ऊँचा पा रहा शून्य ही शून्य निरा हूँ।
मुझ से तो वह साँप भला जो कंचुक छोड़े,
यह जन कैसे जुड़े हुए नाते अब तोड़े।

इसी प्रसंग में उसके द्वारा व्यक्त वेदना पाठक को ही व्यथित नहीं करती बल्कि उसके चरित्र को भी एक उच्च और आदर्श

धरातल प्रदान करती है—

सचमुच दम्भी मात्र आज मैं उसके आगे
निकले माथा फोड़ भाग्य जब मेरे जागे
भटक शून्य में कहाँ टिकेंगे वे, क्या जानूँ
कर जाऊँ कर्तव्य जिसे मैं अपना मानूँ।

निष्कर्ष यह है कि गुप्तजी ने महाभारत के कर्ण के समान कर्ण को दानवीर, धर्मवीर, दयावीर, सत्यवादी तो प्रस्तुत किया ही है, साथ ही उन्होंने उसकी भावनाओं और अन्तर्द्वंद्व को भी युग के अनुसार अभिव्यक्ति प्रदान की है।

कराल (लीला)

कराल काल्पनिक पात्र है। वह लंकानिवासी राक्षस है जो मन में वैर-भाव रखकर भरतखंड में प्रविष्ट हो जाता है। वह भारत के सौंदर्य-ऐश्वर्य से पराभूत है किंतु अपने देश लंका को सर्वोपरि मानता है

वह सोने की लंका ललाल,
वह हम सबका सुख, स्वर्गधाम।

उसे यह देखकर अत्यन्त दुःख होता है कि भारत में आ जाने पर उसके देशवासी अराल पर यहाँ का रंग चढ़ गया है। वह इसे गिरगिट की तरह रंग बदलना मानता है। आत्मिक उपलब्धियों की मूल्यवत्ता स्वीकार करके भी वह भौतिक विभूति की उपेक्षा के लिए तैयार नहीं है :

ऐसा है, तो सब काम छोड़
लंकेश्वर से कह हाथ जोड़,
वे होकर उन्नति से उदास,
अब करें यहाँ आकर निवास
छोड़ें सिंहासन स्वाभिमान,
हों तृणासनस्थित जड़ समान
सुन-सुन तेरा अव्यक्त गान,
बस, किया करें दृग मूँद ध्यान।

कुलाभिमानी कराल किसी भी मूल्य पर कुलगौरव पर पानी फेरने के लिए तैयार नहीं है।

काहिना

काहिना मूर महिषी है जिसने विक्रम की आठवीं शती में उत्तरी अफ्रीका पर शासन किया था। इस वीरांगना ने उन अरबों से डट कर लोहा लिया जिनका आघात रोम राज्य भी सहन नहीं कर पाया था—

मूर शूर, बर्बर वीरों से भगे अरब भट जब कट हार
प्रकट हो गया तब उन पर भी युद्ध-बर्बरों का व्यापार।

काहिना की इस सफलता का प्रधान कारण यह था कि उसके प्रजाजन का उसके प्रति अटूट विश्वास था। उसके एक संकेत मात्र पर वे प्राणों पर खेल सकते थे और काहिना भी उन्हें प्राणों से अधिक प्यार करती थी। इसीलिए उनके पराक्रम और सफलता पर काहिना को समुचित गर्व है :

अपनी इस अनुरूप विजय पर तुम्हें बधाई मेरे वीर !
शत्रु गंध से मुक्त हमारा हुआ श्वास के योग्य समीर।

वह उन शूरवीरों के प्रति कृतज्ञ है जिन्होंने रणयज्ञ में अपने प्राणों की आहुति दी :

निहतों की माँ, बहनें, बहुएँ मानें मन में यह संतोष,
बचा उन्हीं के स्वजन-दान से सबका राज्य, मान, धन कोष।

किंतु एक गंभीर आशंका उसे हर्ष के उस अपूर्व अवसर पर भी हर्षित होने से वंचित कर देती है :

उनका वह मिथ्याभिमान क्या उन्हें बैठने देगा शांत ?
जीने देकर नहीं जियेंगे, मार मरेंगे वे दुर्दांत।

उस संभावित विषम स्थिति पर विजय पाने का मार्ग, काहिना की दृष्टि में यह है—

हमें छोड़ ही देना होगा सब प्रलोभनों का अब मोह,
जाय स्वर्ण वह जिसके पीछे बजता रहे निरंतर लोह।

इसीलिए वह अपने प्रजाजन को यह परामर्श देती है—

नष्ट करो वह निज धन, जिस पर पड़ी पापियों की दुर्दृष्टि।

क्योंकि—

आज न हो, अन्यथा उसी से होगी कल बंधन की सृष्टि।

महारानी की मान्यता है—

यहाँ अकिंचन होकर भी हम होंगे कभी न दीन, न हीन,
जब तक जगती में अपने को मान सकेंगे हम स्वाधीन।

और इस स्वाधीनता के संरक्षण के लिए ही वह यह आदेश देती है—

ढा दो अपने गृह-निवास सब, ढा दो मेरे पुर-प्रासाद,
जब आवें, पावें परिपंथी तप-वर्षा-हिम का ही स्वाद।
हलके होकर सब बोझों से विचरो तुम स्वच्छंद यथेच्छ,
काटो वृक्ष, उखाड़ो बेलें, पा न सकें पत्ता भी म्लेच्छ।

महारानी का यह प्रस्ताव विचित्र अवश्य है क्योंकि यहाँ स्वाभिमान तथा स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए अपने अर्जन के विसर्जन का आग्रह है, किंतु इसकी यह विचित्रता ही इसकी वह विशिष्टता है जो व्यष्टि तथा समष्टि के बीच एक शाश्वत शिव संबंध स्थापित करती है, जो महारानी काहिना को प्रत्यक्ष देवी बना देती है, जिसके समक्ष सारी प्रजा सहर्ष नत-मस्तक हो जाती है।

कुन्ती

यदुवंशी शूरसेन की पुत्री का नाम पृथा था। शूरसेन ने अपने फुफेरे भाई कुंतिभोज को अपनी पहली संतान देने का वचन दिया हुआ था। अत: पृथा का लालन-पालन कुंतिभोज ने किया। इसी कारण उसका नाम कुंती पड़ गया। दुर्वासा ऋषि ने कुंती के आतिथ्य से प्रसन्न होकर देवताओं को आह्वान करने का मंत्र दिया था। विवाह से पूर्व ही मंत्र-परीक्षा के लिए इन्होंने सूर्य का आह्वान किया था। फल-स्वरूप कर्ण का जन्म हुआ। लोकभय से उन्होंने कर्ण को अश्व नदी में बहा दिया था। इन्होंने स्वयंवर में पांडु का वरण किया था। महाराज पांडु के आदेश से कुंती ने धर्मराज का आह्वान कर युधिष्ठिर को पुत्र-रूप में प्राप्त किया था। इसी प्रकार वायु और इन्द्र का आह्वान करके भीम और अर्जुन को जन्म दिया था।

पांडु के निधन पर शतश्रृंग-निवासी ऋषियों द्वारा सम-झाये जाने के कारण कुंती ने अल्प-वयस्क पांडवों के लालन-पालन का भार अपने ऊपर ले लिया था। रंगभूमि में कर्ण और अर्जुन को युद्ध के लिए तत्पर देख वह मूर्च्छित हो गईं। लाज के कारण वह अन्त तक कर्ण को अपना पुत्र घोषित न कर पाने का मानसिक कष्ट सहन करती रहीं।

वह वारणाव्रत यात्रा में पांडवों के साथ वन गई थीं। हिडिम्बा-भीम विवाह की भी कुंती ने स्वीकृति दी थी। कुंती के आदेश से ही वक-वध हुआ था। इन्होंने अनजाने में ही द्रौपदी को भिक्षा में मिला पदार्थ समझकर आपस में बाँटने का आदेश दिया था।

पांडवों के वन तथा अज्ञातवास के समय कुंती विदुर के घर रही थीं। युद्ध का आरंभ जानकर वह कर्ण के पास उसे समझाने के लिए भी गई थीं तथा उसकी मृत्यु के बाद युधिष्ठिर से उसे जलांजलि देने का आग्रह किया था।

महाभारत की समाप्ति के बाद कुंती धृतराष्ट्र और गांधारी के साथ वन में चली गई थीं।

गुप्तजी ने 'जयभारत' में कुंती के चरित्र को लगभग महाभारत के समान ही चित्रित करते हुए भी उसे स्वाभाविक मानवता का प्रतीक माना है। वक-संहार प्रसंग में कुंती का वात्सल्य भाव देखते ही बनता है। महाभारत की कुंती भीम की शक्ति से परिचित है। 'जयभारत' की कुंती में त्याग, गुण-ग्राहकता, अतिथि-सेवा, परोपकार भाव आदि के होते हुए भी ममत्व की प्रधानता है।

'शांति-संदेश' में जब कृष्ण कुंती से मिलते हैं तब उसका स्वर एक क्षत्राणी का स्वर है—

आया वह अवसर आप वह, प्रस्तुत हो जिसके लिए,
क्षत्राणी पीड़ा प्रसव की सहती है जिसके लिए।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गुप्तजी की कुंती महा-भारत के समान ही एक आदर्श नारी तो है किंतु उसके मां-रूप के व्याख्यान में कवि ने उसके अन्तर्द्वन्द्व को अत्यंत सफलता से चित्रित किया है।

कुणाल

कुणाल कलिंग-विजेता तथा विशिष्ट विक्रांत सम्राट् अशोक का सुपुत्र है। दया, प्रेम, सहिष्णुता तथा विश्वशांति की निधियाँ उसे पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हैं।

कामांध विमाता क्रुद्ध होकर कुणाल की आँखें निकलवा लेती है। अवश पिता उस अनुचित आदेश पर अपनी राजमुद्रा अंकित हो जाने देता है। विवशतापूर्वक इस भीषण वस्तु-स्थिति को वह स्वीकार तो कर लेता है किंतु बाहर की डीठ बचा कर पुत्र को अन्तस में बसा लेता है।

कुणाल नेत्रहीन हो जाने पर भी अपने को बाधित या वंचित नहीं मानता। दृष्टिहीन होकर तो मानो उसे एक विशेष 'दृष्टि' प्राप्त हो गयी है। वह चाहता है कि उसकी वह प्रेमांध मां, जिसने उसे अपनी आँखों के ज्योतिर्युग से विहीन कर दिया है अब इस विश्व को उसकी आँखों से देखे। तब उसे यह सृष्टि कुछ-की-कुछ दिखाई देने लगेगी। दृष्टि-विहीन होकर स्वयं कुणाल के दृष्टिकोण में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया है। वह अपने जिन नेत्रों से लोक-सौंदर्य-सृष्टि देखकर कृतार्थ हो चुका है, उन्हीं से अब संसृति पर अमृत-वृष्टि करना चाहता है। सीप के निर्मुक्त हो जाने पर आज वह पूर्णमनोरथ हो गया है, अतः द्विज से उसका निवेदन है—

दीखे न भले ही रूप-रंग,
आने दो द्विज ! निज ध्वनि-तरंग।
श्रुति में ही दर्शन के प्रसंग !
निष्काम आप ही पूर्ण काम।

यह पूर्णकामता आज उसे इतना समर्थ बना देती है कि 'मेरी निशि में सब लें विराम।'

कुणाल ने अपने जीवन में जो लौकिक वैभव प्राप्त किया, नित्य निरंतर वह नव-नव था। उसे माँ की ममता, तात-तितिक्षा, पूज्य गुरुजनों की शुभ शिक्षा, मित्र-मण्डली का विनोद और प्रिया का प्यार भरपूर मात्रा में प्राप्त रहे। उसने स्वर्ण दिवस और चाँदी की रातों में रुचिवर्द्धक ऋतुओं के रम्याहार-विहार किये। किंतु, 'परिपाक हो पाया न रस का रंगशाला फिर गई और बीच नाटक में यवनिका छूट सहसा गिर गई' और उसके जीवन का एक ऐसा अवस्थान उपस्थित हो गया जब 'बाहर मुझे न दीखे कुछ भी, भीतर सब कुछ है सूझ रहा।' इसीलिए अब वह यही चाहता है—

मैं भीतर ही देखूँ भालूँ,
अन्ध-सिंधु से रत्न निकालूँ।

काँटे-कंकर, गर्त भयंकर का अब उसे कोई डर शेष नहीं रहा। इसीलिए अब वह अंधा होकर (अनन्य भाव से) तथागत के पथ पर चल पड़ता है जहाँ—

द्वेष न दम्भ न दोष मुझे है,
यथालाभ संतोष मुझे है।
प्राप्त कर्म का कोष मुझे है,
मेरा फल है मेरे कर।

इस पुण्यपथ पर उसकी सहधर्मिणी कांचनमाला उसके साथ है। कुणाल अंधा होकर भी यह देख पा रहा है कि उसकी दीन दशा देखकर कांचनमाला निरन्तर रो रही है। कुणाल उसे सांत्वना देता है—

प्रिये ! आज तो त्याग दिवस है,
सुख ही नहीं, दुःख भी बस है···
लोक जाय, परलोक खड़ा है,
चलो सींचती-बोती !

कांचनमाला कल तक कुणाल की अनुगामिनी थी, आज वह अग्रगामिनी है—अंधे की लाठी है। आज पग कुणाल के हैं और मन कांचनमाला का। उसकी चिरयामिनी में आज अद्भुत जगमग हो रही है। आज सचमुच वह शुभ दिन आ गया है जब 'मुँद कर खुलीं अहा ये आँखें, मैंने सब भर पाया'। कुणाल भिक्षुक होकर भी आज अपने को राजा ही मानता है क्योंकि उसे कांचनमाला-सी रानी प्राप्त है और वह अविरत अपलक कांचनमाला का 'अरविंद-इन्दु-अभिनन्दित शील भरा मुख' देख रहा है। उसके भ्रमणशील जीवन को आज कहीं किसी प्रकार का कोई भय नहीं है क्योंकि—

सचमुच ही तुम छाया मेरी,
कितनी शीतल, सघन अंधेरी···
देखूंगा अब देवि, तुम्हारी आँखों से सब सृष्टि !

कुणाल नगरीय जीवन की जड़ नागरिकता से सरल, सहज ग्राम-जीवन को अधिक प्रीतिकर मानता है, क्योंकि वहाँ—

मनुज सभी श्रद्धालु सुखी हैं,
स्त्रियाँ संगिनी सरलमुखी हैं।
जीवन का रस पाकर दोनों
दुग्ध-शर्करा-तुल्य घुले।

इसीलिए कुणाल श्रम तथा विश्राम के सुखद सम्मिलन द्वारा ग्राम तथा पुर के बीच वाली एक 'निराली संस्कृति' की स्थापना करना चाहता है।

कुणाल संहार नहीं, सृजन का आकांक्षी है, हिंसा का नहीं अहिंसा का अनुरागी है। वह मानता है कि बाण में फूटने वाली किरण रस नहीं, रुधिर ही पीती है। इसीलिए सजातीयों से उसका अनुरोध है—

मनुज, जलाओ न वह नरक की
ज्वाला इस परिमाण में,
बुझा सकें न तुम्हारे आँसू
जिसे लोक-कल्याण में।

उसे यह देखकर ग्लानि है कि मनुष्य पशु-बल से प्राप्त विजय पर गर्व कर रहा है—

यही विजय है, जन ही जन को किये जा रहा खर्व !

कुणाल तो यही मानता है—

मैत्री-करुणा में कल्याण,
विश्व-बंधुता में ही त्राण।

इसीलिए पुनः दृष्टि-लाभ हो जाने पर वह लौकिक सुख-संपदा के प्रति प्रवृत्त नहीं होता, उसका तो यही संकल्प है—

छोड़े मैंने सब राज-पाट,
मैं नहीं चाहता ठाठ-बाट।
घूमूं अब घर-घर, घाट-घाट,
दूँ सुगत-गिरा का दिव्य दाय
'बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय'।

कुब्जा

कुब्जा मथुरापति कंस की एक दासी थी। धनुष-यज्ञ में आते समय श्रीकृष्ण ने इसे कंस के यहाँ सुगन्ध-अनुलेपन ले जाते देखा था और श्रीकृष्ण के माँगने पर उसने बड़ी प्रसन्नता से कुछ सुगंधित द्रव्य उन्हें अर्पित कर दिये थे जिससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने इसका कूबड़ ठीक कर दिया था।

गुप्तजी ने 'द्वापर' काव्य में कुब्जा द्वारा एक वक्तव्य का विधान किया है। उस वक्तव्य के अनुसार वह राधा के समान ही अनन्य भक्ति की प्रतिमूर्ति है—

हाँ हाँ, मैं चेरी, मैं चेरी
तेरी ही तेरी ही

गुप्तजी द्वारा अंकित कुब्जा के चरित्र की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह राधा के दुःख से दुःखी है। उसकी परदुःखकातरता अनेक स्थलों पर प्रकट हुई है—

वे दो ओंठ न थे सधे, था एक फटा उर तेरा।

अथवा

राधा ने पहनाया होगा वह रण-कंकण उसको।

वह अपने-आपको राधा की दूती तक बना लेना चाहती है। कृष्ण के चले जाने के बाद कवि ने उसकी व्याकुलता का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। वह कृष्ण के प्रति आत्म-समर्पिता है। तात्पर्य यह है कि गुप्तजी ने कुब्जा के चरित्र की सृष्टि कृष्ण के महत्त्व-चित्रण के लिए तो की है। साथ ही उन्होंने कुब्जा के चरित्र के उस दोष के परिहार की भी चेष्टा की है जो कृष्ण-कवियों द्वारा कुब्जा पर लगाया गया है।

कृष्ण

धर्ममय वृक्ष के मूल, नारायणस्वरूप विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण द्वापर युग में वासुदेव और देवकी के पुत्र थे। वे कंस के कारागार में उत्पन्न होकर मथुरा से गोकुल ले जाए गए थे। वह वहाँ नंद और यशोदा द्वारा पाले गए। इन्हें अंधक और वृष्णि कुल में बलराम और कृष्ण-रूप में ईश्वरावतार भी माना जाता है। इन्होंने बचपन में अनेक तरह की लीलाएँ की थीं। इन्होंने कंस का वध कर उग्रसेन को राजसिंहासन पर बैठाया था। कृष्ण की शिक्षा-दीक्षा उज्जयिनी में संदीपनि ऋषि के आश्रम में हुई थी। यहीं उनकी सुदामा से भी मैत्री हुई थी। कृष्ण ने अनेक राक्षसों का वध कर नरकासुर के अंतःपुर

से सोलह हजार अपहृत कन्याओं को मुक्त करके उनसे गंधर्व विवाह भी किया था। इन्होंने शिशुपाल की माता तथा अपनी बुआ श्रुतश्रवा को शिशुपाल के सौ अपराध तक क्षमा करने का वचन दिया था। परंतु युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में उसके एक सौ एकवें अपराध पर उसका वध कर दिया था। इनकी प्रधान आठ रानियाँ थीं जिनके नाम हैं—रुक्मणी, सत्यभामा, जाम्बवती, सत्या, कालिंदी, माद्री, मित्रविंदा तथा भद्रा। इन्होंने ही द्रौपदी-स्वयंवर में ब्राह्मण वेष धारण किये पांडवों को पहचाना था। यहाँ द्रौपदी के विवाह के अवसर पर इन्होंने द्रौपदी को सूर्यपात्र उपहार में दिया था। इन्होंने ही सुभद्रा-हरण के लिए अर्जुन को सम्मति दी थी। युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने के लिए इन्होंने अपनी सम्मति दी थी। जरासंध का वध करने के लिए वह इंद्र और भीम के साथ ब्राह्मण का वेष धारण कर मगध में आये और भीम से उसका वध कराया। कृष्ण ने चीर-हरण प्रसंग में द्रौपदी की रक्षा की थी। महाभारत में वह दूत बनकर धृतराष्ट्र के पास गये थे तथा युद्ध में अर्जुन के सारथी बने थे। इन्होंने युद्ध-काल में अर्जुन का मोह दूर करने के लिए गीता का उपदेश दिया था। जयद्रथ-वध के लिए अर्जुन को प्रोत्साहित करते हुए उन्हें पाशुपत अस्त्र दिलवाने में भी सहायता की थी। कृष्ण एक तरह से महाभारत युद्ध के सूत्रधार थे। भीम-दुर्योधन गदा-युद्ध में बलराम के क्रुद्ध होने पर इन्होंने ही उन्हें शांत किया था। जरा नामक व्याध के बाण से आहत होने पर कृष्ण ने देह-त्याग किया था।

महाभारत अथवा द्वापर-युग के कृष्ण नीतिज्ञ और लोक रक्षक भी हैं तथा परब्रह्म भी। तुलसीदास के समान ही राम-भक्त मैथिलीशरण गुप्त ने भी जयद्रथ-वध, द्वापर तथा जय भारत काव्यों में कृष्ण के चरित्र को रूपायित किया है। जयद्रथ-वध के कृष्ण तो परब्रह्म हैं। वे ही कर्त्ता, भर्त्ता और हर्त्ता हैं। वे अपने भक्त अर्जुन को अभिमन्यु तथा विष्णु आदि अनेक देवी-देवताओं के दर्शन कराते हैं तथा जयद्रथ-वध प्रसंग में वह माया से सूर्यास्त कर उसे पुन: प्रगट कर देते हैं। इसी काव्य में युधिष्ठिर अचेत समान कृष्ण के पैरों पर झुक जाते हैं और कवि गा उठता है—

वह भक्त का भगवान से मिलना नितांत पवित्र था,
प्रत्यक्ष ईश्वर जीव का संगम अतीव विचित्र था।

इसी तरह 'द्वापर' काव्य के सभी पात्र भी कृष्ण की दिव्यता से पूरित हैं। इसके कृष्ण भी यही कहते हैं—

कोई हो, सब धर्म छोड़ तू आ, बस मेरा शरण धरे।

किंतु 'द्वापर' में मात्र कृष्ण की दिव्यता का ही आख्यान नहीं है। उसने तो काल (समय) की काया ही पलट दी है। बलराम के स्वर में वह नूतन मख रचने वाला है और विद्यृता के शब्दों में तो लोक-व्यथा को दूर करने वाला मानव ही है।

जयद्रथ-वध के दिव्य कृष्ण द्वापर से जयभारत तक आते-आते मानवीय आदर्शों के प्रतीक बन गये हैं। जयभारत के कृष्ण में लोक सुधार की भावना है, वे समत्व के समर्थक हैं किंतु शक्ति को जीवन का मुख्य आधार मानते हैं। राजसूय-यज्ञ में कृष्ण नीतिज्ञ रूप में चित्रित हैं। उनके मत 'स्वयं श्रेष्ठ को चुन लेने में लोक आज असमर्थ' में युग का ही चित्रण है। 'शांति संदेश' में नीतिज्ञ कृष्ण के साथ-साथ उनके शांति-दूत रूप का भी चित्रण हुआ है। किंतु 'युद्ध' शीर्षक में कृष्ण युद्ध की अनिवार्यता का व्याख्यान करते हुए उसे अशुभ ही मानते हैं—

जब तक जगती है अंकुरित होगी ही
नित्य नये फूल-फल फूलेंगे फलेंगे ही
आज भार लाघव हुआ है कुछ उसका
माता भूमि होगी नहीं हीन पृथ्वी-पुत्रों से
और यह भारत तो भव का भी भव है
इसका विभव एक मुझमें ही अल्प क्या ?
युद्ध की अशोभनता जन यदि जान ले
तो न होगा व्यर्थ यह इतना अनर्थ भी।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गुप्यजी ने कृष्ण के महाभारतीय एवं पौराणिक चरित्र की रक्षा करते हुए भी उनके चरित्र को युगानुरूपता प्रदान की है। वह अति दिव्य न होकर मानवीय गुणों से पूरित हैं, किंतु हैं मानव के आदर्श ही।

कैकेयी (साकेत)

महाराज दशरथ की त्रिवेणीतुल्य तीन रानियों में कैकेयी को मध्यवर्ती स्थान प्राप्त है। वह भरतजननी है। महाराज की अन्य दोनों रानियों तथा उनके पुत्रों के प्रति कैकेयी के हृदय में समान अनुराग है। वस्तुतः राम तो भरत से भी अधिक उनके प्रिय पुत्र हैं—

होने पर बहुधा अर्ध-रात्रि अँधेरी,
जीजी आकर करती पुकार थीं मेरी,
'लो कुहुकिन, अपना कुहक, राम यह जागा,
निज मँझली माँ का स्वप्न देख उठ भागा।'

मंथरा राम और भरत तथा कैकेयी और कौसल्या में पार्थक्य पैदा करने का प्रयत्न करती है :

राजमाता होंगी जब एक,
दूसरी देखेंगी अभिषेक!

यह सुनकर कैकेयी रुष्ट होकर यही कहती है :

राम की माँ क्या कल या आज,
कहेगा मुझे न लोक-समाज?

किंतु, कुटिल मंथरा अपने मायिक मंत्रतुल्य वचनों से कैकेयी को उद्भ्रांत कर देती है और उसके ये शब्द कैकेयी के हृदय में भयानक तूफान उठा देते हैं :

भरत से सुत पर भी संदेह
बुलाया तक न उन्हें जो गेह!

कैकेयी के मनोमंदिर की शांति उत्क्रांति में परिणत हो जाती है। उसके तन-मन में आग-सी लग जाती है। वह इस संसार को पलटकर भी इस अन्याय के प्रतिकार के लिए कटिबद्ध हो जाती है। दाह से भरा सौतिया डाह विष-प्रवाह बहने लगता है। कैकेयी का कोप उसकी बुद्धि को विलुप्त करने लगता है और 'हुआ देवी का दुर्गा वेश।' महाराज को वचनबद्ध करके वह उनसे दो वर माँग लेती है—भरत का राज्याभिषेक और राम का चौदह वर्ष का वनवास।

कैकेयी क्रमशः कठोर से कठोरतर होती जाती है। दशरथ के देहावसान पर जब उर्मिला सुध-बुध त्यागे उसके आगे जा गिरती है तो :

कैकेयी का मुँह भी न खुला,
पाषाण शरीर हिला न डुला।
बस फट-सी गईं बड़ी आँखें,
मानो थीं नई जड़ी आँखें!

वस्तुस्थिति से अवगत होने पर जब स्वयं भरत ही कैकेयी द्वारा माँगे गये वर का विरोध करते हैं, तो कैकेयी सोन्माद चिल्ला उठती है :

सब करें मेरा महा अपवाद
किंतु उठ ओ भरत, मेरा प्यार,
चाहता है एक तेरा प्यार।
राज्य कर, उठ वत्स, मेरे बाल,
मैं नरक भोगूँ भले चिरकाल।

भरत राजमाता कैकेयी की नीति को स्वीकार कर स्वार्थ को ही ध्रुव धर्म नहीं बनाते। वह न्याय-धर्म-स्नेह-वंचित राज्य को अंगीकार नहीं करते। सबके प्रकृत नरनाथ को उनका राज्य सौंप देने के लिए भरत अविलंब चित्रकूट जाने का संकल्प करते हैं।

यहाँ कैकेयी के चरित्र में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आता है। वह अपने पहाड़ से पाप का अनुताप करने के लिए भरत के साथ चित्रकूट जाती है :

वैधव्य तुषारावृता यथा विधु लेखा
बैठी थी अचल तथापि असंख्यतरंगा,
वह सिंही अब थी हहा गोमुखी गंगा!

भरत के प्रति राम के यह कहने पर :

उसके आशय की थाह मिलेगी किसको
जनकर जननी ही जान न पाई जिसको?

कैकेयी अटल स्वर से यह कहकर सबको चौंका देती है—

यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को।

कैकेयी भरी सभा में यह स्वीकार कर लेती है कि—

क्या कर सकती थी मरी मंथरा दासी?
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।

अपने इसी मन को आज फिर मध्यस्थ बनाकर वह कहती है :

लेकर अपना यह कुलिश कठोर कलेजा,
मैंने इसके ही लिए तुम्हें वन भेजा।
घर चलो इसी के लिए, न रूठो अब यों,
कुछ और कहूँ तो उसे सुनेंगे सब क्यों।
मुझको यह प्यारा और इसे तुम प्यारे,
मेरे दुगुने प्रिय रहो न मुझसे न्यारे।

किंतु, रघुकुल में जो वचन दे दिया जाता है वह लौटाकर नहीं लिया जाता। राम भरत के साथ अयोध्या नहीं लौटते।

अयोध्या में हनुमान से सीताहरण तथा राक्षस-उत्पात आदि का वृत्तांत सुनकर कैकेयी सर्वप्रथम उनकी सहायतार्थ वहाँ जाने के लिए तैयार हो जाती है :

भरत जायगा प्रथम और यह मैं जाऊँगी,
ऐसा अवसर भला दूसरा कब पाऊँगी !
मूर्तिमती आपत्ति यहाँ से मुँह मोड़ेगी,
शत्रु-देश-सा ठौर मिला, वह क्यों छोड़ेगी ?

कैकेयी के मन की यह कसक तब तक बनी ही रहती है, जब तक अवधि पूर्ण हो जाने पर अयोध्या लौटकर राम यह कहकर उसे परितुष्ट नहीं कर देते—

मूल शक्ति माँ, तुम्हीं सुयश के इस उपवन की।
फल, सिर पर ले धूल, दिये तुमने जो मीठे,
उनके आगे हुए सुधा के घट भी सीठे।

उसके जीवन की कृतकृत्यता उसके इन शब्दों में मुखरित हो उठती है :

भागी हो तुम वत्स राम रघुवर, भव भर के,
कैकेयी के दोष लिए तुमने गुण करके।
ढोया जीवन भार, दुःख ही ढाया मैंने,
पाकर तुम्हें परंतु भरत को पाया मैंने।

कौसल्या (लीला, साकेत)

कोमलकाया कौसल्या मूर्तिमती ममता-माया हैं। उनके समक्ष अग्नि-परीक्षा की पहली घड़ी तब उपस्थित होती है जब विश्वामित्र यज्ञ-रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण को अपने साथ ले जाना चाहते हैं। वह विधि की इस विडंबना से अत्यंत क्षुब्ध हैं—

जो उतारने योग्य नहीं हैं गोद से,
हैं रखने के योग्य हृदय पर मोद से।
उन्हें भेजना हाय राक्षसों के निकट,
मनुजाहारी जो कि शस्त्रधारी विकट !

लक्ष्मणजननी सुमित्रा समुचित तर्क उपस्थित कर क्रमशः उन्हें ममता के इस बंधन से मुक्त कर उस कठोर कर्तव्य-कर्म की ओर प्रवृत्त करती हैं 'जिस गौरव का एक हमीं को गर्व है।' भावना तथा कर्तव्य के दोराहे पर खड़ी कौसल्या कहती हैं :

बुद्धि तुम्हारी बात मानती है सही,
किंतु हृदय में भीति-भावना भर रही।

सुमित्रा उन्हें समझाती हैं, 'सहन-सुख-सदृश कौन सुख है यहाँ ?' और बहिन सुमित्रा का शुभ साहाय्य पाकर कौसल्या वस्तुस्थिति को अंगीकार कर लेती हैं : 'देखूँगी जो किया जा सकेगा सहन।'

'साकेत' में ऐसा ही अवसर पुनः आ उपस्थित होता है। पवित्रता में पगी हुई और देवार्चन में लगी हुई माता कौसल्या लक्ष्मण को रोता देखकर काँप उठती हैं :

आँखें भरीं, भुवन रीता,
उलट गया सब मनचीता।
सीता से थामी जाकर
रहीं देखती टक लाकर।

कैकेयी की वर-याचना के पूरे प्रसंग से अवगत हो जाने पर कौसल्या यही कहती हैं—

भरत राज्य की जड़ न हिले,
मुझे राम की भीख मिले।

महाराज दशरथ के यह कहने पर—

माँगो तुम भी कुछ पटरानी,
दूँ लेकर आँखों में पानी।

कौसल्या का कथन यह है—

माँगूँगी क्यों न नाथ, तुमसे,
दो यही मुझे कल्पद्रुम से—
कैकेयी हों चाहे जैसी
सुतवंचिता न हों मुझ जैसी।

इस उदारहृदया के हृदय में भरत, कैकेयी—वस्तुतः किसी—के प्रति भी कोई कुभाव है ही नहीं :

भरत में अभिसंधि का हो गंध
तो मुझे निज राम की सौगंध।

भरत को पाकर वह मानो राम को ही पा लेती हैं :

वत्स रे, आ जा, जुड़ा यह अंक,
भानुकुल के निष्कलंक मयंक।

मिल गया मेरा मुझे तू राम,
तू वही है, भिन्न केवल नाम···

और माता कौसल्या के हृदय में इतना ही अपार प्यार शत्रुघ्न के प्रति भी है। राम-लक्ष्मण की रक्षा के लिए शत्रुघ्न को भी जाता देखकर भोली रानी कौसल्या धाड़ मारकर रो पड़ती हैं और पुत्र शत्रुघ्न से लिपटकर कहती हैं—

हाय गये सो गये, रह गये सो रह जावें,
जाने दूँगी तुम्हें न, वे आवें जब आवें···
देखूं तुमको कौन छीनने मुझसे आता।

राम के साथ पुनः लक्ष्मण को पाकर रामजननी लक्ष्मण को लक्ष्य कर यही कहती हैं :

आया फिर तू राम, कोख में मानो मेरी,
लक्ष्मण, मेरी गोद रहे शिशु-शैया तेरी।

कौसल्या राम-जननी मात्र नहीं हैं—उन्होंने पुत्र-रूपी चार फल पा लिए हैं।

सिद्धराज काव्य के अन्य पुरुष पात्र

खंगार—

ऐतिहासिक दृष्टि से खंगार जूनागढ़ (सौराष्ट्र) के राजा नवघन का पौत्र तथा महिपाल का पुत्र था। इसने नवघन के अपमान का बदला राजा जयसिंह से लेने की शपथ ली थी। युद्ध में सिद्धराज जयसिंह ने इसका तथा इसके दो पुत्रों का वध कर दिया था। सिद्धराज इसकी पत्नी पर मुग्ध था, अतः वह उसे बलपूर्वक उठाकर ले गया, किंतु सती रानक दे अन्त में अपने पति का सिर गोद में रखकर सती हो गई।

इस काव्य में खंगार स्वाभिमानी, निर्भीक, वीर, साहसी, तर्कशील एवं आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित है। वह रानक दे तथा जयसिंह के पूर्व आकर्षण को जानते हुए भी राजा जयसिंह से ईर्ष्या नहीं करता। वह एक आदर्श पति और क्षमाशील व्यक्ति है। राजा जयसिंह के सौराष्ट्र पर चढ़ाई करने को वह मेहमान का आगमन ही मानता है। उसके चरित्र की रेखाएं रानक दे के निम्नलिखित संवाद से स्पष्ट हैं—

प्रिय पाहुने पधारे हैं।
प्रेमी वे तुम्हारे भला वैरी बने मेरे क्यों ?
'वीर हैं वे और मानी' मैंने कहा तब भी
"पानी मुझमें भी यहाँ आकंठ मग्न हों।"
और रक्त दान भी उन्होंने दिया तुमको
उनका तुम्हारा कुल वैर किंतु मुझको
वरण उन्होंने किया हरण नहीं किया।
पाया बल ले के नहीं, अन्तस्तल दे के ही।
वासना नहीं थी वहाँ उज्ज्वल उपासना।

इस प्रकार इस काव्य का यह पात्र वीराग्रणी, साहसी और कर्त्तव्यनिष्ठ कहा जा सकता है।

खालिद

खालिद अरबों का प्रसिद्ध सेनापति था। उसने अपने काल से कराल करवाल से न जाने कितने सीरियन सैनिकों का वध कर डाला। बंदीरूप में खालिद के सामने आने पर जोनस प्रत्यक्ष काल के समान क्रूर खालिद को देखते ही प्राण-रक्षा के लिए चीत्कार कर उठता है। इससे खालिद के हृदय में दया का उदय होने के बदले घृणा का ही अतिरेक होता है और वह कहता है :

मरने से डरता है ? लड़ने चला था क्यों ?
जैसी धृष्टता की, फल वैसा क्यों न भोगेगा ?
वैरी है विधर्मी, नहीं अतिथि हमारा तू
क्या तुझे खिला कर जिलावें हम उलटे ?

खालिद तलवार के बल पर विधर्मियों को मुसलमान बना लेना अपना धर्म मानता है। प्राणों से प्यार करने वाले बंदी युवा जोनस के सामने भी वह यह प्रस्ताव रखता है :

ठहर सुनूं मैं, मुसलमान बनने को तू
प्रस्तुत है ?

और जोनस द्वारा यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिये जाने पर वह कूटनीतिज्ञ सेनानायक उसकी दुर्बलता को

अपनी शक्ति में परिणत करते हुए कहता है कि अपनी प्रेमिका इउडोसिया को प्राप्त करने के लिए—

करना पड़ेगा तब तुझको प्रयत्न भी
शीघ्र ही दमिश्क जीतने को अपने लिए।
रखना न होगा भेद कोई गुप्त हमसे।

और इस प्रकार यह चतुर सेनापति शत्रु को बंधु बना लेता है।

सजग तथा सचेष्ट सेनापति खालिद शत्रु-पक्ष पर पूर्ण विजय प्राप्त करने का सुयोग ढूंढ़ ही निकालता है। जिस समय शत्रु-पक्ष के लोग अपने सेनापति के पुत्र-जन्मोत्सव में यह भूल-से गये थे कि बाहर से विपत्ति विद्यमान है, वह प्राणों पर खेल, कुछ सैनिकों को साथ ले, धीरे एक ओर से अंधेरे में छिपे-छिपे रस्सी के सहारे दुर्ग में जा पहुंचता है और अविलंब सिंह की भांति तोरण के द्वार पर टूट पड़ता है। द्वार-रक्षकों को मार कर वह दुर्ग का द्वार खोल देता है और उसकी दहाड़ के साथ बाहर की सेना दुर्ग के भीतर घुसकर सीरियनों पर पहाड़-सा गिरा देती है।

दया, करुणा अथवा क्षमा के लिए तो इस क्रूर सेनापति के हृदय में कोई स्थान ही नहीं है। वह तो आत्मसमर्पण करनेवालों को भी मृत्युदंड देने का अभ्यासी है। उसका ईर्ष्यानिल आर्त्त वधू-बालकों के क्रन्दन के जल से नहीं बुझ पाता। उसकी तृषा तो शत्रुओं का रक्त पीकर ही तृप्त होती है।

खालिद की यह नृशंस तथा बर्बरतापूर्ण मारकाट और लूट-पाट उसके अपने पक्षधरों को भी विचलित कर देती है। उस अनियंत्रित संहार को रोकने के लिए अरबों के प्रमुख सेनापति अबूउबैदा को उससे कहना पड़ता है :

बस म्यान करो खंग अब अपना,
जीत हो चुकी है तब शांति ही उचित है।

हृदयहीन खालिद इस पर भी यही आग्रह करता है—

ये सब दया के नहीं, दंड के ही पात्र हैं,
खंग ही उचित उपचार एक इनका।

अबूउबैदा खालिद को समझाते हैं कि हमें भिन्न धर्मियों के साथ भी न्याय का व्यवहार करना चाहिए। अतः उनके निदेश से सीरियनों की लूटमार बंद हो जाती है और उन्हें यह सुविधा मिल जाती है कि उनमें से कोई व्यक्ति यदि किसी कारण से मुसलिम राज्य में रहना न चाहे तो वह तीन दिन के भीतर वहाँ से अन्यत्र चला जा सकता है।

रक्तपिपासु खालिद तीन दिन की यह अभय-अवधि पूरी होते-होते पुनः नर-संहार आरंभ कर देते हैं।

गांधारी

गांधार-राज सुबल की पुत्री, धृतराष्ट्र की पत्नी, कौरवों और दुःशला की माता गांधारी ने पति के अन्धेपन के कारण स्वयं भी जीवन-भर आंखों पर पट्टी बांधे रखी थी। उन्होंने भगवान शंकर की तपस्या कर सौ पुत्रों एवं एक कन्या की माता होने का आशीर्वाद प्राप्त किया था। महाभारत के युद्ध के लिए इन्होंने धृतराष्ट्र को ही दोषी ठहराया था। वह पांडवों को भी शाप देना चाहती थीं परंतु इनकी तनिक-सी दृष्टि पड़ने पर युधिष्ठिर के पैरों के नाखून काले पड़ गए। अपने पुत्रों के वध पर विलाप करते हुए इन्होंने वृष्णि-वंश के विनाश का शाप कृष्ण को दिया था। महाभारत युद्ध के बाद गांधारी, धृतराष्ट्र और कुंती के साथ वन गई थीं। वहाँ दावाग्नि में इन सबने देह त्याग किया था।

महाभारत की गांधारी आदर्श पत्नी और ममतामयी माँ है। उसके चरित्र में निर्भीकता, न्यायप्रियता और नीतिप्रियता आदि गुण दिखलायी पड़ते हैं।

गुप्तजी ने 'द्यूत' शीर्षक में, चीर-हरण प्रसंग में गांधारी का आगमन दिखलाया है। वह उस सभा को पाप-सभा और गांधारी को सभ्यता की मूर्ति मानते हैं। उनकी गांधारी इस प्रसंग में नारी जाति की प्रतिनिधि प्रतीत होती है। वह अंधता को इसलिए सफल मानती हुई व्यंग्य करती है क्योंकि अपनी लुटती लज्जा को वह नहीं देख पातीं, किंतु उसे पछतावा है कि कान द्रौपदी के रुदन को नहीं सुन सके। भाई से पितृकुल और पुत्रों से पतिकुल के नष्ट होने पर उसे क्षोभ है। निम्नलिखित कथन में उसके हृदयोद्गारों का अत्यन्त सफल चित्रण हुआ है—

हाय लोक की लज्जा भी अब नहीं रह गई लक्षित क्या,
आज बहू का तो कल मेरा कटि-पट नहीं अरक्षित क्या?

'कुरुक्षेत्र' शीर्षक में गुप्तजी ने गांधारी के शोक और

मातृ-हृदय की मार्मिक व्यंजना की है। इस समूचे चित्रण में कवि ने मनोविज्ञान का आश्रय लिया है। शोकार्त्त गांधारी अपने पुत्रों, अन्य शूरवीरों—भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, शकुनि के शवों की ओर संकेत करते हुए राधा (कर्ण को पालने वाली मां) के विलाप के दृश्य को भी कृष्ण को दिखलाती है। तभी दुःशासन का शव देखकर वह किसी तरह से अपने को सम्हालती हुई कह उठती है—

क्या पांडवों को शाप देकर पिंड भी खोऊं हरे।
जीते रहें जो रह गए, जो मर चुके हैं सो मरे॥

गांधारी मानती है कि उसने दुर्योधन को सदा समझाया है, "सुत, संपदा के लोभ से तू मत बुला यह आपदा' किंतु उसने मेरी बात नहीं मानी। इसी प्रसंग में वह युद्ध की विभीषिकाओं से सिहर भी उठती है। उसका कृष्ण से यही कथन है—"तुम रोकते तो रोक सकते सहज दुष्कर कांड को" कृष्ण इसे रोक नहीं पाए इसलिए वह आवेशित होकर शाप देने लगती है। इस अवसर पर भी गुप्तजी की गांधारी महाभारत की गांधारी के समान उग्र न होकर संयत है। वह यहाँ शाप नहीं दे रही बल्कि मानो कृष्ण से प्रश्न पूछ रही है—

कुरुकुल सरीखा, वृष्णि कुल भी लड़ परस्पर नष्ट हो
तो पूछती हूं, कृष्ण क्या तुमको न इससे कष्ट हो।

कृष्ण के इस शाप को स्वीकार कर लेने पर तो गांधारी की भाव-विह्वलता देखते ही बनती है—

क्या कह गई मैं हाय ! मेरा दोष देव क्षमा करो।
मुझ दुःखिनी, हतबुद्धि का अपराध मत मन में धरो
सिर पीट अपना अस्थिरा प्रभु के पदों पर गिर पड़ी।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महाभारत में गांधारी का चरित्र एक स्थिर चरित्र है। वह आदर्श पत्नी, मां और एक सामान्य नारी है। गुप्तजी भी उसके चरित्र का परिष्कार एक सीमा तक ही कर सकते थे जो उन्होंने किया भी है। गुप्तजी की गांधारी का रोष स्वाभाविक है, किंतु उसमें प्रतिकार और प्रतिशोध का अभाव है।

गुरु अंगद

अंगद का धैर्य, भक्ति, सेवा-भाव और गुरु के प्रति पूर्ण आस्था और आज्ञा-पालन भाव आदि से प्रभावित हो गुरु नानक ने उन्हें ही अपनी गद्दी सौंपी। गद्दी पर बैठने के बाद उन्होंने दो कार्य किये—१. नानक के उपदेशों को लिपि-बद्ध किया और २. सिक्खों को एक सूत्र में बांधा, उन्हें संगठित किया। इसके लिए उन्होंने लंगर-प्रथा चलायी जिसका अनुसरण आज तक बड़ी श्रद्धा-भक्ति से किया जाता है। इस प्रथा के अनुसार सबको मुफ्त भोजन दिया जाता है और भोजन करने वाले बड़े-छोटे, ऊंच-नीच का भाव त्याग एक पंक्ति में बैठ कर भोजन करते हैं। गुरु अंगद ने तन-मन-धन से सिक्खों के संगठन का कार्य किया। उनकी सारी आय इसी पुण्य कार्य में व्यय होती थी। उन्हीं के उपदेशों और प्रयत्नों का परिणाम था कि सिक्खों में सार्वजनिक कल्याण-कार्यों के लिए दान देने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। उनका संदेश था, "पर-धन पाप है, भिक्षुक न बन कर व्यवसाय करो और स्वावलंबी बनो।" अपने गुरु के समान अंगद भी निर्भीक और स्वाभिमानी थे। शेरशाह से पराजित होकर जब हुमायूं उनके पास आया तो वह ध्यानमग्न थे, अतः उन्होंने उठकर उसका स्वागत-सत्कार नहीं किया। हुमायूं ने इसे उनका दर्प और अपने प्रति अवज्ञा-अनादर समझा। तलवार खींचकर वह प्रहार करने जा रहा था कि गुरु के पलक खुले और उन्होंने व्यंग किया, "शेरशाह से बचकर क्या तू एक साधु का वध करने के लिए ही भागा आया है ?" ये वचन सुन हुमायूं लज्जित हुआ। अंगद उदार, क्षमाशील तथा दूरदर्शी थे, अतः उन्होंने हुमायूं को सफलता का आशीर्वाद दिया। यह आशीर्वाद सफल हुआ और अन्त में हुमायूं फिर विजयी हुआ। अपने पुत्र को गद्दी न देकर और अपने योग्य शिष्य अमरदास को अपना उत्तराधिकारी बनाकर गुरु अंगद ने गुरु नानक की पवित्र परम्परा का ही पालन किया।

गुरु अमरदास

गुरु अमरदास के समय सिक्ख उदासी मत की ओर आकृष्ट थे। वे गृहस्थ-जीवन त्याग संन्यास की ओर उन्मुख हो रहे थे। इससे सिक्ख जाति की शक्ति कम हो रही थी और वह पलायनवादी बनती जा रही थी। इस दुष्प्रवृत्ति को रोकने के लिए गुरु अमरदास ने सिक्खों को कर्म का उपदेश दिया, "घर में रहकर, व्यसनों से बचते हुए अपना कर्तव्य पूरा करो। संसार से भागने वाला नपुंसक और कायर हैं। जिसे तुम शान्ति मानते थे, वह केवल मृषा भ्रान्ति है।" उनके उपदेशों का असर पड़ा और सिक्ख लोग उदासी मत से विमुख हो अपने सांसारिक दायित्वों की ओर उन्मुख हुए।

गुरु अमरदास बड़े परिश्रमशील थे; बढ़ती आयु और शिथिल अंग भी उन्हें कार्य करने से नहीं रोक पाए; शिष्यों और मित्रों ने उन्हें आराम करने का परामर्श दिया पर वह श्रम को जीवन का धन और मन का रत्न मानते थे, अतः जीवन के अन्त तक श्रमरत रहे।

अपने पूर्व गुरुओं की तरह वह स्वाभिमानी और स्वतंत्र-चेता थे। अपने कार्यों और अधिकारों में किसी का हस्तक्षेप उन्हें असह्य था। अतः उन्होंने अकबर का बारह गाँव देने का प्रस्ताव ठुकरा दिया। सिक्ख-संगठन के लिए उन्होंने मंच स्थापित किये और वहाँ अपने प्रतिनिधि नियुक्त किये। महान सन्त के समान वह दयालु और पीड़ितों के प्रति अत्यन्त दयार्द्र थे। इसी कारण एक बार अकबर से कहकर उन्होंने एक वर्ष का कर छुड़ाया था।

गुरु अमरदास गुण-ग्राहक थे और उन्हें गुणों की पहचान थी। इसी कारण उन्होंने अपने शिष्य रामदास को न केवल गद्दी का अधिकारी बनाया अपितु अपनी बेटी भानुकुमारी से उसका विवाह भी कर दिया। सुपात्र को ही अधिकार मिलना चाहिए, अपने इसी मत के कारण उन्होंने घोषणा की, "मात्र ज्येष्ठ होने से किसी को अधिकार नहीं मिलेगा, उसके लिए गुण होने आवश्यक हैं।"

गुरु अर्जुन

गुरु अर्जुन सुदृढ़ शरीर वाले एवं अटल निश्चय, शील, विनय तथा नीति की साकार प्रतिमा थे। गुरु अर्जुन ने यदि धर्म-क्षेत्र में गुरु-ग्रंथ साहब की रचना, अमृतसर को सिक्खों की राजधानी बनाकर वहाँ हरिमंदिर का निर्माण किया और तरनतारन में तालाब खुदवाया तो राजनीति के क्षेत्र में भी सिक्खों की साख बढ़ायी। वह गुरु के साथ-साथ राजा और शासनाधिपति भी बने। वह अश्वारोहण करते, छत्र धारण करते, न्याय और शासन के कार्य सुचारु ढंग से चलाते और आय-व्यय का हिसाब-किताब ठीक रखते थे जिससे अर्थव्यवस्था सुधरी और अधिकाधिक जन-कल्याण के कार्य सम्पन्न हो सके। उन्होंने घोड़ों का व्यवसाय आरंभ कर आय के साधन बढ़ाये। उनमें विदेश-यात्रा का अपूर्व उत्साह था और उससे उन्हें अनेक नयी बातों का अनुभव हुआ। उनके प्रतिद्वन्द्वियों विशेषतः उनके अग्रज पृथ्वीचन्द्र ने उन्हें और उनके शिशु को विष देकर अपने मार्ग से हटाना चाहा तो एक सेठ चन्दूसाह ने उनके विरुद्ध जहांगीर के कान इसलिए भरे कि उन्होंने उसकी कन्या को अपनी पुत्र-वधू बनाना अस्वीकार कर दिया था। जहाँगीर ने आरोप लगाया कि उनके द्वारा संतों की वाणी का संग्रह 'गुरु ग्रंथ साहब' इस्लाम-विरोधी है। उसने ग्रंथ-साहब में हजरत मुहम्मद का नाम लिखने का आग्रह भी किया, पर जब गुरु सहमत न हुए तो उसने पहले उन पर दो लाख रुपये का जुर्माना किया और जुर्माना न देने पर उन्हें अनेक कष्ट दिये; पर गुरु अर्जुन विचलित न हुए। इस्लाम के अत्याचारों के विरुद्ध जो धर्म-यज्ञ आरंभ हुआ उसमें पहली आहुति गुरु अर्जुन के बलिदान की ही पड़ी। उनके बलिदान से प्रेरणा पा अन्य अनेक शिष्यों ने उस यज्ञ को पूरा किया।

गुरु गोविन्दसिंह

गुरु तेगबहादुर के उत्तराधिकारी गुरु गोविन्दसिंह के हृदय में आरम्भ से ही धर्म, जाति और देश के शत्रुओं से प्रतिशोध लेने की भावना बद्धमूल थी। यवनों से प्रतिशोध लेने का कार्यक्रम बनाने से पूर्व उन्होंने चिन्तन-मनन किया, सहधर्मियों के दोष, अवगुण और दुर्बलताएँ पहचानीं और उन्हें संगठित करने के उपाय किए।

गुरु गोविन्दसिंह में दृढ़ निश्चय, साहस, उत्साह आदि गुण जन्मजात थे। हिमालय पर कुछ दिन तपस्या कर उन्होंने स्वयं को श्रम-सहिष्णु, संयमी और सक्षम बनाया। संत-हृदय नवनीत के समान और समदर्शी होता है। अतः उन्होंने ब्राह्मण और शूद्र में कोई भेद न माना, शूद्रों को भी पढ़ने-लिखने का अधिकारी बताया; सहृदय और निष्पाप मुसलमान भी उनकी मैत्री एवं सहायता के पात्र बने—सय्यद के बेटे की मृत्यु पर उन्होंने सय्यद को गले से लगाकर उसे सांत्वना दी और बहादुरशाह को संकट के समय सहायता देकर उसे संकट-मुक्त किया।

उनके जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य था हिन्दू जाति का संगठन कर उन्हें यवनों से टक्कर लेने के योग्य बनाना। जन-जागृति के लिए उन्होंने तन-मन-धन न्यौछावर कर दिया, बड़ी से बड़ी बलि चढ़ा दी। उन्होंने जनता को उद्बुद्ध करने के लिए उनसे धनमणि न मांगकर हथियार माँगे, उन्हें अस्त्र-शस्त्र संचालन की शिक्षा दी और उन्हें प्रेरणा दी कि वे धर्म के लिए प्राण अर्पित करें। आत्म-रक्षा के लिए उन्होंने जगह-जगह गढ़ और किले बनवाये, शस्त्रागार स्थापित किये और जनता को युद्ध का प्रशिक्षण दिया, खालसा पंथ की स्थापना की, सिक्खों में एक्य-भाव लाने के लिए उन्हें पाँच ककार—कच्छ, कृपाण, कड़ा, केश, कंघा धारण करने का आदेश दिया और इस प्रकार उन्हें सिंह बना दिया।

जीवन में अनेक बार उन्हें यवनों से टक्कर लेनी पड़ी और उन युद्धों में उन्होंने अद्भुत पराक्रम, धैर्य, कष्टसहिष्णुता आदि का परिचय दिया। पहाड़ी राजाओं में आत्म-गौरव का भाव जगा, उन्हें यवनों के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा दी, पर जब वे पुनः भटक गये तो उन्हें मार-मार कर सही रास्ते पर लाने का प्रयास किया। औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम और सर-हिन्द के शासक को परास्त कर उन्होंने अद्भुत युद्ध-कौशल और वीरता का परिचय दिया। अनेक बार यवनों द्वारा भेजे गये सन्धि-प्रस्तावों को ठुकराकर उन्होंने आत्म-गौरव और स्वाभिमान का परिचय दिया।

वह अध्ययन-प्रिय और विद्यार्जन के लिए सदा समुत्सुक रहे। इसके लिए उन्होंने काशीवास किया; वह स्वयं कवि थे। उन्होंने जनता के लाभ के लिए पूर्वजों के आख्यान तथा शास्त्र-ग्रंथों का जनता की सरल भाषा में अनुवाद कराया तथा स्वयं 'गुरु-ग्रंथ' का सम्पादन किया।

उनके कुटुम्ब के सदस्य—माँ, पत्नी और बच्चे—सभी गुणवान, देशभक्त और निर्भय तथा सहनशील स्वभाव के थे। पत्नी ने पुरुषवेष धारण कर युद्ध में सहायता की तो बच्चों ने अपने प्राण देकर धर्म और जाति के गौरव को अक्षुण्ण रखा। उनके उपदेशों का सार था—देश-काल को अपने अनुरूप बनाओ साथ ही स्वयं भी देश-काल के अनुरूप बनो।

मरने से पूर्व उन्होंने एक महान कार्य यह किया कि दक्षिण यात्रा के समय जब वह बन्दा वैरागी से मिले तो उस वीर को जो वैरागी बन गया था समझा-बुझाकर, उसमें अपने कर्तव्य के प्रति चेतना जगायी एवं उसे वैराग्य छोड़ कर्मठ देशभक्त बनने के लिए तैयार कर लिया। उन्होंने उसे अपना उत्तराधिकारी भी घोषित किया।

गुरु तेगबहादुर

भारतमाता के वीर, धर्मनिष्ठ और बलिदानी पुत्रों में गुरु तेगबहादुर का नाम अप्रतिम है। यथानाम तथा गुण के वह मूर्तिमान दृष्टांत थे। आरंभ में वह एक शांत स्वभाव, हरिचिन्तन और संत-समागम में रुचि लेने वाले आचार-विचार से शुद्ध संत थे। यद्यपि अपने पिता के समय उन्होंने अनेक युद्धों में भाग लेकर अपनी वीरता, पराक्रमशीलता और युद्धकौशल का प्रमाण दिया था, पर गुरु बनने के बाद उनका समय और शक्ति हरि-भजन में ही लगी थी। पर औरंगजेब और उसके मुल्लाओं के अन्याय, अत्याचार तथा हिन्दू धर्मा-वलम्बियों और उनके मन्दिरों तथा तीर्थस्थानों के प्रति

उनका दुर्व्यवहार देख वह शांत न रह सके। जब काश्मीर के पंडित उनके पास फरियाद लेकर गये और उनसे ब्राह्मण-धर्म के साथ-साथ क्षात्र-धर्म अपनाकर अन्यायी और अत्याचारी शासक से हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा करने की प्रार्थना की तो उन्होंने सुझाव दिया कि वे एक पत्र लिखकर औरंगजेब को बतायें कि वे सब गुरु तेगबहादुर के अनुयायी हैं और यदि गुरु इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें तो वे सब भी कलमा पढ़कर मुसलमान बन जायेंगे, पत्र का परिणाम वह पहले से ही जानते थे, उनका अनुमान सत्य निकला। औरंगजेब का बुलावा आया। वे अपने पाँच शिष्यों के साथ दिल्ली के लिए चल पड़े। जाने से पूर्व उन्होंने अपने पुत्र गोविन्दसिंह को यथोचित शिक्षा दी और उद्बोधन दिया कि वह जन-कल्याण के लिए सर्वस्व समर्पण करें। उनके साथ एक बूढ़ा ब्राह्मण मतिदास भी हो लिया। दिल्ली पहुँचने में कुछ विलम्ब हुआ तो अधीर और उतावले औरंगजेब ने घोषणा की कि जो तेगबहादुर को दरबार में उपस्थित करेगा उसे एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया जायेगा। जब एक मुसलमान ने गुरु को यह सूचना दी तो उन्होंने प्रस्ताव रखा कि वह मुसलमान उन्हें दरबार में ले चले ताकि उसे एक लाख रुपया मिल जाय और उसकी गरीबी मिट जाय, पर उसने इसे पाप समझा और वह इसके लिए तैयार न हुआ।

दिल्ली पहुंचने पर बादशाह ने उन पर राजद्रोह का आरोप लगाया और उन्हें बन्दी-गृह में डाल दिया। कुछ दिन बाद दरबार में पेशी हुई और उनसे कहा गया कि वह करामात दिखलायें, गुरु और बादशाह के बीच बहस हुई। गुरु के तर्कों से परास्त हो तथा उनके चुभते उत्तर सुन बादशाह कुपित हो उठा। उसने उन सबको इस्लाम धर्म स्वीकार करने या मरने के लिए तैयार हो जाने की धमकी दी। पर उनमें से कोई धमकी में आने वाला न था। पहले गुरु के पाँच शिष्यों के सिर काट डाले गये, तदुपरान्त मतिदास का सिर बीचोंबीच आरे से कटवाया गया और इस तरह गुरु को आतंकित कर उनके सामने फिर वही प्रस्ताव रखा गया। उन्हें फुसलाने की चेष्टा भी की गयी; जब गुरु अडिग रहे तब उन्हें काल-कोठरी में डाल कर अनेक यातनाएँ दी गयीं। ज्यों-ज्यों अत्याचार बढ़ते गये, गुरु का संकल्प दृढ़ होता गया। अन्त में एक दिन दरबार में बुलवाकर औरंगजेब ने निर्णय सुनाया—धर्म परिवर्तन या मौत। गुरु अपने पथ पर अडिग रहे, जल्लाद की तलवार चली और सिर से रुधिर की तीव्र धारा बह निकली। क्रूर शासक ने उनका शव भी उनके परिजनों को नहीं दिया। उसे एक सुरक्षित स्थान पर पहरे में रखवा दिया गया। यह सुनकर उनके द्वारा उपकृत अन्त्यज कुल के पिता-पुत्र दिल्ली आये और चुपके से उस स्थार पर पहुँचे। प्रहरियों की आंख बचाकर वे गुरु के शव के पास पहुँचे। पिता-पुत्र में बहस हुई कि कौन गुरु के शव को वहां से ले जाय और कौन वहां मर कर शत्रु के मन में संदेह पैदा न होने दे। पिता ने पुत्र को मौका ही न दिया और स्वयं अपना सिर काट डाला। पुत्र गुरु के शव को लेकर आनंदपुर पहुंचा। गुरु के बलिदान से सारा पंजाब विक्षोभ से भर उठा और सिक्खों में विरोध की आग भड़क उठी।

गुरु नानक

गुरु नानक का जन्म संवत् १५२६ विक्रमी में हुआ था। उनके पिता का नाम कल्याणमल और माता का नाम तृप्ता था। उनके दो पुत्र थे—श्रीचन्द और लक्ष्मीदास। बचपन से ही वह अत्यन्त उदार और दानशील प्रवृत्ति के थे। खेतों में घूमते हुए गाया करते थे, "भर पेट चुगो री चिड़ियो, हरि की चिड़ियाँ, हरि के खेत'। यद्यपि उन्होंने विवाह किया और गृहस्थी बसायी पर उनका मन गृहस्थ में न रमकर जन-कल्याण के कार्यों में लगा रहता था। अतः वह गृहस्थ होकर भी संन्यासी का जीवन बिताते थे।

उन्होंने ऋषियों की वाणी, वैदिक मंत्रों और वेदविहित आदर्शों को सरल भाषा में रूपान्तरित कर पदों की रचना की जिन्हें आज 'गुरुवाणी' कहा जाता है। उन्होंने साम्य धर्म का प्रचार किया, ऊँच-नीच का भेद मिटाया, शूद्रों को गले लगाया और कहा कि सब एक परम पिता की संतान हैं, किसी से घृणा नहीं करनी चाहिए। उनका मत था कि सभी को शुभ कर्म करने का अधिकार है। वह कर्मकाण्ड के विरोधी थे, जप-माला-तिलक आदि बाह्याडम्बर को व्यर्थ मानते थे।

उन्हें न लोभ सताता था, न वह दण्ड-भय से विचलित होते थे। स्पष्टवक्ता तो ऐसे थे कि उन्होंने तत्कालीन सम्राट

को भी खरी-खोटी सुनाई, उसके द्वारा भेजी गयी भेंट यह कह कर लौटा दी कि वह परपीड़क है और दूसरों का धन लूटता है। गुरु नानक ने दूर-दूर की यात्रा की, अनेक महापुरुषों से मिले और अपने उपदेशों द्वारा जन-जन का मार्ग-दर्शन किया। उनका मन राग-द्वेष और पक्षपात से ऊपर था, अतः उन्होंने अपने पुत्र को नहीं, गुणवान शिष्य अंगद को गद्दी का अधिकार दिया।

गुरु रामदास

गुरु रामदास ने भी अपने से पूर्व के गुरुओं की परम्परा का अनुसरण करते हुए अपना तन और धन सार्वजनिक कल्याण के कार्यों में लगाया। उनकी सुव्यवस्था के कारण गद्दी की आय बढ़ी और उसका सदुपयोग भी बढ़ा। उन्होंने उस धन का उपयोग कभी अपनी निजी सुख-सुविधाओं के लिए नहीं किया; उन्हें संसार और सांसारिक प्रलोभन छू तक नहीं गये थे। वह स्वतंत्र प्रकृति के और स्वतंत्र-चेता महापुरुष थे। उन्हें न प्रलोभन था, न दण्ड-भय। अतः उन्होंने अकबर के भूमि-दान प्रस्ताव को ठुकरा दिया और एक बार एक सेठ द्वारा दिये गये मणिमय हार को एक याचक को दे डाला। वह अपने पूर्वजों की तरह गुण-ग्राहक थे तथा सुपात्र को पहचानकर उसे दायित्व सौंपने का उनमें तीक्ष्ण विवेक था। अतः उन्होंने गद्दी अपने बड़े बेटों को न सौंपकर सबसे छोटे पुत्र अर्जुनदेव को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

गुरु हरगोविन्द

सिक्खों के छठे गुरु हरगोविन्द परशुराम के अवतार थे—एक ओर धर्मनिष्ठ और दूसरी ओर वीरता और पराक्रम में अद्वितीय। यद्यपि पिता के हत्यारे यवनों के प्रति उनमें रोष था फिर भी उनका विरोध व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत था। अनेक मुसलमान उनके शिष्य थे और एक मुसलमान साधु मियाँ पीर ने तो जहाँगीर को समझा-बुझा कर उन्हें क्षमा-दान भी दिलवाया था। उनमें अद्भुत संगठन-शक्ति और दूरदर्शिता थी। अतः उन्होंने शिकार, मल्लयुद्ध आदि के बहाने सिक्खों को अस्त्र-शस्त्र संचालन की शिक्षा देने के कार्य-क्रम बनाये, लोहागढ़ जैसे किलों में शस्त्रों का भण्डार बनाया, और सिक्खों को तन-मन से सबल बनाने का उपक्रम किया। उनके इस संगठन-कार्य को देख जहाँगीर से शिकायत की गयी कि गुरु हरगोविन्द राज-द्रोह की योजना बना रहे हैं, हिन्दुओं को भड़का रहे हैं, चोर-लुटेरों को आश्रय देते हैं। जहाँगीर ने उत्तेजित हो गुरु के पिता पर लगाये गये दो लाख रुपयों के जुर्माने की बात दोहरायी। यद्यपि उनके शिष्यों ने चन्दा कर जुर्माने की रकम अदा करने का प्रस्ताव रखा, पर गुरु ने उसे अस्वीकार कर दिया। फलतः उन्हें कारावास का दंड दिया गया। सिक्ख इस अन्याय से भड़क उठे और उन्होंने साका कर सम्राट का विरोध करने की इच्छा प्रकट की; पर गुरु ने उन्हें पुनः समझा-बुझा कर शांत कर दिया। उन्हें ग्वालियर के किले में बंदी बना कर रखा गया। मियाँ पीर के हस्तक्षेप से जहाँगीर गुरु को मुक्त करने के लिए तैयार हो गया, पर गुरु ने शर्त रखी कि जब तक उनके साथी बंदी लोगों को मुक्त न किया जायगा, वह स्वयं भी कारागार से बाहर नहीं आयेंगे। इस पर बादशाह और भी प्रभावित हुआ और उसने सभी बंदियों को रिहा करने का आदेश दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उन सभी बंदियों ने गुरु के प्रति कृतज्ञ हो सिक्ख धर्म स्वीकार कर लिया। गुरु की उदारता और उनके हृदय की विशालता का परिचय उस घटना से भी मिलता है जब उन्होंने काजी की मुग्ध पुत्री को अपनाया, उसका नाम कमला रखा और उसके नाम पर एक सरोवर कमलसर बनवाया। इस बात को लेकर यवन भड़क उठे और संघर्ष शुरू हो गया। सिक्खों और यवनों के बीच पहला युद्ध १६८५ ई० में हुआ। लगातार तीन युद्ध हुए और सभी में गुरु के पराक्रम, युद्ध-कौशल और सिक्खों के अडिग संकल्प के परिणामस्वरूप यवन पराजित हुए। इन युद्धों के बाद कुछ दिन शांति रही। इस शांति-काल में गुरु ने धर्म-प्रचार और जाति-संगठन का काम किया। उनके प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप सिक्ख जाति में जाति-धर्म के प्रति गौरव और गर्व का भाव जागा और वे समर्थ हो उठे।

गुरु हरराय

हरराय गुरु हरगोविन्द के पौत्र थे; पितृविहीन होने के कारण सबकी उन पर गहरी ममता थी। उनमें गुरु होने के सब गुण—दृढ़ता, उदारता, कोमलता, संयम, शील, भगवद्-भक्ति आदि थे। अतः चार-चार चाचाओं के रहते उन्हें गद्दी दी गयी। उनकी वाणी में अद्‌भुत आकर्षण था, अतः उनके उपदेश सुन अनेक लोगों ने सिक्ख धर्म अपनाया; पटियाला, नाभा आदि रियासतों में सिक्ख धर्म फैला। उनके उपदेशों का सार था—सब संत समान हैं, सबको अपनी रुचि के अनुसार धर्म-पथ अपनाने का अधिकार है, मनुष्य अपने कर्मों का फल पाता है, नियति अटल है। गुरु हरराय न्यायशील एवं सत्य-मार्ग के अनुगामी थे, अतः उन्होंने औरंगजेब द्वारा सताये गये दारा की सहायता की। जब औरंगजेब उनके इस कृत्य पर रुष्ट हुआ और गुरु को बुलवा भेजा तो उन्होंने स्वयं न जाकर अपने बेटे रामराय को औरंगजेब के दरबार में भेजा। वह प्राणों के भय से बादशाह की चाटुकारिता करने लगा और उसने उसे खुश करने के लिए झूठ बोला कि गुरुग्रंथ साहब के पाठ में लिपि-दोष है, वस्तुतः वहाँ इसलाम या इसलाम के अनुयायियों की बुराई नहीं है। जब गुरु को पता लगा कि उनका बेटा क़ायर, क्लीव और चाटुकार निकला तो उन्होंने उसे उत्तराधिकार से वंचित कर दिया।

गुरु हरिकृष्ण

गुरु हरराय के तीन बेटे थे—रामराय, धीरमल और हरिकृष्ण। बड़े दोनों बेटे मुगल सम्राट औरंगजेब से मिल गये; उनमें गुरु बनने के योग्य गुण भी न थे। अतः सात वर्ष की आयु वाले हरिकृष्ण को गुरु बनाया गया। इस पर रामराय ने बादशाह के कान भरे और कहा कि यदि वह गुरु की गद्दी पर न बैठा तो सिक्ख मुगलों का विरोध करेंगे और पंजाब हाथ से निकल जायगा। औरंगजेब ने हरिकृष्ण को दिल्ली बुलवाया। हरिकृष्ण दिल्ली में जयपुर नरेश के अतिथि हुए और उन्होंने अन्तःपुर की रानियों, विशेषतः पट्ट महिषी को अपने बाल-सुलभ सरल आचरण, भोली मुस्कान, बुद्धिमत्ता, हाजिर-जवाबी, व्युत्पन्नमति एवं सहज आत्मीयता से इतना मुग्ध कर लिया कि जयपुर नरेश ने बादशाह को बताया कि गुरु हरिकृष्ण सुपात्र हैं और उन्हें गुरु की गद्दी पर बैठने का पूरा अधिकार है।

चैतन्य

चैतन्य ने एक ओर तो ईश्वर-भक्ति को सबके लिए सुलभ किया तथा दूसरी ओर शासक-वर्ग की धमकियों से लोक-आस्था को मुक्त किया। नाच, गान, नाम, कीर्तन ही उनके जीवन का आदर्श था। बंगाल के नवद्वीप (नदिया) निवासी जगन्नाथ के ये दूसरे पुत्र थे। माँ का नाम शची था। इनका जन्म १४८६ में नवद्वीप के मायापुर ग्राम में हुआ था। विल्व वृक्ष के नीचे उत्पन्न होने के कारण इन्हें निमाई कहकर बुलाया जाता था। पिता ने इनका नाम विश्वम्बर रखा था। भाई विश्वरूप के संन्यासी हो जाने के बाद कुशाग्रबुद्धि निमाई की शिक्षा के प्रति रुचि जाग्रत हुई। उपनयन संस्कार के समय गायत्री मंत्र के उच्चारण से यह आवेश में आकर अचेत हो गए थे। सुन्दरता के कारण इनका नाम गौरहरि भी पड़ गया था। जब निमाई १६-१७ वर्ष के थे तब इनके पिता का देहांत हो गया था।

निमाई का बचपन अन्य बच्चों के समान होते हुए भी विलक्षण था। वे प्रतिभाशाली और अध्ययनशील थे, इसीलिए ग्यारह-बारह वर्ष की अवस्था में इनकी ख्याति नदिया में फैल गई थी। अलंकारशास्त्र, तंत्र, न्याय आदि में निमाई का कोई मुकाबिला नहीं था। अपने मित्र रघुनाथ को तुष्ट करने के लिए उन्होंने न्याय पर लिखी पोथी गंगा में बहा दी थी। सोलह वर्ष की आयु में शिक्षा समाप्त करके निमाई ने पाठशाला खोल दी थी। शिष्यों में भी निमाई अत्यंत प्रिय थे।

इक्कीस वर्ष की आयु में नदिया के आचार्य वल्लभ की पुत्री लक्ष्मी से इनका विवाह हुआ था। इसी आयु में उन्होंने अपने समय के प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त ईश्वरपुरी के 'श्रीकृष्ण लीलामृत' का श्रवण किया था। इनका मन कृष्ण-भक्ति की ओर आकृष्ट हुआ। संस्कृत व्याकरण की पुस्तक रचना पर आपको विद्यासागर की उपाधि भी मिली। इस बीच इन्हें हँसने-रोने और मूर्छा के दौरे पड़ने लगे थे। इस कारण वह यात्रा पर निकले और लौटने पर पता चला कि साँप के काटने से पत्नी का स्वर्गवास हो गया है।

इन्होंने कश्मीर के प्रकांड पंडित आचार्य केशव को भी पराजित किया था। परंतु पत्नी की मृत्यु के बाद इनका मन व्याकुल रहने लगा था। अतः माता ने राजपंडित सनातन मिश्र की पुत्री विष्णुप्रिया से इनका विवाह कर दिया। विष्णुप्रिया नियम-धर्म पालन करनेवाली, निष्ठावान, विदुषी और प्रबंधपटु महिला थी।

विवाह के पश्चात् पिता का श्राद्ध करने के लिए निमाई ने गया जाने का विचार किया। गया में विष्णु-पद-चिह्न देखकर वह आत्मविभोर हो गए। वहाँ उन्होंने ईश्वरपुरी से मंत्र-दीक्षा ली। गया से लौटने पर निमाई का मन कृष्णमय हो गया। यहीं निमाई कृष्ण-भक्त श्री वासु, गदाधर, मुरारि गुप्त आदि कृष्ण-भक्तों के सम्पर्क में आए। निमाई का दिव्योन्माद बढ़ता ही गया और वे घंटों गुमसुम बैठे टकटकी लगाए किसी अदृश्य वस्तु को देखते रहते थे।

ईश्वरपुरी के अन्य शिष्य निताई (नित्यानंद) भी निमाई के सम्पर्क में आकर उनके आत्मीय बन गए। इसी तरह मुसलमान दर्जी, हरिदास, जगाई, मघाई, काजी चाँद खाँ, बुद्धिमंत खाँ आदि भी निमाई की भक्ति-भावना से अत्यंत प्रभावित हुए। सन् १९२१ में काटवा ग्राम के संन्यासी केशव भारती से संन्यास की दीक्षा ली और शांतिपुर में विश्राम किया। शांतिपुर में इनकी माता शची भी आई थीं। वहाँ से इनका भारत-भ्रमण आरंभ हुआ। उड़ीसा में इनकी भेंट वासुदेव सार्वभौम, महाराज प्रताप, रुद्रदेव, मंत्री राय रामानंद से हुई और वहाँ से वह दक्षिण की यात्रा पर चले गए। दक्षिण से महाराष्ट्र-गुजरात होते हुए चैतन्य पुनः पुरी आए। पुरी में इन्होंने नित्यानंद को गृहस्थ होने का आदेश दिया। गौड़ देश के बादशाह के दो मंत्री भी चैतन्य की शरण में आए। इन दोनों को महाप्रभु चैतन्य ने रूप और सनातन नाम देकर अपने परिकर में सम्मिलित कर लिया। वहाँ से वे पुनः शांतिपुर आए, माँ से मिले और फिर वृंदावन-यात्रा पर निकल गए। रास्ते में काशीवास करते समय इन्होंने अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान स्वामी प्रकाशानंद को प्रभावित किया। कहा जाता है कि सन् १५३३ में भीड़-भरे जगन्नाथ मंदिर में वह सहसा अदृश्य हो गए।

'विष्णुप्रिया' में कवि ने चैतन्य के चरित्र की मूल रेखाओं में किंचित मात्र भी परिवर्तन न करके कथा में ही थोड़ा-सा संशोधन किया है। मूलकथा में विष्णुप्रिया चैतन्य की दूसरी पत्नी थी। उनके जीवन-चरित्र में कहीं-कहीं यह भी उल्लेख किया गया है कि वे संन्यास लेने से पूर्व अपनी माँ तथा विष्णुप्रिया से संन्यास की आज्ञा लेने गए थे। यह तो स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि संन्यासी चैतन्य से उसकी माँ एक या दो बार मिली थीं। कहीं-कहीं यह भी उल्लेख है कि विष्णुप्रिया भी चैतन्य से मिली थी और चैतन्य ने उनका तिरस्कार कर दिया था।

गुप्तजी ने विष्णुप्रिया को चैतन्य की प्रथम पत्नी ही नहीं माना है बल्कि अंगूठा दबाने, गया जाते तथा संन्यास के प्रसंग में भी संयोग के मर्यादित चित्र उपस्थित किए हैं। इन प्रसंगों से चैतन्य के हास-परिहासमय चरित्र का भी परिचय मिलता है। विष्णुप्रिया नदिया में चैतन्य के दर्शन भी करती है। लोचनदास तथा मुरारि गुप्त ने इस प्रसंग की ओर संकेत किया है। चैतन्य का स्वर्गवास १५३३ ई० में हुआ था। इस समय उसकी आयु मात्र ३८ वर्ष की थी। देहांत से १५ वर्ष पूर्व एक बार चैतन्य नदिया आये थे। इन्होंने अपनी माँ से तो बातचीत की थी, परंतु विष्णुप्रिया को न पहचान कर सामाजिक रूप से अनादृत किया था। गुप्त जी के चैतन्य विष्णुप्रिया को न तो विरादृत करते हैं और न उसके प्रति क्रूर होते हैं।

इस तरह गुप्तजी ने विष्णुप्रिया काव्य में विष्णुप्रिया के उपेक्षित चरित्र को तो सशक्त रूप में प्रस्तुत किया ही है साथ ही चैतन्य के पारम्परिक चरित्र की रक्षा करते हुए विष्णुप्रिया के प्रति उन्हें अधिक सहृदय रूप में भी चित्रित किया है।

जगद्देव

जगद्देव मालव महीप नरवर्मा का एक सेनानायक है और राजवंश से संबंध रखता है। नरवर्मा के स्वर्गवास के पश्चात वह संधि का प्रस्ताव ठुकरा कर युद्ध करने का परामर्श देता है। वह शरीर को क्षणजन्मा मानता है। इस संदर्भ में वह साहसी, वीर और मनस्वी प्रतीत होता है। वह मालव के पतन के समय भी अंत तक शत्रुओं से जूझता है और अंत में अचेतावस्था में सिद्धराज द्वारा बंदी बनाया जाता है। इस प्रसंग में वह निर्भीक होकर जयसिंह से कह देता है—"प्राण रहते मानूँगा अवंतीनाथ मैं न प्रतिपक्षी को।" उसे अपनी जन्मभूमि से प्यार है। वह उसे और अपने को किसी के अधीन नहीं देखना चाहता। इसीलिए कहता है—

हम परतंत्र नहीं सर्वथा स्वतंत्र हैं।
मानूँ किस भाँति मैं अवंतीनाथ तुमको
वह पद चाहो यदि जीतो मुझे पहले।

और जब जयसिंह उसे बंधनमुक्त कर अपने बंधुओं से सावधान रहने का परामर्श देता है तथा मालवा के राजा यशोवर्मा का सम्मान करने का आदेश देता है तब जगद्देव जयसिंह के 'वीरोचित विनय-विवेक व्यवहार' से उसका अनुगत हो जाता है। अनुगत होने पर अपनी कार्यकुशलता के कारण वह जयसिंह का दाहिना हाथ बन जाता है—

सोता वह स्वस्थता से और यह जागता।
मंत्रव्य में पार्श्व में तो सम्मुख विनोद में
पीछे जो प्रयाण में, तो आगे अभियान में;
व्याप्त सब ओर यह हो रहा था उसके;
और वह रक्षित था इससे घिरा हुआ।

वही अनुगत जगद्देव रानक के प्रसंग में अपना कर्त्तव्य निष्ठ प्रचंड रूप धारण कर जयसिंह को व्यभिचारी, कामी, क्रूर पुरुष कह कर धिक्कारता ही नहीं विद्रोही तक बन उठता है। वह रानक दे की रक्षा के लिए सर्वस्व निछावर करने को सन्नद्ध हो जाता है।

निष्कर्ष यह है कि गुप्तजी का जगद्देव मानवादर्शों एवं मानवीय गुणों का मूर्तिमान स्वरूप है। वह प्रत्येक स्थिति में साहसी, वीर और कर्त्तव्यपरायण प्रतीत होता है।

जनक (लीला)

विदेह जनक 'लीला' में उस पिता के रूप में निरूपित हैं जो अपनी पुत्री के विवाह के संबंध में गंभीर रूप से चिंतित हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि सीता का विवाह उसी व्यक्ति के साथ करेंगे जो शिव-धनु भंग कर सकेगा, किंतु—

इसे चढ़ा देना तो दूर
ले भी सका न कोई शूर।

अतः उन्हें ऐसा जान पड़ता है 'हुआ विश्व क्या वीर्य-विहीन?'

महाराज दशरथ के पुत्रों के रूप, गुण, शील और सुवेश को देखकर उनके हृदय में विशेष वात्सल्य का उदय होता है। और लक्ष्मण का क्षात्रोत्कर्ष देखकर तो वह प्रत्यक्षतः अपमानित होकर भी फूले नहीं समाते। लक्ष्मण का समुचित आक्षेप उन्हें 'चंदन का लेप-सा' लगता है :

धन्य वत्स का वह घन-घोष
अहा! रोष भी है निर्दोष।

राम शिव-धनु भंग कर देते हैं। जनक को यह सब एक मधुर सपना-सा लगता है, उन्हें मानो इस पर विश्वास ही नहीं हो पाता है। विश्वामित्र के यह कहने पर—

राजन्, दूर करो संदेह
रामचंद्र ने यह कोदंड
देखो, तोड़ किया दो खंड।'

जनक कृतकृत्य हो जाते हैं :

तो मैं करता हूँ प्रस्ताव
जयमाला अब डाली जाय,
शेष नियम-विधि पा ली जाय।

जनक का हर्षोल्लास आज अपने में समा नहीं पा रहा है—

मुझ-सा अन्य
होगा कौन धरा पर धन्य?

जयद्रथ

जयद्रथ धृतराष्ट्र की पुत्री दु:शला का पति और वृहद्क्षत्र का पुत्र था। इसका राज्य सिंधु-सौवीर में था। इसके पुत्र का नाम अश्वजित था। पांडवों के वनवास-काल में इसने एक बार द्रौपदी-हरण की भी असफल चेष्टा की थी। इस प्रयास में वह पांडवों से बुरी तरह परास्त भी हुआ था। युधिष्ठिर के कहने पर भीम ने उसे प्राण-दान तो दिया परंतु उसके शिर के बाल काटकर उससे दासत्व स्वीकार करा लिया था। सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु के वध का जयद्रथ ही कारण माना गया था। इसीलिए उसे अर्जुन ने मारने की प्रतिज्ञा की थी जिसे उन्होंने श्रीकृष्ण की कृपा से पूर्ण किया था। पूर्व प्राप्त वरदान के कारण जयद्रथ का सिर आकाश में उड़ता हुआ समंत-पंचक स्थान में तपस्यारत उसके पिता की गोद में जाकर गिरा था।

गुप्तजी के जयभारत और जयद्रथ-वध काव्यों में महाभारत में वर्णित जयद्रथ के प्रसंग को ही आधार बनाया गया है। अर्जुन के द्वारा अपने वध की प्रतिज्ञा के कारण वह दुर्योधन आदि के पीछे रहता है। सूर्यास्त के समय वह वीर भाव से अर्जुन से युद्ध करता है। जयभारत में कवि ने महाभारत के प्रसंग से हटकर युगीन भावना के अनुसार जयद्रथ के चरित्र का चित्रण किया है।

द्रौपदी यह जानते हुए भी कि जयद्रथ उसे अकेली जान कर कामवश अपहरण करने आया है, उसकी आवभगत 'नंदेऊ' कह कर करती है। उसी तरह परिहास करती है, जैसे आजकल भारतीय परिवारों में नंदोई और सलहजों के परिहास चलते हैं। परंतु जब वह उससे दुर्व्यवहार की चेष्टा करता है तो उसे जमीन पर पटक भी देती है। उसी समय पांडवों के वहाँ आ पहुँचने पर उसकी दुर्गति होती है, किंतु महाभारत की तरह जयभारत में न तो भीम ने उसके बाल काट कर पाँच चोटियाँ ही छोड़ी हैं और न ही उसे दास बनाया है। इसी प्रसंग में गुप्तजी ने अपने काव्य में युधिष्ठिर से तो यहाँ तक कहला दिया है—

जाय जयद्रथ नहीं किसी को दास बनाते हैं हम।
अपनी हँसी सबकी स्वतंत्रता सदा मनाते हैं हम॥

जबकि महाभारत में जयद्रथ का मुंडन होता है, उससे दासत्व स्वीकार कराया जाता है।

महाभारत का जयद्रथ भी कामुक और कायर होने के कारण एक निकृष्ट पात्र है। वह प्रतिशोध-भाव के कारण ही शिव से अस्त्र प्राप्त करता है, अन्यथा उसमें शौर्य का अभाव है। 'जयद्रथ-वध' के जयद्रथ को अर्जुन की प्रतिज्ञा से ही मृत्यु अपना प्रत्यक्ष रूप दिखलाने लगती है और वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर चिताग्नि में जलने लगता है—

होकर चकित-सा सर्वस्व से जाकर ठगा, भय से विकृत अप्रकृत स्वर से वचन वह कहने लगा। वह अन्यत्र जाने की बात भी करता है। दूसरी ओर वह चापलूस भी है—

है किंतु मुझको चित्त में चिंता प्रबल केवल वही।
अब देख पाऊँगा तुम्हारी मैं न निष्कंटक मही॥

दूसरों से उत्साहित होकर वह जोश में भी आ जाता है इसीलिए कृष्ण द्वारा सूर्यास्त का भ्रम उत्पन्न करने पर वह अर्जुन के सामने आकर कृष्ण से यह कहने का साहस जुटा सका है—

गोविंद अब क्या देर है? प्रण का समय आ चला।
शुभ कार्य जितना शीघ्र हो, है नित्य उतना ही भला॥

यही जयद्रथ द्रौपदी-प्रसंग में भीम द्वारा प्रतिज्ञा किए जाने पर गिड़गिड़ा उठता है—

दया करो, मत मारो मुझको मैं हूँ दास तुम्हारा।

निष्कर्ष यह है कि गुप्तजी ने जयद्रथ का चरित्र-चित्रण महाभारत के समान ही किया है।

जेनी (जयिनी)

जेनी कार्ल मार्क्स की प्रियतमा पत्नी है। वह मार्क्स की 'जयिनी हृदय की' है। चारों ओर व्याप्त घोर अपकर्ष ने मार्क्स के संवेदनशील हृदय में तूफान मचा डाला है। जैनी उस तूफान को अपने प्रेम-पारावार में विलीन कर लेना चाहती है। वह चाहती है कि मार्क्स पूर्णतया निश्चिंत जीवन बिताएँ। मार्क्स जान-समझ लेते हैं कि जिस क्रांतिकारी पथ पर उन्होंने पदार्पण किया है उसमें कारागार और निष्कासन उनकी अपरिहार्य नियति हैं। उधर प्रेमनिमग्ना जेनी यही मानती है कि यदि मार्क्स को वंदी ही होना है तो—

रात के तिमिर और दिन के प्रकाश में,
बांध लूंगी चाहे जब यों ही भुजपाश में।
बंदी कर रक्खूंगी तुम्हें मैं निज दृष्टि में।

पति सुमधुर कल्पनाओं में निमग्न पत्नी को समझाते हैं कि उन दोनों में एक गंभीर अन्तर है :

राज-कुल बाला तुम, किंतु मानी दीन मैं,
कांटों भरे पथ का पथी हूं, गृह-हीन मैं।

इस अन्तर को स्वीकार करना तो दूर, पत्नी तो इसे समझ भी नहीं पाती। पति प्रेयसी को जीवन-लक्ष्य के प्रति उद्‌बुद्ध करते हैं। वह उसे समझाते हैं कि विश्वव्यापी वैषम्य के उन्मूलन के लिए एक विप्लव अनिवार्य है। अब पत्नी को भी यह अनुभव होने लगता है—

मेरी परितृप्ति क्या है, रोटी उन्हीं भूखों की !
मेरी वेषभूषा लुटी लाज उन्हीं नंगों की !
रक्त से उन्हीं के बढ़ी लाली इन अंगों की !

उसका हृदय चीत्कार कर उठता है—

मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं राजकुल-नंदिनी;
दंड दें मुझे वे, मैं उन्हीं की न्याय बंदिनी !

मार्क्स अपने कंटकाकीर्ण पथ से पत्नी को बचाना चाहते हैं। सहचरी पत्नी का प्रश्न है—

खिलती नहीं क्या कांत, कंटकों में भी कली ?

मार्क्स के मानस-फूल की तितली जेनी पति के साथ रहने पर किसी भौतिक शूल की चिंता नहीं करती और पति को यह स्वीकार करना पड़ता है—

दिव्य मनवाली, भव्य देहिनी
सचिव, सखी हो तुम और मेरी गेहिनी।

और दोनों उस पथ पर बढ़ निकलते हैं जहाँ जेनी को धनियों को भावदान प्रदान करना है और मार्क्स को दीनों का प्रवक्ता बनना है।

जोनस

जोनस मन के महान विनिमय के सच्चे व्यवसाय में एक अमूल्य उपलब्धि के रूप में इउडोसिया का अर्जन करता है। उसे इस बात का हार्दिक खेद है कि वह उस आय का भोग नहीं कर पाता। इउडोसिया के साथ परिणय का उसका मधुर स्वप्न दमिश्क पर अरबों के आकस्मिक आक्रमण के कारण असमय में ही भंग हो जाता है और वह निराशा तथा विषाद में डूब जाता है।

इउडोसिया जोनस को समयोचित कर्त्तव्य का बोध कराती है। वह चाहती है कि उसका भावी पति स्वदेश के संकट-निवारण में वीरोचित भूमिका का निर्वाह करे। किंतु, जोनस ऐसा नहीं कर पाता। बंदी के रूप में खालिद के सामने आने पर भी वह अपनी कायरता ही प्रकट करता है; खालिद के कुछ बोलने से पूर्व ही वह डर से आंखें मूंद कर चिल्ला उठता है :

जीना चाहता हूं, मरना मैं नहीं चाहता,
देखा कहाँ मैंने अभी इस भव-धाम को !

प्राण बचा पाने के लिए वह अर्थ-दंड स्वीकार करने और अपना धर्म भी छोड़ देने के लिए तैयार हो जाता है। किंतु इउडोसिया उसके इस आचरण को निन्द्य तथा निकृष्ट मानती है। कायर तथा कामान्ध जोनस इउडोसिया को पाने के प्रयत्न में शत्रु के साथ मिलकर अपने देशवासियों पर हमला बोल देता है। अपनी तथा अपने देश-जाति की गौरव-रक्षा के लिए इउडोसिया छाती में छुरी भोंक कर आत्महत्या कर लेती है और इस प्रकार वह अपनी प्रेमिका की प्राणहीन देह का ही अर्जन कर पाता है।

टमास

टमास सीरियनों का शूर सेनानायक है। अरबों के साथ हुए युद्ध में उसने शत्रु का बड़ी वीरता से मुकाबला किया। एक विधवा ने अपने सधे बाण से उसका एक नेत्र बींध डाला। इस आकस्मिक बाधा के कारण टमास को कुछ समय के लिए युद्ध-क्षेत्र छोड़ देने के लिए विवश होना पड़ता है। किंतु, किंचित् समाहत होते ही वह यह कहकर पुनः युद्धभूमि पर जाने के लिए कटिबद्ध हो जाता है—

मुझे है यह लाभ ही,
लक्ष्य साधने की सुविधा जो स्वयं हो गई।

आहत अवस्था में शत्रुओं से युद्ध करते हुए टमास वीरगति प्राप्त करता है।

दशरथ (लीला, साकेत)

दशरथ अयोध्या के प्रजावत्सल नरेश हैं। वह इस संबंध में सतत यत्नशील रहते हैं कि उनके राज्य में फल-फूलों के साथ वृक्ष हरे-भरे बने रहें, पशु-पक्षी भी किसी विघ्न से भयभीत न हों, यज्ञ या तप में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो और सर्वत्र सुख-शांति तथा समृद्धि बनी रहे। उन्हें निरंतर यह ध्यान रहता है—"हो यदि कोई ईति भीति तो उसे हरूं मैं।"

महाराज वयोवृद्ध हो गये हैं किंतु इससे उनके पराक्रम अथवा बल-पौरुष में कोई कमी नहीं आयी है :

क्षत्रिय शोणित वही नाड़ियों में बहता है,
साहस या उत्साह वही मुझमें रहता है।
इन हाथों के लिए कभी कुछ कठिन नहीं है।

किंतु महाराज दशरथ के जीवन में एक कठिन प्रसंग उपस्थित हो जाता है। विश्वामित्र राक्षसों से तपोभूमि की रक्षा के निमित्त उन राम-लक्ष्मण को अपने साथ वहाँ ले जाना चाहते हैं जो पिता को प्राण से भी अधिक प्यारे हैं। आंखों से आंखों के तारे ही अलग कर देने का प्रसंग आ जाने पर दशरथ एक ऐसे नद में विलीन हो जाते हैं "बहता है जो हर्ष-शोक की लहरें लाकर।"

राम पिता को समझाते हैं—

नहीं शोक का काम, राम की विनय मानिए,
मुनि को देते हुए हमें निज निकट जानिए।

कर्त्तव्यविवश पिता यह कह कर अपने दोनों पुत्रों को विश्वामित्र के हाथों में सौंप देते हैं—

तोष पाइए और दास पर रोष न रखिए।

पुत्र-बिछोह का यह प्रसंग 'साकेत' में इससे कहीं अधिक भीषण रूप में उपस्थित होता है। दशरथ राम के राज्याभिषेक का निश्चय कर लेते हैं। संयोगवश भरत उस समय साकेत में उपस्थित नहीं हैं। श्रवण के पिता द्वारा दिये गये इस शाप का उन्हें स्मरण हो आता है "तुमको भी निज पुत्र-वियोग बनेगा प्राणविनाशक रोग।" अतः दशरथ भरत की अनुपस्थिति से उत्पन्न दुःख को भी 'इष्ट' ही मानते हैं। वह मानते हैं—

इसी मिष पा जाऊं चिरशांति,
सहज ही समझूं तो निष्क्रांति।

किंतु दशरथ को यह चिरशांति मिलती नहीं है। कैकेयी के गेह में पधार कर भूप वहाँ का जो हाल देखते हैं उससे 'बढ़ा भय-विस्मय का बाहुल्य।' धैर्यपूर्वक पहली बार पृथ्वी पर बैठकर भूपाल विनयपूर्वक कैकेयी से पूछते हैं : "प्रिये किसलिए आज यह क्रोध?" कैकेयी को शांत करने के विचार से वह कहते हैं :

मांगना हो तुमको जो आज
मांग लो, करो न कोप न लाज।

और कैकेयी मांगती है भरत का राज्याभिषेक और चतुर्दश वर्ष रामवनवास :

वचन सुन ऐसे क्रूर कराल,
देखते ही रह गये नृपाल।
वज्र सा पड़ा अचानक टूट,
गया उनका शरीर-सा छूट।

माता-पिता के प्रत्यक्ष विरोध और अग्रज के पक्ष-समर्थन में की गयी लक्ष्मण की सिंह-गर्जना से मुमूर्षु दशरथ को सुख मिलता है और वह लक्ष्मण से कहते हैं—

करो सब दुःख लक्ष्मण दूर मेरे।
मुझे बंदी बना कर वीरता से,
करो अभिषेक साधन धीरता से।

किंतु, राम पिता की वचन-रक्षा के लिए वन चले ही जाते हैं। सुत-विरह मृत्यु का बाण बन जाता है और यह कहते-कहते 'भूपति के जीवन-भार' का अन्त हो जाता है :

मेरे कर युग हैं टूट चुके,
कटि टूट चुकी, सुख छूट चुके।
आंखों की पुतली निकल पड़ी,
वह यहीं कहीं है विकल पड़ी।

दादा श्यामसिंह (अजित)

दादा श्यामसिंह भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के सेनानियों की उस वरिष्ठ पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं, जिन्होंने अपना अधिकांश जीवन अंग्रेजों के क्रूर शासन-काल में बिता कर आजीवन यातनाएं सहीं और मातृभूमि के स्वातंत्र्य के लिए महत्तम बलिदान देने के लिए सहर्ष सन्नद्ध रहे।

श्यामसिंह के बाल्यकाल में ही उनके पिता का स्वर्ग-वास हो गया और विधवा मां ने समस्त क्लेश-कसाला सह कर उनका पालन किया। मूलधन के रूप में अपने आभूषण महाजन को सौंपकर और ब्याज की रकम घर से भरकर उस महिला को पति के फूल ही साथ लेकर गांव छोड़ देना पड़ा। श्यामसिंह का भार उसी पर होने के कारण वह पति के फूल लेकर गंगा में भी नहीं समा सकी और कुल की मर्यादा ने उसे भीख मांगने से भी वंचित रखा। सम्पन्न नगर ने उसे महिरी का काम सौंप कर अपने को कृतकृत्य मान लिया।

इस विपन्ना ने सुख की सांस का अनुभव केवल उसी दिन किया जब उसके पुत्र श्याम को पहली छात्रवृत्ति मिली। श्यामसिंह विद्या के द्वार में पैठा ही था कि विप्लव ने उसका आह्वान कर लिया। युवा विप्लवी को यह समझते देर नहीं लगी कि यह विद्रोह उस सत्ता के प्रति किया जाना है जो 'सात समुंदर पार लूट कर धन भरती है।' उसने अविलम्ब यह समझ लिया कि 'क्या थे, हा! हमें इन्होंने क्या कर डाला':

किसने ऐसा हीन हमें कर दिया, सुनूं मैं।
पुलिस मिलिटरी नहीं हमारी, उनकी रक्षक,
इसी हेतु हम आज ही अपने भक्षक।
रेल, तार-जल, ज्योति, प्रेस पथ साथ उन्हीं के,
जीना-मरना यहाँ हमारा हाथ उन्हीं के।

श्यामसिंह क्रांति-समिति में सम्मिलित हो जाते हैं ताकि शासन की इति करके मुक्तिलाभ किया जा सके।

इसी बीच श्यामसिंह की मां गंभीर रूप से रुग्ण हो जाती है। श्यामसिंह के सामने गंभीरतम धर्मसंकट आ खड़ा होता है:

मरने को इस ओर पड़ी थी आरत माता,
और दीन उस ओर खड़ी थी भारत माता।

श्यामसिंह तीन दिन तक इसी धर्मसंकट में पड़े रहते हैं कि उन्हें इन दोनों में से किस मां के प्रति अपने कर्तव्य को प्राथमिकता देनी चाहिए—

चौथे दिन मैं सोच एक मारक विष लाया,
ओषधि-विष वह आप घोल कर उसे पिलाया।
एक मित्र से—तनिक सवेरे घर हो आना—
कह कर मैंने मार्ग लिया अपना मनमाना।

श्यामसिंह के व्यक्तित्व में अलौकिक आकर्षण था। उसमें वीर, रौद्र तथा करुण रस का अनोखा सम्मिश्रण था। सरकारी खजाना लूटने के अपराध में उन्हें बंदी बनाया जाता है और यहीं कारागार में अजित से उनकी भेंट होती है। दादा श्यामसिंह अजित को भारतवासियों की दुर्बलताओं और अंग्रेजों की विशिष्टताओं से अवगत कराते हैं। स्वदेशा-नुरागी होने के कारण दादा के मन में अंग्रेजों के प्रति एक चिढ़ विद्यमान थी। वह यह तो नहीं मानते थे कि अंग्रेजों में कोई गुण है ही नहीं, किंतु उनके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह था कि उनके दोषों से ही अभी हमें तो काम पड़ा है। उन्हें अंग्रेजों से यह शिकायत है कि उन्होंने हमें मरण-शांति प्रदान की, वह धर्म-निर्भयता सुलभ की जिसके कारण हिंदू-मुसलमानों ने परस्पर झगड़ कर सब कुएँ में स्वाहा कर दिया, वह न्यायासन प्रतिष्ठित किया जो एक व्यवसाय बन गया, यहाँ वे विद्यालय खोले जिनमें 'शिक्षा इनके भृत्य कृत्य की चाहे जो ले', वे चिकित्सालय स्थापित किये 'सौ फिरंग से रोग-संग ही आये जिनके।' इन्होंने स्वदेश में ही हमें दलित नहीं किया अपितु 'बाहर भी बस कुली बनाकर पर-वश छोड़ा।' तप्त-संतप्त दादा अजित को इस कटु सत्य का बोध कराते हैं:

धरे गये हम इन्हें जानकर कोरा कंबल।
नहीं मान-धन मात्र आज ये घूम रहे हैं,
तोड़ताड़ कर हमें हाड़ तक चूस रहे हैं।

इसीलिए दादा की यह सुनिश्चित धारणा है—

मरना भी है भला, पिंड यदि इनसे छूटे।

तन के उजले किंतु मन के काले इन कुटिल जनों से पिंड छुड़ाने के उपक्रम में ही बंदी होने पर दादा को दुःख न होकर यह संतोष और हर्ष ही है कि कारावास में उन्हें अजित की उपलब्धि हो गयी। वह 'मातृघाती' अपनी मां को तो जीवन-मुक्त कर सका था, किंतु बंधी हुई-सी-भारत माता के बंधन-मोचन का दायित्व वह उस पीढ़ी पर छोड़ता है जिसका प्रतिनिधि अजित है। इसीलिए वह अजित को हृदय से लगाकर यही निदेश देता है—

तात, तनिक तू निरख उसे मेरे नेत्रों से।

दिवोदास

स्कंद पुराण के आख्यान के आधार पर लिखा गया 'दिवोदास' पद्य-नाट्य का नायक 'दिवोदास' एक पौराणिक और प्रागैतिहासिक पात्र है। काशी के इस राजा का वास्तविक नाम रिपुञ्जय था। पहले उसने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया। जब ब्रह्मा ने प्रसन्न हो उसे दर्शन दिये और समझाया कि उसे निवृत्ति-मार्ग त्यागकर गृहस्थ धर्म और राजा का कर्त्तव्य निभाना चाहिए, तो उसने एक शर्त पर ब्रह्मा का आदेश स्वीकार किया। शर्त यह थी कि काशी से देवताओं को निष्कासित कर दिया जाए। उसका तर्क था कि देवताओं के अनावश्यक हस्तक्षेप एवं मानव द्वारा स्वावलंबन-मार्ग का त्याग कर देवों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति के कारण मानव-जाति अकर्मण्य एवं पंगु बन गयी है।

दिवोदास स्वावलंबन, पुरुषार्थ, पराक्रम, कर्मण्यता और साहस की प्रतिमूर्ति है। वह साधना करता अवश्य है, परन्तु ज्यों ही उसे ज्ञात होता है कि उसकी कर्त्तव्य-विमुखता से प्रजा और राज्य उजड़ गये हैं, तो वह आत्मग्लानि से भर उठता है,

क्या पाया मेरी धरती ने धरकर मेरा भार,

अंत में वह पुरुषार्थ का शंखनाद करता है और निराशा से पंगु जनता को अवसाद तथा देवताओं पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति छोड़कर कर्म करने का उद्बोधन करता है :

ऊपर शून्य तको क्यों, नीचे भरे सिंधु गंभीर,
करो सींचने के उपाय ही, अक्षय है निज नीर।

अकाल और अनावृष्टि के समय उसका यह संदेश उसकी सूझ-बूझ और विवेक का परिचायक है।

वह निरीश्वरवादी नहीं है, देवताओं की अवमानना करना भी वह नहीं चाहता, पर उसे परावलंबन का मार्ग सह्य नहीं। इसीलिए वह देवताओं के विरुद्ध विद्रोह कर पुरुषार्थ की पताका फहराता है। अपरिग्रह, निष्काम कर्म और आशा-वादिता उसके चरित्र के मेरुदंड हैं। उसे देवासुर का भाग नहीं चाहिए, निज कर्तव्य करने में उसे अपार संतोष मिलता है; फल वह चाहता है पर यदि फल नहीं मिलता तो भी वह असंतुष्ट नहीं है—

फल अपने हैं, किंतु अफल में नहीं हमारा दोष

'नर हो न निराश करो मन को' उसका आदर्श वाक्य है और उसके आदर्श राज्य की कल्पना है—

राजवंश भी रहे प्रजा के साथ सदा समभक्त

इस प्रकार कवि ने दिवोदास के चरित्र के माध्यम से पाठकों और देशवासियों को कर्मण्यता का उपदेश और मानव को स्वावलंबी एवं पुरुषार्थी बनने का संदेश दिया है।

दुर्योधन (सुयोधन)

दुर्योधन धृतराष्ट्र और गांधारी के सौ पुत्रों में सबसे बड़ा तथा ग्यारह महारथी भाइयों में प्रधान था। भीम और दुर्योधन एक ही दिन पैदा हुए थे। उसने प्रमाण-कोटि तीर्थ में जलक्रीड़ा का आयोजन किया और वहीं भीम के भोजन में विष मिलवा दिया। भीम इसे खाकर बेहोश हो गये तो उन्हें जल में फिंकवा दिया था। दुर्योधन अपने युग के महान गदा-योद्धाओं में गिना जाता था। उसने कर्ण को अपने समकक्ष बनाने के उद्देश्य से उसे अंग का राज्य सौंपकर राज्याभिषेक भी कर दिया था।

पाण्डवों के वध के लिए दुर्योधन ने लाक्षागृह का निर्माण कराया था तथा युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ में इसे भेंट-सामग्री सँभालने का कार्य सौंपा था। उसने ही युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए निमंत्रित किया था। युधिष्ठिर जुए में अपना सर्वस्व यहाँ तक कि द्रौपदी को भी हार गए थे। जुए में जीतने के बाद दुर्योधन के आदेश पर दुःशासन द्रौपदी को बलपूर्वक सभा में लेकर आया था।

बनवासी पाण्डवों को चिढ़ाने के लिए दुर्योधन ने घोष-यात्रा की थी। इसी यात्रा में उसे गंधर्वराज चित्रसेन से पराजय का मुख देखना पड़ा। इस संदर्भ में युधिष्ठिर के आदेश से अर्जुन ने उसे चित्रसेन से छुड़ाया था। इस प्रसंग में दुर्योधन ने लज्जित होकर प्रायोपवेश का निश्चय किया था किंतु समझाने-बुझाने पर वह अनशन समाप्त कर हस्तिनापुर लौट आया था। पाण्डवों को संकट में डालने के लिए उसने दुर्वासा ऋषि को पाण्डवों के पास भेजा था। युद्ध के लिए उसने कृष्ण से नारायणी सेना तथा बलराम और कृतवर्मा से भी सहायता का वचन ले लिया था। नकुल के मामा शल्य को भी छल से दुर्योधन ने अपनी ओर कर लिया था।

संधि-प्रस्ताव लेकर आये कृष्ण को उसने बाँधने का

उपक्रम किया था तथा सुई की नोंक की बराबर भूमि भी पाण्डवों को न देने की घोषणा की थी। वह कृष्ण के विराट् रूप को देखकर भयभीत हो गया था।

युद्ध के अंत में दुर्योधन विश्राम के लिए सरोवर में प्रवेश कर गया था। उसने सरोवर के जल को भी माया से बाँध दिया था। इस समय एक तरह से वह युद्ध से उदासीन हो गया था, परंतु युधिष्ठिर ने उसे जल से बाहर निकलने तथा युद्ध करने के लिए विवश किया। भीम के साथ उसने अत्यंत कौशल से युद्ध किया किंतु भीम ने इसकी जंघाओं पर प्रहार किया। फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई।

महाभारत के समान ही 'जयभारत' का दुर्योधन भी महत्त्वाकांक्षी, राजनीतिज्ञ, वीर, साहसी, अन्यायी और मनमानी करने वाला व्यक्ति है। वह जहाँ 'बंधु विद्वेष' और लाक्षागृह में पाण्डवों के वध की योजना बनाता है, वहीं एकलव्य को बंधु मानता है और 'परीक्षा' शीर्षक में कर्ण को अंगराज बना देता है।

गुप्तजी का दुर्योधन भाग्य के स्थान पर पौरुष को ही प्रधान मानता है। इन्द्रप्रस्थ शीर्षक में जहाँ विदुर दुर्योधन को शिक्षा देते हैं, वहीं वे उसकी चरित्र की विशेषताओं को भी उद्‌घाटित करते हैं। उनके अनुसार वह दर्प करने वाला, नय और विनय न मानने वाला, उचित और अनुचित में भेद न कर सकने वाला, दूसरों की बातों में आ जाने वाला, केवल अपनी विजय पर प्रसन्न होने वाला, श्रद्धा-रहित, तर्क तथा द्वेष करने वाला है।

राजसूय-यज्ञ में 'जल में थल का थल में जल का देख उसे भ्रम भास' दास-दासी हँसते हैं तब वह क्रोध तथा लज्जा से लाल हो जाता है। इसीलिए 'द्यूत' शीर्षक में—

धुँधा रहा था जो भीतर ही गीला-सा ईंधन पाकर,
हुआ प्रज्वलित दुर्योधन का द्वेषानल झोंका खाकर।

'वन गमन' शीर्षक का दुर्योधन राजा होकर भी यशस्वी नहीं हो पाता, किंतु गुप्तजी के अनुसार वह है नीतिज्ञ ही—

वश करने में लगा प्रजा के वह मन को।
उद्धत भी वह अज्ञ न था नृप कौशल से—
प्रजा राज्य के, राज्य प्रजा के ही बल से।

'जयभारत' में गुप्तजी दुर्योधन पर कर्ण तथा शकुनि को बार-बार हावी दिखलाते हैं। 'वन वैभव' शीर्षक में उन्हीं के कारण उसे चित्रसेन का बंदी बनना पड़ा है। इससे सिद्ध होता है वह स्वयं में उतना बुरा नहीं है जितना उसे महाभारत में दिखलाया गया है। चित्रसेन के बंधन से मुक्ति मिलने पर वह युधिष्ठिर के सामने नतमस्तक होता है, इससे उसके अहं पर चोट लगती है। 'दुर्योधन दुःख' शीर्षक में उसके दुःख और पश्चात्ताप की अभिव्यक्ति हुई है। इसी तरह रणनिमंत्रण-प्रसंग में गुप्तजी ने उसके लिए किसी हीन विशेषण या उपमा का प्रयोग नहीं किया। उनके अनुसार दुर्योधन और अर्जुन दोनों ही कंदर्प और वसंत हैं—

उन युग्म योधों के सहित शोभित हुए अति विष्णु यों,
कंदर्प और वसंत सेवित सो रहे हों जिष्णु ज्यों।

इस प्रसंग में दुर्योधन की विनम्रता देखते ही बनती है। 'मद्र-राज' शीर्षक में उसका चरित्र एक कूटनीतिज्ञ और उद्योगी के रूप में ही उभरा है। इसीलिए मद्रराज कह उठे हैं—

साधु सुयोधन ! हुई तुम्हारी मुझ पर पहली जीत
वह प्राणों के पण और रण का विश्वासी है।—
किंतु कलह का मुख्य एक निर्णायक रण ही,
विजय हेतु अनिवार्य सदा प्राणों का पण ही।
× × × ×
यही सही, यह वसुंधरा वीरों की भोग्या,
बल से लेने योग्य, नहीं देने के योग्या
लोग मुझे कुछ कहें, भीरु कायर न कहेंगे।

गुप्तजी ने महाभारत के अनुशासन में रहते हुए भी जहाँ तक बन पड़ा है, दुर्योधन को सुयोधन बनाने की चेष्टा की है। उक्त प्रसंग में वह केवल कहता है किंतु कृष्ण को बाँधता नहीं है। 'समर सज्जा' शीर्षक में वह एक आदर्श पति और वत्सल हृदयी पिता भी दिखलाई पड़ता है। इसी प्रसंग में ऐसा लगता है कि उसे भावी मृत्यु का बोध-सा हो गया है। 'युद्ध' शीर्षक में कतिपय स्थलों पर उसका चरित्र अर्जुन तथा युधिष्ठिर से भी उच्च दिखलायी पड़ता है। साक्ष्य के लिए कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा युधिष्ठिर से हुए दुर्योधन के संवादों को लिया जा सकता है—

१. आशीर्वाद चाहता हूँ एक यही आपसे
अंत तक आन-बान अपनी निभा सकूँ।
२. किंतु गुरु पुत्र एक पिंडदाता छोड़ना।
३. किंतु श्रद्धा-भक्ति का भूखा भगवान भी,
जीवन का वैर रहे मृत्यु के भी साथ का ?

अथवा

आर्य, अब जीवन तो मेरे लिए मृत्यु है।
नीचे का विरोध रहे ऊपर मिलूँगा ही,
मिलना वहीं है यहाँ केवल बिछुड़ना।

दुःशासन

दुःशासन धृतराष्ट्र के चार प्रमुख महारथी पुत्रों में एक था, जो कौरवों में क्रम से दूसरा था। महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में इसने भोजन की व्यवस्था संभाली। युधिष्ठिर जब जुए में हार गये तो द्रौपदी को केशों से पकड़कर घसीटता हुआ यही सभा भवन में लाया था और इसी ने उनके चीरहरण का असफल प्रयास भी किया था। वनपर्व में यह दुर्योधन, कर्ण आदि के साथ गंधर्वों से पराजित होकर बंदी बनाया गया था। इसे अर्जुन ने मुक्त कराया था। अर्जुन द्वारा मुक्त कराए जाने पर दुर्योधन लज्जावश इसे राज्यभार सौंपकर संन्यासी बनने को उद्यत हुआ तो इसने उसकी चरण-वंदना कर संन्यासी बनने से रोका। इसने दुर्योधन से अभिमन्यु-वध की भी प्रतिज्ञा की थी। कर्णपर्व में भीम ने दुःशासन की भुजा उखाड़कर तथा इसकी छाती को चीरकर गर्म रक्त पिया था। इस तरह दुःशासन का वध कर भीम ने द्रौपदी के अपमान का बदला लिया था तथा अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी।

गुप्तजी के 'जयभारत', 'जयद्रथ-वध', 'युद्ध' आदि काव्यों में दुःशासन का चरित्र प्रायः महाभारत जैसा ही है। 'जयभारत' के इन्द्रप्रस्थ सर्ग में उसे उग्र और उष्ण स्वभाव कहा गया है। द्यूत-प्रसंग में यह द्रौपदी को ऐसे ही पकड़कर लाया है, जैसे वृक बकरी को ले जाता है। इस प्रसंग में इसे खल और नीच कहा गया है। कर्ण की प्रेरणा से वह द्रौपदी को निर्वस्त्र करने की चेष्टा करता है। इस प्रसंग में गुप्तजी ने उसके चरित्र की रक्षा करते हुए मनोविज्ञान का आश्रय लिया है—

आकर अकस्मात अति भय सा उसके भीतर बैठ गया।
कर जड़ हुए और पद काँपे गिरता वह बैठ गया।

साथ ही सभाभवन में गांधारी के आगमन से भी उसके चरित्र की रक्षा हो सकी है। इसी प्रसंग में भीम दुःशासन का हृदय चीर उसका रक्त पीने की प्रतिज्ञा करता है। 'दुर्योधन का दुःख' शीर्षक में दुःशासन के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष भी प्रकट होता है। वह दुर्योधन को अपना अग्रज मात्र ही नहीं अपितु अपना शासक भी मानता है। वह अपने को दुर्योधन का किंकर, उसके आदेशों का पालक मानते हुए स्वीकार करता है—

मैंने न तो धर्म-कर्म जाना
माना सदा जीवन में तुम्हीं को।

'युद्ध' सर्ग में महाभारत की ही तरह दुःशासन का वध भीम द्वारा होता है। गुप्तजी के काव्यों में दुःशासन का चित्रण दुर्योधन के अनुज रूप से हटकर उसके आज्ञापालक और अनुचर रूप में अधिक सटीक हुआ है।

दुष्यन्त

दुष्यन्त पुरुवंश का एक सुप्रसिद्ध और शक्तिशाली सम्राट् था। कण्व के आश्रम में दुष्यन्त शकुन्तला से मिलते हैं और दोनों एक-दूसरे पर आसक्त होकर गंधर्व-विवाह कर लेते हैं। परंतु दुर्वासा के शाप के प्रभाव से दुष्यन्त अपने दरबार में पहुँची गर्भवती शकुन्तला को पहचानने तक से इंकार करके उसका तिरस्कार कर देते हैं। श्रीमद्भागवत में शकुन्तला इनकी राजसभा में पुत्र को लेकर पहुंचती है और बाद में आकाशवाणी सुनकर वस्तुस्थिति से अवगत होने पर वह शकुन्तला और उसके पुत्र को स्वीकार करते हैं। महाभारत में इनकी माता का नाम स्थंतरी और पिता का ईलिन लिखा है। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में इन्हें हस्तिनापुर का सम्राट् माना है। 'शकुन्तला' काव्य में गुप्तजी ने भी इन्हें हस्तिनापुर का सम्राट् चित्रित करते हुए इनकी चरित्रगत निम्न विशेषताएँ चित्रित की हैं—

१. आरंभ में दुष्यन्त प्रेमी, विलासी और विरही रूप में चित्रित है।
२. 'त्याग' सर्ग में वह धर्मानुयायी और कठोर शासक है।
३. 'स्मृति' और 'कर्त्तव्य' सर्ग में उसका विरही स्वरूप अत्यंत मोहक बन पड़ा है।
४. 'कर्त्तव्य' सर्ग में उसके चार रूप प्रकट हैं—न्यायी, आततायी को नष्ट करने के लिए सदैव तत्पर, अतिथि-सेवक और देवकार्य के प्रति सन्नद्ध।
५. 'मिलन' सर्ग में उसमें ऋषियों के प्रति श्रद्धा-भाव के साथ शकुन्तला के पैरों में गिरने से उसके नारी तथा पत्नी के प्रति कर्त्तव्य-निष्ठा का भी ज्ञान होता है।

देवयानी

दैत्यगुरु शुक्राचार्य और उनकी पत्नी यजनी अथवा जयंती की पुत्री का नाम देवयानी था। देवताओं के गुरु-बृहस्पति का पुत्र कच जब शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीखने के लिए आया तो यह उस पर आसक्त हो गई। परंतु कच ने इसे मन-ही-मन बहन मान लिया था। अतः इसने कच को शाप दिया कि जब उसे संजीवनी विद्या की आवश्यकता होगी तो वह विद्या को भूल जाएगा। इसके उत्तर में कच ने भी उसे शाप दिया था कि उसका विवाह ब्राह्मण से नहीं होगा। एक बार वृषपर्ण की पुत्री शर्मिष्ठा ने इसका अपमान कर दिया था। इस कारण उसने इससे प्रतिशोध लेने का प्रण किया था। देवयानी का विवाह ययाति से हुआ और शर्मिष्ठा को दहेज के रूप में देवयानी की दासी बनकर ययाति के यहाँ जाना पड़ा। ययाति शर्मिष्ठा की ओर भी आकर्षित हो गए। देवयानी के गर्भ से दो पुत्र यदु और तुर्वसु हुए और शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्य, अणु और पुरु हुए। शर्मिष्ठा को गर्भवती देखकर देवयानी क्रोधित होकर पति-गृह त्याग कर पिता के घर चली गयी। ययाति से नाराज होकर शुक्राचार्य ने शाप दिया कि वह वृद्ध हो जाय! बाद में उसने वार्धक्य दूर करने का उपाय भी उन्हें बतलाया था। देवयानी के दोनों पुत्रों ने पिता का बुढ़ापा लेने से इनकार कर दिया था, परन्तु शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु ने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए उनका बुढ़ापा स्वीकार कर लिया था। परिणामतः वह ही ययाति के साम्राज्य का स्वामी बना। पुरु के वंशज ही कौरव और पाण्डव थे।

'जयभारत' के 'यदु' और 'पुरु' सर्ग में देवयानी की जो कथा दी गई है वह महाभारत के अनुरूप ही है। किन्तु गुप्त जी ने देवयानी के चरित्र को उदात्तता प्रदान की है। गुप्तजी द्वारा वर्णित देवयानी का व्यक्तित्व सहज, तेजोमय, शांत और स्वाभिमानपूर्ण है। शर्मिष्ठा के दुर्व्यवहार से उसमें स्वाभाविक रूप से प्रतिशोध-भाव जागता है, किंतु गर्त से ययाति द्वारा निकाले जाने के प्रसंग में उसमें नारी-सुलभ लज्जा भी दिखाई देती है। प्रतिशोध के प्रसंग में उसका निम्नलिखित कथन उसके चरित्र को अभिव्यक्त करने में समर्थ है—

दण्डपाणि समर्थ का अपराध कैसा तात।
और भिक्षुक की क्षमता तो है हँसी की बात।।

द्रोणाचार्य

ये गंगाद्वार निवासी महर्षि भरद्वाज के पुत्र थे। कहा जाता है कि इनका जन्म द्रोण (यज्ञ-कलशी) से हुआ था। इसलिए इनका नाम द्रोण रखा गया। इन्होंने परशुराम से अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखी थी। महर्षि अग्निवेश के आश्रम में द्रुपद के साथ वेदादि का अध्ययन भी किया था। द्रुपद इनके गुरुभाई के साथ-साथ मित्र भी हो गये, किंतु द्रुपद ने इनकी निर्धनता का उपहास करते हुए इनका तिरस्कार किया था।

शरद्वान की पुत्री और कृपाचार्य की बहन कृपी से इनका विवाह हुआ था। इनके पुत्र का नाम अश्वत्थामा था। द्रुपद के यहाँ से अपमानित होकर यह हस्तिनापुर आ गये और कृपाचार्य के यहाँ रहे। कौरव-कुमारों की गुल्ली तथा अपनी अँगूठी को कुएँ में से निकालने पर इनका यश फैल गया। कौरव-कुमारों ने इनकी प्रशंसा भीष्म से की और इन्हें राज-कुमारों को शिक्षा देने का काम सौंप दिया गया। अर्जुन के प्रति इनका अगाध मोह था। इन्होंने निषादपुत्र एकलव्य को धनुर्विद्या सिखाने से इन्कार कर दिया था। किंतु जब उन्हें पता चला कि एकलव्य ने उनकी प्रतिमा स्थापित कर, उसके निर्देशन में धनुर्विद्या में निपुणता प्राप्त कर ली है तो गुरु-दक्षिणा में उसका अँगूठा माँग लिया था। इन्होंने समस्त राजकुल के समक्ष प्रेक्षागृह में राजकुमारों की परीक्षा ली। अपने शिष्यों को महाराज द्रुपद को बंदी बनाकर लाने का आदेश दिया ताकि उससे अपने अपमान का बदला लिया जा सके। परंतु द्रुपद के बंदी-रूप में आने पर उस पर दया करके उसका आधा राज्य उसे वापिस देकर क्षमादान भी दे दिया। वहीं इन्होंने द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न को भी शस्त्र-विद्या दी थी। उद्योग पर्व में इन्होंने कृष्ण के संधि-प्रस्ताव का समर्थन करते हुए दुर्योधन को समझाने की भी चेष्टा की थी। महाभारत के समय इन्होंने युधिष्ठिर को युद्ध करने की अनुमति देते हुए अपनी मृत्यु का उपाय भी बतला दिया था। इन्होंने दुर्योधन से पांडव-पक्षीय एक वीर के वध की प्रतिज्ञा कर चक्रव्यूह की

रचना की और अभिमन्यु के शौर्य की प्रशंसा करते हुए उसके वध का उपाय भी बतलाया था। इन्होंने शकट-व्यूह की रचना कर जयद्रथ के लिए रक्षा-व्यवस्था भी की थी। दुर्योधन को दिव्य कवच पहिना कर अर्जुन से युद्ध करने भेजा था। भीमसेन ने आठ बार इनके रथ को उठाकर पटक दिया था। अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार सुनकर वे निराश हो गए थे तथा शस्त्र-त्याग कर योग द्वारा ब्रह्मलोक जाना चाह ही रहे थे कि धृष्टद्युम्न ने इनका सिर काट दिया।

गुप्तजी के काव्यों में भी द्रोणाचार्य का चरित्र महाभारत के अनुरूप ही है, किंतु गुप्तजी के 'जयभारत' में उनके चरित्र की एक विशेषता विशेष रूप से परिलक्षित होती है। वह यह कि 'द्रोणाचार्य' सर्ग में वह अपनी विपन्नता और द्रुपद द्वारा किए गए अपमान की कथा एक सत्यनिष्ठ ब्राह्मण की तरह व्यक्त करते हैं। इसी तरह 'एकलव्य' सर्ग में एकलव्य से गुरुदक्षिणास्वरूप अँगूठा न माँग कर केवल इतना कहते हैं—

वत्स दिखा दो मुझे अँगूठा तो वह भी भरपूर।

और जब एकलव्य उन्हें अँगूठा भेंट कर देता है तब—

जड़ीभूत रह गए देखते वे दारुण विभ्राट।
आँखों में आँसू भर आए कण्ठ हुआ अवरुद्ध।

इतना ही नहीं, उन्होंने आगे भी कहा—

हाय, अभी जो हुआ
लगे क्यों उस पर मुझे न लाज।

इस तरह गुप्तजी ने उन्हें आचार्योचित गरिमा प्रदान की है। 'परीक्षा' सर्ग में उनके रूप का वर्णन भी गरिमामंडित है—

मूर्तिमंत वे स्मरण रूप से थे शंकर के।

'याज्ञसेनी' सर्ग में अर्जुन द्वारा द्रुपद को बाँधकर लाने के प्रसंग में द्रोणाचार्य उदारमना और क्षमाशील प्रतीत होते हैं—

उन्हें दया आ गई देखकर पीड़ित, विवश, विनीत उसे।

'जयद्रथ-वध' में दुर्योधन द्वारा द्रोणाचार्य पर पक्षपात का आरोप लगाए जाने पर उनका हृदय पीड़ा से भर उठा। वह मानते हैं—

अभिमन्यु के वध के सदृश
मुझसे हुआ है अघ अहो।

इसी तरह 'जयभारत' के युद्ध-प्रसंग में उनका पश्चात्ताप उनके चरित्र की उदात्त-भावना को अभिव्यक्ति देने में सक्षम है। कवि ने वास्तव में द्रोणाचार्य की अन्तर्व्यथा को पढ़ने का प्रयास किया है—

कंदमूल फल भी क्या मुझको न मिलते,
शिव, शिव! शव ही दिए हैं मुझे हिंसा ने।

महाभारत के दो वयोवृद्ध पात्र ऐसे हैं जो कौरव-पक्ष का मन से विरोध करते हुए भी कौरव-पक्ष की तरफ से लड़ने के लिए विवश हैं—एक द्रोणाचार्य और दूसरे भीष्म पितामह।

द्रौपदी

महाराज द्रुपद की कन्या का नाम द्रौपदी था। महाभारत में द्रौपदी के जन्म की कथा में इनका जन्म यज्ञ-कुण्ड से बतलाया गया है। उन्होंने स्वयंवर में अर्जुन को जयमाला पहनाई थी। किंतु कुंती ने इन्हें भ्रमवश भिक्षा में प्राप्त हुआ द्रव्य समझ पाँचों पुत्रों को मिल-बाँट कर भोग करने का आदेश दे दिया था। इसी कारण यह पाँचों भाइयों की भार्या बनी। इनके गर्भ से युधिष्ठिर से प्रतिविंध्य, भीमसेन से सुतसोम, अर्जुन से श्रुतकीर्ति, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतकर्मा नामक पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे। युधिष्ठिर ने जुए में इनको दाव पर लगा दिया था। उनके हार जाने पर दुःशासन इन्हें बलपूर्वक पकड़कर सभा में ले आया था। सभा में दुःशासन ने इनके चीर-हरण की कोशिश की थी, परंतु श्रीकृष्ण ने अपनी कृपा से द्रौपदी की लाज बचाई। वनवास-काल में इन्हें भी पांडवों के साथ कष्ट भोगने पड़े थे। जरासुर और जयद्रथ ने भी इनके अपहरण की चेष्टा की थी। वन में ही इनसे सत्यभामा ने भेंट की थी। कृष्ण-कृपा से ही द्रौपदी क्रोधी ऋषि दुर्वासा को शांत कर सकी थी। विराट् पर्व (महाभारत) में यह सैरन्ध्री का छद्मनाम रख कर विराट की पत्नी सुदेष्णा की सखी-रूप में रही थीं। सुदेष्णा के भाई कीचक को इन्होंने भरी सभा में लात मारी और भीम को कीचक का वध करने के लिए प्रेरित किया था। कीचक के वध के बाद उपकीचकों ने उन्हें श्मशान ले जाने का प्रयत्न

किया था, तब भीम ने इनकी रक्षा की थी। जब कृष्ण संधि प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जा रहे थे, तब द्रौपदी ने ही पांडवों तथा कृष्ण को अपने अपमान तथा पांडवों द्वारा की गई प्रतिज्ञा का स्मरण कराया था। अपने पुत्रों के वध पर इन्होंने भीम को अश्वत्थामा-वध के लिए प्रेरित किया था। महा-प्रस्थान के समय इन्होंने पांडवों का अनुगमन किया था।

गुप्तजी के काव्य जयभारत, सैरन्ध्री आदि में द्रौपदी का चरित्र महाभारत के अनुसार ही चित्रित हुआ है। महाभारत में वह अयोनिजा होने के कारण अलौकिक चरित्र की स्वामिनी हैं। महाभारत में इन्हें पति-परायणा, गुणवती, और सती रूप में चित्रित किया गया है। गुप्तजी की द्रौपदी भी पतियों में एकनिष्ठ प्रेम रखने वाली है, साथ ही वह नारी के कर्त्तव्यों की प्रतीक बनकर भी प्रकट हुई है। जयद्रथ में वह जयद्रथ से सलहज रूप में हास-परिहास करती हैं किंतु उसके कुत्सित मनोभावों को समझ कर उसे आधुनिक नारी की तरह प्रत्युत्तर भी देती हैं—

पीछे हट, झोंका-सा खाकर बोली यों पांचाली।
ठहर अनार्य दस्यु, तू मेरा नहीं, मृत्यु का कामी।

× × ×

आकर जो कर धरा दीठ ने, देकर झट से झटका,
उसे छुड़ा पद रज में उसको पांचाली ने पटका।।

द्रौपदी को अपने पतियों की शक्ति पर विश्वास है, इसीलिए तो वह कह उठती हैं—

आर्या को दासी कहते हो जाति तुम्हारी जानी।
मेरे प्रभु रखते हैं अब भी मुझे बना कर रानी।

वह सदय भी हैं—

कीचक के भी लिए खेद उसको हो आया।

इस तरह द्रौपदी तेज, सतीत्व, दृढ़ता, पातिव्रत्य और अनन्य निष्ठा की प्रतीक हैं। आपत्ति के समय बौद्धिकता का परिचय देती हैं। उनमें कष्ट एवं अपमान सहने की क्षमता है। वह दुर्बलता को दुर्नीति समझती हैं किंतु साथ ही वह त्याग और सहिष्णुता आदि सद्‌गुणों की खान-रूप में चित्रित हुई हैं।

धनराज (अज़ित)

धनराज अजित का ममेरा भाई है। अजित को अकारण ही बंदी बना लिया जाने पर वह उसकी बंधन-मुक्ति के लिए विशेषतः यत्नशील रहता है और अन्ततः 'बावना ताल तथा नगद उसी के साथ' की भेंट चढ़ाकर समय से पूर्व ही अजित का निष्कृति-निदेश प्राप्त कर लेता है। अब उन दोनों का एक ही लक्ष्य हो जाता है—"वैर लेना ही होगा।" दरोगा के पुत्र रज्जू को पाकर मानो उन्हें अपना शिकार मिल जाता है। धनराज उसे अपनी पिस्तौल का निशाना बना लेता है। रज्जू की पत्नी बीच में आ खड़ी होती है और अजित के आग्रह पर उसे अनिच्छापूर्वक उस अन्यायी रज्जू को जीवित छोड़ देना पड़ता है।

सुमतिसम्पन्न धनराज चतुर परीक्षक तथा कुशल कृती है। वह शासन के विरुद्ध एक दल का संयोजन कर लेता है। उसके दल की यह विशिष्टता है—

ले लेता जब पुरुष परीक्षा बाहर-बाहर,
करता था तब संघ सम्मिलित वह नर-नाहर।
नहीं जनों का नया नाम ही धरता या वह।
नया रूप-संस्कार साथ ही करता था वह।

यह दल लूटपाट द्वारा धन-संग्रह करने तथा अधिकारियों को आतंकित करने को ही अपना लक्ष्य बना लेता है :

उन्हीं खलों पर गिरे गाज सा अपना गोला।
बहुतों का धन मूस बने मोटे जो थोड़े।
हमें फोड़ने हैं समाज के वे ही फोड़े।

देशभक्ति के ये दीवाने साम्राज्य के इच्छुक न होकर साम्य राज्य के आकांक्षी हैं, क्योंकि वे उसे ही सच्चा स्वराज्य मानते हैं।

इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपनायी जाने वाली कार्य-पद्धति के विषय में आगे चल कर अजित और धनराज में सैद्धान्तिक मतभेद उत्पन्न हो जाता है। इस वैचारिक अन्तर की प्रसंगोचित अभिव्यक्ति द्वारा गुप्तजी ने राजनीतिक लक्ष्य-सिद्धि की हिंसाप्रधान कार्यप्रणाली और अहिंसाप्रधान कार्य-

प्रणाली का तुलनात्मक विश्लेषण कर दिखाया है। हिंसावादी धनराज गांधी जी के गऊ-धर्म का उपहास करता है। अजित का उत्तर है :

सबने किया प्रयास सदा तन के रोगों पर,
क्यों अब नये प्रयोग न हों मन के योगों पर?
गाँधीजी का यही यत्न, प्रभु करे सफल हो,
क्या बाहर के विघ्न, हमारे भीतर बल हो।

और इस प्रकार उद्देश्य अभिन्न होकर भी अजित तथा धनराज का कर्मपथ भिन्न हो जाता है। इस अवसर पर अजित का अनुरोध है :

आ भाई धनराज भेंट लूं कसकर तुझको,
मांगूं मैं क्या और, और अब बसकर मुझको।

धनराज का उत्तर है :

मैं इतना बढ़ चुका, कठिन अब पीछे फिरना,
उठते हो तुम जहाँ, वहाँ क्या मेरा गिरना ?
तुम निज रचना रचो, यही मुझको क्या थोड़ा,
बनूं मार्ग का नहीं, नींव का ही मैं रोड़ा।

अजित मुक्त भाव से यह स्वीकार करता है—

रहना होगा मुझे ऋणी रहकर ही तेरा !

नन्द

गोकुल और नन्द गांव के रहने वाले गोपों के राजा नन्द बाबा थे। इन्होंने कृष्ण का लालन-पालन किया था और इसीलिए ये कृष्ण के पिता के रूप में भी विख्यात हुए। वसुदेवजी ने अपने आठवें शिशु श्रीकृष्ण को इन्हें लाकर सौंपा था। गोप-राज नन्द के घर में उनकी पत्नी यशोदा के गर्भ से उसी समय एक कन्या उत्पन्न हुई थी जो साक्षात जगज्जननी दुर्गा का स्वरूप मानी जाती है। इसकी हत्या करने के लिए इसे कंस ने शिला पर पटक दिया था। किन्तु वह उसके हाथ से छिटककर आकाश में लुप्त हो गई।

गुप्तजी ने मुख्यत: 'द्वापर' काव्य में नन्द के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति दी है। 'द्वापर' में नन्द कृष्ण को मथुरा में छोड़ कर चले आते हैं। गोकुल आते समय वह, कृष्ण, उनकी क्रीड़ाओं, कृष्ण के कारण घर में जुड़ने वाली भीड़ आदि के विषय में चिन्तन करते हैं। उन्हें एक ओर तो यशोदा की बेटी के विनिमय में चले जाने की कचोट है तो दूसरी ओर उनका कथन है—

सफल जन्म मेरी बेटी का,
बची विश्व की थाती।

किन्तु इतने पर भी उनके मन में दुःख है कि वह गोकुल लौटने पर यशोदा को क्या कह पाएंगे। यही पीड़ा उनके मन को मथती रहती है :

हा, तथापि मुंह दिखलाऊंगा कैसे उसे यहां मैं।
गया खेल ही बिगड़, खिलौना लेने गया जहां मैं॥

इस तरह गुप्तजी के नन्द के चरित्र में ग्रामीण निश्छलता के साथ-साथ वात्सल्य भाव की प्रधानता तो है ही, साथ ही यशोदा के प्रति पति के कर्तव्य का बोध भी है।

नकुल

पांचों पांडवों में से चौथे नकुल तथा पांचवें सहदेव थे। महाराज पाण्डु के माद्री के गर्भ से उत्पन्न जुड़वां पुत्रों में नकुल अग्रज और सहदेव अनुज थे। ये अश्विनी कुमारों द्वारा नियोग से उत्पन्न थे। राजर्षि शुक्र एवं द्रोणाचार्य से इन्होंने शिक्षा ग्रहण की थी। पाण्डु की मृत्यु के पश्चात इनकी माता माद्री इन्हें कुन्ती को सौंप कर स्वयं सती हो गई थी। नकुल विचित्र प्रकार से युद्ध करने में पारंगत थे। द्रौपदी के गर्भ से नकुल द्वारा 'शतानीक' नामक पुत्र हुआ। इनका एक और विवाह चेदिराज की कन्या करेणुमती के साथ हुआ था। उसके गर्भ से निरमित्र नामक पुत्र हुआ। अज्ञातवास के समय वह विराट नगर में अन्य पाण्डवों के साथ ग्रंथिक नाम धारण करके रहे थे। इन्होंने युद्ध में अंगराज कर्ण के पुत्रों को मार गिराया था। अश्वमेध-यज्ञ के समय भीमसेन के साथ नगर-रक्षा का भार इन पर डाला गया। स्वर्गारोहण के समय

इनका परलोक गमन हुआ।

गुप्तजी ने जयभारत में नकुल का चित्रण लगभग महाभारत के समान ही किया है। गुप्तजी का नकुल हास-परिहास-प्रिय भी है। इसीलिए हिडिम्बा से कह उठता है—

भौजी, अनुमोदन अवश्य तुम्हें दूंगा मैं
किन्तु इतरों सा निज भिष्ट नहीं लूंगा मैं।

स्वर्गारोहण में नकुल देहपात के समय कहता है—

गिरता हूं अब मैं अवश निरा।

तो युधिष्ठिर कहते हैं—

तुममें मेरे सुरुप का गर्व-गिरा।

इससे यही संकेत मिलता है कि नकुल सुन्दर और युधिष्ठिर के अनुरूप ही थे।

नहुष

नहुष महाराज आयु के पुत्र थे तथा इनकी माता का नाम स्वर्भानुकुमारी था। इनके ही पुत्र ययाति थे। तेज, यतियोगसाधन, तपस्या तथा बल के कारण महाराज नहुष पृथ्वी के इन्द्र बन गए। राक्षसराज तपस्वी त्रिसरा का वध इन्द्र ने कर दिया था। उसके भाई वृत्रासुर के साथ इन्द्र ने कपट-मैत्री की तथा बाद में उसका वध कर दिया। ब्रह्महत्या और विश्वासघात के कारण प्रायश्चित स्वरूप इन्द्र को स्वर्ग से निकल जल में रहना पड़ा। इस प्रसंग में, स्वर्ग की रक्षा के लिए, महाराज नहुष को योग्य समझकर ऋषियों ने उन्हें इन्द्र-पद पर प्रतिष्ठित करने की व्यवस्था दी।

इन्द्र-पद पर रहते हुए उनकी महत्त्वाकांक्षा बढ़ने लगी और वे शची के पति बनने की कामना करने लगे। अतः उन्होंने शची के पास विवाह-प्रस्ताव प्रेषित किया। इन्द्राणी ने कुछ समय मांगकर इन्द्र की आज्ञा से नहुष को ऋषियों द्वारा उठाये गए वाहन पर चढ़ कर आने की स्वीकृति दी। जिस समय नहुष ऋषियों द्वारा उठाई गई पालकी पर आसीन होकर शची के प्रासाद की ओर जा रहे थे, तभी उतावली के कारण उनका पैर ऋषि को लगा। इस पर ऋषियों ने क्रुद्ध होकर नहुष को स्वर्ग-च्युति तथा सर्प होने का शाप दे दिया।

गुप्तजी रचना 'नहुष' तथा 'जयभारत' के तीर्थ-यात्रा प्रसंग में नहुष का चित्रण किया गया है। पूर्ण मनुष्य बनने के लिए मनुष्य को दुर्बलताओं का परिहार कर वार-बार प्रयत्न करना होगा। इसी सन्देश की अभिव्यक्ति के लिए गुप्तजी ने मूल कथा में किंचित परिवर्तन करते हुए नहुष का चरित्र-चित्रण किया है। नहुष तीर्थयात्रा प्रसंग में कहते भी हैं—

लोक में करनी रही मेरी अधूरी।
तात, करनी है तुम्हें वह पूरी।

'नहुष' के शची सर्ग में शची की दासी नहुष को देशभक्त, महामानव कहती हैं। 'नहुष' सर्ग में नहुष अतिथि-सत्कारी, मानी, विनम्र, व्यवहार-कुशल, मनस्वी, वार्तालाप-कुशल, पुरुषार्थ के पक्षधर, धरती के पक्षधर, प्रयोगों पर विश्वास करने वाले, विघ्नों का सामना करने वाले, साहसी और स्वाभिमानी हैं। 'उर्वशी' शीर्षक के नहुष आमोद-प्रमोद प्रिय, उदार, मानव हितचिन्तक हैं। 'स्वर्गभोग' शीर्षक में नहुष के शब्द—

आया यह कौन पंछी नन्दन विपिन में ?
लेता जो विराम न तो रात में न दिन में।
फल सुरपुर के सभी जो लिए लेता है।
जूठे कर किंवा और मीठे किए देता है।

उनकी कर्मठता के प्रतीक प्रतीत होते हैं। इसी सर्ग में "मार्ग के लुटेरे-काम-क्रोध-मद लोभ-मोह" के संसर्ग से वह उच्च मानवादर्शों से पतन की ओर उन्मुख होता है। अर्थात शची की एक झलक से नहुष सुध-बुध भुला देता है और उसे औचित्य-अनौचित्य का ज्ञान नहीं रहता। इसीलिए 'सन्देश' सर्ग में वह शची की सेवा में प्रेम-याचना प्रस्ताव प्रेषित करता है और शची द्वारा प्रस्ताव अस्वीकार किए जाने पर उसके स्वाभिमान को चोट लगती है—

प्रस्तुत मैं मान रखने को एक तृण का,
और मैं ऋणी हूँ परमाणु के भी ऋण का।
अपना अनादर परन्तु यदि मैं सहूं,
तो फिर 'पुरुष हूं' मैं किस मुंह से कहूं।

उसके पुरुष का यही अपमान 'मन्त्रणा' शीर्षक में गुरु बृहस्पति के पास शची की मांग का सन्देश भेजने को बाध्य करता है।

'पतन' सर्ग का नहुष पुरुषार्थ का प्रतीक एवं मानव-गरिमा से युक्त है। पालकी उठाने वाले चाहे ऋषि ही क्यों न हों,

इस समय तो दास ही हैं और नहुष-प्रिया-मिलन-कामना से उत्साहित प्रेमी शासक। अतः "अरोही अधीर हुआ प्रेरणा से मार की" फलस्वरूप वह शाप-ग्रस्त हो गया।

शाप-ग्रस्त नहुष मनुष्य है जिससे भूल-चूक होती ही है किंतु मनुष्य वही है जिसका आदर्श है—"गिरना ही मुख्य नहीं, मुख्य है संभलना।"

पतनकाल में गुप्तजी का नहुष अधिक तेजोद्दीप्त हो उठा है। वह शाप को अंगीकार करता है, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह के रहते हुए भी आगे बढ़ने का चिन्तन करता है, क्षमाप्रार्थी है, भूल पर खेद प्रकट करता है, पश्चात्ताप करता है, किन्तु दुःख में भी वह पूर्व दर्प से मुस्काता है—"उसका ध्येय और साध्य धरती है, वह विकारों पर विजय प्राप्त करने की बात तो करता है किन्तु 'हार नहीं मानता'। उसने जिस पौरुष से स्वर्ग को जूठा कर दिया है वही पौरुष उसे 'अपवर्ग' प्राप्त कराने में समर्थ है, अतः पौरुषमय नहुष का विश्वास है—

गिरना क्या उसका उठा नहीं जो कभी।
मैं ही तो उठा था आप गिरता हूं जो अभी।
फिर भी उठूंगा और बढ़के रहूंगा मैं।
नर हूं, पुरुष हूं मैं, चढ़के रहूंगा मैं॥

निष्कर्ष यह है कि नहुष के चरित्र के माध्यम से कवि पुरुष के पुरुषार्थ, उसकी चारित्रिक दृढ़ता, मानव के उत्थान-पतन की प्रक्रिया और मानव की कर्म-शक्ति का जयगान करना चाहता था, जिसमें वह पूरी तरह सफल हुआ है।

नारद (द्वापर एवं नहुष)

देवर्षि का एक नाम जो ब्रह्मा के मानस-पुत्र माने जाते हैं। इन्हें भगवद् गुणगायक ऋषि भी कहा गया है। उन्हें एक लोक के समाचार दूसरे लोकों तक पहुंचाने वाला कहा गया है। श्रीमद्भागवत में इन्हें अगाध बोध, सकल रहस्यों के ज्ञाता परा और अपरा विद्या में निष्णात, सूर्य की भांति त्रिलोकी का पर्यटक, वायुवत सबके भीतर विचरण करने वाला और आत्मसाक्षी कहा गया है। रामायण में कामदेव पर विजय प्राप्त करके इनमें गर्व आ जाने पर भगवान ने इनका बन्दर जैसा मुंह बना दिया और उसके बाद माया नगरी में स्वयंवर में इनके गर्व का नाश किया था। नारद अनेक विद्याओं के आचार्य माने जाते थे। नारद ही एकमात्र ऐसे ऋषि रहे हैं जिनका आदर सुर-असुर और मानवों में समान रूप से हुआ है। भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण में इनके संबंध में अनेक कथाएं दी गई हैं। इन्हें संगीतप्रिय, वीणावादक और इधर की उधर लगानेवाला कलहप्रिय भी कहा गया है। रोमन मिथकों के फियर्स से इनकी समता की जाती है।

'द्वापर' में गुप्तजी ने इन्हें शान्ति और क्रांति दोनों का पक्षधर बताया है।

शान्ति अन्त में आप आएगी
कर्मजन्य जो क्रान्ति नहीं।

उन्होंने अपने स्वरूप के विषय में स्वयं ही कहा है—

पुत्रों से निश्चिन्त सदा को पितर जनों का नारद मैं
वृद्ध पिता सुस्थिर यौवन नहीं, नहीं चिरशैशव मैं।

गुप्तजी ने उनके परम्परागत स्वरूप की रक्षा करते हुए भी कहा है—

वादी सम्वादी स्वर लेकर सीधा सभी बजाते हैं
पर प्रतिवादी स्वर भी मेरी वीणा में बज जाते हैं।

वे पापी के पाप का घड़ा भरने का उपाय तो करते ही हैं, साथ ही अपने को बाल्मीकि के समान नीतिवादी और राजनीतिक के साथ-साथ धर्मनीति का पोषक भी बताते हैं।

अरे आग भी कभी लगानी
पड़ जाती है हमें यहां।
कूड़ा-कर्कट ही न अन्यथा,
भर जावे फिर जहां-तहां।"

इस तरह गुप्तजी के नारद के चरित्र में एक ओर तो परंपरागत नारद के स्वरूप के दर्शन होते हैं और दूसरी ओर वे ऐसे योगी और कूटनीतिज्ञ हैं जो देवकी के कष्ट के हरण और कृष्ण के जन्म की अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करने के लिए कंस के पास जाते हैं। वे धर्म और राजनीति के समन्वित रूप हैं।

पानी है तो बरसेगा ही, है जो आग लगेगी ही।
जो समीर है सरसेगा ही, है जो ज्योति जगेगी ही॥
सीमा का वह द्वन्द अहाहा ! इस असीम के ही नीचे।
नारद तो निर्द्वन्द्व जाएगा पर क्या ये आंखें मीचे॥

'द्वापर' के अतिरिक्त 'नहुष' काव्य में भी कवि ने नारद-

नहुष संवाद की योजना की है। इस प्रसंग में नारद नहुष के पुरुषार्थ की प्रशंसा करते हैं, वह उसे दुर्बलता के त्याग की शिक्षा देते हुए कहते हैं—

मानो देव मन्दिर ही निज नर देह को।

नहुष-नारद-संवाद में कवि ने नारद को आचार्य व उपदेशक रूप में प्रतिष्ठित किया है।

परशुराम (लीला)

'लीला' में जनकपुर की धनुःशाला में परशुराम का प्रवेश इस प्रकार होता है 'मानो रुद्र जलाकर काम'। शीघ्रता से प्रवेश करते क्रुद्ध परशुराम जनक को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—'आ पहुंचा मैं स्वयं विदेह!' महाराज जनक के विनयपूर्वक यह कहने पर कि 'करिए निज पूजा स्वीकार', परशुराम का उत्तर है :

पीछे पहले करूं विचार···
किसने तोड़ा है शिव चाप?

लक्ष्मण के साथ होने वाला वाग्युद्ध उनकी क्रोधाग्नि में घृताहुति का काम करता है :

तो यह मेरा कठिन कुठार
उद्यत है अब भी अनिवार···

पहले हरे उसी का दंभ
जिसने तोड़ा है शिवचाप।

राम अत्यन्त विनम्रतापूर्वक उनसे कहते हैं—उन्होंने उस चाप को चढ़ाया-भर था, वह अपने आप ही भंग हो गया। वह राम को चुनौती देकर कहते हैं कि यदि उनमें वास्तव में इतना बल-पराक्रम है, तो वह उनके कोदंड पर बाण चढ़ाकर अपनी शक्ति का प्रमाण दें। राम वही करते हैं। परशुराम को विश्वास हो जाता है कि राम के रूप में 'लिया आप प्रभु ने अवतार'। वह प्रणत-भाव से कहते हैं—

मैं हूं प्रभो! क्षमा का पात्र।

और इस प्रकार 'सशाप चाप' रखने वाले परशुराम स्वच्छन्द तीर्थाटन करके परमानन्द-प्राप्ति की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं।

फ़ातमा (काबा और कर्बला)

फ़ातमा हज़रत मुहम्मद की पुत्री थी। उसने भी अपने पिता के साथ सरल जीवन और उच्च विचार का लक्ष्य अपनाया—

किन्तु फातमा सुता आतमा उनकी पक्की
कच्चे हाथों आप चलाती अपनी चक्की।

फ़ातमा का विवाह मुहम्मद के चचेरे भाई अली के साथ हुआ था। हसन और हुसैन उन्हीं के पुत्र थे।

बंदा बैरागी

क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न बंदा शरीर से पुष्ट, अत्यंत तेजस्वी और पराक्रमी योद्धा था। आखेट का उसे व्यसन था। आखेट के समय एक बार जब घायल और मरणासन्न हरिणी के तीन गर्भस्थ शिशुओं को मरते देखा, तो कोमल मन वाला बंदा शोक-संतप्त हो संसार से उदासीन बन बैरागी हो उठा। उसने संसार से विरक्त हो त्याग, तपस्या, यज्ञ, योगसाधना का जीवन अपनाया।

दक्षिण की यात्रा करते समय गुरु गोविंदसिंह से बंदा की भेंट हुई। गुरु ने उन्हें उद्बोधन दिया कि उनकी योग-साधना और वैराग्य भव-संघर्ष से पलायन, कर्त्तव्यविमुखता और कायरता है। देश-जाति और धर्म की दुर्दशा के समय विधर्मियों और विदेशियों के अत्याचारों से जननी जन्मभूमि को मुक्त करना ही परम धर्म है। इससे बंदा की सोई चेतना जाग पड़ी और वह कर्त्तव्य-पथ पर पुनः आरूढ़ हुए, उनके शांत

हृदय में क्रांति की ज्वाला जलने लगी और वह प्रतिशोध की आग में झुलसने लगे। वीर और पराक्रमी तो वह पहले से ही थे, अब अत्याचारियों को पाठ पढ़ाने के लिए उन्होंने सिक्खों को एकत्र किया और उनका नेतृत्व कर यवनों के साथ संघर्ष छेड़ दिया। एक-एक कर उन्होंने अनेक शत्रुओं—कुंज-पुर, कपूरी, सरहिंद, साठौरा, मुखालिसगढ़ आदि के शासकों, पठानों और पहाड़ी हिंदू राजाओं को पराजित किया, शाही खजाने लूटे और इस प्रकार अपनी धाक जमा ली।

उनसे आतंकित हो यवनों ने कूटनीति का मार्ग अपनाया, सिक्खों और हिंदुओं में फूट डाली और परस्पर कलह के कारण सिक्ख कमजोर हो उठे। आपसी द्वेष एवं फूट के कारण बंदा बैरागी बंदी बनाये गये और शाही दरबार में पेश किये गये। मरते समय भी वह निर्भय और स्पष्टवादी बने रहे। उन्हें मरने से पूर्व भयंकर यातना दी गयी, पर उन्होंने आह तक न की।

अंत तक जन-सेवा का व्रत निभाने वाला, शत्रुओं के दाँत खट्टे करने वाला तथा हिंदू-सिक्खों में एकता लाने का सतत प्रयत्न करने वाला, जनक के समान त्यागी बंदा बैरागी सिक्खों के ग्यारहवें गुरु कहलाते हैं और आज भी उनकी वीरता, पराक्रम, सेवा-भाव तथा त्याग के गीत घर-घर गाये जाते हैं।

बलराम (द्वापर)

वह वसुदेव और रोहिणी के पुत्र थे। इन्होंने भीम को गदा-युद्ध की शिक्षा दी थी। वह थे तो देवकी के गर्भ में किंतु यम ने इन्हें याम्य-माया द्वारा रोहिणी के गर्भ में डाल दिया था। इस संकर्षण-कर्म के कारण इनका नाम संकर्षण तथा बल की अधिकता के कारण इनका नाम बलराम था। महाभारत के शल्यपर्व में इनके द्वारा धर्म-रहस्य का वर्णन किया गया है। इन्हें शिव का अवतार माना जाता है। इन्होंने अभिमन्यु का श्राद्ध भी किया था। मौसल पर्व में इनके आदेश से द्वारिका में मद्यपान-निषेध की आज्ञा भी जारी हुई थी। इस तरह महाभारत के बलराम में प्रगतिशीलता और परम्परा-विरोध के दर्शन होते हैं।

'द्वापर' के बलराम भी युगधर्म के प्रतिष्ठापक, रूढ़ियों के विरोधी और नव-निर्माण के आग्रही प्रतीत होते हैं—

अपने युग को ही न समझना,
आत्म-हीनता होगी।

भीम और दुर्योधन के गदा-युद्ध के लिए वह सबको समंत-पञ्चक ले गए। भीम द्वारा दुर्योधन पर गदा-युद्ध के नियमों के विरुद्ध जंघा पर प्रहार के कारण वह क्रोध में आग-बबूला हो गए और कृष्ण द्वारा समझाए जाने पर ही शांत हो सके। 'जयभारत' में इनका चरित्र महाभारत के जैसा ही है। पर 'द्वापर' के बलराम में भारत के प्रति प्रेम है—

यही हमारी प्रमुख देवता,
कभी न भूलो इसको।

वह मनुष्यता के पक्षधर हैं—

मनुष्यत्व जन में ही रहता,
न कि विशाल भवन में।

उनकी चेतावनी में युगधर्म मुख्य रूप से उभरा है—

सावधान, युग के अधर्म को,
हम युगधर्म न समझें।
अथवा
जिस युग में हम हुए,
वही तो अपने लिए बड़ा है।

वह जीर्ण रूढ़िवादिता के विरोधी हैं—

पुरखे नदियाँ तरते थे, तो
तब है सिंधु तरो तुम।

इस तरह गुप्तजी के बलराम संकीर्णताओं, जीर्ण परंपराओं के विरोधी और लोक-कल्याण तथा प्रगतिशीलता के पक्षधर हैं।

बाबाजी (अजित)

बाबाजी अधिकारियों को आतंकित करने के लिए संगठित क्रांतिदल के प्रधान पुरुष हैं। वह दल के कार्यकर्ता ही नहीं, नियामक भी हैं। वयोवृद्ध तथा अनुभवसिद्ध होने के कारण क्रांतिकारी कार्यों के प्रति उनके उत्साह में उन्मादमात्र न होकर उत्कटता और उत्कर्ष का ही आधिक्य है। सपने सँजोना उन्हें नहीं सुहाता, वह तो उपलब्धि के कायल हैं, भले ही वह उपलब्धि अपेक्षा से बहुत कम ही क्यों न हो—

बाबाजी ने कहा—'अभी यह व्यर्थ विलपना,
तुम औरों से प्रथम राज्य तो ले लो अपना
जैसा चाहो स्वयं स्वेच्छया उसे गढ़ो फिर।'

यह सतर्क सेनानी भली-भाँति जानता है—

इस प्रकार की कठिन लड़ाई जो लड़ता है,
अपनों से भी उसे सजग रहना पड़ता है।

इसीलिए वह दल के सभी सदस्यों को अधिक-से-अधिक अनुशासित बनाए रखते हैं—'हम अनुशासन रख न सके तो मरण हमारा।' तहसील लूटने से उन्हें बहुत धन मिला, इससे उन्हें बहुत प्रसन्नता है, किंतु इससे अधिक क्लेश यह जानकर है कि 'लुटे स्वयं भी किंतु हमारे दो जन उसमें।' इस संदर्भ में उनका कहना है कि 'उनको तो मरभुखे बहुत से मिल जावेंगे, किंतु हम निज रिक्त स्थान सहज क्या भर पावेंगे ?'

बाबाजी की संघटन-शक्ति देखकर अजित विस्मित रह जाता है किंतु उसे उस दल में बने रहने में अपना हित नहीं दिखाई पड़ता। विदेशियों से उसका दृढ़ विरोध है, किंतु वह तन के रोगों के उपचार के स्थान पर मन के योगों पर प्रयोग करना अधिक वांछनीय मानता है। वह गांधीजी द्वारा सुझाये गये मार्ग को अधिक अनुसरणीय मानता है। बाबाजी इस अवसर पर उसे सहर्ष यह आशीष देते हैं—

फलें तुम्हें हरि करें, महात्मा जी के दर्शन !

बाबाजी अपने दल के हितसाधन के लिए जितने यत्नशील हैं, उतने ही वह दल के सदस्यों के हित-लाभ के लिए भी सक्रिय हैं। जिस उजियारी और अपने अजात शिशु को अजित मृत समझता है, उन्हें बाबाजी ही पितृतुल्य आश्रय तथा संरक्षण प्रदान करते हैं और यथासमय वह निधि अजित को सौंप देते हैं। स्वयं अजित भी उनकी यह रहस्य-लीला समझ नहीं पाता।

भरत (लीला साकेत)

आगे चलकर साकेत-संत सिद्ध होने वाले भरत बाल्यकाल से ही संत-प्रवृत्ति के हैं। मृगया आदि साहसपूर्ण कार्यों से उन्हें बाल्यावस्था से ही अरुचि है। इसका प्रधान कारण उनकी अहिंसक वृत्ति ही है, कायरता नहीं। उन्हीं के शब्दों में—

मैं मृगया से भीत नहीं
सत्य बात यह है कि व्यर्थ ही
रक्तपात से प्रीत नहीं।

भरत के प्रति कही गयी लक्ष्मण की यह उक्ति किंचित् व्यंग्यपूर्ण होने पर भी असत्य नहीं है—

सचमुच तुममें दया बहुत है।

किंतु यह दया या करुणा उनकी शक्ति है, दुर्बलता नहीं है। राक्षसों से विश्वामित्र की तपोभूमि की रक्षा का प्रस्ताव उपस्थित होने पर उनका हृदय वीरसुलभ उल्लास-उत्साह से परिपूर्ण हो जाता है और वह विनयपूर्ण आत्मविश्वासपूर्वक कहते हैं :

होंगे हम भी धन्य, धर्म का विघ्न हरें जो।

भरत की चरित्रगत शक्ति का अन्य प्रधान उत्स है अग्रज-अनुराग। राम के प्रति उनके हृदय में अपरिमित श्रद्धा-भक्ति है। राम का पल-भर का विछोह भी उनके लिए असहनीय है—

जब से आर्य चले गये कौशिक मुनि के संग।
तब से मेरे चित्त में उठती नहीं उमंग।।

राम-लक्ष्मण का कुशल समाचार लाने के लिए भेजे गये दूत के अयोध्या लौटने पर सर्वप्रथम भरत उससे यही प्रश्न करते हैं 'सकुशल तो हैं आर्य ?' सचिव से यह ज्ञात होने पर

कि महाराज दशरथ विश्व-बाधा मुक्ति पा चुके हैं, भरत का प्रश्न है : "पर कहाँ हैं इस समय नरनाथ ?" यह विदित होने पर 'वन गये वे अनुज-सीता-युक्त' भरत अनाश्रित हो उठते हैं : "तो सँभालेगा हमें अब कौन ?"

भरत के विषय में राम की एक उक्ति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है : "जन कर जननी भी जान न पाई जिसको।" वस्तुतः भरत के जीवन की विषमतम विडंबना इसी में सन्निहित है। माँ कैकेयी कुलकेतु भरत के लिए राजसिंहासन माँग लेती है, किंतु उसे यह जान लेने में अधिक विलम्ब नहीं लगता कि वह वस्तुतः भरत को जान नहीं पायी। वर-याचना के प्रसंग से अवगत होते ही भरत 'हा हतोस्मि' कहकर हतबोध हो जाते हैं। उनकी दृष्टि में उनकी माँ द्वारा किया गया यह अपराध इतना जघन्य है कि इसके लिए तुषानल का दंड भी कमल-दल तुल्य ही है। उनके मतानुसार, जिस माँ का क्षुधित पुत्र-स्नेह भूनकर पति-देह खा गया उसकी परितृप्ति तो पुत्र को भी अपना ग्रास बनाकर ही हो सकती है।

इस समस्त घटनाचक्र को गुरु वशिष्ठ तो अनुपम लोक-शिक्षण कार्य ही ठहराते हैं, किंतु भरत को तो यही जान पड़ता है मानो आज सारी सृष्टि उन पर घृणा की ही वृष्टि कर रही है। वह नवनीत प्रजाजन से ही यह निर्णय कराना चाहते हैं—

धन किसी का जो हरे क्रमभोग्य,
दंड क्या उसके लिए है योग्य ?

राम का सहजाधिकार उन्हें सौंपने के लिए भरत साकेत-समाजसहित चित्रकूट पहुँचते हैं। वह सरल-स्पष्ट शब्दों में राम से कह देते हैं कि उन्होंने उस जड़-जननी का विकृत वचन तो पाला किंतु इस जन की ओर नहीं ध्यान दिया। चित्रकूट में आयोजित सभा में राम भरत का अभीप्सित पूछते हैं। भरत के उत्तर में उनके हृदय की समस्त व्यथा, वेदना, परिताप तथा ग्लानि मुखरित हो जाती है :

हे आर्य, रहा क्या भरत अभीप्सित अब भी,
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब, तब भी ?
पाया तुमने तरु तले अरण्य बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा ?
तनु तड़प-तड़पकर तप्त तात ने त्यागा,
रह गया अभीप्सित और तथापि अभागा···
मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,
हे आर्य, बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा !

अंततः भरत राम से यही अनुनय करते हैं—

बस, मिले पादुका मुझे, उन्हें ले जाऊँ,
बच उनके बल पर, अवधि पार मैं पाऊँ।

और भरत चित्रकूट से लौटकर मणिमय पादपीठ पर युगल पादुकाएँ प्रतिष्ठित करके उन्हीं की उपासना में लीन हो जाते हैं।

हनुमान के मुख से सीता-हरण तथा लक्ष्मण-मूर्च्छा आदि का वृत्तांत सुनकर भरत का प्रसुप्त पौरुष प्रदीप्त हो उठता है :

अनुज, मुझे रिपु रक्त चाहिए, डूब मरूँ मैं।
मेंटूँ अपने जड़ीभूत जीवन की लज्जा,
उठो, इसी क्षण शूर, करो सेना की सज्जा···
माताओं से माँग विदा मेरी भी लेना,
मैं लक्ष्मण-पथ-पथी, उर्मिला से कह देना।
लौटूँगा तो साथ उन्हीं के, और नहीं तो
नहीं-नहीं, वे मुझे मिलेंगे भला कहीं तो।

वनवास की अवधि पूरी करके अयोध्या लौटने पर राम भरत से उसी प्रकार मिलते हैं जैसे क्षितिज में सिंधु और गगन का मिलन होता है। राम को अपनी तुलना में भरत का पलड़ा ही अधिक भारी लगता है :

उठ भाई, तुल सका न तुमसे, राम खड़ा है,
तेरा पलड़ा बड़ा, भूमि पर आज पड़ा है।
गये चतुर्दश वर्ष, थका मैं नहीं भ्रमण में,
बिचरा गिरि-वन-सिंधु-पार लंका के रण में।
श्रांत आज एकांत रूप-सा पाकर तुझको,
उठ, भाई उठ, भेंट, अंक में भर ले मुझको।

और वे युगल मूर्तियाँ परस्पर मिलकर द्विगुणित हर्षमय हो जाती हैं—'अंतर्बाह्य अशेष आज कृतकृत्य भरत का।'

भीम

महाराज पाण्डु के क्षेत्रज-पुत्र वायुदेव के द्वारा कुन्ती के गर्भ से उद्भूत हुए थे। वह युधिष्ठिर के अनुज और अर्जुन के अग्रज थे। वह बचपन से ही बलशाली थे। द्रोणाचार्य ने इन्हें अस्त्र-शस्त्र की तथा बलराम ने गदा-युद्ध की शिक्षा दी थी। इनकी तीन पत्नियाँ थीं—द्रौपदी, काशीराज की पुत्री बलंधरा और हिडिम्बा। द्रौपदी के गर्भ से इनका पुत्र सुतसोम, बलंधरा के गर्भ से सर्वज्ञ और हिडिम्बा से घटोत्कच का जन्म हुआ था। बचपन में दुर्योधन ने इन्हें विष-मिला भोजन खिला दिया था और बेहोश होने पर गंगा में फेंक दिया था। मूर्छितावस्था में ही वह नागलोक पहुँचे और वहाँ आठ दिक्-कुण्डों का रसपान करके एक हजार हाथियों के बल को प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। इन्होंने राक्षस हिडिम्ब का वध भी किया। पाण्डवों और कुन्ती के साथ एकचक्रानगर में एक ब्राह्मण के यहाँ रहते हुए इन्होंने वक नामक राक्षस का वध किया। इन्होंने जरासन्ध को चीर कर मार डाला और दुःशासन की छाती चीर कर उसके रक्त को पीकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की थी। द्रौपदी के कहने पर वह सौगन्धिक पुष्प लाने के लिए गए और वहाँ पर राक्षस किर्मीर का वध किया। इसी बीच इनकी हनुमान से भेंट हुई। इन्होंने जटासुर और राक्षसराज मणिमान का वध किया और अजगर रूपधारी नहुष की मुक्ति कराई। द्रौपदी के अपहरण किये जाने पर भीम ने जयद्रथ के सिर के बाल काट डाले थे तथा अज्ञातवास के समय बल्लव नाम से विराट नगर में रहते हुए इन्होंने कीचक का वध किया था। महाभारत युद्ध में भी इन्होंने दुर्योधन पक्ष के अनेक वीरों का वध किया था।

महाभारत के कुछ ही पात्रों में मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति मिल सकी है जिनमें प्रमुख हैं भीष्म, श्रीकृष्ण, कर्ण और भीम। महाभारत में भी भीम सर्वदा आदर्श-धरातल पर टिके नहीं रहे हैं, अतः उनका चरित्र गतिशील कहा जा सकता है।

जयभारत, सैरन्ध्री, हिडिम्बा आदि काव्यों में एक ओर तो भीम गर्व, वीरत्व, सहनशीलता, अद्भुत शक्ति, उद्धतता, और प्रतिकार भाव से पूरित हैं तथा दूसरी ओर वे दयालु, शांतिप्रिय, नीतिज्ञ, शोषण और अन्याय के विरुद्ध, सहनशील और हास-परिहासप्रिय भी हैं।

जयभारत के 'बंधु-विद्वेष' शीर्षक में शक्ति के साथ-साथ भीम में माता के प्रति ममता, मौजमस्ती, परिजन हित-चिंता आदि गुणों का परिचय मिलता है। भीम का वीरत्व भाव और उद्धतता 'परीक्षा' शीर्षक में भी प्रकट हुई है। भीम के चरित्र के प्रत्येक पक्ष को प्रकट करने वाला प्रसंग 'हिडिम्बा' है। गुप्तजी के काव्य 'हिडिम्बा' में भीम बीहड़ मार्ग बनाकर, माँ को कंधे पर उठाए, भाइयों को सहारा देते हुए, एक सुरक्षित स्थान पर आते हैं। इसी प्रसंग में वह अपने भाइयों तथा माता की रक्षा के निमित्त पहरा भी देते हैं तथा वन के दुःखों के संबंध में चिंतन भी करते हैं। 'हिडिम्बा' में भीम मातृभक्ति, दुर्योधन के प्रति क्रुद्ध, आज्ञापालक, सौंदर्य-प्रेमी, वार्ता-कुशल, नारी का सम्मान करने वाले, शिष्ट, मिष्ट-भाषी, व्यवहार-कुशल, तर्ककुशल, नारी-रक्षा के लिए सन्नद्ध, बलि-पूजा के विरोधी, साहसी, वीर और रणकुशल दिखलाए गए हैं।

वक-संहार प्रसंग के भीम को अपनी शक्ति पर विश्वास है। वह अपने भाइयों को यह कहकर समझा देते हैं "ठहरो तनिक तुम, भीम का यह काम है।" यहाँ उनके भोजन-भक्त रूप का भी निदर्शन है किन्तु साथ ही उनमें प्रदर्शन-भाव का अभाव भी है क्योंकि वह वक का वध करके भी कह उठते हैं—

हँस भीम बोले,—"तात हो !
कर घात कोई रात को
उसको नगर के द्वार पर है धर गया।"

राजसूय-यज्ञ में भीम पराक्रमी के प्रशंसक भी हैं। जरासंध के वध पर उनका शोक उनके इसी भाव को व्यक्त करता है।

'मेरे योग्य सुभट था तू ही, रहा मुझे यह शोक।'

द्रौपदी चीर-हरण प्रसंग में उनका वीर और क्रोध भाव दर्शनीय है। हनुमान-भीम प्रसंग में भीम उद्दण्ड और अशिष्ट हो गए हैं किन्तु बाद में वह अपना अपराध स्वीकार करते हुए क्षमा भी माँगते हैं।

महाभारत के समान ही 'जयभारत' में भी भीम का चरित्र युधिष्ठिर द्वारा अनुशासित है। वन-वैभव तथा जयद्रथ द्वारा द्रौपदी-हरण प्रसंग में युधिष्ठिर ने उन पर अंकुश लगाया भी है। 'सैरन्ध्री' प्रसंग में उनका रोष सहज रूप में प्रकट हुआ है—

भोगा सब जिस धर्म-भीरुता पर भर जीकर
कोसूँ कैसे उसे न मैं पानी पी-पीकर

गिना चलूँ मैं कहो सहा है मैंने जो-जो
सिद्ध करूँ सब सत्य, कहा है मैंने जो-जो ।
सहने को अत्याचार जो बाध्य करे, वह धर्म है,
तो इस निर्मम संसार में और कौन दुष्कर्म है ?

युधिष्ठिर द्वारा अश्वत्थामा-वध की घोषणा पर जब अर्जुन युधिष्ठिर पर क्रुद्ध हो जाते हैं, तब भीम के चरित्र का स्वाभाविक पक्ष उभर कर आता है—

सावधान अर्जुन ! क्या कहते हो—किससे
सत्य-रक्षा से भी आत्मरक्षा बड़ी होती है,
एक छोड़ सौ-सौ सत्य धर्म पलें जिससे ।

इसी संदर्भ में ऐसा लगता है कि गुरु द्रोणाचार्य के कृत्यों के कारण भीम उनके प्रति अधिक सदय नहीं रहे हैं । जयद्रथ-वध के भीम उनके रथ को कन्दुक सदृश नभ में फेंक कर आगे बढ़ते हैं । इसी प्रसंग में जयभारत में उनका भावावेश देखते ही बनता है—

जल उठे देखते ही उनको समक्ष वे
द्विज-उज जो हो तुम, गुरु हो अवश्य ही
किन्तु वध-योग्य वह जो भी आततायी हो ।

दुःशासन, दुर्योधन-वध तथा अश्वत्थामा प्रसंग में भीम का प्रतिशोध-भाव ठीक महाभारत के समान ही प्रकट होता है । तात्पर्य यह है कि गुप्तजी के भीम उत्साही, वीर, सहन-शील, अन्याय-विरोधी और स्वाभिमानी हैं । महाभारत के उद्धत भीम जयभारत में भी औद्धत्य गुण से समक्ष ही हैं, इसीलिए स्वर्गारोहण में देहपात के समय युधिष्ठिर कह उठते हैं—

तुम छूटे नहीं, तुम्हारे मिस
मेरा औद्धत्य यहाँ छूटा

भुजबलसिंह दाउजू (अजित)

अजित के पात्रों में भुजबलसिंह दाउजू को विशिष्ट स्थान प्राप्त है । काव्यमंच पर उनकी उपस्थिति अत्यंत अल्पकालीन होकर भी अत्यंत प्रभावपूर्ण है । उनकी आकृति द्वारा उनकी प्रकृति का परिचय कवि ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है :

साफ़ा कुरता श्वेत, हिरौंजी धोती पहने,
ऊँचा पूरा डील उठा मानो सब सहने ।
गाढ़ी डाढ़ी खाप छोड़ कर फहर रही थी,
गंगा-यमुना स्फुरित हृदय पर लहर रही थी ।
तन ललाट की लीक घनी भौंहों ने मेटी,
कटि में कसे कृपाण कारतूसों की पेटी ।
जमे पैर, बंदूक तुले हाथों में आड़ी,
स्थिर आँखें थीं देख रहीं पल-पल की नाड़ी ।

लूटपाट के व्यवसायी दाउजू में वीरता तथा विवेक का अद्भुत संगम है । वह अपने साथियों के साथ लूट के लिए निकलते हैं । उनकी भेंट घोड़े पर सवार उस सेठ से होती है जिसके भुज पर नवरत्न शोभायमान थे । दाउजू का साथी उससे कहता है "सब रख दें ।" सेठ का उत्तर है :

आप सबल हैं, हरण मरण हैं समझे-बूझे,
सफल न होंगे किन्तु बिना इस जन से जूझे ।

वणिक पुत्र का यह वीरतापूर्ण उत्तर शूरवीर दाउजू का हृदय जीत लेता है । वह हँस कर कहते हैं : "जा तू जीता ।" वह भी हँस कर प्रत्युत्तर देता है—

जा रहा हूँ, हाँ जीता ।
किन्तु निमंत्रण रहा, पधारें कभी कृपा कर,
तो चरणों पर स्वयं निछावर हो मेरा घर ।

इस प्रेमपूर्ण निमंत्रण के निर्वाह के लिए दाउजू एक दिन उस सेठ के घर जा पहुँचते हैं । संयोग से उसी दिन अजित और उसके साथी उसी सेठ का घर लूटने के विचार से वहाँ पहुँचते हैं । वृद्ध दाउजू को द्वार पर अड़ा देख कर उनमें से एक कहता है :

आप दाउजू, जाँय यहाँ से,
और कहूँ क्या, यही बहुत भर पाँय यहाँ से ।

अतिथि-रूप में वहाँ पधारे दाउजू का उत्तर है :

कहो, अब कैसे जाऊँ ?
जिससे हित है उसे देखकर भी लुटवाऊँ ?
चाहो तो अब तुम्हीं रौंद मुझको घुस जाओ,
मेरे जीते नहीं, मरे पर कुछ भी पाओ ।

दाउजू निर्भीक वाणी में अजित के साथियों से कहते हैं कि

एक रांड अबला सेठानी के घर डाका डाल कर उन्होंने चोर-लुटेरों को भी लज्जित कर दिया है, क्योंकि 'नियम-धर्म कुछ चोर लुटेरे भी रखते हैं।' अजित अपने साथियों को आगे बढ़ने से रोक देता है। वह स्वीकार करता है, 'ऐसे बलिदानी दुर्लभ हैं।' अजित के इस व्यवहार से उत्फुल्ल होकर दाउजू वात्सल्यपूर्वक उससे पूछते हैं, "कितना धन चाहिए तुम्हें, हे मेरे हीरे?" और वह भोली सेठानी भी गद्‌गद होकर अजित को अपनी ताली भेंट कर देती है।

पुनू (अजित)

पुनू अजित का कारागार का संगी है। अजित को पुनू से यह सुनकर आश्चर्य होता है कि वह पुलिस-कृपा से डाकू बना। इस वस्तुस्थिति को स्पष्ट करते हुए पुनू कहता है कि वह एक दिन अपने खेत को जोतकर घर गया और अगले दिन उस खेत को किसी अन्य व्यक्ति ने बो दिया। इस प्रकार उसके खेत पर जबरदस्ती अधिकार कर लेनेवाला पक्ष नौ-दस का दल और धन साथ होने के कारण अधिक प्रबल था तथापि पुनू ने जम कर उनका मुकाबला किया। मारना न चाहने पर भी उसकी दुनाली से चार-पाँच व्यक्तियों का वध हो गया और वह जान बचा कर भाग खड़ा हुआ। एक दरोगा उससे गिन-गिन कर गिन्नियाँ-मुहरें लेकर बहुत समय तक उसका संरक्षण करता रहा, किन्तु जब एक बार बहुत दिन तक उसे कुछ दक्षिणा प्राप्त न हुई तो उनकी परस्पर बक-झक हो गयी और दोनों एक-दूसरे के लिए यम बन बैठे। एक बार पुनू के दल को वह दरोगा अकेला मिल गया। इन लोगों ने तत्काल उसे घोड़े से खींच कर उसी अभागे के कोड़े से मार नचाया। आश्चर्य की बात यही रही कि पुलिस अफसर के साथ इस प्रकार का कुव्यवहार करने पर भी पुनू को फाँसी नहीं लगी, केवल अनेक वर्ष का कारावास ही भोगना पड़ा।

पुनु तथा उस सरीखे अन्य बंदियों के वृत्तांत द्वारा गुप्त-जी ने चोर-उचक्कों के साथ पुलिस की साँठगाँठ के निरूपण द्वारा यह चित्रित करने का प्रयत्न किया है कि अनेक व्यक्ति पुलिस-कृपा से ही अपराधी बनते हैं।

मगध की रानी (अनघ)

मगध की रानी मगध की जनता की दृष्टि में केवल 'निज भूप-भुलानी' सुन्दरी हैं। इस दृष्टि से मगध-नरेश भी पत्नी-रूप भुलाने पति हैं। मगध-नरेश अपनी उस पत्नी पर विमुग्ध हैं जिसके मुख पर महत्त्व की सहज छाप निरंतर विद्यमान है। वह यह देख कर चिंतित हो उठते हैं, "जिस समय कली-कली में कुसम-हास है, उस समय रानी उदास क्यों हैं?" रानी कहती हैं कि वह "अपने पति के आनुकूल्य को अपना अमूल्य गौरव-धन मानती हैं जिस पर उन्हें असीम गर्व है किंतु उन लाखों लोगों के प्रति वह अपने को दोषी महसूस कर रही हैं जिनका रंजन है राज-कर्म।" इसीलिए राजस्व से उत्पन्न ऐश्वर्य उन्हें चोरी या लूट मात्र जान पड़ता है। उन्हें लगता है मानो प्रसूनों के मिस समस्त कठोर हरियाली उन पर हँस रही है। महाराज उन्हें धीरज बँधाते हुए कहते हैं 'पूरा-पूरा है मुझे ज्ञान, है भक्ति प्रजा में कि है क्रांति।' किंतु रानी इसे यथार्थ-बोध नहीं मानतीं। उनकी मान्यता है कि राजधर्म का यथार्थतः निर्वाह न कर पाने से तो कहीं अधिक उत्तम यह है कि वे दोनों उस बाधक वैभव-जाल को तोड़कर ऐसे किसी 'गिरि गुहा गेह, घन विजन कुंज' में जाकर रहने लगें 'जहाँ निर्झर निपात हो, कुछ न और' और जहाँ 'मैं तुमको, तुम मुझको विलोक, भूलें दोनों भव-रोग-शोक।' नरेश रानी की इस मनःस्थिति का मूल कारण समझ जाते हैं :

> तुमने यथार्थ ही कहा आज,
> देखूँगा मैं सब राजकाज।
> करके अपना कर्तव्य-कर्म
> पालूँगा सच्चा राज-धर्म।

राजधर्म-पालन में नरेश की सहायता के लिए रानी स्वयं राज्य की वर्तमान स्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करती है और उन्हें यह समझ लेने में अधिक समय नहीं लगता कि शासकीय अधिकारी उनके साथ छल कर रहे हैं। वे निर्दोष

व्यक्तियों पर झूठे आरोप लगाकर स्वार्थ-साधन कर रहे हैं। इसीलिए मगध के न्यायालय में वह एक ओर सैनिकों को सुरभि का विरोध करने से रोकती है—

हट जाओ हे शूर, न छेड़ो इस बाला को,
शांत करो भगवान, शाप की इस ज्वाला को।

और दूसरी ओर महाराज को समझाती है—

छले गये हैं प्रभो, आप, क्षण धीरज धरिए।

मघ के पक्ष-विपक्ष में प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों को तोलने के उपरान्त तो वह इतनी भावविभोर हो उठती है कि न्याय-निर्णय का अधिकार भी अपने हाथ में लेकर घोषित कर देती है—

स्वयं सिद्ध हो चुका आज, यह कि मघ अनघ हैं।

मघ के सदुद्देश्य के साफल्य के रूप में मगधराज उसे उस प्रदेश में अपना प्रतिनिधि बना देते हैं किंतु रानी संभवतः इसे भी पर्याप्त नहीं मानतीं। वह अनघ से कहती हैं—

कहो अनघ मघ, करूँ और क्या इष्ट तुम्हारा ?

इस प्रकार मगधराज की पत्नी राजमाता बन जाती हैं और प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में मघ माँ के प्रेम-प्रयोनिधि में निमग्न होकर इतना ही कहते हैं कि—

बस माँ, अक्षय रहे तुम्हारी करुणा-धारा।

मुखिया (अनघ)

मचल ग्राम का मुखिया प्रशासन-व्यवस्था का अंग होने के कारण मघ के लोकोपकारी कार्यों का विरोधी है, क्योंकि उससे शासन को प्राप्त होने वाले राजस्व में कमी आती है। वह मघ को 'ढोंग का खंभ' मानता है और उसका दंभ निकाल डालने के लिए कुछ भी कर देने के लिए सन्नद्ध है। वह मघ के दल में कुछ ऐसे लोगों को प्रविष्ट करा देता है जो प्रत्यक्षतः सहयोगी दीखने पर भी दल के लिए घातक बन सकें। वह सुमुख को अपना उपकरण बनाता है। उसे पदोन्नति का प्रलोभन देकर यह काम सौंपता है—

जाना होगा नृप निकट
वहाँ खड़े रहना तने
निज दल के साक्षी बने।

मुखिया के कुटिल कर्म उसके पुत्र शोभन को उचित नहीं लगते। वह पिता की भूल का प्रायश्चित करना चाहता है। वह मघ का अनुयायी बन जाता है और मघ के लिए दंड-विधान किये जाने पर वह भी सत्यनिष्ठा तथा साहसपूर्वक कहता है—

मुझको भी सम्मिलित दंड में इनके कीजै।

शोभन और अन्य व्यक्तियों द्वारा दिये गये वक्तव्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुखिया और उसके साथियों ने मघ पर मिथ्या आरोप लगाये थे। इस प्रकार मगध के न्यायालय में सबके सामने मुखिया का वास्तविक रूप प्रकट हो जाता है और मगध की रानी उसकी भर्त्सना करती हैं—

चुप रह पामर, क्रूर, कुटिल, खल, मिथ्यावादी।

मघ

मघ बुद्ध का साधनावतार है। कवि ने उसमें भगवान बुद्ध की करुणा को साकार किया है। उसका जीवन-लक्ष्य है—

न तन सेवा, न मन सेवा,
न जीवन और धन सेवा,
मुझे है इष्ट जन सेवा,
सदा सच्ची भुवन-सेवा।

मघ सूक्ष्म गहन दृष्टि से इस विश्वप्रपंच को निरखता-परखता है। उसे यह समझने में देर नहीं लगती कि इसका प्रवाह बहुत पैना है। यहाँ वर्तमान ही प्रधान है और भावी का किसी को ध्यान ही नहीं है। यहाँ तो केवल यही देखा जाता है कि "मीठा है कि सलोना है"। सबसे विचित्र बात तो यह है कि बार-बार अपने को ठगाने पर भी हम भूल को भगाने के बदले फिर-फिर घात लगाते रहते हैं। यहाँ का सुख-हास्य

केवल दिखावटी है, क्योंकि "भीतर तो केवल रोना है।" वर्तमान विश्व उसे उस बिछौने-जैसा जान पड़ता है जिस पर जीवन-निशा बिताना उसकी नियति है। यहीं उसके सामने अनेक प्रश्न उगने-उभरने लगते हैं—क्या मैं सो जाऊँ या जागता रहूँ ? इसकी तन्द्रा कैसे त्यागूँ ? यहाँ डट जाऊँ या हट कर भाग जाऊँ ? वह निश्चय करता है—

बस, अपना कर्तव्य करूँ मैं,
हुआ करे जो होना है।

कर्तव्य-पथ चुन लिये जाने पर उसे तन-बदन की सुध नहीं रहती। वह मानो सारे गाँव के सुधार का इजारा ले बैठता है। वह कभी वहाँ के कुँओं-घाटों की मरम्मत करता है, कभी हाट-बाटों की सफाई करता है। वह सभी मनुष्यों को समान महत्त्व देता है। उसके लिए शूद्रों का महत्त्व द्विजों से कम नहीं है। वह समदर्शी "उच्च हो नीचों में सनता है।" इसी कारण लोग उसे सनकी समझते हैं किंतु अपनी माँ की दृष्टि में वह बच्चा—

है कितना सीधा-सच्चा !
सब पर प्रत्यय रखता है
स्वयं प्रेमरस चखता है।

और स्वयं मघ के शब्दों में उसका परिचय इस प्रकार है :

समय-भागी हूँ, नहीं समय हूँ,
नहीं मारुत, पर मारुतमय हूँ।
नहीं मैं तत्त्व, तत्त्व मुझमें है,
कि उनके सभी सत्व मुझमें हैं···
चाहता हूँ कि मनुष्य रहूँ मैं
और अपने को वही कहूँ मैं।

गौर तनु-कांति और शुभरुचि वाली यह शांत रुचिर मूर्ति निरंतर कर्मशील बनी रहती है। तप की दोपहरी में जब प्रकृति भी गूँगी-बहरी-सी हो जाती है, वह कटिबद्ध होकर कर्तव्य-पथ पर आ निकलता है। उसके सराहक उसे कोई सिद्ध पुरुष समझते हैं किंतु वह स्पष्ट कर देता है, "रखता असाधारण सिद्धियाँ न शक्ति हूँ।" सच तो यह है कि उसे इस प्रकार की अलौकिक शक्तियों की कोई कामना ही नहीं है। योगविद्या और मंत्र-तंत्र को वह 'तमाशा' ही मानता है। वह तो महत्कर्म की कसौटी यह मानता है—

आत्मबलिदान करो तो है कुछ करना,
मृतक जिलाने से बड़ा है आप मरना।

लोकधर्म का यह अनुयायी अपने सगे-संबंधियों से भी विमुख या उदासीन नहीं है। माँ के प्रति उसके हृदय में अपार श्रद्धा और प्रेम है। विवाह को बंधन मानने पर भी वह माँ का यह आदेश शिरोधार्य करता है। बंदी हो जाने पर भी उसकी यही याचना है "पद-रज दो माँ, हाथ बँधे हैं दास के।" लोक-धर्म में बाधक मान कर विवाह का विरोध करने पर भी 'सच्चा गृही' बनने के लिए वह सुरभि को आश्वस्त कर देता है 'तू मन से वरे मुझको, सहज तो कार्य अपना यह'। अपने सहकारी बंधुओं के प्रति उसमें आत्मीयता का भाव इतना प्रबल है कि वह चाहता है कि वे भी उसकी माँ के पोष्य बन जाएँ।

जनसमाज मघ द्वारा किये गये हितकर उद्योग से लाभान्वित और प्रभावित है, किंतु उनमें ऐसे व्यक्तियों का भी अभाव नहीं है जो अहम्मन्यता, स्वार्थ अथवा दम्भवश उसका विरोध करते हैं और उसके प्रति शत्रु-भाव रखते हैं। वे लोग षड्यंत्र करके उसके विरुद्ध अनेक झूठे आरोप लगा देते हैं और उसे अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाते हैं। उसका घर जला दिया जाता है और उसे बंदी बना लिया जाता है किंतु उसकी कर्तव्य-निष्ठा अविचल बनी रहती है :

घर क्या स्वयं जलूँगा,
फिर भी न मैं टलूँगा।

ग्राम-भोजक स्वार्थवश मघ को बंदी बनवाता है। उसकी पत्नी उसे अन्याय मानती है। अत: वह कारागार का द्वार खोल देती है और मघ से आग्रह करती है कि वह सकुशल वहाँ से भाग जाए। मघ इसे चोरी का काम मानता है। वह इस प्रकार बच निकलने की अपेक्षा प्राण दे देना श्रेयस्कर मानता है। राजद्रोह का आरोप लगाकर मघ को मार डालने के लिए मस्त हाथी छोड़े जाते हैं। वे मघ को कोई कष्ट नहीं पहुँचाते। यह देख कर मगधराज को अत्यन्त आश्चर्य होता है और वह मघ से पूछते हैं "क्या तुम कोई मंत्र जानते हो, बतलाओ।" मघ का उत्तर है—

हमें किसी से द्रोह नहीं, वह मंत्र यही है।

इसीलिए न्यायालय में निर्दोष सिद्ध हो जाने पर जनता एक स्वर में कह उठती है :

निश्चय मघ हैं अनघ, अनघ, पहले फिर मघ हैं।

गांधी-युग की शब्दावली का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि अनघ मघ महात्मा गांधी के सच्चे सत्याग्रही हैं।

मघ की माँ

मघ की माँ सुत-गुण-गर्विणी माँ है। वह बार-बार यही कहा करती है 'मेरी कोख कृतार्थ हुई जनकर तुम्हें' 'मुझको तो है गर्व तुम्हारे कर्म पर' आदि। यह अवश्य है कि सहज वात्सल्यवश वह यह देखकर क्षुब्ध हो जाती है कि अपने खान-पान से भी उदासीन रह कर मघ जिनकी सेवा करता है वे ही उस पर क्रोध करते हैं। वह यह नहीं समझ पाती कि इस कृतघ्न संसार का उद्धार कैसे होगा। तथापि बुरे और भले, शत्रु तथा मित्र सभी के प्रति उसके हृदय में करुणा तथा सद्भाव है। वह उस सुर को क्षमा कर देती है जो मघ के प्रति शत्रु-भाव रखता था। वह उन प्रशासनिक अधिकारियों का भी बुरा नहीं चाहती जो मघ को कष्ट पहुँचाते हैं। वस्तुत: मघ की निष्काम सर्व-सेवा और कृतघ्न समाज के असहयोग तथा विरोध-भाव ने उसके भीतर एक गंभीर अंतर्द्वन्द्व की सृष्टि कर दी है। यह दूसरी बात है कि वह अंतर्द्वन्द्व उसे विजित या कर्तव्यपराङ्मुख नहीं कर पाता—

आह दीनता यह तेरी,
विश्वप्रियता की प्रेरी।
करती है लाचार मुझे
कैसे रोकूँ और तुझे ?
तेरे भरे आँसुओं पर
वारूँ मैं मुक्ता भर-भर।

वात्सल्यनिमग्ना माँ अपने सुत को बाँध रखने के लिए एक निराला बंधन खोज निकालती है। वह फूलों की-सी माला सरीखी किसी बाला से उसे बाँध रखना चाहती है और सौभाग्य से उसे इसके लिए सुरभि-सी दुर्लभ बाला मिल भी जाती है। किंतु जहाँ भावना और कर्तव्य के बीच टकराव उपस्थित होता है वहाँ वह कर्तव्य को ही वरीयता देती है। पुत्र को बंदी-वेश में समक्ष पाकर उसका हृदय हिल जाता है किंतु उसका आशीषमय आदेश यही है—

जाओ बेटा, दंड मिले सो तुम सहो
अपने व्रत पर अटल अचल यों ही रहो।

मदन वर्मा (सिद्धराज)

सिद्धराज काव्य के प्रमुख पात्रों में महोबा के राजा मदन वर्मा भी एक महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। राजा जयसिंह उन पर चढ़ाई कर उन्हें अधीन करना चाहता था किंतु उनके चरित्र की दृढ़ता, मनस्विता और आदर्श गुणों के कारण जयसिंह ने उनसे मैत्री-भाव स्थापित किया था।

सिद्धराज काव्य के पाँचवें सर्ग में मदन वर्मा के आदर्श चरित्र का गायन है। राजा जयसिंह के पास आए एक चारण के अनुसार—महोबा प्रदेश धनधान्य से भरपूर आर्य देश का केन्द्र है। वहाँ के राजा के कारण पशुओं में पशुता और मनुष्यों में मनुष्यता है। वहाँ के मंदिर और उनकी शिल्प-कला हृदयहारिणी है। वहाँ का राजा मदन वर्मा सुकर्मों का सदन है। वह शूरवीरता में महोबा का इंद्र है, धनी, दानी और शूर है।

चारण के कथन से जयसिंह मदन वर्मा से ईर्ष्या करने लगता है तथा महोबा की ओर प्रस्थान करता है। मार्ग में महोबा के गृहसचिव क्षेत्र वर्मा से भेंट होती है। वह उसके तेजस्वी रूप, मनस्विता और विनम्रता से अत्यंत प्रभावित हो जाता है। इसी संदर्भ में जयसिंह के इस कथन पर कि उससे वैर कर कोई जीवित नहीं रह पाया है, क्षेत्र वर्मा कह उठता है—"प्रेम से ही हारेंगे हमारे महाराज तो।" क्षेत्र वर्मा के वार्तालाप से प्रभावित होकर जयसिंह संधि-प्रस्ताव रखता हुआ महोबा में प्रवेश करता है। वहाँ अपने स्वागत पर पृथ्वी के प्राणी जयसिंह के आसुरी विचार महोबारूपी नंदन विपिन में आकर तिरोहित हो जाते हैं। मदन वर्मा जयसिंह का स्वागत पिचकारी से रंग छोड़कर करता है और जयसिंह भी उत्तर में पिचकारी की धार छोड़ता है। इस तरह "भींग गए दोनों एक-दूसरे के स्नेह में।"

यह था मदन वर्मा के चरित्र का एक पक्ष जिसमें उसके आदर्श चरित्र का परिचय परोक्ष रूप में मिलता है, किंतु उसके गुणों का वास्तविक परिचय जयसिंह और मदन वर्मा के अंतरंग वार्तालाप में प्रकट होता है। इस प्रसंग में वह प्रादेशिक स्वतंत्रता का पक्षधर, उत्साही, वीर, दयालु, देश-प्रेमी के रूप में प्रकट होता है। इसलिए—

देखता था सिद्धराज विस्मय से श्रद्धा से
भोगी है मदन वर्मा किंवा एक योगी है।

मांडवी (लीला, साकेत)

श्री मैथिलीशरण गुप्त की कृतियों में मांडवी तथा श्रुतिकीर्ति का संकेत सर्वप्रथम 'लीला' में प्राप्त होता है। जनकपुर की ये राजकुमारियाँ वहाँ भक्ति तथा संगीत की साधना में तन्मय हैं। उर्मिला के यह प्रश्न करने पर कि "क्या श्रुतिकीर्ति-समेत मांडवी पहुँच गई मंदिर में?" सुलक्षणा उत्तर देती है "वीणा वहीं बजाती हैं वे बैठी हुई अजिर में।" इसके बहुत समय बाद 'साकेत' में विरह-काल बिताती उर्मिला जब जनकपुर में बिताये इस सुखमय समय का स्मरण करती हैं तब उसके नेत्रों में इन दोनों बहिनों का यही चित्र पुन: झूल जाता है—

नचती श्रुतिकीर्ति तांडवी,
नदि, देती करताल मांडवी।

भरत तथा शत्रुघ्न के साथ विवाह हो जाने के उपरान्त महाराज जनक की ये पुत्रियाँ—मांडवी तथा श्रुतिकीर्ति—अपने को अपने पतियों के व्यक्तित्व में मानो विलीन ही कर लेती हैं। अत: साकेत में—

भरत कर्ता, मांडवी उनकी क्रिया
कीर्ति सी श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्नप्रिया।

राम-वनवास के पश्चात भरत नन्दिग्राम में रह कर उटज-अजिर में युगल पादुकाओं के पूजन को ही अपनी जीवन-चर्या बना लेते हैं। उस समय मांडवी की दिनचर्या यह है कि वह सोने के थाल में अपने प्रभु के लिए फलाहार लाती है, हाथ बढ़ा कर वह थाल पादपीठ के सम्मुख रख देती है, फिर घुटनों के बल द्वार-देहली पर निज भाल टेक कर आँखों से बड़ी-बड़ी दो-चार बूँदें टपका देती है। 'साकेत' के कवि ने इस विषण्ण तपस्विनी का रूपचित्र इन शब्दों में अंकित किया है—

चार चूड़ियाँ थीं हाथों में, माथे पर सिंदूरी बिंदु,
पीताम्बर पहने थी सुमुखी, कहाँ असित नभ का वह इंदु।
फिर भी एक विषाद वदन के तपस्तेज में पैठा था,
मानो लौह-तंतु मोती को बेध उसी में बैठा था।

कौसल्या, सुमित्रा, उर्मिला—सभी का कर्त्तव्य-भार आज मांडवी के ही कंधों पर है। वह इसे विशेष गौरव का प्रसंग मानती है। वह जानती है कि यदि कभी यह धरती फट जाती और भरत के साथ वह उसमें कहीं समा जाती तो वे दोनों किसी मूल में कितना रस पा सकते थे, किंत

कौन जानता किस आकर में पड़े हृदय-रूपी दो रत्न?

मांडवी समष्टि-सुख में व्यष्टि के योगदान का महत्त्व जानती है। वह जानती है कि मनुष्यत्व का तत्त्व वही व्यक्ति समझ-बूझ पाता है जो सुख को लात मार कर दु:खों से जूझता है। इसीलिए उसका यह विश्वास अविचल है—

वे प्रासाद रहें न रहें, पर, अमर तुम्हारा यह साकेत।

विषम विषाद की अवधि में भी मांडवी अपना सहज विनोद-माधुर्य विनष्ट नहीं होने देती—

हँसी मांडवी "प्रथम ताड़का, फिर यह शूर्पणखा नारी,
किसी विड़ालाक्षी की भी अब आने वाली है बारी!"
"उनमें भी सुलोचनाएँ हैं और प्रिये, हममें भी अंध।"
"नाथ क्यों नहीं, तभी न अब यह जुड़ता है उनसे संबंध!"

कर्त्तव्य की पुकार कान में पड़ते ही मांडवी की आकुलता कार्यकुशलता और तत्परता में परिणत हो जाती है। भरत के बाण से आहत हनुमान पर जब भरत अश्रुप्रवाह कर रहे थे तब मांडवी आगे बढ़कर कहती है—

अब आतुरता ठीक नहीं,
संजीवनी महौषधि की हो नाथ, परीक्षा क्यों न यहीं?

और इस प्रकार जब यह आहत जन नये प्राण पाकर आँख खोल कर देखता है तो उसके समक्ष यह दृश्य उपस्थित है—

अपना अंचल फाड़ मांडवी उसे बाँधती थी पट्टी।

हनुमान के मुख से वनवासी राम, सीता तथा लक्ष्मण का सारा वृत्तांत सुन कर भरत कातर हो जाते हैं। उसी समय अर्द्धांगिनी का यह कथन भरत में शक्ति तथा नवजीवन का संचार कर देता है—

कातर हो तुम आर्यपुत्र, होकर नर नामी,
तो अबला क्या करे, बता दो मुझको स्वामी?
स्वामी, निज कर्त्तव्य करो तुम निश्चित मन से,
रहो कहीं भी, दूर नहीं होगे इस जन से।

इस अवसर पर श्रुतिकीर्ति की भावनाएँ भी मांडवी से भिन्न नहीं हैं—

जाओ स्वामी, यही माँगती मेरी मति है—
जो जीजी की, उचित वही मेरी भी गति है···
जिनसे दुगुना हुआ यहाँ वह भाग हमारा,
हम दोनों की मिले उन्हीं में जीवन-धारा।

माताभूमि (पृथिवीपुत्र)

'पृथिवीपुत्र' में माताभूमि उस जननी के रूप में अंकित जो पुत्र-गर्व-गौरव से गरिमामयी है। उसे यह देख कर ोष होता है कि उसका पुत्र प्रगति कर रहा है किंतु उसे ह अनुभव कर असंतोष और दुःख ही अधिक होता है कि ह प्रगति एकांगी—विशुद्ध भौतिक एवं स्वार्थकेन्द्रित है। से अपना वह कौतुकी शिशु आज सच्चा ऐन्द्रजालिक-सा ग रहा है जो पशु-बल के अर्जन में सतत यत्नशील है। सीलिए उसे यह देख कर मर्मान्तिक वेदना होती है कि इस ज्ञानिक जीव में ज्ञान का वस्तुतः अभाव होता चला जा हा है। धरती माँ को लगता है कि उसके इस पुत्र के इस गलपन से तो उसका वह बालकपन ही श्रेष्ठतर था, योंकि आज तो उसके 'सभी तंत्र सीधे षड्यंत्र मात्र' हैं जिनके ाम कुछ और, हाय काम कुछ और हैं।'

माताभूमि अपने पुत्र को बड़े से बड़ा देखना चाहती है। किंतु, इसके लिए इस जंतु-शिरोमणि को यह मंत्र सीखना-समझना होगा कि "छोटा होकर ही कोई बड़ा होता है।" इसीलिए प्रगतिपथ का अंधानुकरण करते पुत्र को चेतावनी तथा चुनौती देते हुए माँ कहती है—

मिथ्या दर्प छोड़ने का साहस हो तुझमें,
तो व्यक्तित्व अपना समष्टि में मिला दे तू,
देश, कुल, जाति, किंवा वर्गभेद भूल के
जा तू, विश्व मानव हो, सेवा कर सबकी।
भीति नहीं, प्रीति यथा रीति तेरी नीति हो।
उठ, बढ़, ऊँचा चढ़ संग लिये सबको,
सबके लिए तू और तेरे लिए सब हैं।

केवल तभी धरतीमाता पुत्रवती होने का समुचित गर्व कर सकेगी।

पृथिवीपुत्र

पृथिवीपुत्र मनुष्य की अधुनातन उपलब्धियों का प्रतीक । सभी लोकों पर अधिकार पाने में यत्नशील इस प्राणी के हाथ में रसायन है और सिद्धि साथ है'। वह अपने प्रयोगों जरा और मृत्यु का नाम ही मिटा डालना चाहता है। आज उसने ऐसा गोला (बम) प्राप्त कर लिया है जिसकी एक ही उछाल में उसे विश्व-विजय प्राप्त हो सकती है। वह शीघ्रातिशीघ्र अपने विश्व-जय के यज्ञ-पशुओं का संहार कर पृथिवीमाता को वह दिन दिखा देना चाहता है जब वही सबका एकमात्र शासक होगा।

माताभूमि पुत्र को समझाती है कि युद्ध से युद्ध को समाप्त करना संभव नहीं, वह तो प्रेम से ही समाप्त हो सकता है—विश्वबंधुत्व ही विश्वसंघर्ष का एकमात्र निदान है।

मार्क्स (जयिनी)

'जयिनी' में कार्लमार्क्स दो रूपों में प्रकट होते हैं—गंभीर विचारक के रूप में और प्रेमी पति के रूप में। विश्व में व्याप्त भयंकर विषमता से वह चिन्तित हैं। उन्हें अपने चारों ओर घोर अपकर्ष दीख रहा है। उनकी अपलक दृष्टि उन लोगों पर टिकी है—

देख नहीं सकते जो अपने आप को भी,
भोग नहीं सकते सुखों के सपने को भी,
जीवन-प्रदीप सदा जिनके बुझे-बुझे...

मार्क्स के जीवनदर्शन तथा कार्यनीति का निरूपण कवि ने इन शब्दों में किया है—

जो सिद्धांत, जो आदर्श बुद्धिगत पाऊँ मैं,
जैसे बने कैसे व्यवहार में न लाऊँ मैं?
ऋषि-मुनियों का वह त्याग स्वयं लूँगा मैं,
अर्थ को अनर्थ किंतु रहने न दूँगा मैं।

मार्क्स का युग-पुरुष-रूप जितना प्रांजल, प्रत्यक्ष और परिपुष्ट है, उनका पति-रूप भी उतना ही सहज, स्निग्ध तथा सरस है। कवि ने 'जयिनी' के एक ही अवतरण में मार्क्स के इन दोनों रूपों का सवाक् चित्रण कर दिया है—

चिंता मुझे काँटों की नहीं है निज पथ में,
विचरो परन्तु तुम मेरे मनोरथ में।
प्रेयसि, प्रकृति संग खेलो तुम फूलों से,
किंतु मैं पुरुष, मुझे जूझना है शूलों से
लेकर तुम्हारी शुभकामना बढ़ूँगा मैं,
फूली-फली देख तुम्हें शूली भी चढ़ूँगा मैं।

मीनल दे

मीनल दे चन्द्रपुर के जैनधर्मी सामन्त की कन्या थी। इनका विवाह गुजरात के राजा महाराज कर्णसिंह के साथ हुआ था। इनका पुत्र जयसिंह था। जब जयसिंह तीन वर्ष का था तभी इसके पिता कर्णसिंह का देहान्त हो गया था। मीनल दे ने उसका पालन-पोषण ही नहीं किया अपितु उसे शासन-संबंधी उचित शिक्षा भी दी थी।

सिद्धराज काव्य के दो प्रसंगों में मीनल दे के चरित्र का उद्घाटन हुआ है। प्रथम सर्ग में सोमनाथ के दर्शन करने जाने के प्रसंग में कवि ने उन्हें उदासीनता की मूर्ति, तपस्विनी, शांत-कांत रूप की स्वामिनी, प्रौढ़ बुद्धि वाली, पति-परायणा, तेजस्विनी, आदर्शमाता के रूप में प्रस्तुत किया है। उनका हृदय भक्ति-भावना से ओत-प्रोत है। वह हास-परिहासप्रिय भी हैं। प्रथम सर्ग के वृद्धा प्रसंग से यह तथ्य स्वयं-सिद्ध है। वह गाँधी के समान ही आत्मशुद्धि के लिए उपवास रखती हैं। वह स्वयं स्पष्टवादिनी है और उन्हें यह गुण प्रिय भी है। इसीलिए प्रथम सर्ग में महोबा-निवासी युवक की स्पष्टोक्ति से क्रुद्ध न होकर, वह उसका सम्मान करती हैं। इसी सर्ग में उनका स्वाभिमान और वात्सल्य-भाव भी व्यक्त है।

चौथे सर्ग में उनका वात्सल्य-भाव तो प्रकट ही है, किन्तु साथ ही इस सर्ग से उनकी कूटनीतिज्ञता, हास-परिहास प्रियता तथा राजमाता के योग्य दर्प के भी दर्शन होते हैं।

मुआविया (काबा और कर्बला)

मुसलमानों के तीसरे ख़लीफ़ा उसमान के बाद सब मुसलमानों ने अली को ख़लीफ़ा बनाया। पर सीरिया के गवर्नर अमीर मुआविया ने उन्हें ख़लीफ़ा मानने से साफ इन्कार कर दिया और अपने प्रान्त सीरिया में खुद अपनी खिलाफ़त का ऐलान कर दिया। अमीर मुआविया में एक सफल शासक के सभी गुण विद्यमान थे। उन्होंने इस्लामी राज्य का काम बड़ी शान से चलाया, लेकिन उनसे एक भूल ऐसी हुई जिसके कारण उनकी सब अच्छाइयों पर पानी फिर गया।

अमीर मुआविया ने देखा कि अब हर कोई ख़लीफ़ा बनने की ताक में रहता है। इस कारण उन्होंने मुसलमानों को लड़ाई-झगड़े से बचाने के लिए, अपने बेटे यज़ीद को अपना युवराज बना दिया और उसे ख़लीफ़ा मानने के लिए सबको मजबूर किया। जो लोग उनके असर में थे वे तो इस बात को मान गये, पर मक्का के ख़ास-ख़ास लोगों ने इन्कार कर दिया और कहा "हमारा ख़लीफ़ा ऐसा आदमी नहीं हो सकता जिसे हमने स्वयं न चुना हो।" फिर भी अमीर मुआविया ने यज़ीद को युवराज बनाए रखा।

मुसलिम (काबा और कर्बला)

मुसलिम (मुसलिम बिन-अक़ील) हुसैन का भाई है। कूफा निवासियों के बार-बार यह कहलाने पर कि हुसैन वहाँ आकर वहां का शासन अपने हाथों में ले लें, हुसैन इस धर्म-संकट में पड़ जाते हैं 'कुशल कहीं भी नहीं, न जाकर अथवा जाकर।' इस विषम अवसर पर मुसलिम आगे बढ़ कर यह प्रस्ताव प्रस्तुत करता है—

क्यों न पहले मैं जाऊँ ?
पाऊँ यदि संतोष वहां तो तुम्हें बुलाऊँ।

मुसलिम वहां जाकर हुसैन को यह पत्र लिख भेजता है कि वे चले आएँ। किन्तु, शीघ्र ही उसे वस्तुस्थिति की गम्भीर विषमता का बोध हो जाता है। मदीना को निरापद न पाकर और वहां पुरुष-पतन का अतर्कित नया दृश्य देख कर सदय हृदय मुसलिम का माथा ठनक जाता है और वह विकल हो जाता है—

क्या उपाय अब हाय हुसैन न आवें जिससे ?
आशा रक्खूं यहाँ कौनसी क्यों कर किससे ?
मैं मर जाऊँ भले, बचाऊँ उनको कैसे ?
गया हाथ से निकल पत्र वह पत्री जैसे।

धर्म को धन का क्रीत हुआ पाकर मुसलिम धन के हाथों अपने को बेच डालने वालों को धिक्कारता है—

अरे, तुम्हीं हो वही, जिन्होंने हमें बुलाया ?
तुच्छ लोभ में लोक और परलोक भुलाया !
कहो तुम्हीं क्या वही लोकनायक निर्मोही,
कल तक थे इस दस्युराज के जो विद्रोही ?
पड़ी चाँद पर आज एक चांदी की जूती,
और बजाने लगे इसी तस्कर की तूती !

यह निर्भीक और स्वधर्म-मानी असंख्य सैनिकों से घिर कर भी अधीर नहीं होता।

चक चौंधाकर खड्ग खींच कौंधा-सा खेला,
पर सौ-सौ थे शत्रु और वह एक अकेला।

मुसलिम की वीरगति की सूचना पाकर हुसैन व्यथा तथा परिताप में डूब जाते हैं। मुसलिम के पुत्र के यह कहने पर—

यही पुत्र की रीति, पिता की नीति निभाना।

हुसैन अधीर हो उठते हैं—

हाँ बेटा, कह चुका, तुझे रोकूं मैं कैसे ?
पर जाने दूंगा न, गया ठग मुसलिम जैसे।
वंचित मत कर मुझे आप उसकी थाती से।

और हुसैन अपनी ममता-भरी बांहें फैलाकर अपनी इस थाती को छाती से लगा लेते हैं। यह देख कर शत्रु-पक्ष का सेनापति हुर भी कह उठता है—

हहह ! धन्य यह अदय सदयता,
मैंने देखी नहीं कहीं ऐसी सहृदयता !

यज़ीद (काबा और कर्बला)

अमीर मुआविया के बाद उसका बेटा यज़ीद उनकी जगह खलीफ़ा हुआ। यज़ीद खिलाफ़त के बिल्कुल अयोग्य था—

उसे बनाकर क्या न खुदा भी पछताया था,
खुद शैतान यज़ीद नाम रखकर आया था।

यज़ीद अपनी खिलाफ़त को मनवाने के लिए सख़्ती से काम लेने लगा। उसने मदीना के गवर्नर वलीद के नाम हुक्म भेजा कि अली के बेटे हुसैन और दूसरे लोगों को इस बात के लिए बाध्य किया जाए कि वे उसे खलीफ़ा मानें। उसने धन के बल पर लोगों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। उसके अधिकारियों ने जन-दमन-दंड की मारामारी ही मचा दी थी और इस प्रकार उसके शासन में—

बना राजविद्रोह प्रजा का धर्म-विषय भी,
और प्रजा-भय पाप राज्य-कृत निश्चित नय भी !

हुसैन के शब्दों में—

राजा फिर भी वह यज़ीद-सा राजा, आहा !
किसने ऐसा धर्म-कर्म है यहाँ निबाहा ?
यह राजा तो अरे, कहो फिर कौन लुटेरा ?

इसीलिए बहुत से लोग तन से उसके दास होने पर भी मन से उससे विरक्त ही बने रहते हैं। स्वयं यज़ीद-तनय भी मन से हुसैन का भक्त बना रहता है।

ययाति

ययाति महाराज नहुष के दूसरे पुत्र थे। इनकी दो पत्नियाँ देवयानी और शर्मिष्ठा थीं। देवयानी से यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्य, अनु तथा पुरु नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। देवयानी के कारण शुक्राचार्य ने इन्हें जरा-ग्रस्त होने का शाप दिया था और जरा-मुक्ति की शर्त यह थी कि अगर कोई युवा इनका बुढ़ापा स्वीकार कर ले तो वह युवावस्था प्राप्त कर सकेंगे। इस पर ययाति ने अपने पुत्रों से युवावस्था की याचना की। उनकी याचना को यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु तथा अनु ने अस्वीकार कर दिया किंतु पुरु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। इसीलिए ययाति ने पुरु को युवराज-पद पर आसीन किया। पुरु से पौरव हुए जो कौरवों और पाण्डवों के पूर्वज थे।

जयभारत में 'यदु और पुरु' शीर्षक की कथा का सम्बन्ध ययाति तथा यादव और पौरव कुल के जन्म से है। गुप्तजी ने इस प्रसंग में ययाति के चरित्र को रूपायित किया है। गुप्तजी के ययाति पुण्यभूमि भारतवर्ष के सपूत हैं—

पुण्य भूमि कहो, हमारी भूमि का जो नाम

वह नारी-उद्धारक, क्षमाप्रार्थी, विनीत, प्रजापालक और नीतिमन्त तो हैं ही, साथ ही अधीर भी हैं, इसीलिए वार्धक्य के क्लेश से कातर हो उठते हैं। जयभारत काव्य में इनके चरित्र का चित्रण महाभारत के समान ही हुआ है।

यशोदा

यशोदा श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के मित्र और गोपराज नन्द की पत्नी थीं। श्रीकृष्ण का लालन-पालन इन्होंने ही किया था। इसी कारण इन्हें सामान्यत: श्रीकृष्ण की माता ही माना जाता है। 'द्वापर' काव्य के आधार पर यशोदा के चरित्र की निम्न विशेषताएं हैं—

(१) वे वात्सल्य-भाव के साथ-साथ पति को भी पूर्ण महत्त्व देती हैं।

(२) उनके चरित्र में जगत्-कल्याण का भाव प्रमुख है।

(३) यशोदा का मातृ-हृदय पूतना-वध तथा कालिय-दमन प्रसंग में अनिष्ट की आशंका से सिहर उठता है।

(४) एक ओर वह कृष्ण को अवतारी मानती हैं और दूसरी ओर अपने को कृष्ण की जाया भी मानती हैं। इस तरह यशोदा का व्यक्तित्व वात्सल्य और भक्ति दोनों से ओत-प्रोत है।

यशोधरा

यशोधरा देवदह के महाराज दंडपाणि की पुत्री थी। परिणय के लिए आयोजित महोत्सव में कपिलवस्तु के राजकुमार गौतम यशोधरा को ही सभी सुन्दरी बालाओं में सर्वश्रेष्ठ मान कर उसका वरण कर लेते हैं। सभी उसके रूप की सराहना करते हैं, सभी उसके सौभाग्य का बखान करते हैं।

यशोधरा का यह सुख-संसार चिरस्थायी नहीं रह पाता। अपने युवा नेत्रों से जरावस्था को देखते ही गौतम के हृदय में यह प्रश्न उठ खड़ा होता है—

हाय मिलेगा मिट्टी में वह वर्ण-सुवर्ण खरा ?

वह विश्व में प्राप्त विपुल वित्त का स्वेच्छया परित्याग कर वीतराग हो जाते हैं और यहीं से यशोधरा के अबला-जीवन की वह कहानी आरंभ होती है, जिसमें 'आँचल में है दूध और आँखों में पानी।'

दूध और पानी—पुत्र तथा पति—यशोधरा के जीवन के यही दो आधार तत्व हैं। वह अपनी आँखों का पानी छिपा कर उस छोटे से छौने में लीन रहना चाहती है जो कितना उज्ज्वल, कैसा कोमल, क्या ही मधुर सलोना है : 'मेरा शिशु संसार वह, दूध पिये, परिपुष्ट हो।'

अपने पति पर यशोधरा को समुचित गर्व है। गौतम उस अबला के विश्रुत वीर-बली हैं—'किस योद्धा ने बढ़ कर उनका शौर्य-सिन्धु अवगाहा ?' उसके समक्ष एक ही प्रश्न—एक ही कर्तव्यकर्म है : 'क्योंकर सिद्ध करूं अपने को मैं उस नर की नारी ?' परीक्षा की वेला उपस्थित होते ही वह कुसुमादपि सुकुमारी वज्रादपि कठोर हो जाती है क्योंकि उसने समझ लिया है कि 'इस दिन के उपयुक्त पात्र की उन्हें खोज थी सारी।'

फिर गौतम ने उसे परीक्षा में सफल सिद्ध होकर एक कीर्तिमान स्थापित क्यों नहीं करने दिया ? उसके भाग्य में यह लज्जा और यह क्षोभ क्यों लिख दिया कि सिद्धि पाकर जब उनके यहाँ लौटने पर "ले न सकेगी तुम्हें वही बढ़ तुम सब कुछ जिसके हो !" क्योंकि उन्होंने उसे यह अवसर दिया ही नहीं कि वह सिद्धि-हेतु जाते समय उन्हें गाकर विदा करती और गौरव पाकर यह भार झेलती। वह उन्हें सजा कर पहुंचाना चाहती थी, किन्तु गौतम उसे लजाकर चले गये—'चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।'

गौतम सिद्धि-हेतु चले गये। यशोधरा की यही कामना है 'व्यर्थ न दिव्य देह वह तप-वर्षा-हिम-वात सहे।' इतना ही नहीं,

जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से,
दु:खी न हों इस जन के दु:ख से।

स्वयं उसने तो अपने इस असह्य दुख को भी अपने लिए मूल्य-मान ही मान लिया है—

होता सुख का क्या मूल्य, जो न दुःख रहता ?
प्रिय हृदय सदय हो तपस्ताप क्यों सहता ?
मेरे नयनों से नीर न यदि यह बहता,
तो शुष्क प्रेम की बात कौन फिर कहता ?
रह दुःख प्रेम, परमार्थ, दया मैं लाऊँ,
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ ?

स्वधर्मधारिणी यथोधरा मुक्ति-लाभ करने की अपेक्षा 'संसार हेतु शतवार सहर्ष मरना' अधिक श्रेयस्कर मानती है।

यशोधरा के स्वामी सिद्धि प्राप्त करके लौटते हैं। उसके वाम अंग फड़क उठते हैं। अंतरंग किसी शुभ घटना की रटना लगाने लगता है। प्रकृति प्रसन्न हो उठती है। रोम-रोम में अमृत की-सी तरंग लहराने लगती है। उसके प्रियतम श्रुतिपथ से उस तक पहुंच जाते हैं। आज उसकी सबसे विषम समस्या यह है "प्रिय, क्या भेंट धरूंगी मैं, यह नश्वर तनु लेकर कैसे स्वागतसिद्धि करूँगी मैं ?"

तत्रभवान् बुद्ध स्वयं यशोधरा के पास पधारते हैं। भिक्षुक-रूप में पधारे प्रभु को राहुल के रूप में अपना सब कुछ सौंप कर यशोधरा सब कुछ पा लेती है।

युधिष्ठिर

युधिष्ठिर महाराज पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र थे। वह धर्मराज के साथ नियोग से कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनका नामकरण-संस्कार शतश्रृंग निवासी ऋषियों ने और उपनयन संस्कार महर्षि कश्यप ने किया था। राजर्षि शुक ने तोमर चलाने तथा द्रोणाचार्य ने इन्हें अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दी थी।

वह आरम्भ से ही उदार तथा भ्रात-वत्सल थे। बचपन में इन्होंने दुर्योधन के जलविहार प्रस्ताव को स्वीकार कर जलविहार किया था जिसमें दुर्योधन ने षड्यंत्र कर भीम को जल में डुबा दिया था। भीम के खो जाने पर युधिष्ठिर अत्यधिक चिंतित हो गये थे। धृतराष्ट्र ने इन्हें युवराज-पद पर अभिषिक्त किया था। इनकी प्रतिष्ठा से जलकर दुर्योधन ने धृतराष्ट्र के परामर्श से वारणावत में पांडवों के लिए एक लाक्षागृह का निर्माण कराया था। विदुर के संकेत के कारण पाँचों पाण्डवों एवं कुन्ती की लाक्षागृह से रक्षा हो सकी थी। लाक्षागृह में जलने से बचकर इन्होंने वन की शरण ली। उनकी आज्ञा से ही भीमसेन ने वन में हिडिम्बा राक्षसी से विवाह किया था। वन में ही वेदव्यास जी के परामर्श से वे एकचक्रा नगरी में आकर एक ब्राह्मण परिवार के अतिथि बने। इन्होंने ही भीम को वकासुर-वध की प्रेरणा दी थी।

इन्होंने महर्षि धौम्य को अपना पुरोहित बनाया था। माता की आज्ञा का पालन करते हुए स्वयंवर में अर्जुन को प्राप्त द्रौपदी को पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनने की सहमति भी युधिष्ठिर ने दी थी। धृतराष्ट्र से आधा-आधा राज्य प्राप्त कर इन्होंने खाण्डव वन में अपनी राजधानी का निर्माण कराया था तथा सुभद्राहरण के लिए भी अर्जुन को अनुमति दी थी। द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न इनके पुत्र का नाम प्रतिविन्ध्य था। द्रौपदी के अतिरिक्त इन्होंने शिवि राजकुमारी देविका से विवाह किया था। देविका के गर्भ से यौधेय का जन्म हुआ था। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के परामर्श से राजसूय यज्ञ किया था। श्रीकृष्ण के सम्मान में एक बार युधिष्ठिर ने उनके रथ के घोड़ों की बागडोर सम्हाली थी तथा दूसरी बार अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर कुछ समय के लिए उन्होंने कृष्ण के सारथि का कार्य किया था।

राजसूय-यज्ञ में समुद्र ने युधिष्ठिर को मधु तथा तेरह वर्ष के वनवास के समय सूर्य ने उन्हें अक्षय पात्र भी दिया था। युधिष्ठिर ने दो बार दुर्योधन और शकुनि के साथ जुआ खेला था। पहली बार में सब कुछ यहाँ तक कि अपने भाइयों और द्रौपदी को जुए में हारने के बाद, द्रौपदी-विलाप से द्रवित हुए धृतराष्ट्र ने इन्हें सारा धन लौटा दिया था, किन्तु पुनः जुए में हारने के बाद इन्हें बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवास स्वीकार करना पड़ा था। अज्ञातवास के समय युधिष्ठिर विराट नगर में कंक नाम से राज-सखा बनकर रहे थे।

अज्ञातवास की समाप्ति पर इन्होंने श्रीकृष्ण के माध्यम से राजा धृतराष्ट्र के पास पाँच गाँव की माँग का संदेश भेजा था। उसके अस्वीकार हो जाने पर उन्होंने युद्ध के लिए अपनी सहमति दे दी। युद्ध प्रारम्भ होने की स्थिति में युधिष्ठिर ने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य आदि से युद्ध के लिए आज्ञा माँगी थी। भीष्म से उन्होंने उनके वध का उपाय भी पूछा था। द्रोणाचार्य द्वारा चक्रव्यूह का निर्माण किये जाने पर युधिष्ठिर ने अभिमन्यु को व्यूह-भेदन के लिए आज्ञा दी

थी। अभिमन्यु-वध के बाद इन्होंने अर्जुन से अभिमन्यु-वध का वृत्तांत कहा था। द्रोणाचार्य के वध के लिए इन्होंने छल-पूर्वक अश्वत्थामा के मरने की बात कही थी। दुर्योधन, द्रौपदी पुत्रों आदि के मरने पर वह अत्यंत शोकाकुल हो गए थे। महाभारत की समाप्ति के बाद वह शोक-संतप्त होकर वानप्रस्थ, संन्यास अथवा शरीर-त्याग के लिए तत्पर हो गये थे किन्तु व्यास जी और श्रीकृष्ण के समझाने पर इन्होंने राज्य ग्रहण कर अश्वमेध यज्ञ किया था।

भीष्म-धृतराष्ट्र, गांधारी, कुन्ती, वसुदेव, कृष्ण, बलराम आदि को जलाञ्जलि भी युधिष्ठिर ने ही दी थी। इन्होंने उत्तरा के पुत्र परीक्षित का राज्याभिषेक कर युयुत्स को उनका संरक्षक और कृपाचार्य को उनका आचार्य बनाया था। इसके पश्चात द्रौपदी तथा चारों भाइयों सहित इन्होंने महायात्रा के लिए प्रस्थान किया था। मार्ग में द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने देह-त्याग की। अन्त में युधिष्ठिर भी सदेह स्वर्ग चले गए।

महाभारत के युधिष्ठिर धैर्य के मूर्तिमान स्वरूप थे। वह शील, सदाचार, विवेक, धैर्य, स्थिरता, सहिष्णुता, नम्रता, दयालुता आदि लोकोत्तर गुणों से संपन्न थे। गुप्तजी ने जय-भारत, जयद्रथ-वध, सैरन्ध्री, वक-संहार, वन वैभव आदि काव्यों में युधिष्ठिर का चरित्र सामान्यतः महाभारत के अनुरूप ही चित्रित किया है। द्रौपदी के संदर्भ में दो ज्येष्ठ और दो देवर के रूप में समस्या का समाधान उनके स्वतंत्र चिंतन और व्यक्तित्व का परिचायक है। 'द्यूत' प्रकरण में उनकी अनिच्छा तो द्रष्टव्य है ही, किन्तु द्रौपदी के अपमान पर उनका विनयी और आज्ञाकारी बना रहना उनके चरित्र की दृढ़ता की पुष्टि करता है। उनकी दयालुता और क्षमा-शीलता जयभारत के तीन-चार प्रसंगों में विशेष रूप से उभरी है—'वन-वैभव' में चित्ररथ द्वारा दुर्योधन आदि को बंदी बना लेने के प्रसंग में वह भीम से कहते हैं "हमारे फिर भी भाई हैं"। 'जयद्रथ-द्रौपदी' प्रसंग में जयद्रथ से दासत्व ग्रहण न कराते हुए कहते हैं—"नहीं किसी को दास बनाते हैं हम"। एकलव्य प्रसंग में आत्मा को परमात्मा का अंश रूप मानना और राजसूय यज्ञ के प्रसंग में आर्य और अनार्य सभी को अतिथि कहना आदि से उनके चरित्र की दयालुता और क्षमाशीलता ही प्रकट होती है। जयभारत में आदि से अन्त तक उनके सिद्धांतों और व्यवहार में किसी तरह का अन्तर दिखलाई नहीं पड़ता। वे शिष्टाचारी, सात्विक, निस्पृह और अनासक्त हैं।

राजसूय में वे सबको विनीत लगते हैं। वे मृततुल्य दुर्योधन के लिए पश्चात्ताप करते हैं। उसे अंक में भरकर उससे क्षमा की बात करते हैं। उनमें वीरत्व भाव भी है। शल्य प्रसंग में बिना घबराये उन्होंने शल्य-वध भी किया है, किन्तु इस प्रसंग में भी उनकी अनासक्ति और अहिंसा भाव ही प्रकट होता है। उनके चरित्र का सर्वाधिक उज्ज्वल प्रसंग 'स्वर्गा-रोहण' सर्ग में उपस्थित होता है। इस प्रसंग में वह महाभारत के समान मूक द्रष्टा या उपदेष्टा मात्र नहीं हैं। वह अपने भाइयों के देहत्याग के लिए न तो उनके दोषों की विवेचना करते हैं और न उन्हें धरती से ही मोह है। उनकी अन्तिम कामना है—

संसार मुझे अब आज्ञा दे, आवेंगे नये अतिथि तेरे
उनके स्वागत के अर्थ सदा सद्भाव रहेंगे ही मेरे
हम नहीं कर सके जो साधन, वह सिद्ध करे अगली पीढ़ी।

रत्नावली

अपने ही हाथों प्रेम-पगे पति को खो बैठने वाली रत्नावली अपवाद तथा विषाद का जीवन बिता रही है। यह यथार्थ है कि उसकी रसना-फणिनी ने अपने ही जीवन-नाथ को अनादर-विष से डँस लिया था। किन्तु संभवतः इतना ही महत्त्वपूर्ण यथार्थ यह भी है कि उस समय उसे 'स्वार्थ का कुछ भी बोध नहीं रहा।' यह सत्य है कि जो स्त्रियाँ रत्नावली के पति के अति अनुराग के कारण उससे ईर्ष्या किया करती थीं वे ही आज उसे दोष देने लगी हैं। परन्तु उस दुःखद घटना के रूप में जो कुछ घटा वह शायद अवश्यंभावी ही था। क्योंकि—

रख सकती थी किन्तु कहाँ तक
पकड़ हाय ! उस हाथ को।
करना कोई महत् कार्य था
उसे एक दिन अन्त में,
फैले जिससे पुण्य और यश
उनका देश-दिगंत में।

इसीलिए अपने वर-वित्त से अचानक वंचित हो जाने वाली रत्नावली आज निज विचलित चित्त से अविचल उसी कार्य का पथ जोह रही है। उसे विश्वास है कि यह लघु बात छोड़

ाने वाले उसके प्रिय पति 'विश्वकुटुम्बी होंगे करके आत्म-ाकास।' रत्नावली जानती तथा मानती है कि उसके पति उससे आँख मूँद कर प्यार किया था। इसीलिए आज वह ो अपने उसी करधारी की याद में विकल है। वह निश्चय हीं कर पाती है कि अपना आक्रोश किस पर व्यक्त करे। ह आज इतना ही चाहती है—

बस एक बार आ जाओ,
देकर क्षमा और नव दर्शन स्वस्थ विसर्जन पाओ।

ल तक पति के प्यार में पलने वाली रत्नावली आज कंकरी ी नहीं रह गयी है। उसने स्वयं अपना जीवन-कोष रीता र दिया है। इस संबंध में वास्तविकता यह है—

भूल यदि मुझसे हुई तो एक ही,
क्षुब्ध हो, वह था अलुब्ध विवेक ही।

अत: यह जान कर रत्नावली को हर्ष तथा संतोष ही होता है—

सन्त पद पाकर स्वामी,
हुए राम के ही अनुगामी।
कुछ अपूर्व निर्माण-निरत हैं पाकर गिरा-प्रसाद।

रत्नावली इसे अपने जीवन की महत्तम उपलब्धि मानती है। अब उसे उस काँव-काँव की भी कोई चिन्ता नहीं है जो उसके विषय में निरंतर की जाती रही है।

किया करे इस मांस-पिंड पर अब कोई भी काँव-काँव,
रत्नावलि तो जीत गई है निज सब कुछ का एक दाँव।

स्वार्थ भले ही रोया झींका,
मैंने अपना नहीं, उन्हीं का—
देखा शुभ भविष्य, देखेगा इसको घर-घर गाँव-गाँव।

और उसी 'शुभ भविष्य' ने 'मानस' की वह रस-धारा प्रवाहित कर दी जिसने सबको निर्मल कर दिया।

रानक दे

सिद्धराज काव्य का दूसरा मुख्य नारी-चरित्र रानक दे है। यह भी एक ऐतिहासिक पात्र है। इसके पिता का नाम सिन्धुराज कहा जाता है। ग्रह-दोष के कारण इसके जननी और जनक ने इसे त्याग दिया था और इसका पालन-पोषण जूनागढ़ में निवास करने वाले कुम्हार-दम्पति ने किया था। सिद्धराज इसके रूप-लावण्य पर मुग्ध था। वह भी उसकी ओर आसक्त थी, किन्तु इसका विवाह जूनागढ़ के युवराज खंगार से हो गया। इसके दो पुत्र भी थे। राजा जयसिंह ने जूनागढ़ पर चढ़ाई कर खंगार और रानक दे के दोनों पुत्रों का वध कर दिया था। सिद्धराज जयसिंह रानक दे को अपनी रानी बनाना चाहता था इसलिए वह जूनागढ़ को जीतने के बाद रानक दे को बलपूर्वक बढ़वान नामक स्थान पर ले गया। वह उससे बलात्कार करना चाहता था किन्तु उसके मंत्री काकभट्ट ने इस कृत्य को अनुचित बताकर जयसिंह का विरोध किया। अन्त में रानक दे अपने पति के साथ सती हो गई। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार रानक दे ने जयसिंह का अपमान किया था। इसलिए वह प्रतिशोध लेने के लिए रानक दे को वलपूर्वक बढ़वान ले गया था। सिद्धराज काव्य में आरम्भ में तो रानक दे को जयसिंह के प्रति आसक्त दिखलाया गया है, पर बाद में उसे पातिव्रत्य धर्म पर दृढ़ दिखलाया गया है। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के 'राजाधिराज' उपन्यास में रानक दे के सतीत्व की रक्षा काकभट्ट के द्वारा दिखलाई गई है किन्तु 'सिद्धराज' काव्य में यह कार्य जयसिंह के अंगरक्षक जगद्देव ने किया है।

गुप्तजी ने रानक दे को राजकुल-संभवा, देवी रूपिणी, रूपभाजना, करुणामयी, गम्भीर, पारिवारिक कार्यों में रुचि लेने वाली, स्नेहमयी, कवित्त एवं संगीत में रुचि रखने वाली चित्रित किया है। रानक दे और खंगार के प्रसंग में उसे सुरुचिसम्पन्न, विदुषी, तर्कशीला, स्वाभिमानी और आदर्श प्रेमिका के रूप में चित्रित किया गया है। सिद्धराज द्वारा बलपूर्वक हरण तथा प्रेम-प्रस्ताव पर रानक दे के सतीत्व का तेज देखते ही बनता है—

चुप, चुप, कामी, चुप। नाम न लो प्रेम का,
अबला रहूँ मैं किन्तु धर्म बलवंत है।
तुम हो कृपाण-पंथी, प्रणय-पन्थी नहीं,
प्रेम तो पराजय भी भोगता है जय सी,
सच्चा योग इसका वियोग में ही होता है।
मर के जिलाता वह, जीता नहीं मार के।

इसी संदर्भ में वह जयसिंह को शाप भी दे देती है—

तो क्या तुम चाहते हो, प्रभु से मनाऊँ मैं—
यौवन बिगाड़ने तुम्हारी किसी रानी का
आवे नहीं कोई शिशु पुत्र कभी कोख में ?

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुप्तजी ने इस काव्य में रानक दे के रूप-सौंदर्य तथा आन्तरिक सौंदर्य को अत्यन्त कुशलता के साथ चित्रित किया है।

कांचन दे

सिद्धराज काव्य के प्रमुख नारी-पात्रों में सिद्धराज जयसिंह की कन्या कांचन दे का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। कांचन दे एक ऐतिहासिक पात्र है। इसका विवाह अजमेर राज्य के राजा अर्णोराज से हुआ था।

कवि ने कांचन दे को कांचन की पुतली, सफल परिचारिका, करुणा तथा ममता की मूर्ति और दुर्ग की अधिष्ठात्री के रूप में चित्रित किया है। काकभट्ट के शब्दों में—

यह लड़की हमारे राजगृह में
लेकर दरिद्र का-सा आर्द्र उर आई है

वह स्वयं अर्णोराज की ओर उन्मुख होती है और उससे प्रेम करने लगती है।

'सिद्धराज' काव्य में कांचन दे रूपवती, स्वाभिमानिनी, विदुषी, जिज्ञासु और आदर्श प्रेमिका के रूप में रूपायित है।

राम (लीला, पंचवटी, साकेत, प्रदक्षिणा)

श्री मैथिलीशरण गुप्त के राम ईश्वर हैं (यदि राम ईश्वर नहीं हैं, मानव हैं तो गुप्तजी अपने को 'निरीश्वर' मानते हैं)। करुणावरुणालय विभुवर के अवतार राम 'लीला' में बाललीला करते दृष्टिगोचर होते हैं। बाल्यकाल में भी उनकी दृष्टि वहाँ तक जा पहुँचती है, जहाँ तक उनके अन्य बालसखा नहीं देख पाते। विश्वामित्र से यह विदित होते ही कि राक्षस भरतखंड में घुस आये हैं और यहाँ विघ्नघन बनकर छा रहे हैं, राम इसके परिणाम का अनायास ही पूर्वानुमान लगा लेते हैं : "करनी है क्या धूल उन्हें सोने की लंका ?" और लोकरक्षक राम अविलम्ब अपना कर्तव्य-पथ निर्धारित कर लेते हैं :

पुण्यभूमि पर पाप कभी हम सह न सकेंगे,
पीड़क पापी यहाँ और अब रह न सकेंगे।

राम के इस रूप का पूर्ण विकास 'साकेत' में होता है, जहाँ श्रीमद्‌रामचंद्र यह घोषणा करते हैं—

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन-सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया···
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया···

श्रीराम में वीरता, विनय तथा विवेक का अद्‌भुत संगम है। राक्षसी ताड़का को शत्रु-रूप में सामने उपस्थित पाकर, उसे मार डालने में सहज समर्थ होने पर भी राम इस धर्मसंकट में पड़ जाते हैं कि क्या नारी पर शस्त्रप्रहार उचित है ? शिव-धनु-भंग करके अपने बल-पराक्रम का अद्वितीय साक्ष्य उपस्थित कर देने के बाद भी वह पूर्ण विनत भाव से इतना ही कहते हैं—

जो आज्ञा, आज्ञा की आप
चढ़ा चुकी मानो वह चाप
अब ये मेरे दोनों हाथ
हैं निमित्त से ही मुनिनाथ !

कुंभकर्ण को धराशायी करने के उपरांत—

छोड़ धनु:शर बोले प्रभु भी
कर युग कर रावण की ओर—
"आ भाई, वह वैर भूलकर,
हम दोनों समदु:खी मित्र,
आ जा क्षण भर भेंट परस्पर,
कर लें अपने नेत्र पवित्र।"

किंतु इसके पहले ही निशाचरराज के मूर्च्छित हो जाने पर राम यह कहते हुए गिर पड़ते हैं "राम से रावण ही सहृदय है आज।"

राम के भ्रातृप्रेम के अनेक मनोरम चित्र हमें 'पंचवटी' और 'साकेत' में प्राप्त हैं। वैसे तो सभी भाइयों के प्रति श्रीराम के हृदय में अपरिमित प्रेम है, किंतु लक्ष्मण को तो राम ने अपने 'बड़े क्रोड़ में विधु-सा छिपा लिया सब ओर समेट।' लक्ष्मण का प्रेमाभार राम मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं :

कोई सह न सकेगा, जितना, तुमने मेरे लिए सहा।

राम भाई भरत को अपने से अभिन्न मानते हैं। इसीलिए वह प्रजाजन को आश्वासन देते हुए कहते हैं—

जैसा है विश्वास मुझे उनके प्रती—
प्रिय उससे भी अधिक न निकलें वे व्रती,
तो तुम मुझको दूर न पाओगे कभी,
देता हूँ मैं वचन, मार्ग दे दो अभी।

राम पूज्य पिता के सहज सत्य पर वारसुधाम-धरा-धन को वनवास स्वीकार कर लेते हैं और सभी माताओं के प्रति उनके हृदय में समान रूप से श्रद्धा और प्रेम है। स्वयं कैकेयी के प्रति कहा गया उनका यह कथन इसका प्रमाण है :

जननी ने मुझको जना, तुम्हींने पाला,
अपने साँचे में आप यत्न से ढाला।
सबके ऊपर आदेश तुम्हारा मैया,
मैं अनुचर, पूत, सपूत, प्यार का भैया!

राम के इन्हीं गुणों के कारण वनवास उनके लिए परिहासतुल्य हो जाता है। सीता का यथार्थ गार्हस्थ्य वन में ही जाग्रत होता है। वहाँ सीता जब पर्णकुटी के बिरछे सींचती हैं तो अटल अनुरागी राम उन्हें इस प्रकार निहारते हैं 'योगी के आगे अलख ज्योति ज्यों जागी।' प्रेमनिमग्न पति को भय है—

हो जाना लता न आप लता-संलग्ना,
करतल तक तो तुम हुई नवल-दल-मग्ना!

और सीता-हरण के पश्चात् सीता को सचमुच कुटी में न पाकर वह चीत्कार कर उठते हैं :

प्रिये, प्रिये, उत्तर दो, मैं ही,
करता नहीं पुकार अभंग,
शून्य कुंज-गिरि-गुहा-गर्त्त भी
तुम्हें पुकार रहे हैं संग।

राम का यह करुण-क्रंदन सुनकर मन में यह प्रश्न उठना अस्वाभाविक नहीं है 'किसलिए यह खेल प्रभु ने है किया?' साकेतकार के शब्दों में इस प्रश्न का उत्तर है—

भक्तवत्सलता इसी का नाम है,
और वह लोकेश लीलाधाम है।

रावण (साकेत, प्रदक्षिणा)

रावण वह विश्रुत बली-छली है, जिसकी लंका सोने की है—भौतिक विभूतियों की निधि-सी है और यंत्रों-मंत्रों-तंत्रों की त्रिकूटिनी माया-सी है। वह सर्वप्रथम छली मायावी के रूप में ही सामने आता है। लक्ष्मण के हाथों नासाकर्ण कटाकर शूर्पणखा लंका में पहुँचकर रावण के सामने अपना रोना रोती है और उसकी बातें सुनकर मानी रावण तत्काल क्षुब्ध हो जाता है। वह दुष्ट वैर-शुद्धि के बहाने सीता को हर लाने का निश्चय करता है। इसके लिए वह सर्वप्रथम निशाचर मारीच के साथ कपट-मंत्रणा करता है और फिर उसे साथ लेकर साधु-वेश में दंडक वन में जा पहुँचता है। मायावी मारीच हेम-हरिण बनकर सीता को आकृष्ट करता है और राम के बाण से आहत होकर 'हा लक्ष्मण, हा सीते' कहकर प्राण त्याग देता है। इस छली मारीच द्वारा किया गया यह आर्त्तनाद सुनकर सीता समझती हैं कि राम पर कोई विपत्ति आयी है। वह लक्ष्मण को राम की सहायता के लिए भेज देती हैं। रावण मनचाहा अवसर पाकर सीता को हरकर लंका ले जाता है। लंका पहुँचकर वह बार-बार सीता से यही अनुनय करता है, 'अब भी है भामिनि, बन इस लंका की रानी।' पतिव्रता सीता मौन-व्रत लेकर उस कापुरुष के प्रति विमुख हो जाती हैं।

लंका में हनुमान द्वारा उपद्रव-उत्पात किये जाने पर रावण क्रुद्ध होकर यह आदेश देता है, 'जीता हुआ जला दो इसको।' विभीषण द्वारा यह सुझाव दिये जाने पर कि रावण राम के साथ संधि कर ले, अभिमानी रावण उसे देशद्रोही कहकर लंका से निकाल देता है :

निकल यहाँ से, शत्रु-शरण जा, जिसके गुण पर लुब्ध हुआ।

धूर्त, अभिमानी और अनाचारी होते हुए भी रावण प्रबल पराक्रमी तथा सहृदय है। राम के हाथों कुंभकर्ण का वध कर दिये जाने पर रावण भ्रातृ-वियोग में मूर्च्छित हो जाता है और स्वयं राम को भी यह स्वीकार करना पड़ता है, 'राम से रावण ही सहृदय है आज!'

लंकापुरी की गली-गली में खलबली मच जाने पर भी रावण साहस और आत्मबल नहीं खोता। युद्धभूमि पर वह गर्जना करता है :

ठहर, ठहर तापस मैं आया,
जीकर तेरा शोकमात्र लक्ष्मण ने पाया।
पंचानन के गुहा द्वार पर रक्षा किसकी ?
मैं तो हूँ विख्यात दशानन, सुध कर इसकी।

राम रावण की शूरता की सराहना करते हैं और उसे समझाते हैं—

वीर, दूर कर कुटिल क्रूरता अब भी मन की।

किंतु निर्भीक रावण राम को ललकारकर यही कहता है—

भय लगता है मनुज तुझे, तो क्यों आया था ?

राम तथा रावण के बीच जो भयंकर युद्ध होता है, उसे देखकर स्वयं काल की गति भी निमिष-भर के लिए अवरुद्ध-सी हो जाती है। राम अरि के आयुध उन्हीं आयुधों द्वारा काट गिराते हैं और राम का परम पुण्य पापी रावण को परास्त कर देता है—

शुद्ध आग-सी वैदेही ने उसे सवंश जला डाला,
चली एक माया न यातु की रहा कौन रोने वाला !

राहुल (यशोधरा)

राहुल गौतम और यशोधरा का पुत्र है। राहुल के जन्म का उत्सव भी पूरा नहीं हो पाता कि गौतम सिद्धि-हेतु गृह-त्याग कर देते हैं। राहुल के लालन-पालन का भार वियोगिनी यशोधरा पर आ पड़ता है :

राहुल, मेरे ऋण-मोक्ष, माप !
लाऊँ मैं जब तक अमृत आप,
माँ ही तेरी माँ और बाप,
दुल, मातृ-हृदय के मृदुल दाम !

यशोधरा स्वयं रोती रहकर भी सुत को हँसाना चाहती है। वह उसे किलकता देखना चाहती है। उसके नन्हें-नन्हें दाँतों पर मोती वारती है। वह उसका अवलंब है, चंद-खिलौना है, अंचलधन है, व्यथाविनोदन है, गृहगुंजन है, आश्वासन है, अपलक दर्शन है।

राहुल अपनी बाललीलाओं से—अपनी तिली लिली ताथैया से—माँ को—अपनी दो थन वाली गैया को—रिझाता रहता है। वह कभी चंद-खिलौने की रट लगाता है और कभी 'नहीं पियूँगा, नहीं पियूँगा पय हो चाहे पानी !' कहकर माँ से रूठ-रूठ जाता है। मुग्धा माँ भाँति-भाँति के उपायों द्वारा उस नटखट को मनाती है।

बड़ा होने पर राहुल पिता के विषय में अनेक प्रश्न करने लगता है—"वह कहाँ गये हैं ? क्यों वहाँ गये हैं ? कब लौटेंगे ? वह उन्हें भुला तो नहीं देंगे ? वायु उनकी बात पिता तक क्यों नहीं ले जाता ? मानवों को पंख क्यों विधाता ने नहीं दिये ?" माँ पुत्र की शंकाओं का उचित समाधान करती रहती है। राहुल की चिर परिचर्या पाने के लिए राहुल-जननी अपना रानीपन भी छोड़ देने के लिए तत्पर है—

तेरी जननी कहलाऊँ तो इस परवश मन को बहलाऊँ,
उबटन कर नहलाऊँ तुझको, खिला-पिलाकर पट पहनाऊँ।
रीझ-खीझकर, रूठ-मनाकर पीड़ा को क्रीड़ा कर लाऊँ,
यह मुख देख-देख मैं भी सुख से दैव-दया-गुण गाऊँ।
स्नेह-दीप उनकी पूजा का तुझमें यहाँ अखंड जगाऊँ,
डीठ न लगे, डिठौना देकर, काजल लेकर तुझे लगाऊँ।

राहुल जानना चाहता है कि मुक्ति क्या है और वह कैसे प्राप्त होगी ? वह पिता के पास जाकर यह पूछ आना चाहता है कि मुक्ति बड़ी या मेरी माता ? और माँ जब राहुल को पिता का अनुगामी बना देती है तो राहुल यह कहकर उसी पथ का पथिक बन जाता है—

तात, पैतृक दाय दो, निज शील सिखलाओ मुझे,
प्रणत हूँ मैं इन पदों में, मार्ग दिखलाओ मुझे,
असत से सत में, तिमिर से ज्योति में लाओ मुझे,
मृत्यु से तुम अमृत में हे पूज्य, पहुँचाओ मुझे !

लक्ष्मण (लीला, पंचवटी, साकेत, प्रदक्षिणा)

'लीला' में लक्ष्मण का मुख्यतः बाल तथा किशोर रूप अंकित है। उनकी बाल-क्रीड़ाओं में मृगया को विशेष स्थान प्राप्त है क्योंकि इससे अंगस्फूर्ति तथा लक्ष्य-लघुता की प्राप्ति होती है। साहस और शौर्य उनके प्रकृत गुण हैं। अल्पवय में भी उनकी इच्छा है "सिंह से आज नियुद्ध मचाऊँ मैं।" विश्वामित्र के साथ तपोवन में जाकर शस्त्र-परीक्षा देने का सुअवसर पाते ही हर्ष से उनकी छाती दूनी हो जाती है और उनके मन में केवल यही सोच रहता है कि कहीं उन्हें सुकुमार समझकर वहाँ जाने से रोक न दिया जाए।

समय के साथ-साथ लक्ष्मण बड़े होते हैं और उनके सहज गुणों में भी विस्तार तथा निखार आ जाता है। महाराज जनक के राजोद्यान में लक्ष्मण के समक्ष एक अभूतपूर्व स्थिति उपस्थित होती है। वह जनकतनया उर्मिला को देखते हैं और मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। वाणी द्वारा तो वह इतना ही व्यक्त कर पाते हैं 'क्या छवि है।' किंतु विस्मय की यह अगाधता उनके हृदय में उठे अनुराग की अपारता की साक्षिणी है।

जनकपुर की धनुःशाला में तरुण लक्ष्मण का अकरुण पौरुष प्रदीप्त हो उठता है। जनक के यह कहने पर कि विश्व संभवतः वीर्य-विहीन हो गया है, लक्ष्मण उनकी बात बीच ही में काटकर सिंहनाद कर उठते हैं, लक्ष्मण का यह 'क्षात्रोत्कर्ष' जनक को हर्ष-पुलकित कर देता है। परशुराम के साथ हुई वार्ता में लक्ष्मण की वाणी में व्यंग्य का प्राचुर्य हो जाता है—

कहें आप ही, मैं हूँ मौन,
ब्राह्मण या क्षत्रिय, हैं कौन ?

लक्ष्मण का यह मौन कितना मुखर है !

'पंचवटी' के लक्ष्मण अग्रज-सेवा-व्रत-व्रती हैं। राजभोग्य के योग्य यह वीर यहाँ 'विपिन में बैठा आज विराग लिये।' सीता के शब्दों में—

हमारे ये देवर हैं ऐसे ही।
घर में ब्याही बहू छोड़कर यहाँ भाग आये हैं ये,
इस वय में क्या कहूँ, कहाँ का यह विराग लाये हैं ये!

और स्वयं लक्ष्मण के कथनानुसार—

माता-पिता और पत्नी की, धन की धाम-धरा की भी
मुझे न कुछ भी ममता व्यापी जीवन-परम्परा की भी।

शूर्पणखा इस विराग का तपभंग करना चाहती है किंतु लक्ष्मण उसके कुसुमायुधों के सामने अविचल तथा अविजित बने रहते हैं—

सावधान हो, मैं पर नर हूँ छोड़ भावना की यह भ्रांति।

और लक्ष्मण जिस 'नारी' के 'नर' हैं, वह है उर्मिला; 'साकेत' इसका साक्षी है।

'साकेत' के लक्ष्मण-उर्मिला क्रमशः 'शौर्य' तथा 'संपत्ति' हैं (शौर्य-सह-संपत्ति लक्ष्मण-उर्मिला)। 'संपत्ति' का सहज-संसर्ग 'शौर्य' को 'मन के मोद' में परिणत करता है और प्रेयसी द्वारा प्रेमपूर्वक कीर से यह प्रश्न किये जाने पर "रे सुभाषी बोल, चुप क्यों हो रहा ?" हास्यविनोद-भरे लक्ष्मण वहाँ अकस्मात् आ पहुँचते हैं और कहते हैं—"लो, बता दूँ मैं अभी।" इस संपत्ति के साहचर्य के फलस्वरूप भूमि के कोटर, गुहा, गिरि, गर्त, नभ की शून्यता और सलिल-आवर्त भी प्राणियों को स्वर्ग से जान पड़ने लगते हैं। लक्ष्मण के मतानुसार इसका मूल कारण यह है—

जन्मभूमि-ममत्व कृपया छोड़कर
चारु-चिंतामणि-कला से होड़ कर,
कल्पवल्ली-सी तुम्हीं चलती हुई,
बाँटती हो दिव्य-फल फलती हुई !

पत्नी के प्रति आदरमिश्रित अनुराग लक्ष्मण की अपनी विशेषता है। "किंतु मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ" "तुम रहो मेरी हृदय-देवी सदा।" 'मैं तुम्हारा हूँ प्रणय-सेवी सदा।' आदि उक्तियाँ इसी अंतर्भावना की बाह्याभिव्यक्तियाँ हैं।

पिता के वचन की रक्षा के लिए राम वन को जाते हैं। 'जहाँ प्रकाश वहाँ छाया' के नियमानुसार सीता उनके साथ हैं। किंतु लक्ष्मण भी तो भाई-भाभी के साथ जाते हैं। इसका आंतरिक कारण यह है :

वन में तनिक तपस्या करके बनने दो मुझको निज योग्य,
भाभी की भगिनी तुम मेरे अर्थ नहीं केवल उपभोग्य।

यही आदरमिश्रित अनुराग चित्रकूट में लक्ष्मण को दौड़कर प्रिया-पद-तल में गिर पड़ने के लिए बाध्य कर देता है। उर्मिला की ऊँचाई को समझ-परख कर मानो वह निरंतर

उस तक पहुँचने—उसे पाने—का प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रयत्न का विवरण उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है—

मिला उसी दिन किंतु तुम्हें मैं खोया-खोया,
जिस दिन आर्या बिना आर्य का मन था रोया।
पूर्णरूप से सुनो, तुम्हें मैंने कब पाया,
जब आर्या का हनूमान ने विरह सुनाया।

और, वनवास से लौटने पर जब उर्मिला 'वस्त्रालंकारमात्र' से मुक्त होकर अपना उछलता हृदय पति को निवेदित कर देती है, तो आराधक-अनुरागी कह उठता है—

आँखों में ही रहीं अभी तक तुम थीं मानो,
अन्तस्तल में आज अचल निज आसन जानो।

उधर, उर्मिला लक्ष्मण की जिस विशिष्टता पर मुग्ध है वह है उनका शौर्य। सीता-स्वयंवर के अवसर पर लक्ष्मण की सिंह-गर्जना उर्मिला के नेत्रों को पहली बार, किंतु फिर सदा के लिए, हत कर देती है और विभोर होकर उस समय उर्मिला द्वारा बटे गये परिधान-छोर की ऐंठ आजीवन उसकी महत्शक्ति बनी रहती है। लक्ष्मण का यही शौर्य कैकेयी की वरयाचना के प्रसंग में उन्हें कुछ 'अरुन्तुद वाक्य' तक कहने के लिए बाध्य कर देता है और इसी शौर्य का पूर्ण विकास उस समय देखने में आता है जब वह संजीवनी की सहायता से नवजीवन पाते ही पुनः शत्रु को ललकार उठते हैं—

हाय नाथ! विश्राम? शत्रु अब भी है जीता,
कारागृह में पड़ी हमारी देवी सीता···
यदि वैरी को मार न कुल-लक्ष्मी को लाऊँ,
तो मेरा यह शाप मुझे—मैं सुगति न पाऊँ!

भाई तथा भाभी की भक्ति को लक्ष्मण ने स्वधर्म के रूप में अंगीकार कर लिया था। कला, क्रीड़ा, कौतुक, मृगया, अभिनय, सभा-संलाप, निर्णय तथा नय में राम के साथ रहने वाले लक्ष्मण वन में भी उनके साथ रहते हैं और राम सगर्व यह स्वीकार करते हैं—

अनुज-मुझसे न तुम न्यारे कभी हो,
सुहृत्, सहचर, सचिव, सेवक सभी हो।

लालसिंह

बूंदी नरेश वरसिंह के छोटे भाई लालसिंह अधिक उद्धत और उग्र स्वभाव के थे। वह महाबली अवश्य थे पर उनमें विवेक, धैर्य, सहिष्णुता और उदारता आदि सद्गुणों की अपेक्षा स्पष्टवादिता, दर्प, अहंभाव, क्रोध, आवेश आदि दुर्बलताएँ अधिक थीं। उन्हीं के कटु वचनों, दूसरों को नीचा दिखाने और आत्मप्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण वह अनर्थ घटा जिसमें बूंदी और चित्तौड़ दोनों के राजवंशों को महान क्षति उठानी पड़ी। यदि वह चित्तौड़ के राजकवि बारूजी को कटु वचन कहकर अपमानित न करते, अपनी डींग न मारते, घर आये मेहमान का (वह भी अपनी पुत्री से विवाह करने आये सम्मानित वर पक्ष का) अपमान न करते तो यह कलह न होता। लालसिंह मध्ययुग के उन क्षत्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्होंने अपनी झूठी शान, अकड़ और दंभ के कारण अपना, अपने वंश, जाति तथा देश का अहित किया।

वरसिंह

बूंदी नरेश हामाजी के ज्येष्ठ पुत्र वरसिंह उनके स्वर्गवासी होने पर बूंदी के अधिपति बने। वे प्रजा का पालन करने वाले न्यायशील, दानी और विवेकसम्पन्न शासक तो थे ही, अच्छे गृहपति भी थे। छोटे भाई लालसिंह और उनकी पुत्री के प्रति उनका प्रगाढ़ स्नेह था। उन्होंने लालसिंह की पुत्री का विवाह सिसौदिया वंश के राजा खेतल से कराने का प्रयत्न किया। कलह होने और मार-काट मचने पर दोनों पक्षों को समझाने-बुझाने और वर को युद्ध से रोकने का प्रयत्न कर उन्होंने अपने विवेक, धैर्य तथा सहिष्णु स्वभाव का परिचय दिया। सती होने के लिए कृत-संकल्प बेटी को समझाते समय उनका जो पितृप्रेम उमड़ता है उससे उनके हृदय की कोमलता, भावुकता और पीड़ा प्रकट होती है—

अनल में जल कर हमारा घर अँधेरा मत करो
नेत्र-तारा की तरह बूंदी रहो···।

युद्ध में बचे प्रतिपक्षियों को अभयदान देना उनकी शरणागत-वत्सलता एवं क्षत्रियोचित उदारता का परिचायक है। इस प्रकार वरसिंह में मध्यकालीन क्षत्रिय नरेशों के सभी गुण वर्तमान हैं।

वसिष्ठ (साकेत)

साकेत में कुलगुरु वसिष्ठ के दर्शन सर्वप्रथम उर्मिला ारा अंकित रामराज्याभिषेक के उस चित्र में होते हैं जहाँ वह क-भार उठा चुकने वाले आर्य-आर्या पर अभिषेक-वारि ड़ते हैं। प्रस्तावित रामराज्याभिषेक की पूर्वसंध्या को हम ाराज दशरथ और कुलगुरु को इसी प्रसंग पर बातचीत रता पाते हैं—

कहा कुलगुरु ने "निस्सन्देह,
खेद है भरत नहीं जो गेह,
किन्तु यह अवसर था उपयुक्त
कि नृप हो जावें चिन्तामुक्त।

न्तु दशरथ चिन्तामुक्त नहीं हो पाते। इसके विपरीत केयी की वरयाचना उन्हें विश्व-बाधा-मुक्त कर देती है। हाराज का देहावसान होने पर तत्वज्ञानी मुनि वसिष्ठ भी यथित होते हैं। विलाप करती रानियों आदि को धैर्य देकर ुनि नृप-शव को सुरक्षित भाव से तेल में रखवा देते हैं और क्ष दूतों को भरत को बुला लाने के लिए भेज देते हैं।

शोक से अति आर्त भरत जब हतचेत हो जाते हैं और भय कौसल्या-सुमित्रा काँप उठती हैं, तभी तपोव्रतनिष्ठ ुरु वसिष्ठ वहाँ आ जाते हैं और भरत को समझाते हैं कि जो कुछ हुआ वह गर्व का ही विषय है, ग्लानि का नहीं। सहमरणातुर रानियों को भी कुलगुरु यही समझाते हैं, "सहमरण के धर्म से भी ज्येष्ठ, आयु-भर स्वामि-स्मरण है श्रेष्ठ।"

हनुमान के मुख से सीता-हरण और लक्ष्मण-मूर्छा का समाचार पाकर जब सारा साकेत एक विशाल सशस्त्र युद्धोत्सुक सेना में परिणत हो जाता है, तब हंसवंश गुरु, हंस-निष्ठ, एकासन विधि से कुलपति वृद्ध वसिष्ठ का 'शांत-शांत' गंभीर नाद अचानक ऐसे सुन पड़ता है मानो धरती पर कोई बादल गूँज उठा हो। "अच्छा, लो, सब इधर क्षितिज की ओर निहारो" कह कर गुरु वसिष्ठ साकेतवासियों को साकेत में ही योगबल द्वारा राम-रावण-युद्ध आदि के दृश्य दिखा देते हैं। कुलगुरु का यह आशीर्वचन साकेतवासियों में अभिनव प्राणों का संचार कर देता है—

सब लोग सजाओ अपने मंदिर,
अपनी उस चिर-अजिर मूर्ति को पाओ फिर-फिर।

यह सुनकर साकेत में मानो हर्ष का समुद्र बह निकलता है। सर्वत्र जय-जय नाद गूँज जाता है और जन-जन में गर्व छा जाता है।

विधृता (द्वापर)

विधृत का अर्थ होता है रोकना, अतः विधृता शब्द का अर्थ हुआ ऐसी स्त्री जिसे रोक लिया गया हो। गुप्तजी के काव्य 'द्वापर' में यह नाम एक याज्ञिक की पत्नी का है। 'द्वापर' के निवेदन में श्री मद्भागवत का संदर्भ देते हुए गुप्तजी ने स्वयं लिखा है "भागवत में विधृता शब्द तो आया है किंतु उस याज्ञिक की पत्नी का नाम नहीं दिया गया जिसे याज्ञिक ने कृष्ण के समीप जाने से रोका था। अतएव इसके संबंध की रचना को यही शीर्षक देना पड़ा।"

द्वापर की विधृता एक ऐसी नारी है जो नारी-वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए पुरुष के बल-प्रयोग, पति-पत्नी संबंध, कामुक चाटुकारिता, पुरुष द्वारा अधिकारों के दुरुपयोग, नारी-अधिकार, पशुवध, पुरुष-वर्ग के संशय, वासना, कौटुम्बिक संबंध, कर्मकांड, नारी के प्रति अविश्वास आदि के संबंध में अपने विचार अपने पति के समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्राण त्याग देती है। 'द्वापर' में गुप्तजी ने विधृता के चरित्र को जिस रूप में प्रस्तुत किया है उसे देखकर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक नारी के समान ही द्वापर-युग की नारी भी पुरुष समाज से संत्रस्त रही होगी। विधृता का निम्नलिखित कथन उसके चरित्र को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है—

एक नहीं दो-दो मात्राएँ,
नर से भारी नारी।

विश्वामित्र (लीला)

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र रामसखा गंभीर की दृष्टि में 'विश्वअमित्र' हैं और धीर की दृष्टि में 'अवधूत'। धीर तो उस 'बुड्ढे' का चित्र कभी भुला ही नहीं पाता जो स्वार्थवश राम-लक्ष्मण को अपने साथ ले गया। गंभीर विश्वामित्र को महान मानने के लिए तैयार ही नहीं है क्योंकि उसके मतानुसार विश्वामित्र ने 'दाता को बिकवा कर छोड़ा'। किंतु, अबोध बालकों द्वारा लगाये गये ये आरोप विश्वामित्र की महत्ता घटा नहीं पाते। शत्रुघ्न के यह प्रश्न करने पर 'दादा, विश्वामित्र कौन हैं?' राम उन्हें बताते हैं कि विश्वामित्र—

> बड़े तपस्वी, ज्ञानी हैं।
> क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि हुए हैं
> इससे अब भी मानी हैं।

इन ज्ञानी-तपस्वी को सर्वत्र श्रद्धा-भक्ति और समादर प्राप्त है। अयोध्या के महाराज दशरथ इस कारण अपने को धन्य मानते हैं, 'घर बैठे ही अहा दास ने दर्शन पाये' और जनकपुरी के महाराज जनक—

> पाकर दुर्लभ दर्शन आज,
> मैं कृतकृत्य हुआ मुनिराज!

विश्वामित्र शास्त्र और शस्त्र दोनों के धनी हैं। उन्होंने राम को दिव्यास्त्र प्रदान किये हैं और निरन्तर कर्त्तव्य-कर्म की शिक्षा देते रहते हैं। दशरथ सुतों के विषय में उनके हृदय में यह गौरवपूर्ण विश्वास है—

> होंगे अनुकरणीय चरित लोकों में इनके।

वह उनके बल-पराक्रम के विषय में पूर्णतः आश्वस्त हैं। वह मानते हैं कि दशरथसुत सच्चे शूर समर्थ हैं। ताड़कावध के लिए राम को प्रवृत्त करते हुए वह कहते हैं—

> हे वत्स, देर मत करो और
> मारो तुम इसको इसी ठौर।

और धनुर्भंग के विषय में उनका आशीर्वादमय आदेश है—

> राम, चढ़ाओ चाप,
> प्रकट करो निज़ भुज-प्रताप।

विष्णुप्रिया

विष्णुप्रिया महाप्रभु चैतन्य की दूसरी पत्नी थीं। आज भी बंगाल में उन्हें परिगीतरूपा प्रातःस्मरणीया, शक्ति देवी, अधिष्ठात्री और राधा का अवतार माना जाता है। बंगाल में उन्हें चैतन्य के महत् कार्य के पूरक रूप में ही स्वीकार किया जाता है। इतिहासकारों के मत से चैतन्य के साथ इनका विवाह अल्पावस्था में ही हो गया था और विवाह के एक वर्ष के आसपास ही चैतन्य उन्हें अपनी माँ शची की सेवा में छोड़कर संन्यास हेतु चले गए थे। एक बार जब वे वृन्दावन से लौटकर नदिया से गुजरे तो भीड़ में स्वागत-हेतु खड़ी विष्णुप्रिया को उन्होंने नहीं पहिचाना लेकिन समाज के आग्रह पर उन्होंने अपनी खड़ाऊँ विष्णुप्रिया को दे दी। पति की खड़ाऊँ लेकर विष्णुप्रिया एक प्रकार से समाधिस्थ हो गई। यह भी विडम्बना ही है कि चैतन्य उन्हें भीड़ में पहिचानते भी नहीं, दीक्षित भी नहीं करते केवल इतना कह देते हैं कि तुम कृष्णमय हो जाओ। एक धनाढ्य राजमान्य व्यक्ति की कन्या विष्णुप्रिया अपने पति श्री चैतन्य के स्वर्गारोहण (सन् १९३३) के समय केवल ३८ वर्ष की थीं। अर्थात् १२ वर्ष की आयु में इनका विवाह हुआ और २६ वर्ष तक विरह-ज्वाला में जलती रहीं। पुत्र-वियोग में सास की मृत्यु हो जाने के पश्चात् भी वह एक लम्बे समय तक जीवित रहीं। उन्होंने ९२ वर्ष की लम्बी आयु प्राप्त की थी और ४२ वर्ष तक उन्होंने वैधव्य जीवन व्यतीत किया था।

गुप्तजी की विष्णुप्रिया उर्मिला और यशोधरा के समान ही एक पतिवियुक्ता नारी है बल्कि यों कहिए कि एक सामान्य मध्यम परिवार की ऐसी नारी है जो निःसंतान तो है ही, साथ ही उसे पतिवियोग सहते हुए सास की भी सेवा करनी है और गृहस्थी चलाने के लिए आजीविका का उपार्जन भी करना है। गुप्तजी ने विष्णुप्रिया के चरित्र को बंगाल की भावभूमि से भिन्न भारतीय नारी के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। श्री ऋषि जैमिनी बरुआ ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—"गुप्तजी की लेखनी से विष्णुप्रिया की जो मूर्ति प्रकट हुई है, वह शुभ्र है, शीलवती है, पर बंगाली भावभूमि की उपज वह नहीं है। राष्ट्रभारती के स्पर्श से उसका समग्र सत्य राष्ट्रीय स्तर पर इस तरह निखर गया है कि बंगाल

ो सीमाओं से ऊपर उठकर संदेश वाणी से लब्ध वह राष्ट्र-ारी ही बन गई है।" तात्पर्य यह कि गुप्तजी ने विष्णुप्रिया चरित्र में कतिपय महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं।

गुप्तजी ने विष्णुप्रिया काव्य में चैतन्य की पहली पत्नी क्ष्मीप्रिया की ओर संकेत न करते हुए दिखलाया है कि ह स्वयं चैतन्य के प्रति अनुरक्त थी और इसीलिए स्नान रने जाती हुई माता शची के चरणों में प्रणाम किया करती ीं। गुप्तजी ने विष्णुप्रिया को सुसंस्कृत, शीलवती, सलज्ज ौवन-संभ्रम चित्रित किया है। परम्परित काव्यों में प्रथम त्नी के वियोग से दुःखी चैतन्य माँ के अनुरोध से विवाह करते और विष्णुप्रिया को माँ की सेवा में छोड़कर चले जाते हैं। ुप्तजी के 'विष्णुप्रिया' काव्य में विवाह के बाद पिण्डदान के ासंग से चैतन्य में उत्तरोत्तर गृहस्थी के प्रति विरक्ति-भाव ा विकास दिखलाया गया है। उनकी विष्णुप्रिया "मेरे ागवान सबके हों, मैं उन्हीं की हूँ।" आदि भावों में निमग्न । विवाहोपरांत चैतन्य द्वारा अँगूठे से अँगूठे को दबा ने की घटना से भी विष्णुप्रिया का प्रेम उत्तरोत्तर विकसित ोता है। पिण्डदान के प्रसंग में विष्णुप्रिया और सखी के ार्तालाप से यह स्पष्ट ही है। गया से लौटने के बाद चैतन्य ौर विष्णुप्रिया के वार्तालाप तथा चैतन्य की भावमग्नता ो एक ओर तो विष्णुप्रिया के प्रेम, शील, सेवापरायणता और ैतन्य के बार-बार अचेत हो जाने पर उसके गहरे दुःख का ारिचय मिलता है, तो दूसरी ओर आगे घटने वाली घटनाओं ा संकेत भी। संन्यास के बारे में माँ से परामर्श करते हुए ैतन्य वधू से भी आज्ञा लेने की बात करते हैं। इस प्रसंग से विष्णुप्रिया एकदम निस्तब्ध हो जाती है और निगड़लता के ामान चैतन्य के पैरों से लिपट जाती है। विष्णुप्रिया के कथन "रो-रोकर मरना नारी लिखा लायी है।" तथा "देव ने दिखाया सुख फिर भी दिया नहीं" अथवा "मेरी मति और ाति केवल तुम्हीं तुम्हीं" आदि से विष्णुप्रिया के चरित्र की रेखाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। नारी अबला है, विवश है। "तुमने वरा था मुझे आज मैं तुम्हें वरूँ" वाक्य से ही संतुष्ट है। ाति के अनुनय-विनय करने पर वह कह उठती है "मेरे भाग्य मुझमें मुंदे तो खुले सबमें" किंतु यशोधरा के समान उसके हृदय को भी यह सोचकर ठेस लगती है—"हाय ! मैं छली गई हूँ छिपकर भागे वे।"

चैतन्य के चले जाने पर विष्णुप्रिया जीविकोपार्जन, सास-सेवा और पति-चिंतन के सहारे समय व्यतीत करती है। कवि ने विष्णुप्रिया में प्रेम, पीड़ा और कर्त्तव्य-भावना का समन्वय किया है। स्वप्न-दर्शन के माध्यम से उसके आत्मबल की अभिव्यक्ति की है और पर्वोत्सवों के माध्यम से उसकी करुणाशील सामाजिक चेतना, वेदना और उदार भावना को प्रकट किया है। वह अपनी सास को भी समझाती है और वर्षों तक वियोग-वेदना को सहती है। पुनर्मिलन के अवसर पर परंपरागत काव्यों में विष्णुप्रिया के प्रति चैतन्य की अवहेलना का वर्णन किया गया है, किंतु गुप्तजी ने इस प्रसंग में उसे दर्शनोत्कण्ठिता दिखलाया है। वह पति की स्थिति समझती है इसलिए उलाहना भी कैसे दे। चैतन्य के पूछने पर तुम कौन हो, "वह उठी किंतु क्षुब्ध फणिनी-सी नहीं, आकुल हिलोर-सी"। उसने यही कहा—

> जानती नहीं मैं अब कौन, किंतु पहले—
> एक दूसरे को जानते थे हम दोनों ही,
> भूले तुम, हाय ! मैं ही भूल नहीं पाई क्यों

यह कथन जहाँ एक ओर विष्णुप्रिया के प्रेम, पति-भक्ति आदि भावों को व्यक्त करने में सक्षम है वहाँ वह नारी की विवशता को भी व्यक्त करता है। चैतन्य उससे क्षमा माँगते हैं और वह उनके परकीया भाव पर यह कहकर प्रश्नचिह्न लगा देती है कि तुम मुझे भगवान का भजन भी नहीं करने देते—

> देते नहीं कृपण तुम वह भी !
> आ-आकर बीच में स्वयं ही बैठ जाते हो।

इस तरह गुप्तजी ने विष्णुप्रिया को जिस चारित्रिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है उससे सिद्ध होता है कि विष्णुप्रिया पारम्परिक काव्यों की नायिका न होकर प्रेममयी के साथ-साथ तर्कमयी नारी भी है। वह चैतन्य जैसे प्रेम-साधक के हृदय को भी झकझोर देती है। चैतन्य उसे सम्मान देने के लिए उसके सामने नंगे पैर खड़े हो जाते हैं। उनकी खड़ाऊँ लेने पर जब वह कारण पूछते हैं तो विष्णुप्रिया का उत्तर है—

> तारक, तुम्हारे पदचिह्न बन इनमें
> पोत बन पार कर देंगे वही मुझको।

इस प्रसंग में उसकी एकनिष्ठता और 'तनिक और निभ जाऊँ' गीत में उसके हताश जीवन और असफल प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। चैतन्य-संबंधी काव्यों में चैतन्य के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनकी माँ शची का स्वर्गवास हो जाता है, किंतु गुप्त-जी ने शची की मृत्यु पहले और चैतन्य का स्वर्गारोहण बाद में दिखलाया है। शची के मरणोपरांत विष्णुप्रिया मरने के अवकाश और बंधन की कड़ियों के टूटने की बात करते हुए भी मर नहीं पाती क्योंकि वह पति-स्मरण नहीं छोड़ पाती। यहाँ उसके चरित्र की निर्भयता दृष्टव्य है। चैतन्य के मूर्ति में विलीन होने का स्वप्न उसे आता है, वह सती भी नहीं हो

सकती क्योंकि स्वप्न में चैतन्य का आदेश था—"आयु शेष रहते मरण आत्मघात है। मेरी एक मूर्ति रक्खो निज गृहकक्ष में।" इसीलिए "मंदिर बनाया निज गेह उस देवी ने।" इस तरह विष्णुप्रिया एकांतवासिनी हो गई और जितने मंत्र-श्लोक जपती थी उतने ही धान्य-कणों का भोजन करते हुए पति, सीता और राम का चिंतन करती थी।

इस तरह गुप्तजी ने 'विष्णुप्रिया' काव्य में विष्णुप्रिया के जिस चरित्र का चित्रण किया है वह भारतीय मध्यम-वर्गीय परिवार की सहनशील, पतिपरायणा और सद्-गृहस्थ नारी का चित्र है।

दुर्गा (शक्ति)

आदिशक्ति अंबिका को शुक्ल यजुर्वेद में रुद्र की भगिनी लिखा है। देवी भागवत के अनुसार सब देवता रसातल-निवासी महिषासुर से परास्त हो चुके थे। वे ब्रह्मा तथा विष्णु के पास गए। महिषासुर को वरदान मिला हुआ था कि वह किसी पुरुष से नहीं मरेगा, अतः विष्णु के आदेश से सभी देवताओं ने अपने-अपने तेज से एक तेजपुंज स्वरूप देवी को प्रकट किया जिसने महिषासुर से नौ दिन युद्ध करके उसका वध किया। महिषासुर के साथ ही उसके साथी वाष्कल, दुर्मुख, ताम्र, असिलोमा, भिक्षुर, बिडाल, आदि राक्षसों का वध भी इस युद्ध में ही हुआ। महिषासुर-मर्दन के पश्चात् नमुचि नामक राक्षस का वध होने पर उसके भाई दनु के गर्भ से उत्पन्न कश्यप ऋषि के पुत्र शुम्भ और निशुम्भ क्रोध में भर गए। उन्होंने इन्द्रलोक पर आक्रमण करके उसे जीत लिया। उन्हें भी यही वर मिला हुआ था कि वे किसी स्त्री द्वारा ही मारे जा सकेंगे। देवताओं ने फिर शक्ति दुर्गा का आह्वान किया। इस पर देवी के शरीर से कौशिकी देवी या काली प्रकट हुई। वह इन राक्षसों की राजधानी के निकट पहाड़ों पर बैठ गई। वहाँ ब्रह्मा की ब्राह्मी, विष्णु की वैष्णवी, शिव की शिवा और अन्य देवताओं की शक्तियाँ इसमें प्रविष्ट हो गईं। शुम्भ और निशुम्भ का साथ चण्ड और मुण्ड नामक राक्षसों ने भी दिया। शुम्भ और निशुम्भ ने दूत द्वारा देवी के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। दुर्गा ने उत्तर दिया कि जो मुझे युद्ध में जीत लेगा मैं उसी से विवाह करूँगी। पहले धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड आदि राक्षस देवी से युद्ध करते हुए मारे गए। इसके बाद शुम्भ और निशुम्भ का भी यही अन्त हुआ।

गुप्तजी की कृति 'शक्ति' में दुर्गा के उक्त कृत्यों का ही व्याख्यान है। शक्ति के निर्माण में संघशक्ति का महत्त्व है। इसलिए वह—

सबकी एक प्रदीप्त पूर्ति वह सबकी एक स्फूर्ति
सबकी वह सम्मिलित शक्ति थी महाशक्ति की पूर्ति।

इस काव्य में वह साहसी, सिंहारूढ़, लीलामयी, अट्टहास करने वाली, अनेक राक्षसों का वध करने वाली तथा महिषासुर का वध करने वाली शक्ति के रूप में चित्रित है। उन्होंने महिष का ही नहीं, शुम्भ और निशुम्भ का भी संहार किया है। इस प्रसंग में सर्वांगसुंदरी दुर्गा चण्ड-मुण्ड के प्रस्ताव पर मंद हास्य बिखेरती है। उनकी प्रतिज्ञा है—

मुझे युद्ध में जीतेगा जो देव, दनुज मनुजात।
होगा एक वही त्रिभुवन में मेरा वर विख्यात।

गुप्तजी की शक्ति मानवी न होकर आद्या शक्ति है, इसलिए सारा संसार उसके लिए बच्चों के समान है क्योंकि "मूर्ति-मती थीं सर्वशक्तियाँ केन्द्र शक्ति के साथ।" इसलिए उन्होंने राक्षसों को मारकर एक तरह से उनका उद्धार किया। इसी प्रसंग में कवि ने उन्हें करुणामयी भी दिखलाया है। अन्त में की गई स्तुति में शक्ति को शक्तिमयी, आभामयी, कोमल-मना, दृढ़हस्ता, क्रोध और संतोष की मूर्ति कहा गया है।

शकुन्तला

शकुन्तला विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए इन्द्र द्वारा भेजी गई अप्सरा मेनका के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। इसका लालन-पालन शकुन्त नामक पक्षियों ने किया था। इसी कारण इस कन्या का नाम शकुन्तला पड़ा। कण्व मुनि ने इन्हें अपनी पुत्री बनाकर पाला था। एक बार जब मुनि आश्रम में नहीं थे, तो आखेट पर आये राजा दुष्यन्त वहाँ रुके। दुष्यन्त और शकुन्तला एक-दूसरे पर आसक्त हो गए और दोनों ने गांधर्व विवाह कर लिया। दुष्यन्त जाते समय अभि-

ज्ञान-परिचय के रूप में अपनी मुद्रिका दे गये। गर्भवती शकुन्तला पति-वियोग में डूब कर अपनी सुध-बुध भूल गई थी। इसी बीच दुर्वासा ऋषि आश्रम में आए, परंतु ध्यानमग्न शकुन्तला ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। कुपित दुर्वासा ने शाप दे दिया कि जिसके ध्यान में वह इतनी डूबी हुई है वह उसे देखने पर भी पहिचान नहीं पाएगा। उसकी सखी प्रियंवदा ने ऋषि से शाप लौटाने की प्रार्थना की। उत्तर में ऋषि ने कहा कि अभिज्ञान-चिह्न देखने पर राजा को भूली बातें याद आ जाएंगी। कण्व मुनि ने गौतमी और शारङ्गरव के साथ शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेज दिया। मार्ग में नदी पार करते हुए शकुन्तला की अंगूठी नदी में गिर गई जिसे एक मछली ने निगल लिया। दुर्वासा के शाप-वश दुष्यन्त शकुन्तला समेत आश्रम में घटी सभी घटनाओं को भूल चुका था। अतः शकुन्तला को अपनाने से उसने स्पष्ट इंकार कर दिया। पति द्वारा भरे दरबार में तिरस्कृता शकुन्तला की इस समय मेनका ने सहायता की। वह इसे कश्यप के आश्रम में छोड़ आई। इसी आश्रम में शकुन्तला ने भरत को जन्म दिया। किंवदन्ती है कि इसी भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

दूसरी ओर वह मछली जिसने अँगूठी निगली थी, एक मछुआरे द्वारा पकड़ी गई। बाजार में अँगूठी को बेचते समय मछुआरे को सैनिकों ने पकड़ लिया। इस तरह वह अँगूठी राजा को मिल गई। अँगूठी देखते ही दुष्यन्त को सारा अतीत याद आ गया। वह शकुन्तला के वियोग में व्याकुल रहने लगे।

देवयोग से दुष्यन्त देवासुर-संग्राम में इन्द्र की सहायता के लिए इन्द्रलोक गए। वहाँ से लौटते हुए वह कश्यप के आश्रम में गये, वहाँ उनकी भेंट अपने पुत्र सर्वदमन (भरत) से हुई जो सिंहों के साथ खेलते हुए उनके दाँत गिन रहा था। साथ ही शकुन्तला के भी दर्शन हुए और पुनर्मिलन हो गया।

महर्षि व्यास की कृतियों में भरत का जन्म कण्वाश्रम में हुआ था। कण्व ने शकुन्तला और उसके पुत्र को दुष्यन्त के पास भेज दिया। उस समय दुष्यन्त ने उसे कुलटा कह कर तिरस्कृत किया था। आकाशीय आदेश द्वारा संतुष्ट होने पर उन्होंने दोनों को स्वीकार कर लिया था।

अन्यत्र पुराणों में लिखा है कि अँगूठी नदी में नहाते समय उँगली से निकलकर गिर गई। महाभारत में शकुन्तला का जन्म हिमालय के शिखर पर मालिनी नदी के किनारे बतलाया गया है।

'शकुन्तला' काव्य एक प्रकार से कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का पद्य रूपान्तरण है। इसलिए इस काव्य में शकुन्तला की चरित्रगत विशेषताएँ भी सामान्यतः अभिज्ञान शाकुन्तलम् की शकुन्तला के समान ही हैं। वह पुण्य तपोवन की रज में खेलते हुए बड़ी हुई थी। उसके रूप-रंग-सौरभ से सारा आश्रम महक उठा था। उसका हृदय कोमल और सदय था। वह विदुषी, धर्म में अनुरक्त, आलस्य रहित, सेवाशुश्रूषा तथा अतिथियों का सत्कार करने वाली थी। दुष्यन्त-मिलन पर उसका हृदय अनुराग से भर उठता है।

> करते रचना पत्र की धरे हुए प्रिय ध्यान।
> वह वियोगिनी बन गई संयोगिनी समान।।

अभिशाप-प्रसंग में शकुन्तला की वियोगावस्था का चित्रण है, तो विदा के समय उसकी अस्थिरता देखते ही बनती है। 'त्याग' प्रसंग में भी शकुन्तला के नारी-भावों यथा लज्जा आदि की अभिव्यक्ति हुई है। 'मिलन' सर्ग में शकुन्तला कर्तव्यपरायण ममतामयी माँ के रूप में चित्रित है। इसी सर्ग में उसकी उदारता और क्षमाशीलता का भी परिचय मिलता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुप्तजी की शकुन्तला भी कालिदास की शकुन्तला के समान सेवामयी, दयामयी, सहृदय, सुकुमार और रूप एवं गुणों से सम्पन्न है।

शची

देवराज इन्द्र की पत्नी तथा पुलोमा दैत्य की पुत्री का नाम शची था। इनके पुत्र का नाम जायन्त और पुत्री का जयन्ती था। इन्होंने स्वर्ग में श्रीकृष्ण और सत्यभामा का स्वागत किया था। षोडष शक्तियों में से इन्हें एक शक्ति माना जाता है। इन्हें पौलोमा, पुलोमजा भी कहा जाता है। गुप्तजी के काव्यों में शची का चरित्रांकन मुख्यतः नहुष में है।

'नहुष' की शची इन्द्र की पत्नी होते हुए भी मानवीय संवेदनाओं से पूरित है। गुप्तजी की शची इन्द्र के अभाव में शोकाकुल है। शची सर्ग में उसके चरित्र में कवि ने भारत-लक्ष्मी की कल्पना भी की है—

> क्या थी, अब कौन हूँ, कहाँ थी, अब मैं कहाँ
> क्या न था परंतु अब मेरा क्या रहा यहाँ

आज मैं विदेशिनी हूँ अपने ही देश में
बंदिनी-सी आप निज निर्मम निवेश में।

चिर नवयौवना शची विचारशीला और शंकालु प्रवृत्ति की है। उसके मत में पद में सदैव एक मद रहता है। वह दानवों से सावधान रह सकती है और मनुष्यों के प्रति शंकित है क्योंकि—

देव सदा देव तथा दनुज दनुज हैं
जा सकते किंतु दोनों ओर ही मनुज हैं।

वह शक्तिरूपा, साहसी, आत्म-गौरव से गर्वित है। इसीलिए उसका कथन है—"शक्ति से जो साध्य होगा, साधेगी उसे शची।" 'स्वर्गभोग' शीर्षक में शची के रूप-सौंदर्य का चित्रण भी कवि ने किया है—

एक ओर पर्त-सा त्वचा का आर्द्र पट था
फूट फट रूप दूने वेग से प्रकट था।

'संदेश' शीर्षक में शची का सतीत्व, तेजस्विता और तार्किकता का व्याख्यान है। 'मंत्रणा' शीर्षक में भी शची तार्किक तो है ही, वह मनःपूत आचरण और व्यवहार में ऐच्छिकता की समर्थिका है। इस सर्ग में उसकी उदारता और त्याग के भी दर्शन होते हैं। इस सर्ग में वह स्वयं ही सुझाव देती है कि ऋषिगण नहुष की पालकी उठाकर लाएँ।

निष्कर्षतः नहुष काव्य की शची के चरित्र में कवि ने मानवीय गुणों और दुर्बलता दोनों को दिखलाने का प्रयत्न किया है।

शत्रुघ्न

शत्रुघ्न लक्ष्मण के सहोदर हैं। लक्ष्मण की भाँति उनके चरित्र का भी प्रधान तत्व है भ्रातृभक्ति। परिस्थितियाँ उन्हें सहोदर लक्ष्मण की अपेक्षा भरत के अधिक निकट बनाए रखती हैं और शत्रुघ्न अनुज का संपूर्ण अनुराग भरत के चरणों पर बिखेर देते हैं।

शत्रुघ्न भरत के साथ ननिहाल से अयोध्या लौटते हैं। कल्पना की लहरों के सहारे बढ़ता उनका विचार-प्रवाह उन्हें उस कल्पना-लोक में जा पहुँचाता है जहाँ—

बढ़ रहा था जननियों का मोद,
हँस रही थीं भाभियाँ सविनोद।
कह यहाँ के वृत्त सहचर बाल,
पूछते थे सब वहाँ के हाल···
सब हमें नव, हम सभी को नव्य,
हो रहे थे ज्ञात कितने भव्य!

किंतु भरत द्वारा कुछ विपरीत तथा अमंगलसूचक दृश्यों की ओर संकेत किये जाने पर शत्रुघ्न सहम जाते हैं। राजभवन में पहुँचने पर उन्हें पिता के देहावसान तथा राम के वनवास का संपूर्ण वृत्त ज्ञात होता है। इस अवसर पर शत्रुघ्न को सर्वप्रथम लक्ष्मण का ही स्मरण आता है:

तुम यहाँ थे हाय! सोदरवर्य,
और यह होता रहा, आश्चर्य!
वे तुम्हारे भुज-भुजंग विशाल,
क्या यहाँ कीलित हुए उस काल?

और लक्ष्मणानुज लक्ष्मण की ही वाणी में गरज उठते हैं:

दूर हो ममता, विषमता, मोह,
आज मेरा धर्म राजद्रोह···
दो अभीप्सित दंड मुझको अम्ब,
न्याय ही शत्रुघ्न का अवलम्ब,
मैं तुम्हारा राज्य-शासन-भार,
कर नहीं सकता यथा-स्वीकार।

राम के वनवास और भरत के नन्दिग्राम-वास की अवधि में शत्रुघ्न ही राम और भरत दोनों के कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं। भाभी मांडवी के शब्दों में:

कोई तापस, कोई त्यागी, कोई आज विरागी हैं,
घर सँभालने वाले मेरे देवर ही बड़भागी हैं।

इस बड़भागी में वीरता और विवेक, शौर्य तथा श्रद्धा का अपूर्व सम्मिलन है:

कृश होकर भी अंग वीर के सुगठित शाण चढ़े से थे,
सरल वदन के विनय तेज-युग मिलकर अधिक बढ़े से थे।

शत्रुघ्न दैनंदिन कर्तव्य-कर्म के रूप में भरत को पुरवासियों की कुशलता, सुख-शांति तथा प्रगति से अवगत कराते हैं। इस प्रकार कवि ने उनके कुशल प्रशासक-रूप का समुचित प्रकाशन किया है।

शत्रुघ्न का सैन्य-संगठक-रूप साकेतकार की एक महत्त्वपूर्ण सद्भावना है। इससे शत्रुघ्न की भ्रातृभक्ति के साथ-साथ उनके स्वदेशानुराग की भी सफल अभिव्यक्ति हुई है। हनुमान

: मुख से राम-राक्षस-युद्ध का वृत्तांत पाकर भरत अनुज से
हते हैं—

अनुज, मुझे रिपु-रक्त चाहिए, डूब मरूँ मैं।
मेटूँ अपने जड़ीभूत जीवन की लज्जा,
उठो, इसी क्षण शूर, करो सेना की सज्जा।

गैर शत्रुघ्न उसी क्षण—

छूकर उनके चरण द्वार की ओर बढ़े वे,
झोंके पर ज्यों गंध, अश्व पर कूद चढ़े वे।

पूर शत्रुघ्न ध्वनि-संकेत करके शंख बजा देते हैं। भरत शंख-ध्वनि से उत्तर देते हैं और अविलंब असंख्य शंख-ध्वनियाँ होने लगती हैं। अयोध्या की नर-सत्ता क्षुब्ध हो उठती है। साकेत का पत्ता-पत्ता सजग हो जाता है। सेना-नायक शत्रुघ्न का आदेश है—

पैर धरें इस पुण्यभूमि पर पामर पापी,
कुल-लक्ष्मी का हरण करें वे सहज सुरापी,
भर लो उनका रुधिर, करो अपनों का तर्पण,
मांस जटायु-समान जनों को कर दो अर्पण···
सोने की उस शत्रु पुरी लंका को लूटो।

इसी अवसर पर उर्मिला वहाँ उपस्थित होकर उन्हें यह निदेश देती है—

धीरो, धन को आज ध्यान में भी मत लाओ,
जाते हो तो मान-हेतु ही तुम सब जाओ।

उर्मिला स्वयं कीर्ति-सी उनके आगे-आगे चलने के लिए सन्नद्ध हो जाती है। यह देखकर देवर शत्रुघ्न रुद्ध कंठ से उनसे इतना ही कह पाते हैं—

क्या हम सब मर गये हाय जो तुम जाती हो,
या हमको तुम आज दीन-दुर्बल पाती हो?
मारेंगे हम देवि, नहीं तो मर जावेंगे,
अपनी लक्ष्मी लिये बिना क्या घर आवेंगे?
होगा, होगा वही, उचित है जो कुछ होना,
इस मिट्टी पर सदा निछावर है वह सोना।

इस प्रकार शत्रुघ्न मानो इस उक्ति को चरितार्थ कर देते हैं 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी।'

शूर्पणखा (पंचवटी)

शूर्पणखा में मानवीय और दानवीय विशिष्टताओं का अद्भुत मिलन है। लक्ष्मण के शब्दों में—

कहूँ मानवी यदि मैं तुमको तो वैसा संकोच कहाँ?
कहूँ दानवी तो उसमें है यह लावण्य कि लोच कहाँ?
वनदेवी समझूँ तो वह तो होती है भोली भाली
तुम्हीं बताओ कि तुम कौन हो हे रंजित रहस्यवाली?

स्वयं शूर्पणखा ने अपनी चरित्रगत विशेषताओं का बखान इस प्रकार किया है :

मन में कुछ, वचनों में कुछ हो, मुझमें ऐसी बात नहीं,
सरल शक्ति मुझमें अमोघ है, दाव-पेंच या घात नहीं।
मैं अपने ऊपर अपना ही रखती हूँ अधिकार सदा···
कोई भय मैं नहीं मानती···

शूर्पणखा निःसंकोच तथा निर्भीक होकर लक्ष्मण से अनेक मार्मिक प्रश्न करती है :

समझो मुझे अतिथि ही अपना, कुछ आतिथ्य मिलेगा क्या···
इस व्रत में किस इच्छा से तुम व्रती हुए हो बतलाओ···
तो फिर क्या निष्काम तपस्या करते हो तुम इस वय में,
पर क्या पाप न होगा तुमको आश्रम के धर्मक्षय में···
लेकर इतना रूप कहो तुम दीख पड़े क्यों मुझे छली···

वह जितनी सरलता से लक्ष्मण के सामने अपनी वासना व्यक्त कर देती है, उतनी ही निश्चितता से अन्य प्रणयी भी खोज निकालती है :

बड़े सदैव बड़े होते हैं, छोटे रहते हैं छोटे।

राम और लक्ष्मण दोनों की ओर से उपेक्षा प्राप्त होने पर 'वह अति रम्य रूप पल भर में सहसा बना विकट-विकराल' :

जहाँ लाल साड़ी थी तनु में बना चर्म का चीर वहाँ
हुए अस्थियों के आभूषण थे मणि-मुक्ता-हीर जहाँ,
कंधों पर के बड़े बाल वे बने अहो! आँतों के जाल,
फूलों की वह वरमाला भी हुई मुंडमाला सुविशाल।

शूर्पणखा का यह विकृत किंतु प्रकृत परिचय है।

सत्यवती

उपरिचर वसु के वीर्य द्वारा उत्पन्न कन्या ब्रह्मा के शाप के कारण मत्स्यभाव को प्राप्त हुई। यह अद्रिका नामक अप्सरा की पुत्री थी जो एक राजपरिवार में उत्पन्न हुई थी परन्तु शापवश मछली के पेट में पहुँच गई थी। वह मछली का पेट चीरकर निकाली गई थी। इसलिए मछुआरे ने इसका पालन-पोषण किया था। इसको मत्स्यगंधा और योजनगंधा भी कहा गया है। सत्त्व गुण की प्रधानता के कारण ही इस कन्या का नाम सत्यवती रखा गया।

इसके शरीर से मछली की गंध आती थी, परंतु इसके सौंदर्य पर आसक्त होकर पाराशर मुनि ने इससे समागम किया जिसके फलस्वरूप यमुना द्वीप पर व्यास का जन्म हुआ। समागम के पश्चात इसके शरीर से सुगंध आने लगी और इसका नाम गंधवती हो गया।

कौरवों और पांडवों के पूर्वज, भीष्म पितामह के पिता महाराज शांतनु इसे देखते ही इस पर आसक्त हो गए। इनके पिता मत्स्यराज ने विवाह के लिए यह शर्त रखी कि सत्यवती की संतान ही युवराज और राजपद पर आसीन होगी। अतः भीष्म ने आजन्म बिना विवाह किए रहने की प्रतिज्ञा की। महाराज शांतनु से इसे दो पुत्रों चित्रांगद और विचित्रवीर्य की प्राप्ति हुई। चित्रांगद गंधर्वों से युद्ध करते हुए मारा गया। विचित्रवीर्य की पत्नी अंबिका एवं अंबालिका से नियोग द्वारा धृतराष्ट्र और पांडु का जन्म हुआ। पांडु की मृत्यु के उपरांत शोक-विह्वल होकर सत्यवती अपनी पुत्र-वधुओं अंबिका और अंबालिका के साथ तपोवन में चली गई और तपस्यारत हो गई।

गुप्तजी की सत्यवती को जब महाराज शांतनु ने देखा तब वह नौका खेने के कारण श्रम से उद्दीप्त और तप्त स्वर्ण शोभा-भरणी-सी दिखलायी पड़ रही थीं। उसके बाल लंबे, मुख भोला व चंचल था—

> खड़ा कछोटा, किंतु कंधेला पड़ा-पड़ा उड़ चलता था,
> गोरे बाहु-मूल में फूला-फूला यौवन फलता था।

उसके संवाद, निर्भीकता, अल्हड़पन और तर्कों ने शांतनु को यह कहने पर विवश कर दिया—

> लज्जा ललनाओं की भूषा, ऊषा की ज्यों अरुणाई,
> समधिक साहस भरी किंतु है निडर तुम्हारी तरुणाई।

वह शांतनु को अत्यंत विनीत और शीलवती प्रतीत होती है।

गुप्तजी ने सत्यवती के अंतर्द्वंद्व को अभिव्यक्त करके उसके चरित्र का परिष्कार किया है। कौरव-पांडव प्रसंग में चित्रांगद और पांडु के स्वर्गवास के पश्चात् वह भीष्म-प्रतिज्ञा के लिए अपने पिता को दोषी ठहराती हुई कहती है—

> वत्स क्षमा कर दुखिया मां को तू उदार उन्नत मना,
> वंचित मेरे लिए हुआ तू मैंने आप किया नहीं,
> अपने लिए पिता ने भी निज सिर पर पाप लिया नहीं,
> दैव दोष से मैं दोषी हूँ, दे कुछ मुझे प्रबोध तू।
> अपना राज्य सँभाल और निज पितरों का ऋण शोध तू।

इसी प्रसंग में सत्यवती अपने पुत्र भीष्म के सामने पाराशर-योग से व्यास के जन्म की कथा कहकर उनसे नियोग कराने की व्यवस्था देती है।

गुप्तजी ने जहाँ एक ओर सत्यवती के रूप-सौंदर्य का चित्रण किया है वहीं दूसरी ओर उसके हार्दिक भावों तथा उसकी व्यथा को चित्रित कर उसके चरित्र का परिष्कार किया है।

सवाईसिंह

सवाईसिंह पोकरण वाले सरदार देवीसिंह का सुयोग्य पौत्र तथा वीर सबलसिंह का सुपुत्र है। सवाईसिंह और सबलसिंह दोनों के चरित्र के दो प्रधान तत्त्व हैं—विनम्रता तथा वीरता। देवीसिंह जोधपुर नरेश के चुने हुए सरदार हैं। नरेश द्वारा बार-बार एक ही प्रश्न किये जाने पर "तुम यदि रूठ जाओ मुझसे तो क्या करो ?" देवी सिंह अत्यंत विनम्रतापूर्वक यही उत्तर देते हैं "खमा पृथ्वीनाथ, यह क्या ? आपसे मैं रूठ जाऊँ, ऐसा भाव क्यों हुआ ?" "खमा अन्नदाता, यह क्या ? सेवक हूँ मैं तो और आप मेरे स्वामी हैं, आपसे क्यों रूठूँगा भला मैं ?" "क्या मैं नमक-हराम हूँ जो रूठ जाऊँ स्वामी से ?" किंतु बार-बार यही प्रश्न उपस्थित होने पर अंततः उनका सहज शूरत्व जाग जाता है और वह कहते हैं—"पृथ्वीनाथ, मैं जो रूठ जाऊँ तो फिर जोधपुर की तो बात ही क्या (क्योंकि वह तो रहता

मेरी कटारी की पर्तली में ही) मैं नवकोटी मारवाड़ को टट दूं।" और देवीसिंह अपने वीरोचित प्राणोत्सर्ग द्वारा पना यह कथन चरितार्थ कर देते हैं।

देवीसिंह का पुत्र सबलसिंह भी पिता के अपमान का दला लेते हुए उतने ही गौरव से वीरगति प्राप्त करता है।

सवाईसिंह देवीसिंह तथा सबलसिंह का योग्य उत्तराधिकारी है। विनम्रता और वीरता की पैतृक निधियाँ उसे न्मना प्राप्त हैं, और बारह वर्ष का होते-होते तो वह स्वयं केला भी यह देखने के लिए जोधपुर-नरेश के पास जाने के लए कटिबद्ध हो जाता है कि उस कृतघ्न और क्रूर राजा के सींग-पूँछ हैं या नहीं, क्योंकि 'पशुओं से भी नीच तथा मूढ़ मानता हूँ मैं उसे।'

सवाईसिंह की वीर माता जानती हैं कि जोधपुर जाने में उसके पुत्र का क्षेम नहीं है तथापि वह अपने पुत्र को मानहीन देखने की अपेक्षा प्राणहीन देखना श्रेयस्कर समझती हैं।

सवाईसिंह जोधपुर-दरबार में ऐसे प्रवेश करता है जैसे निर्भय मृगेन्द्र नये वन में प्रविष्ट होता है—जिसकी यह आकृति उसकी प्रकृति का परिचय दे रही थी :

उठता शरीर मानो अंगे में न आता था,
वक्षस्थल देख के कपाट खुले जाते थे,
मरने-मारने ही को मानो कटि थी कसी,
शोभित सुखंग उसमें था खरे पानी का।
पर्तली पड़ी थी उपवीत-तुल्य कंधे में,
उसमें कटार खोंसी, जिसकी समानता
करने को भौंहें भव्य भाल पर थीं तनी।

इस वीर बालक को देखकर सारी सभा चौंक पड़ती है। जोधपुर-नरेश को यही लगता है मानो देवीसिंह ही नया रूप लेकर वहाँ आ गया है। नरेश उसे बताते हैं कि उन्होंने उसे यह जानने के लिए जोधपुर बुलाया है कि देवीसिंह की जिस कटारी की पर्तली में जोधपुर रहा करता था वह अब भी उस बालक के पास है या नहीं? देवीसिंह के वंशधर का उत्तर है :

दादा ने कटारी वह मेरे पिता के लिए
छोड़ी, और मेरे पिता सौंप गये मुझको।
पर्तली के साथ वह मेरे इस पार्श्व में
अब भी है पृथ्वीनाथ, एक जोधपुर क्या?
कितने ही दुर्ग पड़े रहते हैं सर्वदा
क्षात्र-कीर्ति-कोषवाली पर्तली में उसकी!

इतना ही नहीं, सत्य तो यह है—

होता जो न जोधपुर पर्तली में उसकी,
कहिये तो कैसे वह प्राप्त होता आपको?

निरुत्तर नरेश तुरंत सिंहासन छोड़, उठकर उस क्षत्रिय-कुमार को छाती से लगाकर उस विकट भट का स्नेहाभिषेक कर देते हैं :

बारट जी, सत्य ही
मैंने बुरा काम किया, भूल हुई मुझसे।
किंतु देवीसिंह और जैतसिंह दोनों ही
मर के भी जीवित हैं, देखो, इस बच्चे को
और आशीर्वाद दो कि यह सुख से जिये।

सिद्धराज जयसिंह

अन्हिलवाड़ा से चांवड़ों का राज्य खत्म हो जाने पर मूलराज वहाँ का राजा बना। वह कन्नौज के प्रतिहारों का सामंत और सौराष्ट्र की सोलंकी शाखा से संबद्ध था। सिद्धराज मूलराज का वंशज था। वंशावली इस प्रकार है—मूलराज—चामुंडराय—दुर्लभराज—भीमदेव—कर्णदेव—जयसिंह।

सोलंकी और चालुक्य वंश को एक ही माना जाता है। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचंद्र ने इनका समय विक्रमी संवत् ११९०-१२३० तय किया है। इसने मालव-राज को हराकर मालवा तथा चित्तौड़ को जीता। इनका दूसरा नाम बर्बरक जिष्णु भी है।

'सिद्धराज' जयसिंह मैथिलीशरण गुप्त के 'सिद्धराज' नामक काव्य का नायक है। गुप्तजी ने इस काव्य में जयसिंह की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने का यत्न किया है किंतु अत्यंत तटस्थ होकर, इसीलिए पहले सर्ग में जो जयसिंह मातृ-भक्त और आदर्श चरित्र वाला युवक प्रतीत होता है, वही जयसिंह रानक दे के प्रसंग पर अपनी सदाशयता का परिचय नहीं दे पाया है। हाँ, अंतिम सर्ग में कवि ने चारित्रिक दृष्टि से उसे एक उच्च धरातल अवश्य प्रदान किया है। धीरे-धीरे उसकी मनोवृत्तियों का उन्नयन होता है।

सिद्धराज के चरित्र की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं : वह मातृभक्त, साहसी, वीर, उदार और महत्त्वाकांक्षी है। नरवर्मा युद्ध के प्रसंग में उसकी वीरता और नीति-निपुणता का भी परिचय मिलता है। नरवर्मा की मृत्यु पर वह शोक ही नहीं, युद्ध विराम भी करता है। यशोवर्मा तथा जगद्देव को प्रेम तथा आदर देकर उनसे मित्रता स्थापित करता है। रानक दे के प्रसंग में कवि ने उसे कामजन्य क्रोध और क्रोधजन्य मोह से अभिभूत दिखलाया है। रानक दे के दो पुत्रों के वध और रानक दे से बलात्कार की चेष्टा के संदर्भ में कवि ने उसका नैतिक पतन दिखलाया है। चौथे सर्ग में वह वैरशोधन के लिए अपनी कन्या का विवाह अर्णोराज से करता है। इसी सर्ग में कवि ने उसके पश्चात्ताप की भी योजना की है। इस तरह चौथे सर्ग में उसका चरित्र पुनः उच्चता की ओर अग्रसर होता है। पाँचवें सर्ग में गुप्तजी ने उसे सर्वधर्म समभाव का पोषक, प्रजापालक एवं व्यवस्था-प्रिय राजा, सांस्कृतिक समन्वय का विश्वासी तथा प्रतिपक्षियों का आदर करने वाला दिखलाया है। वह गुणियों एवं बुद्धिमानों का आदर करने वाला है, इसीलिए मदन वर्मा जयसिंह को विजयी वीर और धीर मानता है और जयसिंह मदन वर्मा को भोगी और योगी दोनों ही मानकर उसका आदर करता है। तात्पर्य यह कि 'सिद्धराज' काव्य में जयसिंह का चरित्र एक गतिशील चरित्र है।

सिद्धार्थ (यशोधरा)

सिद्धार्थ (गौतम) कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन के पुत्र हैं। पुत्र को राज्य-सुख-भोग की ओर प्रवृत्त करने के विचार से महाराज ने उनके लिए एक ऐसा प्रासाद बनवाया था जिसमें सभी ऋतुओं के योग्य सुख के साधन एकत्र थे। पिता का प्रबन्ध था कि जो कुछ स्वस्थ, शोभन और सजीव हो, उसी पर पुत्र की दृष्टि पड़े। परंतु एक दिन एक रोगी को, दूसरे दिन एक वृद्ध को और तीसरे दिन एक मृतक को देखकर गौतम को बड़ी ग्लानि हुई और उन्होंने यह संकल्प किया—

> खोजूँगा मैं उसको, जिसके
> बिना यहाँ सब तीता है।

गौतम को यह विश्वास हो जाता है—

> प्रच्छन्न रोग हैं, प्रकट भोग,
> संयोग मात्र भावी वियोग;
> हा ! लोभ-मोह में लीन लोग
> भूले हैं अपना अपरिणाम !

अतः वह अपना 'सिद्धार्थ' नाम सार्थक करने के लिए एक रात को पत्नी यशोधरा और नवजात शिशु राहुल को सोता छोड़कर घर से निकल खड़े होते हैं।

अमृत-तत्त्व के सन्धान में गौतम वर्षों तक कठोर तपस्या करते हैं। अंत में वह सारे विघ्न पार कर लेते हैं और मार को भी परास्त कर देते हैं। उन्हें वह दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जाती है—

> जिसमें समस्त लोक और तीनों काल भी
> दर्पण में जैसे, उन्हें दीख पड़े। सृष्टि के
> सारे भेद खुल गये, चेतन का, जड़ का,
> कोई भी प्रकार-व्यवहार नहीं जा सका।
> दुःख का निदान और उनकी चिकित्सा भी
> ज्ञात हुई। जन्म तथा मृत्यु के रहस्य को
> जानकर देव स्वयं जीवनमुक्त हो गये।

बुद्धदेव धर्मचक्र का प्रवर्त्तन कर दूसरों के लिए भी मुक्ति-मार्ग सुलभ कर देते हैं। वह भिक्षुक-वेष में कपिलवस्तु पधारते हैं। यशोधरा उनके स्वागतार्थ नहीं जा पाती। उसका कहना है—

> आप मुझे छोड़कर वे गये,
> जब उन्हें इष्ट होगा आप आके अथवा
> मुझको बुलाके, चरणों में स्थान देंगे वे।

भगवान स्वयं भक्त के पास आते हैं और कहते हैं—

> मानिनि, मान तजो लो, रही तुम्हारी बान
> दानिनि, आया स्वयं द्वार पर यह तव तत्रभवान

यशोधरा दीन भाव से यही कहती है—

> नाथ, विजय है यही तुम्हारी,
> दिया तुच्छ को गौरव भारी,
> अपनाई मुझसी लघु नारी,
> होकर महा महान !

बुद्धदेव मुक्तकंठ से 'नारी' का आभार स्वीकार करते हुए कहते हैं कि वन में क्षुधा से विशेष क्षीण हो जाने की दशा में मातृजाति ने ही उन्हें खीर खिलाकर बचाया था और जब कामदेव ने अप्सरा-अनीकिनी सजाकर उन पर आक्रमण किया था तब—

तुम तो यहाँ थीं, धीर ध्यान ही तुम्हारा वहाँ
जूझा, मुझे पीछे कर, पंचशर वीर से।

यशोधरा इस अवसर पर भी भिक्षुक-रूप में उपस्थित पति के चरणों पर अपने पुत्र को चढ़ाकर उन्हें कृतकृत्य कर देती है।

सीता (लीला, पंचवटी, साकेत, प्रदक्षिणा)

सीता ममता और करुणा की साकार प्रतिमा हैं। जनकपुर के राजोद्यान में माँ-भगवती की आराधना के लिए पुष्प-चयन करते समय वह यह सोच कर डालियों पर से फूल नहीं तोड़ पातीं—

खोकर अपने लाल लताएँ
सूनी हो जावेंगी।

सीता को अपने भाग्य पर भी पूर्ण विश्वास है और स्वयं अपने पर भी। कोई वीर शिव धनु-भंग नहीं कर पाया, इस कारण जनकपुर में सभी को दुःख और चिन्ता है, किंतु सीता पूर्णतः निश्चिंत हैं। उन्हें विश्वास है कि 'जो होगा अच्छा ही होगा सब।'

सीता सुमन-हेतु आए राम-लक्ष्मण को देखती हैं। सखी सुलक्षणा उनसे सीधा प्रश्न करती है :

भला कहो तो, अब तुम मुझसे,
ये कुमार कैसे हैं?

सीता का उत्तर है :

देख मात्र सकती हूँ मैं तो।

इस पर सीता की अधिक अंतरंग सखी गंभीर विनोदपूर्वक कहती है :

मंजु मार जैसे हैं।

इसके उत्तर में कहे गये सीता के ये शब्द उनके निर्मल शील-सौजन्य के अनुपम साक्ष्य हैं : 'मैंने उसे नहीं देखा है।'

यह वधू जानकी जाया बनकर अयोध्या के राजभवन में प्रवेश करती हैं। वहाँ उन्हें राम जैसे पति, दशरथ जैसे श्वसुर-कौशल्या-सरीखी सास और भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण जैसे देवरों की उपलब्धि होती है। इस प्रकार उन्हें मानो सब कुछ मिल जाता है।

'पंचवटी' में कवि ने सीता के भाभी-रूप की अत्यंत मधुर झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। 'पूज्य पिता के सहज सत्य पर वार सुधाम, धरा, धन को' गहन वन की ओर चलते राम की अनुचरी सीता को एकमात्र चिंता यह है "पर देवर, तुम त्यागी बन कर क्यों घर से मुँह मोड़ चले?" 'पंचवटी' में लक्ष्मण और शूर्पणखा के बीच हुआ 'नूतन शुक-रंभा-संवाद' सुनकर भाभी सीता दोनों के बीच एक अपूर्व हास-रेखा खींच कर कहती हैं :

देवर, तुम कैसे निर्दय हो, घर आये जन का अपमान!
किसके पर-नर तुम, उसके जो चाहे तुमको प्राण-समान?

भाभी सीता को सचमुच यह चिंता है कि भ्रातृस्नेही लक्ष्मण अपने प्रति इतने रूक्ष क्यों हैं। यदि विवाह से इस समस्या का समाधान संभव है, तो लक्ष्मण को उस शूर्पणखा के साथ विवाह कर लेना चाहिए जो 'स्वयं सिद्धि-सी खड़ी द्वार पर करके अनुज-वधू का साज।' वह दूसरी ओर शूर्पणखा को भी यह विश्वास दिला देती हैं—

रहो यहाँ तुम अहो! तुम्हारा वर मैं इन्हें बनाऊँगी।

सीता इस अवसर पर अपनी भावी देवरानी के सामने जो अनिवार्य शर्त रखती हैं, उससे उनके अनेक गुणों—विशाल हृदयता, प्रकृति-प्रेम, करुणा, ममता आदि-का प्रकाशन हो जाता है :

हाँ, पालित पशु-पक्षी मेरे तंग करें यदि तुम्हें कभी,
उन्हें क्षमा करना होगा तो, कह रखती हूँ इसे अभी।

'साकेत' में सीता का 'जहाँ प्रकाश वहाँ छाया' वाला पत्नी-रूप ही प्रधान है। राम-वनवास की बात कान में पड़ते ही—

सीता ने सोचा मन में—
'स्वर्ग बनेगा अब वन में!
धर्मचारिणी हूँगी मैं,
वनविहारिणी हूँगी मैं।'

और वन में जाकर सीता सचमुच 'वनदेवी' बन जाती हैं। इतना ही नहीं, वहाँ की पर्णकुटी तो उनके लिए 'राजभवन मनभाया' बन जाती है—

सम्राट स्वयं प्राणेश, सचिव देवर हैं,
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं।
धन तुच्छ यहाँ, यद्यपि असंख्य आकर हैं,
पानी पीते मृग-सिंह एक तट पर हैं।

सीता यहाँ भोली-भाली कोल-किरात-भिल्ल-बालाओं के साथ बोध-विनिमय करती हैं। गान की लय में कात-बुन कर राजनंदिनी सीता यहाँ स्वावलम्ब का अनोखा पाठ पढ़ती हैं। सीता की यही कामना है कि घनश्याम राम अमृतवर्षा से इस जली सी भूमि को सरसा दें और वह स्वयं पाप-पुंज पर बिजली-सी टूट पड़ें।

'पाप-पुंज पर बिजली-सी टूट पड़ने' का यह अवसर सीता को वास्तव में मिल भी जाता है। लंका में रावण के यह कहने पर—

कहा मान अब भी हे भामिनि, बन इस लंका की रानी,
कहाँ तुच्छ वह राम! कहाँ मैं विश्वजयी रावण मानी!

उत्तर में एक बिजली-सी कड़क जाती है—

जीत न सका एक अबला का मन तू विश्वजयी कैसा?
जिन्हें तुच्छ कहता है, उनसे भागा क्यों, तस्कर, ऐसा?

और 'साकेत' के उत्तरखंड तक आते-आते तो 'भूमि की सुता पुण्य की प्रतिमा सीता' उसी प्रकार मातृभूमि की प्रतीक बन जाती हैं, जिस प्रकार बंकिमचंद्र चट्टोपाध्यायकृत 'आनंदमठ' में जगज्जननी दुर्गा सुजलां, सुफलां, मलयजशीतलां भारत-माता की प्रतीक बन जाती हैं। उर्मिला के शब्दों में—"हैं निज पार्थिवसिद्धि-रूपिणी सीतारानी।" और विभीषण-वधू सरमा के शब्दों में—

तुम सोने की सती मूर्ति, शम-दम की दीक्षा,
दी है अपनी यहाँ जिन्होंने अग्नि-परीक्षा।

सुमन्त्र (साकेत)

सुमन्त्र महाराज दशरथ के विश्वासपात्र तथा कर्तव्य-निष्ट सचिववर हैं। राजपरिवार में इन काका को अपरिमित आदर और अनुराग प्राप्त है। सारा परिवार मानो उनके समक्ष विनय से झुका रहता है और सभा के लिए सुमन्त्र का भी यही शुभाशीष है "जियो, कल्याण हो।" कैकेयी की वरयाचना के उपरांत महाराज प्रातःकाल यथासमय शयन-कक्ष से बाहर नहीं आते। यह देख कर सचिव को विशेष चिंता होती है। सौमित्र द्वारा यह सूचना मिलने पर "मँझली माँ हमें वन भेजती हैं, भरत के अर्थ राज सहेजती हैं" सचिववर भ्रांत होकर रह जाते हैं। उनका निःश्वास भी रुक-सा जाता है और वह इतना ही कह पाते हैं "आये खेत पर ही दैव, ओले···।" उन्हें विश्वास है कि दशरथ-पुत्र भरत यह प्रस्ताव कभी स्वीकार नहीं करेंगे। वह राम को भी इस आशंका से अवगत करा देते हैं—

देख तुम्हारा निष्कासन, कैकेयी-सुत का शासन,
नहीं चाहती कभी प्रजा, उड़ी क्रांति की कहीं ध्वजा?

किंतु, राम के यह कहने पर "पर वे मेरे भ्राता हैं, मँझली माँ भी माता हैं" सुमन्त्र न तो कुछ कह ही पाते हैं और न नीरव ही रह पाते हैं। अंत में वह धीरे-धीरे यही कहते हैं—

नहीं जानता मैं रोऊँ, या आनंदमग्न होऊँ!
राम तुम्हारा मंगल हो, प्राप्त हमें आत्मिक बल हो
अमरवृंद नीचे आवें, मानव-चरित देख जावें।

रोते हुए सुमन्त्र वल्कल लाते हैं और राम-लक्ष्मण तथा सीता को वन में ले जाने का गुरु-भार भी सुमन्त्र को ही सहन करना पड़ता है। सचिव सुमन्त्र के सब अनुरोध तथा तर्क व्यर्थ जाते हैं; राम उनके साथ नहीं लौटते—

कर में घोड़ों की रास लिये, निज जीवन का उपहास किये,
होकर मानो परतंत्र निरे सूना रथ लिये सुमन्त्र फिरे।

सचिव का तन-मन अवसन्न हो जाता है। सिर पर अनन्त-सा आ गिरता है। कटि टूट जाती है, भाग्य फूट जाता है। रात की कालिमा में नीरव गति से उदास उर लेकर सचिव पुर में प्रविष्ट होते हैं। अमात्य-वर की नीरवता ही उत्तर की शोकसूचना दे देती है। नृप समीप पहुँचने पर वह शोक भूल कर इस आशंका से भयभीत हो उठते हैं कि यह पोत डूब ही जावेगा या कूल किनारा पावेगा?

सुमन्त्र महाराज को धैर्य बँधाने का असफल प्रयास करके अपने कठोर कर्तव्य का समुचित निर्वाह करते हैं—

हे आर्य ! राम-मुख देखोगे, दुख देख क्या न सुख देखोगे ?
आवेंगे वे यश को लेकर, सुख पावेंगे तुमको देकर।

किंतु सुत-विरह वायु का बाण बन जाता है और महाराज का जीवन-दीप बुझ जाता है। सुमन्त्र "हा स्वामी !" कहकर ऊँचे रव से चीत्कार कर उठते हैं—मानो दव ने सुमन्त्र को दहका ही दिया हो।

सुमित्रा (लीला, साकेत)

सुमित्रा वीर क्षत्राणी हैं। कौशल्या के यह कहने पर "नारी-कुल में जन्म विधाता दे कहीं, तो क्षत्राणी करे किसी को नहीं" सुमित्रा का क्षात्रत्व प्रदीप्त हो उठता है—

जीजी, तब तो क्षात्रधर्म का लोप हो,
अनाचार का सभी प्रकार प्रकोप हो।
लूटपाट मच जाय, महा अन्याय हो,
जन-समाज असहाय, प्रजा निरुपाय हो···

सुमित्रा कठोर क्षात्रधर्म को एक ऐसा पर्व मानती हैं जो सबको प्राप्त नहीं होता। वह मानती हैं कि लोकहित-कार्य करने के लिए "कठोराघात-सहन अनिवार्य है।"

धैर्य तथा सहनशीलता सुमित्रा के चरित्र के दो प्रधान तत्व हैं। राम के साथ लक्ष्मण को भी वन जाने के लिए तत्पर पाकर वह अधीर न होकर संतुष्टि का ही अनुभव करती हैं—

लक्ष्मण तू बड़भागी है,
जो अग्रज अनुरागी है।

इतना ही नहीं, यह वीरांगना तो अपने दूसरे पुत्र शत्रुघ्न को भी शत्रुओं से जूझने के लिए सहर्ष विदा कर देती है—

जा, भैया, आदर्श गये तेरे जिस पथ से,
कर अपना कर्तव्य पूर्ण तू इति तक अथ से।
जिस विधि ने सविशेष दिया था मुझको जैसा,
लौटाती हूँ आज उसे वैसा का वैसा।

माँ सुमित्रा की यह सहनशीलता उनकी शक्ति है, दुर्बलता नहीं। अन्याय को किसी रूप में भी सहने के लिए वह कभी तैयार नहीं हैं। उन्हें लगता है कि राज्य से वंचित करके राम के साथ अन्याय किया जा रहा है। वह न तो स्वयं इसे उचित मानती हैं और न यह चाहती हैं कि लक्ष्मण ही इस अन्याय को सहन कर ले—

राघव शांत रहोगे तुम,
क्या अन्याय सहोगे तुम ?
मैं न सहूँगी, लक्ष्मण तू
नीरव क्यों है इस क्षण तू ?

कौशल्या के यह कहने पर "भरत राज्य की जड़ न हिले, मुझे राम की भीख मिले", क्षत्राणी सुमित्रा सिंही-सदृश गरज उठती हैं—

स्वत्वों की भिक्षा कैसी ?
दूर रहे इच्छा ऐसी।
वीर न अपना देते हैं,
न वे और का लेते हैं।
वीरों की जननी हम हैं
भिक्षा-मृत्यु हमें सम हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि माता सुमित्रा धैर्य तथा सहनशीलता की प्रतिमा होकर भी स्वाधिकार के लिए दृढ़ता-पूर्वक आवाज उठाने वाली तथा अनाचार और अन्याय का डटकर मुकाबला करने वाली वीरांगना भी हैं।

सुरभि

सुरभि एक मालिन की पालिता पुत्री है। जन्मना वह अति उच्च वंश की बालिका है जिसमें अपने कुल के सभी श्रेष्ठ संस्कार विद्यमान हैं—'गुण-गौरव ज्ञान निदान घने हैं इसमें।' उसकी जननी उसे मालिन की गोदी में धर कर निश्चिंत भाव से परलोकवासिनी हो जाती है। मालिन मातृ-वत् उसका लालन-पालन तथा नियमन-संरक्षण करती है।

यौवन के विशाल प्रांगण में प्रवेश करते-करते सुरभि के अनुभवों में वैविध्य-विस्तार तथा उसकी अनुभूतियों में गुरुत्व-

गांभीर्य आ जाता है। 'वह बड़े ध्यान से ज्ञान सुना करती है, मन-ही-मन कुछ दिन-रात गुना करती है।' यहीं वह एक ऐसे व्यक्ति के संपर्क में आती है जिसके उच्च हृदय का बल संयम है और निष्काम कर्म ही जिसका परम धर्म है। यही व्यक्ति मघ है जो सुरभि को अपनी ओर आसक्त कर लेता है। अब उसकी यह स्थिति हो जाती है "सुन-सुनकर सायंकाल उन्हीं की बातें गुन-गुनकर बहुधा बिता चुकी मैं रातें।"

सुरभि मघ के प्रति इस आसक्ति को भक्ति में परिणत कर देना चाहती है। इसीलिए वह मघ के घर जाने से पूर्व अपने नेत्रों को यह समझा-बुझा देती है—

न लज्जा करना,
हो जावेगा अन्यथा आप ही मरना।
तुम बने जहाँ मुँह चोर, पकड़ जाऊँगी,
निज मकड़जाल में आप जकड़ जाऊँगी।

अपने भाव-भंग से उसका निवेदन है 'हृत्कंज कोष में ही तुम रोओ गाओ' और स्वयं अपने प्रति उसका यह निदेश है "तुम उनके अंग न छुओ, ढंग से चरण-धूलि ले आओ।"

वह प्रत्येक कार्य में अघ का हाथ बटाती है। अघ जो भी भार अपने ऊपर लेता है, वह उसे सुरभि को सौंप देता है और वह उसका पूरी तरह निर्वाह करती है। अघ की आहत माँ को वह अपने मधुर व्यवहार से स्वस्थ और खुशी कर देती है। अपरिचित पान्थ की आँख से लहू बहता देखकर वह आँचल से रक्त पोंछकर उसे सांत्वना देती है—

पथिक मुझको बहन समझो, न अपनी स्थिति गहन समझो।

सुरभि मानती है कि जो व्यक्ति प्रेम करता है उसे त्याग करना ही चाहिए, अन्यथा वह कोरा रागमात्र रह जाता है। इसीलिए वह नहीं चाहती कि उसका चित्त उसकी चाह प्रकट कर दे। वह सिन्धु की भाँति अंतर्दाह सहती है और धीर-गंभीर बनी रहती है। मघ जान जाता है कि सुरभि को अवश्य कुछ सोच-संकोच है। वह उसके लिए उपयुक्त वर खोज लेना चाहता है। सुरभि अब मन की बात मन में नहीं छिपा पाती। वह स्पष्ट कह देती है, "तुम्हारी हूँ चरण-चेरी।" अनघ सहर्ष उसे पत्नी-रूप में अंगीकार कर लेता है। अब वे दोनों मिलकर लोकहित में लग जाते हैं।

सुरभि जानती है 'साधन-पथ है कठिन, विघ्नमय श्रेय है।' अतः वह मानती है, 'जो कुछ दे भगवान, धैर्य-पूर्वक सहो।' मघ पर अनेक मिथ्या आरोप लगाए जाते हैं। स्वार्थी अधिकारी अपना प्रकोप प्रकट करने के लिए उस पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते हैं। मघ की माँ अधीर हो जाती है। मघ की पत्नी सुरभि का कथन है—"माँ, पत्थर का हृदय करो, कातर न हो।" बंदी मघ उसे आशीष देता है 'सदैव सुखी रहो।' सुरभि इस आशीष को भयंकर अभिशाप मानती है। उसका कहना है कि सुख के उस आशीष की आवश्यकता तो केवल उन लोगों को है जो 'सब कुछ कर रहे तुच्छ सुख के लिए।' दूसरी ओर सुरभि को तो यही इष्ट है—

सहूँ शत दाह मैं;
चैन न पाऊँ, करूँ न फिर भी आह मैं।
विश्व-वेदना विकल करे मुझको सदा,
रक्खे सजग सजीव आर्ति या आपदा।
मेरा रोदन एक गूँजता गीत हो
जीवन ज्वलित कृशानु समान पुनीत हो।

वह उस सुख पर लात मार देती है जो हमें मनुष्यत्व से गिरा दे। इसी निष्कामता ने उसमें वह शक्ति तथा निर्भीकता भर दी है जो मगधराज के सैनिकों के समक्ष यह तक कह सकती है—

कुत्तो, मुझको चीड़-फाड़ डालो तुम चाहै,
किंतु तुम्हारे निन्द्य नृपति को कौन सराहे?

सुरभि अपने बुद्धि-बल से मगध के न्यायालय में यह सिद्ध कर देती है कि मघ अनघ हैं। स्वयं मगधराज अपनी भूल स्वीकार कर लेते हैं और मघ को बंधनमुक्त कर दिया जाता है। मगध की रानी यह कहकर सुरभि का हाथ मघ के हाथों में सौंप देती हैं—

जो थी अमृत-लता वही अब छुई-मुई है,
मघ, अपनी त्रुटिपूर्ति इसे समझो सुख पाओ।

सुलक्षणा

सुलक्षणा उर्मिला की अंतरंग सखी है। बाहरी कार्य-कलाप और क्रीड़ा-विनोद में ही नहीं, उर्मिला के भीतरी भाव-जगत् में भी वह उसके साथ है। वह उर्मिला की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं तथा आकांक्षाओं से भली-भाँति अवगत है। वह उर्मिला का अधिकतम उत्कर्ष चाहती है। जनकपुर के राजोद्यान में उर्मिला को झूला झुलाते हुए वह उसके सुख-समृद्धिपूर्ण भविष्य की कामना करते हुए कहती है—

ईश करे ऐसा ही हो, तुम
अनुपम गौरव पाओ।

सुलक्षणा उर्मिला के मन की बात जानती है। इतना

ही नहीं, ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर जब उर्मिला अपने मन की बात स्वयं व्यक्त नहीं कर पाती, तब वह इस कार्य के लिए सुलक्षणा का सहारा लेती है। जनकपुर में उर्मिला ने लक्ष्मण को देखा है। उस पर लक्ष्मण के रूप तथा शील का चमत्कारी प्रभाव पड़ा है। किंतु, यह सब वह स्वयं अग्रजा सीता के समक्ष व्यक्त नहीं कर पाती। अतः यह कार्य-भार सुलक्षणा को सौंप देती है—"सुनो इसी से, उनके क्या-क्या गुण गाये हैं।"

सुलक्षणा इतनी भावविभोर होकर राम-लक्ष्मण के शील-सौंदर्य का निरूपण करती है कि सीता कह उठती हैं—

हाँ, फिर ? अहा मुझे सुनने की
अभिलाषा होती है।

और सुलक्षणा सीता तथा उर्मिला के मन की बात कह देती है—

इस कारण तुम जन साधारण
उन्हें कभी मत लेखो,
घर आये वर पाये समझो।

सुलक्षणा को विश्वास है "ऐसा ही होगा सखि, जिससे सब कोई सुख लूटे।"

सुलक्षणा केवल सुख में ही उर्मिला की संगिनी नहीं है, वह दुःख की विषम बेला में भी अपनी सखी के साथ है। राम-वनवास के उपरांत चौदह वर्ष की लम्बी विरहावधि में सुलक्षणा सदा उर्मिला के साथ है। उर्मिला जिन-जिन को सदा-साथ रखना चाहती है उनका विवरण स्वयं उर्मिला के शब्दों में इस प्रकार है—

क्या-क्या होगा साथ, मैं क्या बताऊँ ?
है ही क्या, हा ! आज जो मैं जताऊँ ?
तो भी तूली, पुस्तिका और वीणा,
चौथी मैं हूँ, पाँचवीं तू प्रवीणा !

सुलक्षणा उर्मिला के विरहोद्‌गारों की श्रोतामात्र न होकर भोक्ता भी है। वह व्यंजनों की बड़ाई करके विरहिणी उर्मिला को भोजन की ओर प्रवृत्त करती है। हठ करके उर्मिला को क्षीर पिलाना चाहती है। प्रोषित-पतिकाओं को प्रणयपुरस्सर ले आने का दायित्व सुलक्षणा ही सँभालती है। उर्मिला का विरह-जर्जर मुख देखकर सुलक्षणा को बहुत दुःख होता है; वह दर्पण में उसका मुख उसे दिखाकर इस ओर से उसे सावधान करती है। उर्मिला अपने जीवन की वह बीती बात केवल सुलक्षणा के सामने व्यक्त करती है जब "हर्षित थे तो भी रोम-रोम हम दम्पति के, कर्षित थे दोनों बाहु-बंधन के मोद में।" और केवल सुलक्षणा से ही उर्मिला यह पूछ सकती है "कहाँ गया प्रिय झुकामुकी में करके वे रँगरलियाँ ?"

वनवास की अवधि पूर्ण होती है। लक्ष्मण अयोध्या लौटते हैं और उनके साथ ही उर्मिला का सुख-वैभव भी उसे पुनः प्राप्त हो जाता है। इस समय हँसकर उर्मिला से यह कह सकने की शक्ति-सामर्थ्य केवल सुलक्षणा के पास है—

कहाँ ये रंग भरे थे ?
सुप्रभात है आज, स्वप्न की सच्ची माया।

यह प्रभात केवल उर्मिला के लिए नहीं, सुलक्षणा के लिए भी सुप्रभात है क्योंकि आज उसे मानो अपना जीवन-लक्ष्य ही पूर्ण कर लेना है, कृतकार्य हो जाना है—

आओ आओ, तनिक तुम्हें सिंगार सजाऊँ,
बरसों की मैं कसक मिटाऊँ, बलि-बलि जाऊँ !

तभी तो उर्मिला-लक्ष्मण-मिलन के साथ ही सुलक्षणा न जाने कहाँ विलीन हो जाती है—

देखा प्रिय को चौंक प्रिया ने, सखी किधर थी ?

हज़रत मुहम्मद (काबा और कर्बला)

हज़रत मुहम्मद इस्लाम के प्रवर्त्तक हैं। 'काबा और कर्बला' में कवि के शब्दों में "हज़रत मुहम्मद जैसे महान थे, वैसे ही उदार; जैसे उच्च वैसे ही विनम्र।" प्रसिद्ध काबा-धाम के नवनिर्माण के अवसर पर इस प्रसंग को लेकर अरबों में परस्पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि परम पावन अवसद पाषाण को कौन प्रतिष्ठित करे। प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना बड़प्पन बता कर अपना अधिकार जता रहा था। साधु मुहम्मद ने यह सुयुक्ति सुझाकर उन्हें संकट-मुक्त किया :

प्रभु समक्ष, सोचो टुक मौन,
बड़ा कौन, छोटा है कौन ?
तने न भौंह, न खिंचे कमान,
उसके जन हम सभी समान।
वीर, दिखाओ वीर विवेक,
बिछा बड़ी सी चादर एक,
रख उस पर पावन पाषाण,
सभी उठाओ, पाओ त्राण।

पारस्परिक समता, सहयोग तथा सद्भाव हज़रत मुहम्मद के जीवनदर्शन का मूलमंत्र था। एक दिन किसी ने उन्हें एक दास सुलभ कर दिया। उसे पाकर उनके चित्त में यह नई चिन्ता उदित हो गयी कि क्या अब वह स्वयं स्वकार्य नहीं कर सकेंगे ? उन्हें यह उचित नहीं लगा। जिस व्यक्ति का जन्म सभी को मुक्ति का मंत्र प्रदान करने के लिए हुआ था वह स्वयं किसी को पाप-परतंत्र कैसे रख सकता था ? उन्होंने प्रेमपूर्वक उस दास का हाथ थाम कर कहा :

किसी वर्ग के और किसी भी देश के,
बन्धु सभी हम दास एक अखिलेश के।
रहो न अब से तात, हीन या दीन तुम,
मेरे जैसे हुए आज स्वाधीन तुम।

अपनी इस विशेषता के बल पर ही हज़रत मुहम्मद ने बिना मूल्य मित्रों को ही नहीं, शत्रुओं को भी क्रीत कर लिया था। शत्रु तथा मित्र सभी के लिए उनका एक ही कथन था :

भेजा गया हूँ स्वस्ति लेकर, शाप लेकर मैं नहीं।

ज्ञान-लब्धि के उपरान्त हज़रत मुहम्मद ने उसके प्रचार का निश्चय किया। इस कार्य का शुभारम्भ उन्होंने अपने घर-परिवार से ही किया। सहधर्मिणी खदीजा को तो पहले से ही यह विश्वास था 'पाओगे, विश्वस्त रहो।' अत: वह तो नबी से अविभिन्न थीं ही, उनके चचेरे भाई अली उनके सर्वप्रथम विश्वासी बने। मुहम्मद के चाचा अबूतालिब ने इस मान्यता के कारण अपना परंपरागत धर्म नहीं त्यागा 'सब हैं स्वतंत्र अपने मत में।'

अपने धार्मिक अभियान में हज़रत मुहम्मद को प्रबल विरोधियों का सामना करना पड़ा। मुहम्मद ने परंपरागत विचारों को चुनौती दी थी। अत: उनके निज जन—बुतपरस्त अरब—भी उनके विरोधी हो गये और क्रोधी कुरैशी तो उनकी हत्या तक के लिए कटिबद्ध हो गये। प्रभु के कार्य-हेतु जीवन-रक्षा के लिए मुहम्मद को जननी जन्मभूमि मक्का का परित्याग कर मदीना चले जाना पड़ा। शत्रुओं ने वहाँ भी उनका पीछा किया और उन्हें और उनके अनुयायियों को चैन से न बैठने दिया। तथापि, हज़रत ने शत्रुओं के प्रति भी अधिकतम उदारता का ही परिचय दिया। यहूदियों ने मुहम्मद के साथ वैर बनाये रखा। उधर मुहम्मद ने यहूदी धर्मावलम्बिनी सफ़ीया को अपनी आठवीं पत्नी-रूप में अंगीकार ही नहीं किया यह आश्वासन भी दिया कि 'स्वमत के सम्बन्ध में हम सब समान स्वतंत्र हैं।' मुहम्मद की मान्यताओं के कारण उनकी पुत्री जैनव को श्वसुर गृह में अनेक कष्ट सहने पड़े और घर तथा वर दोनों से ही वंचित होना पड़ा। पिता मुहम्मद ने अधीर होकर भी यही कहा :

जो सन्देश सुनाने आते,
पहले उत्पीड़न ही पाते,
पर क्या वे इससे भय खाते ?
कहते कहते हुत हो जाते।

हज़रत मुहम्मद दूसरों को बहुत कुछ देने आये थे। पत्नी आयशा ने इस अकिंचन धनी को पाकर न जाने क्या-क्या पा लिया था। जीवन-संघर्ष में उनकी सहचरी बनने वाली आयशा के शब्दों में हज़रत मुहम्मद का जीवन-मर्म एक ही पंक्ति में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

जन थे वे उस एक के, धन था उनका धर्म।

हाड़ा कुम्भ

मध्ययुगीन क्षात्र-धर्म के आदर्शों का चित्रण करने वाले काव्य 'रंग में भंग' के सभी पात्र आन-बान पर मर मिटने वाले हैं, पर उनमें सर्वोपरि है बूँदी-निवासी हाड़ा कुंभ। वह चित्तौड़ के राणा के यहाँ सेवा-कार्य करता था; स्वामी के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ रहते हुए भी उसे अपनी मातृभूमि से अनन्य प्रेम था। अत: आखेट-प्रेमी हाड़ा कुंभ जब मृगया से लौटकर नगर के बाहर बूँदी के दुर्ग का प्रतिरूप देखता है, तो पहले तो आश्चर्यचकित रह जाता है और फिर जब उसे वस्तु-स्थिति का पता लगता है तो उसका स्वाभिमान और देश-प्रेम जाग उठता है और वह मातृभूमि का अपमान न होने देने की प्रतिज्ञा करता है।

कौन मेरे प्राण रहते देख सकता है तुझे

क्षत्रिय वीरों के समान उसे मृत्यु-भय नहीं। यद्यपि वह जानता है कि वह और उसके मुट्ठी-भर साथी राणा का सामना नहीं कर पायेंगे और मृत्यु निश्चित है, फिर भी वह प्राण रहते लड़ता है और अनेक शत्रुओं को मार कर वीरगति पाता है।

स्वाभिमान, शौर्य, देशभक्ति आदि गुणों से सम्पन्न हाड़ा कुंभ में शील का अभाव नहीं है। वह राणा को देख उठ खड़ा होता है, उन्हें चेतावनी देने के बाद ही शस्त्र उठाता है और तर्क देता है कि वह अपनी आन-बान तथा देशभक्ति के कारण

स्वामी के विरुद्ध लड़ने को मजबूर है। किन्तु उसका व्यंग्य भी अत्यंत कटु है। वह राणा पर जिन व्यंग्य-बाणों का प्रहार करता है वे उसकी निर्भयता और स्पष्टवादिता के साथ-साथ उसकी तीव्र बुद्धि का भी परिचय देते हैं—

तोड़ लेते चित्त ही में दुर्ग बूँदी का बना

सारांश यह कि हाड़ा कुंभ मध्ययुगीन क्षत्रिय-धर्म की प्रतिमूर्ति है। वह उन क्षत्रियों में से एक है जो मरकर भी अमर हो गये और जिनके कारण राजपूत जाति अब भी गौरव से स्मरण की जाती है।

लाखा

चित्तौड़ में सिसौदिया वंश के राणा खेतल की मृत्यु के बाद राणा लाखा राजसिंहासन पर आसीन हुए। उनमें क्षत्रियोचित आवेश एवं दंभ तो था, पर वह विवेक और शौर्य नहीं जिसके लिए राजपूत विख्यात हैं। अतः बूँदी में हुई भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए वह बिना सोचे-समझे प्रतिज्ञा कर बैठे कि बिना बूँदी का किला तोड़े वह अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। इस प्रतिज्ञा को पूरा करना असंभव था। राणा के मंत्रियों और मित्रों ने वस्तु-स्थिति से निपटने के लिए एक युक्ति सुझाई—बूँदी का नकली किला बनवा कर उसे तोड़ा जाय। राणा ने अपनी भूल समझ उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। यह कार्य क्षत्रियोचित प्रण-पालन के विरुद्ध था। कुल मिलाकर राणा लाखा सामान्य मनुष्य था—दुर्बल, अविवेकी, आवेश के क्षणों में गलत निर्णय लेने वाला और अपनी गलती ज्ञात होने पर लज्जा, ग्लानि अनुभव करने वाला। अपनी झेंप मिटाने के लिए कुतर्क करने की योग्यता उसमें अवश्य थी। तभी तो राणा कुंभ के तर्क का उत्तर देते हुए कहता है—

वीर बूंदी के स्वयं मौजूद हो जब तुम यहाँ,
फिर कहो प्रण पालना-झूठा रहा मेरा कहाँ ?

हुर (काबा और कर्बला)

हुर हुसैन के प्रतिपक्षी यज़ीद का चतुर सेनानायक है। कूफा पहुँचने पर सर्वप्रथम हुसैन और उनके साथियों का साक्षात्कार इसी से होता है। उसके साथ एक हजार सैनिक भी हैं। वह हृदय से हुसैन के साथ है किंतु उसका तन यज़ीद के हाथों बिक चुका है। अपनी यह स्थिति वह हुसैन के समक्ष इन शब्दों में व्यक्त करता है—

होता मैं कृतकृत्य पहुँच कर स्वागत करने,
भेजा गया परंतु विवश सा तुमको धरने।

पुरस्कार का लोभ और राजकोष का भय-विचार त्यागकर वह हुसैन को यह सुविधा सुलभ कर देता है—

मुझे मिले ही नहीं कहीं तुम, मैं कह दूंगा,
लौट सुरक्षित रहो, यही सुन हर्षित हूँगा।

हुसैन छिपकर पीछे लौटना स्वीकार नहीं करते और सेना-सहित हुर को नमाज पढ़ाकर निर्भयतापूर्वक भय की ओर बढ़ चलते हैं।

हुर एक बार फिर युद्धभूमि पर हुसैन और उनके साथियों की सहायता का प्रयत्न करता है। विपक्ष का यह सेनानायक अपने सैनिकों से यही कहता है—

इन सा वीर-गंभीर-धीर क्या और अरब में ?
सच पूछो तो एक यही एक सिरमौर अरब में...
किंतु कहो, क्या यही अतिथि-सत्कार तुम्हारा ?
ये प्यासे मर रहे, यहाँ रहते जलधारा !
कुलस्त्रियों का दूध छातियों में सूखा है,
आँखों का कारुण्य आँसुओं का भूखा है।
शिशु क्या चूसें, विरस हुई रसना भी माँ की,
देखो अपनी आप क्रूरता की तुम झाँकी !
हतप्राय ये, इन्हें मार तुम क्या पाओगे ?
जीतेजी ही नहीं, मरे भी पछताओगे।

हुर उन्हें चुनौती देकर यह तक कह देता है "मेरे रहते, रोम नहीं छू सकते इनका।" किंतु, उन म्लेच्छ जनों में ज्ञान-विंदु भी शेष नहीं था। उन प्रलय-घनों में तो पत्थर ही भरे थे। वे 'घर का भेदी' कहकर हुर पर ही बरस पड़ते हैं। धर्म तथा न्याय के लिए प्राणोत्सर्ग करके हुर प्रथम जन्मफल पा लेता है। यह देखकर 'अजल रुधिर के अश्रु हुसैन दृगों में छाये!'

हुसैन (काबा और कर्बला)

हुसैन हज़रत मुहम्मद के जामाता अली के पुत्र और हसन के छोटे भाई थे। हज़रत मुहम्मद के तीसरे खलीफ़ा उसमान के बाद अली को सब मुसलमानों ने खलीफ़ा बनाया, परंतु सीरिया के गवर्नर अमीर मुआविया ने उन्हें खलीफ़ा मानने से इन्कार कर दिया और अपने प्रान्त सीरिया में खुद अपनी खिलाफ़त का ऐलान कर दिया। अली के देहांत के बाद मुसलमानों ने अली के बड़े पुत्र हसन को खलीफ़ा बनाया था। अमीर मुआविया ने अपने को खलीफ़ा मनवाने के प्रयत्न में उनके साथ लड़ाई ठान ली। परंतु हसन अपने पिता अली से भी अधिक विरक्त थे। वह किसी भी भाँति अपनों के अपघाती बनने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्हें इतनी शक्ति प्राप्त थी कि वह समर में मुआविया पर विजय पा सकते थे किंतु उन्हें 'संधि ही रुची, शांति हो जिससे घर में।' मुआविया ने उन्हें यह वचन दिया—

यह जैसा कुछ हुआ, उसे रहने दो वैसा।
मैं निज सुत को नहीं, खिलाफ़त तुमको दूँगा,
होगा नहीं यज़ीद, खलीफ़ा मैं ही हूँगा।

मुआविया ने अपने वचन का पालन नहीं किया और अपने पुत्र यज़ीद को अपना उत्तराधिकारी बना दिया। मुआविया स्वयं तो योग्य शासक था, किंतु यज़ीद तो मानो प्रत्यक्ष शैतान था। शांतिप्रिय हसन तो उसके लिए कांटा नहीं बन सकते थे किंतु हुसैन अपना रक्त बहाने के लिए कटिबद्ध थे। वह अयोग्य यज़ीद को खलीफ़ा मानने के लिए तैयार नहीं थे। कूफ़ानिवासी भी यज़ीद को अपना शासक नहीं मानते थे। उन्होंने यह संदेश देकर अपना दूत हुसैन के पास भेजा—

हम यज़ीद को नहीं, आपको ही मानेंगे,
और आपके लिए मरण जीवन जानेंगे।

यह संदेश पाकर हुसैन इस धर्म-संकट में पड़ जाते हैं कि वह कूफ़ा जाएँ या न जाएँ। उन्हें राज्य का लोभ तो न था किंतु जन-धर्म-हानि का भय अवश्य था। अतः वह अन्ततोगत्वा वहाँ जाने का ही निश्चय करते हैं—

बोले वे—अब यही भला कि चला जाऊँ मैं,
भले धर्म के नाम नितांत छला जाऊँ मैं!

और हुसैन सचमुच धर्म के नाम पर नितांत छले जाते हैं। कूफ़ा पहुँचने पर उनका स्वागत करने के लिए उनके समर्थक और पक्षधर उपस्थित नहीं होते, वहाँ तो उनका सामना करने के लिए हुर नामक चतुर सेनानायक के नेतृत्व में एक हज़ार सैनिक सन्नद्ध दिखाई पड़ते हैं। हुर शत्रु-पक्ष के साथ होने पर भी हुसैन की इतनी सहायता के लिए तैयार हो जाता है कि हुसैन चुपचाप वहाँ से वापस लौट जाएँ। किंतु हुसैन ने यह स्वीकार नहीं किया।

कर्बला क्षेत्र में दोनों पक्षों का भीषण मुकाबला हुआ। एक ओर मात्र बहत्तर मनुज थे और दूसरी ओर 'पशु बाईस सहस्र उधर वे लड़ने वाले।' एक पक्ष के पीछे जल से परिपूर्ण फरात नदी थी और दूसरे पक्ष की ओर—

स्वेद बहाता आप मरुस्थल ताप विकल है।
मरीचिका ही दूर-दूर है दृष्टि लुभाती,
किरण-किरण है यहाँ कनी की अनी चुभाती।
हू-हू करती हुई व्यार भूभल भरती है,
धू-धू करती हुई घूमती-सी धरती है।

विपक्षियों ने फरात नदी पर प्रहरी बैठा दिये थे ताकि हुसैन के संगी-साथियों को पानी की एक बूंद भी सुलभ न हो सके। अरब में जा बसने वाले कुछ आर्य इस अवसर पर हुसैन के साथियों के लिए फरात का पानी लाने के लिए प्राणों पर खेल जाते हैं। हुसैन अपने आत्मीयों तथा अनुयायियों को धर्म-यज्ञ में बलि होता देखते हैं। अपने हाथ से अपने पुत्र की परिकर बाँधकर हुसैन पुत्र को परमपिता के पास भेज देते हैं। अपने हाथों से गर्त खोदकर हुसैन अपने भाई हसन के हृत पोते को धरती में गाड़ देते हैं। सात बरस के भतीजे की प्राण-रक्षा के लिए वह शत्रुओं से विनय करते हैं—

कुम्हलाने दो न इस नबी के नवल कुसुम को।
निज हिंसा को, लो, हुसैन का मांस खिलाओ,
मेरे रुधिरपिपासु! इसे तो नीर पिलाओ!

किंतु वहाँ जन न थे, भेड़िये थे वे भूखे—

ताक तीर बेपीर किसी ने ऐसा मारा,
मरा तड़पकर एक बार बच्चा बेचारा!

हुसैन का एकमात्र साथी—असगर घोड़ा—सैन्यदल को चीरता हुआ उन्हें फरात नदी के तट तक पहुँचा देता है। किंतु हुसैन पानी की एक बूंद ग्रहण करना भी स्वीकार नहीं करते और शत्रु-दल से घिरकर अपने प्राणों की आहुति चढ़ा देते हैं।

□□

खण्ड ४

सन्दर्भ एवं अन्तर्कथाएँ

सन्दर्भ एवं अन्तर्कथाएँ

अ

अंबा—(ज० भा०) काशी-नरेश की सबसे बड़ी कन्या, इसकी माता का नाम कौशल्या था। वह राजा शाल्व पर आसक्त थी। सत्यव्रत (भीष्म) ने अपने भाई विचित्रवीर्य से विवाह के लिए अम्बा के साथ-साथ उसकी दो बहिनों अंबिका और अंबालिका का भी स्वयंवर के समय अनेक राजाओं को युद्ध में हराकर अपहरण कर लिया था। साल्व राजा के प्रति आसक्ति का ज्ञान होने पर भीष्म ने इन्हें साल्व के पास भेज दिया। साल्व द्वारा अस्वीकार किये जाने पर वह भीष्म को कारण मानते हुए वरण के लिए उनके पास गई। भीष्म द्वारा अस्वीकार किये जाने के पश्चात् वह प्रतिशोध-भावना से भीष्म के गुरु परशुराम के पास गई। परशुराम और भीष्म का युद्ध हुआ। देवता, पितर और गंगा के आग्रह से युद्ध की समाप्ति हुई तथा अंबा से परशुराम ने असमर्थता प्रकट की। अम्बा ने शिव की तपस्या कर वरदान मांगा कि वह पुनः द्रुपदकुल में जन्म लेकर भीष्म का वध करे। द्रुपद के यहाँ पुत्री बनकर उत्पन्न हुई किंतु पुत्र की तरह पालन-पोषण हुआ। नपुंसक रूप में उत्पन्न, यक्ष से पुरुषत्व प्राप्त कर वह शिखंडि रूप में प्रसिद्धि हुई। शिखंडि रूप में ही महाभारत-युद्ध में उसने भीष्म को मारा।

अंबालिका—(ज० भा०) काशी-नरेश की तीसरी कन्या जिसका विवाह सत्यवती के दूसरे पुत्र विचित्रवीर्य से हुआ था। विचित्रवीर्य के निधन के उपरांत संतानोत्पत्ति के लिए व्यास जी के साथ नियोग की व्यवस्था की गई। व्यास की कुरूपता को देखकर वह भयभीत होकर पीली पड़ गई। उससे उत्पन्न पुत्र पीले रंग या पाण्डु रोग से रोगी हुआ जो पाण्डु कहलाया।

अंबिका—(ज० भा०) काशी-नरेश की दूसरी कन्या जिसका विवाह सत्यवती के दूसरे पुत्र विचित्रवीर्य से हुआ था। विचित्रवीर्य के मरने के बाद संतान के लिए व्यास के साथ इसके नियोग की व्यवस्था की गई। व्यास की कुरूपता को देखकर समागम के समय अंबिका ने अपने नेत्र मूंद लिए जिससे उसका पुत्र धृतराष्ट्र जन्मांध हुआ। एक और पुत्र की कामना के लिए उसे पुनः मनाया गया, किंतु उसने अपने स्थान पर व्यासजी के पास एक दासी को भेज दिया जिससे विदुर उत्पन्न हुए।

अंशुमती (भा० भा० १९)—सुव्रत नामक मुनीश्वर की पत्नी अंशुमती बड़ी पतिपरायण और दयालु थी। उसके दो ही कार्य थे—पति-सेवा और रोगियों की चिकित्सा। दूर-दूर से अनेक रोगी उसके पास आते थे। वह उन सबका कष्ट दूर कर उन्हें सदुपदेश द्वारा मानसिक शांति प्रदान करती थी।

अकंपन (सा० ४४४, ६९)—रावण की सेना का एक बलवान राक्षस।

अक्रूर (द्वा० १२१)—यदुवंश के अन्तर्गत सात्वतवंशीय श्वफल्क के पुत्र अक्रूर, वृष्णि वीरों के सेनापति थे। इनकी माता का नाम गान्दिनी और पत्नी का नाम सुतनु या गुणवती था। वह कृष्ण के चाचा थे।

कंस की सलाह पर कृष्ण को वृन्दावन से मथुरा लाए। स्यमंतक मणि से भी इनका संबंध था। वह कृष्ण के भय से उसे छिपाने के लिए द्वारिका से बाहर चले गये थे। उन्हें मनाकर कृष्ण मथुरा लाए।

अगिया बेताल (गुरु० २५४)—विक्रमादित्य के दो बेतालों में से एक जिसके मुंह से लूक या लपट निकलती थी और जो सबको आतंकित करता था।

अग्नि-पूजकों का पितृवन (सिद्ध० ३१) आग की पूजा करने वाले अर्थात् पारसी।

पारसी मृत व्यक्तियों को नहीं जलाते। उनके यहाँ मृत शरीर को चील, गिद्ध और कौवों के भक्षण के लिए छोड़ दिया जाता है। उनके विश्वास के अनुसार अग्नि पूज्य है। अतएव उसमें दाह-संस्कार निषिद्ध है।

अग्नि शर्मा (द्वा० १२७)—ब्रह्मा के यज्ञ के एक मानस ऋत्विक्, एक यज्ञिक, एक ऋषि।

अघासुर वध—एक बार कृष्ण वन में बछड़ों को चराते हुए ग्वाल-बालों के साथ खेल रहे थे। उस समय कंस ने

पूतना और बकासुर के छोटे भाई अघासुर को कृष्ण को मारने के लिए भेजा। वह अजगर का रूप धारण कर मार्ग में लेट गया। खेल-खेल में ग्वाल-बाल और बछड़े उसके मुंह में घुस गये। कृष्ण ने भी घुस कर अपने शरीर को बढ़ाना आरंभ किया। तब तो अघासुर को सांस लेने में कठिनाई होने लगी और अंत में दम घुट जाने से उसकी मृत्यु हो गई।

अजमेर (सिद्ध० ९७)—वर्तमान राजस्थान का एक नगर। इस नगर की स्थापना सन् ११०० ईस्वी में चौहान राजा अजयदेव ने की थी।

अणुबम (विज० ४२)—एक भीषण संहारक बम जिसका निर्माण अणु के विखण्डन से होता है।

अत्रि—अनुसूया(भा०भा० १७)—अत्यंत प्राचीन ऋषि और उनकी पत्नी। अत्रि ऋग्वेद के मंत्रदृष्टा और उसके अनेक सूत्रों के रचयिता माने जाते हैं। उन्हें ब्रह्मा के मानस-पुत्रों में गिना जाता है और उनकी गणना सप्तऋषियों में भी होती है। उनकी पत्नी अनुसूया दक्ष-कन्या थीं जिनसे एक मत के अनुसार दुर्वासा हुए और दूसरे मत के अनुसार दो पुत्र सोम तथा दत्तात्रेय हुए। रामायण में चित्रकूट के समीप अत्रि का आश्रम बताया गया है, जहाँ वनवास के समय राम-सीता कुछ दिन रहे। अनुसूया पतिव्रताओं में अग्रणी मानी जाती हैं।

अदिति (श० ३९, ४१)—दक्ष की पुत्री, कश्यप की पत्नी, द्वादश आदित्यों की माता। नरकासुर द्वारा इसके कुण्डलों का अपहरण, भगवान कृष्ण द्वारा इन्हें दिव्य कुंडल तथा रत्नों की भेंट, एक हजार वर्षों तक विष्णु (वामन) को गर्भ में धारण। अदिति के गर्भ से विष्णु ने अवतार लिया।

अद्वैत (वि० प्रि० ७१)—दार्शनिक क्षेत्र में जो संप्रदाय एकत्ववाद और द्वैतवाद दोनों का प्रत्याख्यान करते हुए न तो 'सत्य' को एक मानता है न अनेक। उसके अनुसार ब्रह्म अगम, अगोचर, निर्गुण, अचिंत्य तथा अनिर्वचनीय है। इसलिए वह 'नेति-नेति' है। अद्वैत सत्ता को बौद्ध शून्य, विज्ञानवादी बौद्ध विज्ञान, शब्दाद्वैतवादी वैयाकरण स्फोट अथवा शब्द, शव शिव, शाक्त शक्ति तथा अद्वैतवादी वेदान्ती 'अद्वैत' (आत्मतत्त्व) कहते हैं।

अद्वैताचार्य (वि० प्रि०)—नवद्वीप के मायापुर नामक स्थान के एक प्रसिद्ध वैष्णव।

अनंग (दि० १७)—कामदेव। कामदेव की पत्नी रति के अनुनय-विनय करने पर शंकर ने उसे वरदान दिया था कि उसका पति जीवित तो हो जायगा पर अदृश्य रहेगा, अतः कामदेव का नाम अनंग पड़ गया।

अनुसूया (शकु० ९)—शकुन्तला की एक सखी। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् के आधार पर गुप्तजी के शकुन्तला काव्य में उसका उल्लेख है।

अभिमन्यु (ज० व० २)—सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न अर्जुन का पुत्र। यह उत्तरा का पति और राजा परीक्षित का पिता था। यह महाभारत युद्ध में चक्रव्यूह-भेदन करते समय सात महारथियों द्वारा मारा गया। अभिमन्यु के अन्य नाम हैं—आर्जुनि, सौभद्र, आदि।

अमरावती (सा० २०)—देवताओं की पुरी, इंद्रपुरी।

अमरीका (रा० प्र० १७)—अमरीका दो महाद्वीपों (उत्तरी तथा दक्षिणी) का समूह है। ये दोनों महाद्वीप पैसेफिक और अटलांटिक सागर के मध्य स्थित हैं।

अमीचंद (हि० ५१)—संभवतः वास्तविक नाम अमीरचंद था। वह अमृतसर का रहने वाला था और कलकत्ते में बस गया था; इतिहासकार उसे बंगाली बताते हैं। इसने स्वार्थवश अंग्रेजों की सहायता की। प्लासी के युद्ध से पूर्व क्लाइव और मीरज़ाफर में जो संधि योजना हुई उसमें अमीचंद से संबंधित क्लाइव के अनैतिक आचरण की पार्लियामेंट में घोर निंदा हुई। उसने नवाब सिराजुद्दौला के प्रमुख अधिकारी महाराज नंदकुमार को अंग्रेजों का पक्षधर बनाया था।

अमृत-मंथन (झं० ५४)—पुराण के अनुसार देवों और असुरों ने समुद्र का मंथन किया था जिसके परिणाम-स्वरूप १४ रत्न निकले थे जिनमें सर्वश्रेष्ठ था अमृत। इसके लिए शेषनाग की रस्सी और मंदराचल पर्वत को रई बनाया गया था।

अयोध्या (सा० १३)—भारत की एक प्राचीन नगरी, जो सरयू नदी के किनारे, आधुनिक नगर फैजाबाद के निकट स्थित है। अयोध्या कौशल (अवध) राज्य की राजधानी थी। वह देश की सात पवित्र नगरियों में से एक मानी जाती है। इसे भगवान राम का जन्म-स्थान माना जाता है। यह मुख्यतः वैष्णव तीर्थ है। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' की रचना यहीं प्रारंभ की थी। वाल्मीकि रामायण के अनुसार वैवस्वत मनु ने इसे बसाया था। इसे साकेत भी कहते हैं।

अर्जुन (ज० व० २)—इन्द्र के द्वारा कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न, महाराज पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र। युधिष्ठिर तथा भीम के अनुज, द्रौपदी, सुभद्रा, उलूपी तथा चित्रांगदा के पति। इनके पुत्रों के नाम थे—अभिमन्यु, इरावान, बभ्रुवाहन तथा

श्रुतकीर्ति। वह कृष्ण के सखा और द्रोणाचार्य के शिष्य थे।

अर्जुन-उर्वशी प्रसंग (भा० भा० १६)—एक बार जब अर्जुन दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए इन्द्रलोक गये तथा उर्वशी नाम की अप्सरा उनके रूप-गुण पर मुग्ध हो गयी और उन पर अपना प्रेम प्रकट करने लगी, उस समय अर्जुन ने उसका प्रेम-प्रस्ताव ठुकराते हुए कहा कि तुम देवराज की सेवा में रहने के कारण मेरे लिए इन्द्राणी के समान पूज्य हो, अतः यह प्रस्ताव अनुचित और अस्वीकार्य है।

अर्णोराज (सिद्ध० १२५)—सपादलक्ष (अजमेर राज्य) के राजा अनाक (आना, अर्णोराज)। अर्णोराज का वंशज ही पृथ्वीराज चौहान था। अजमेर राज्य पर सिद्धराज जयसिंह ने अधिकार कर अर्णोराज को बन्दी बना लिया था। उसका विवाह सिद्धराज की पुत्री कांचन दे से हुआ था।

अर्थशास्त्र (सिद्ध० १७)—कौटिल्य का अर्थशास्त्र संस्कृत में राजनीति-शास्त्र का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है।

अलंबुष (ज० व० ८७)—एक असुर जिसे घटोत्कच ने मारा था। वह राक्षस ऋष्यश्रृङ्ग का पुत्र था। इसका दूसरा नाम शालकंटकट था।

अलक्षेन्द्र (सिद्ध० १२८)—अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) मैसिडोनिया (मकदूनिया) का राजा (३५६-३२३ ई० पू०)। इसने फरवरी-मार्च ३२६ ई० पू० भारत पर आक्रमण किया था। तक्षशिला के राजा आम्भि (आम्भीक) ने उसकी सहायता की थी किन्तु महाराज पुरु ने उसके आक्रमण का मुकाबला किया था। पुरु से मुकाबले के बाद उसकी सेना ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया था। इसलिए वह गदरोसिया (मकरान) होकर ३२५ ई० पू० में वापिस लौट गया।

अवंतीनाथ (सिद्ध० ४२)—प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध राज्य। इसकी राजधानी उज्जयिनी (मालवा प्रदेश) थी। इसकी गणना १६ प्रसिद्ध जनपदों में की जाती थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने चौथी शताब्दी में इसे जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। सिद्धराज जयसिंह ने भी मालवा को जीतकर अवंतीनाथ की पदवी धारण की थी।

अवनीन्द्रनाथ (भा० भा० १६३)–(१८७१-१९५१) अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पाने वाले प्रथम कलाकार। इटली के चित्रकार गिलहार्डी तथा ब्रिटिश चार्ल्स पालमर से विधिवत् कला-शिक्षा प्राप्त कर कला-साधना की। कृष्ण-लीला संबंधी इनके चित्रों में पाश्चात्य एवं भारतीय शैली का मिश्रण है। उन्होंने तायकवान से जापानी शैली भी सीखी। १९११ में दिल्ली-दरबार में उन्हें सी० आई० ई० उपाधि से सम्मानित किया गया। बाद में वह विश्वभारती कलकत्ता के कुलपति बने।

अवस्ता (हि० १८९)—पारसियों का धर्म-ग्रंथ।

अशोक (सिद्ध० १२६)—(लगभग २७३-२३२ ई० पू०) मौर्य वंश का तीसरा सम्राट। कलिंग पर आक्रमण के पश्चात उसके हृदय में परिवर्तन हुआ और वह धर्म में प्रवृत्त हुआ। उसने बौद्ध धर्म के प्रसार हेतु अनेक धर्म-यात्राएँ की थीं। इसका साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में हिन्दुकुश से पूर्व में बंगाल तक उत्तर हिमालय की तराई से दक्षिण में पेमार नदी तक फैला था।

अश्वत्थामा (ज० भा० ३८६)—कृपा के गर्भ से उत्पन्न द्रोणाचार्य का पुत्र, महाभारत-काल का एक परम वीर व्यक्ति।

अश्विनी कुमार—ये दोनों सत्य और यस्त्र नाम से सूर्य की पत्नी सज्ञा से (अश्व रूप में) उत्पन्न माने जाते हैं। कहीं-कहीं इन्हें कश्यप और अदिति का पुत्र भी माना जाता है। ये देवों के वैद्य कहे जाते हैं।

असवद पाषाण (काबा० १४)—यह श्याम रंग का पवित्र पत्थर मक्का में मुसलमानों के काबा धाम में प्रतिष्ठित है। इसकी सात बार परिक्रमा को अत्यंत पुण्यकार्य माना जाता है। कहा जाता है कि यह पवित्र पाषाण अब्राहम ने गेब्रियल से प्राप्त किया था।

आ

आंजनेय (ज० भा० ३५९)—अंजनी के पुत्र—हनुमान।

आदि कवि (सा० ९१)—महर्षि वाल्मीकि, जिनकी रचना 'रामायण' को भारतीय परंपरा में 'आदि काव्य' कहा जाता है क्योंकि इसमें सर्वप्रथम मानव-चरित्र का अंकन पाया जाता है, साथ ही इसकी काव्यशैली वैदिक शैली को छोड़कर एक नई शैली का सूत्रपात करती है। निषाद के बाण से बिद्ध क्रौंचमिथुन में से नर-पक्षी को देखकर द्रवीभूत आदि कवि का शोक जिस रूप में प्रवाहित हुआ, वह लौकिक काव्य-साहित्य की पहली धारा है।

आना सागर (सिद्ध० ८६)—राजपूताने की एक झील, सांभर या संभर झील।

आरकटी (कि० ६२)—आरकाट या कर्नाटक का रहने वाला व्यक्ति।

आर्य (सिद्ध० १५)—भारत की एक प्राचीन सभ्य जाति (इस जाति के लोग भारत में द्विजाति नाम से प्रसिद्ध हैं और यूरोप के कई देशों में भी बहुत बड़ी संख्या में हैं।)

अपने धर्म और नियमों के प्रति आस्था रखने वाला श्रेष्ठ व्यक्ति।

आर्य्यभट्ट (भा० भा० ३६)—ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में हुए प्रसिद्ध वैज्ञानिक और भारतीय ज्योतिष-शास्त्र के विद्वान जिन्होंने बीजगणित का आविष्कार किया था और जिनके नाम पर भारत ने अपने पहले उपग्रह का नाम रखा।

आशाराज (सिद्ध० ४१)—महाराज सिद्धराज जयसिंह का सेनाध्यक्ष।

आश्रम-धर्म (सिद्ध० ८१)—जिन दो संस्थाओं के ऊपर हिन्दू समाज का संगठन हुआ है वे हैं वर्ण और आश्रम। आश्रम का आधार संस्कृति अथवा व्यक्तिगत जीवन का संस्कार करना है। संपूर्ण मानव जीवन मोटे तौर पर चार विकास-क्रमों में बाँटा जा सकता है। बाल्य और किशोरावस्था, यौवन, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था। इन्हीं के अनुरूप चार आश्रमों की कल्पना की गई है—१. ब्रह्मचर्य २. गृहस्थ ३. वानप्रस्थ और ४. संन्यास। वसिष्ठ धर्म सूत्र में इनकी संख्या चार है—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और परिव्राजक।

इ

इंद्रकानन (ज० व० २०)—इन्द्र का विहार-वन जहाँ कल्पवृक्ष और पारिजात वृक्ष हैं।

इंद्र (सिद्ध० ११२)—वैदिक देवता जिनका स्थान अन्तरिक्ष कहा जाता है। देवताओं के राजा; मेघों के स्वामी होने के कारण मेघवाहन, इनका नाम वारुण भी है। इनका वाहन ऐरावत (हाथी) तथा वज्र अस्त्र है, इन्द्र के धनुष का नाम इन्द्रधनुष है और इनकी तलवार का नाम परंज। रानी का नाम शची और पुत्र का नाम जयन्त; इन्द्र की सभा को सुधर्मा कहते हैं जिसमें देव, गंधर्व और अप्सराएँ रहती हैं। इन्द्रपुरी की राजधानी अमरावती है और वहीं नंदन-वन है जिसे इन्द्र-कानन भी कहते हैं। इसी उद्यान में कल्पवृक्ष, पारिजात वृक्ष हैं। इनके घोड़े का नाम उच्चैःश्रवा और सारथि का नाम मातलि है। यह ज्येष्ठ नक्षत्र और पूर्व दिशा के स्वामी हैं। इनके प्रधान शत्रु वृत्र, त्वष्टा, नमुचि, शंबर, बाण, बलि और विरोचन रहे हैं। इनके द्वारा हरिश्चन्द्र को स्वर्ण-रथ, अर्जुन को दिव्यास्त्र प्रदान किया गया था। विदर्भ में इनका मंदिर है। इन्हें कश्यप ऋषि और अदिति का पुत्र कहा जाता है। तीनों लोकों के स्वामी, देवश्रेष्ठ, सहस्त्राक्ष, तक्षक द्वारा मदयन्ती के कुंडल दिलवाने में उतंक के सहायक, समुद्र-मंथन से ऐरावत हाथी की प्राप्ति। इनके द्वारा कुन्ती के गर्भ से अर्जुन का जन्म, ब्राह्मण-रूप धारण करके कर्ण से कवच और कुंडल मांगना, विश्वामित्र का तप भंग करने के लिए मेनका को भेजना, ययाति को स्वर्ग से गिराना, शरद्वान ऋषि का तप भंग के लिए जानपदी अप्सरा को भेजना। खांडव वन में दिव्य नगर निर्माण हेतु विश्वकर्मा को आदेश। तिलोत्तमा के रूप पर मोहित होकर सहस्त्र नेत्र होना। श्रीकृष्ण एवं अर्जुन के साथ युद्ध और अर्जुन से हारना। तक्षक पुत्र अश्वसेन की रक्षा, कृष्ण द्वारा गोवर्धन पूजा के संदर्भ में इंद्र का मान-मर्दन और कृष्ण का गोविन्द नामकरण, नरकासुर को मारने की कृष्ण से प्रार्थना। अर्जुन को दिव्यास्त्र प्रदान, अर्जुन को स्वर्ग चलने का आदेश, चित्रसेन से अर्जुन को संगीत शिक्षा दिलवाना, लोमश ऋषि को युधिष्ठिर के पास अर्जुन के कुशल समाचार लेकर भेजना। दमयन्ती-स्वयंवर में नल को वरदान। महर्षि च्यवन पर वज्र प्रहार के लिए उद्यत होना। मदासुर से डरकर अश्विनी-कुमारों को सोम-पान का अधिकारी बनाना। युवनाश्वकुमर को अंगुली पिलाना, बाज बनकर उशीनर या शिवि से कबूतर के बराबर मांस मांगना फिर उसे वर देना। यवक्री को वर प्रदान, केशी दानव को मारकर देव-सेना का उद्धार और स्कन्ध को देव सेनापति पद पर आसीन करना, उसका देवसेना के साथ पाणिग्रहण कराना। रावण पुत्र इन्द्रजित से पराजय का कारण जानना, कर्ण को अमोघ शक्ति देना। त्रिशिरा को तप से डिगाने के लिए अप्सराएँ भेजना, त्रिशिरा वध, वृकासुर के मुख से निकलना, उसका वध करना, ब्रह्म-हत्या भय से इन्द्रलोक से भागना, जल में अथवा कमल-ताल में छिपना। इन्द्रलोक में प्रकट होकर नहुष के भय से अंतर्धान होना। महर्षि अंगिरा को वरदान। मातलि-जामाता नाग कुमार को दीर्घायु बनाना। शिव द्वारा दिव्य कवच की प्राप्ति, उसे अंगिरा को देना। विश्व-कर्मा से विजय नामक धनुष बनवाना तथा उसे परशुराम को देना। नमुचि वध से संकट में पड़कर अरुणा संगम में स्नान। स्कन्द को उत्क्रोश और पञ्चक अनुचर शक्ति नामक अस्त्र और घंटा प्रदान करना। भरद्वाज कन्या श्रुतावती की परीक्षा और वर प्रदान। इन्द्रतीर्थ में यज्ञ करने से शतक्रतु नाम पड़ना। रन्ति देव को वरदान, अंबरीश से मिलना। प्रह्लाद से शिष्य रूप में शील की शिक्षा प्राप्ति। गौतम को जीवन दान। काश्यप को सियार रूप में प्रकट होकर समझाना, नारदजी के साथ लक्ष्मी का दर्शन, लक्ष्मी को साथ लेकर अमरावती में प्रवेश। अहिल्या-बलात्कार के कारण गौतम के शाप से इन्द्र की दाढ़ी-मूँछ हरी हो गई और विश्वामित्र के शाप के कारण अपना अंडकोष खोना पड़ा जिससे मेड़े के अंडकोष जोड़े गए। राजर्षि गङ्गास्वन को स्त्री बनाना, मतङ्ग को वरदान। महर्षि देवशर्मा की पत्नी रुचि को प्रलो

भन देना और विपुल द्वारा फटकार। अश्विनी कुमारों के निमित्त च्यवन के साथ संघर्ष। पञ्चशिखा वाले बालक के रूप में शिवजी पर वज्र प्रहार करते समय बांह का स्तम्भित होना। उत्तङ्क मुनि के डंडे में वज्र का संयोग कराना। स्वर्ग में कृष्ण का स्वागत। युधिष्ठिर को अपने रथ में बैठाकर सदेह स्वर्ग चलने के लिए कहना। अन्य नाम–अदितिनंदन, आखंडल, अमरेश, असुरार्दन, असुर सूदन, वलभित, बलहन्, बलजित्, बल-निशूदन, बलवृत्र धन, भूत भव्येश, शक्र, शम्बरहन, शम्बर पाकहन्, शतक्रतु, वतमन्यु, दशशताक्ष, दशशतनयन, दशशतेक्षण, दैत्यनिबर्हण, हरि, हरिश्मश्रु, हरि-हय, हरिमान्, हरिवाहन, ईश्वर, जगदीश्वर, काश्यप, कौशिक, किरीटी, कुशिकोत्तभ, लोक त्रयेश, मधवा, महेन्द्र, मरुत्पत्ति, मरुत्वान, नमुचिह्न, पाकशासन, पर्जन्य, पुरन्दर, पुरुभूत पूषानुज पुष्करेक्षण, सहस्त्राक्ष, सर्वदेवेश, सर्व लोका-भर, त्रैलोक पति, त्रिदशेश, त्रिलोक राज, वज्रभृत, वज्रधर, वज्रपाणि, वज्री, वरद, वासव, विबुध श्रेष्ठ, वृषाकपि, वृत्रहन्, विश्व भुक।

इंद्रप्रस्थ (ज० भा० १२६)—पांडवों की राजधानी (वर्तमान दिल्ली) विश्वकर्मा द्वारा इसका निर्माण।

इंद्रवर्मा (यु० २१)—मालव-नरेश। पांडव पक्ष का एक योद्धा, जिनके अश्वत्थामा नामक हाथी का भीम ने वध किया था।

इंदिरा (यु० १९)—लक्ष्मी का एक नाम।

इंद्राणी (शची) (श० २६)—पुलोपा नामक दैत्य की पुत्री तथा स्वर्ग के राजा इन्द्र की पत्नी। इसके पुत्र का नाम जयन्त तथा पुत्री का नाम जयन्ती था।

ई

ईसा (वि० वे० ३५)—ईसाई धर्म के प्रवर्त्तक महात्मा ईसा (जीसस क्राइस्ट)।

ईश्वरचंद विद्यासागर (भा० भा० १६२)–(१८२०-१८९१)—मेदिनीपुर जिले के निर्धन पिता ठाकुरदास बंद्योपाध्याय के तीक्ष्ण बुद्धि पुत्र जिनकी आरंभ से ही विद्या के प्रति रुचि थी। कलकत्ता में ९ वर्ष की आयु में संस्कृत कालेज में विद्यारंभ, प्रत्येक परीक्षा में प्रथम स्थान, १८४१ में फोर्ट विलियम कालेज में मुख्य पंडित, तभी विद्यासागर की उपाधि से विभूषित, अंत में स्पेशल इंस्पैक्टर पर मतभेद के कारण त्यागपत्र, फिर साहित्य और समाज की सेवा, निर्धन विद्यार्थियों एवं विधवाओं की सहायता, स्त्री-शिक्षा के प्रबल समर्थक, शिक्षा-प्रणाली में अनेक सुधार, विधवा-विवाह के प्रबल समर्थक, विधवाओं के पुत्रों को वैध घोषित कराया। अपने पुत्र का विवाह विधवा से कराया, बंगला गद्य के प्रथम प्रवर्तकों में से एक, ५२ पुस्तकों की रचना जिनमें १७ संस्कृत में थीं।

उ

उग्रसेन (द्वा० ९९)—कंस के पिता और वृष्णि वंश के एक प्रतापी राजा। कंस इन्हें कारागार में डालकर स्वयं मथुरा प्रदेश का राजा बन गया था।

उच्चैःश्रवा (व० वै०)—इंद्र का वाहन। समुद्र-मंथन से उत्पन्न एक उत्तम अश्व। इंद्र का वाहन।

उज्जयिनी (सिद्ध० ३४)—प्राचीन मालव राज्य की राजधानी। इसको अवंतिका भी कहते हैं। इसकी गणना हिन्दुओं की सात पवित्र नगरियों में की जाती है। यह नगरी क्षिप्रा (शिप्रा) नदी के तट पर स्थित है तथा विभिन्न मंदिरों और विशेष रूप से महाकाल के शिव-मंदिर से शोभायमान है।

उत्कल (वि० प्रि० ७७)—वर्तमान उड़ीसा–यह भारत के पूर्वी समुद्र-तट पर उत्तर में बंगाल और दक्षिण में आंध्र प्रदेश तक फैला हुआ है। प्राचीनकाल में इसका नाम कलिंग भी था।

उत्तमौजा (ज० भा० ४१५)—महाभारत में पांडवों की ओर से लड़ने वाला एक राजा, बलवीर्य में सबसे बढ़कर था।

उत्तर (सा० २६६)—संस्कृत के महाकवि तथा नाटक-कार भवभूति द्वारा रचित नाटक 'उत्तररामचरित' जिसमें लोकोपवादवश सीता के परित्याग की करुण कथा वर्णित है। यह करुण रसप्रधान कृति है। वास्तव में भवभूति का करुण तो पत्थरों को रुलाने वाला और वज्र के हृदय को विदीर्ण करने वाला है–'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयं'।

उत्तरा (ज० व० ४)—अभिमन्यु की पत्नी और परीक्षित की माता। मत्स्य देश की कन्या। अज्ञातवास के समय बृहन्नला रूप में अर्जुन ने इसे संगीत-शिक्षा दी। कवि मैथिलीशरण गुप्त ने जय भारत तथा जयद्रथ-वध में उत्तरा का चरित्र-चित्रण किया है। जयभारत में वह बालिका रूप में उपस्थित होती है और जयद्रथ-वध में अभिमन्यु की पत्नी के रूप में। उसके चरित्र की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—अबोध, सारल्य, आत्माभिमान और वंश का दर्प इसके प्रमुख गुण हैं। पत्नी-रूप में आर्य नारी के सभी गुण उसमें विद्यमान हैं, पति के प्रति पूर्ण समर्पण भाव, अतिशय प्रेम, अनिष्ट की आशंका और अंत में हृदयद्रावक करुणा आदि। सामान्य

परंपरा के अनुसार सती होने का प्रस्ताव करती है किंतु गर्भिणी होने के कारण कृष्ण के आदेश से जीवित रह कर परीक्षित को जन्म देती है।

उदयन (सिद्ध० ४७)—महाराज सिद्धराज जयसिंह का अत्यंत विश्वासपात्र मंत्री जो ऊदा मंत्री के नाम से भी प्रसिद्ध है।

उदयाद्रि (सिद्ध० २१)—उदयगिरि पर्वत।

उद्धव (द्वा० १६०)—एक यादव। श्रीकृष्ण के सखा और मंत्री। कृष्ण ने गोपियों को समझाने तथा सान्त्वना देने के लिए इन्हें ब्रज भेजा था।

उपयाजक (ज० भा० ६७)—परम शांत, प्रभावशाली, संहिता के स्वाध्याय में तत्पर, कश्यपगोत्री एक श्रेष्ठ महर्षि जो याज के भाई थे। द्रोण विनाशक पुत्र की प्राप्ति के लिए महाराज द्रुपद ने इनसे प्रार्थना की थी। इनकी तपस्या से द्रुपद को द्रौपदी और धृष्टद्युम्न की प्राप्ति हुई थी।

उपसुन्द (ज० भा० १२४)—निकुम्भ दैत्य का पुत्र, सुन्द का भाई। दोनों भाइयों में अत्यधिक प्रेम था। दोनों ने ही विन्ध्य पर्वत पर तपस्या करके वर प्राप्त किया था कि उनको एक-दूसरे के अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता। तिलोत्तमा के कारण इन दोनों भाइयों की एक-दूसरे के हाथ से गदा-युद्ध में मृत्यु हुई।

उपेन्द्र (द्वा० ३४)—भगवान विष्णु का एक नाम।

उर्वशी (ज० भा० १६२)—इंद्रलोक की अप्सरा, इसने अर्जुन से प्रेम-प्रस्ताव किया था। अपने पूर्वज पुरुरवा की प्रेमिका तथा इंद्र की दासी होने के कारण अर्जुन ने उसे अपनी जननी स्वीकार किया। इस पर उर्वशी ने उसे क्लीव (नपुंसक) होने का शाप दिया। अज्ञातवास के समय यही शाप उसे वरदान बन गया। बृहन्नला के रूप में वह अपने आप को महाराज विराट के यहाँ छिपाए रख सका।

उलू-ध्वनि (वि० प्रि० ४५)—बंगाल में मांगलिक अवसरों पर स्त्रियाँ एक विशेष प्रकार की ध्वनि मुंह से निकालती हैं जिसे उलू-ध्वनि कहा जाता है।

उलूपी (ज० भा० १३४)—ऐरावत कुल में उत्पन्न कौरव्य नाग की पुत्री। वह अर्जुन को हरिद्वार से नाग-लोक में ले गयी। दोनों का विवाह। अर्जुन द्वारा इसके गर्भ से इरावान का जन्म। राजसूय-यज्ञ के समय इसका बभ्रुवाहन को अर्जुन से युद्ध करने की प्रेरणा देना। युद्ध में अर्जुन का मूर्छित होना। संजीवन मणि द्वारा इसका अर्जुन को जिलाना। बभ्रुवाहन, उसकी माँ तथा अर्जुन की पत्नी चित्रांगदा के साथ हस्तिनापुर आना, कुन्ती और द्रौपदी के चरण छूना, सुभद्रा से भेंट। इसके द्वारा गान्धारी की सेवा। पांडवों के महाप्रस्थान के बाद इसका गंगाजी में प्रवेश। अन्य नाम—भुजंगातमजा, भुजगौत्तमा, कौरवी, पलशनन्दिनी, पलगी, उरगातमजा। अर्जुन पर मोहित होकर उन्हें नागलोक में ले गयी जहाँ दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। उलूपी के पुत्र का नाम इरावान था जो महाभारत के युद्ध में मारा गया।

ऋ

ऋत्विज (ज० भा० २३८)—यज्ञकर्त्ता, ऋषि।

ए

एंड्रयूज (कि० दीन वधु ४१)—चार्ल्स फ्रीयर एण्ड्रयूज। इनका जन्म १२ फरवरी १८७१ को इंग्लैंड के न्यूकासल नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम एडविन आर्नोल्ड और माता का नाम शार्लेट था। सन् १९०४ में वे भारत आए थे। वे दिल्ली में सेंट स्टीफेंस कालिज के उपप्रधानाचार्य भी रहे थे। भारत के बाहर अफ्रीका और फीजी द्वीप में भारतीयों की दशा सुधारने तथा कुली-प्रथा की समाप्ति के लिए इन्होंने महत्त्वपूर्ण काम किया था। इनका निधन ५ अप्रैल, १९४० को हुआ था।

एकचक्रा (व० सं० '७)—एक प्राचीन नगरी, जहाँ कुंती देवी अपने पाँच पुत्रों के साथ एक ब्राह्मण के यहाँ ठहरी थीं। भीमसेन ने यहाँ बकासुर का वध किया था।

एकलव्य (भा० भा० ४८), (ज० भा० ६२)—एकलव्य एक भील-बालक था। वह द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखना चाहता था पर उन्होंने जब उसे शिष्य नहीं बनाया तो वह उनकी मूर्ति स्थापित कर अकेला बाण-विद्या सीखने लगा और उसमें निष्णात हो गया। एक बार शिकार खेलने के लिए आये पांडवों का कुत्ता उधर जा निकला और भौंकने लगा। एकलव्य ने सात बाण उसके मुंह में इस प्रकार मारे कि वह चुप हो गया और आहत भी नहीं हुआ। उसके इस लाघव को देख अर्जुन चिंता में पड़ गया और उसकी चिंता दूर करने के लिए द्रोणाचार्य ने गुरुदक्षिणा के रूप में उसके दाएँ हाथ का अंगूठा मांगा। एकलव्य ने अपना अंगूठा काट कर गुरु के चरणों में रख दिया। यह प्रसंग गुरु-भक्ति का ज्वलंत आदर्श प्रस्तुत करता है।

ऐ

ऐरावत (न० ४०)—इंद्रलोक का हाथी। इंद्र का वाहन।

ओ

ओडायर (अजित ४६, ४८)—सर माइकेल फ्रांसिस ओडायर, जो २६ मई १९१३ से २७ मई १९१९ तक पंजाब

के लेफ्टिनेंट-गवर्नर रहे। जलियांवाले बाग में हुए भीषण नरसंहार के लिए उत्तरदायी होने के कारण उन्हें पदच्युत कर दिया गया था।

क

कंक (ज० भा० २४१)—युधिष्ठिर का छद्म नाम, अज्ञातवास के समय पांडवों को अपना वेष और नाम बदल कर महाराजा विराट के यहाँ रहना पड़ा था। युधिष्ठिर कंक नाम से राजा के पंडित बन गए।

कंस (द्वा० ७४)—मथुरा के महाराज उग्रसेन का पुत्र, कालनेमि दानव का अंश। जरासंध की पुत्री उसकी पत्नी थीं। पिता को कारागार में डालकर स्वयं सिंहासन पर बैठा। आकाशवाणी सुनकर देवकी और उसके पति वसुदेव को कारागृह में डाला, देवकी के छः शिशुओं का वध किया। कृष्ण के हाथों मारा गया।

कच (ज० भा० २३)—देव-गुरु वृहस्पति का ज्येष्ठ पुत्र, देवों की प्रेरणा से दैत्य-गुरु शुक्राचार्य के पास संजीवनी विद्या सीखने जाना, शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का इनकी ओर आकृष्ट होना। दैत्यों द्वारा इन्हें मार कर पहले कुत्तों को खिलाना, दुबारा समुद्र में डालना और तीसरी बार इनकी राख को शराब में मिलाकर शुक्राचार्य को पिलाना। दो बार शुक्राचार्य द्वारा जीवित करना तथा तीसरी बार अपने पेट में ही कच को संजीवनी विद्या सिखलाना। शुक्र का पेट फाड़कर निकलना और शुक्राचार्य को जीवित करना। देवयानी द्वारा विवाह की प्रार्थना, कच द्वारा अपने को देवयानी का भाई कहना। देवयानी का संजीवनी विद्या भूलने का शाप देना, कच का देवयानी को ब्राह्मण जाति का वर न मिलने का शाप देना और देवलोक जाकर देवताओं को संजीवनी विद्या सिखलाना।

कणिक (ज० भा० ७०)—धृतराष्ट्र का एक मंत्री जो कूट राजनीति और अर्थशास्त्र का पंडित था। वह उत्तम मंत्र का ज्ञाता ब्राह्मण था।

कण्व—कश्यप के कुल में पैदा हुए एक प्रसिद्ध मुनि। कण्वाश्रम चंपाल नदी के किनारे स्थित था। शकुन्तला का पालन इन्होंने ही किया था।

कनू (द्वा० ४३)—कृष्ण का नाम।

कपिल मुनि (हि० १७४)—सांख्यशास्त्र के प्रणेता। यह विष्णु के चौबीस अवतारों में माने जाते हैं। इन्होंने राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को शाप देकर भस्म कर दिया था।

कमालपाशा (हि० १६२)—(१८८२-१६३८ ई०) आधुनिक तुर्की के निर्माता। किसान परिवार में जन्मे, आरंभ से ही दुर्दान्त स्वभाव के, १७ वर्ष की आयु में सब-लेफ्टिनेंट, गुप्त क्रांतिकारी दल के सदस्य जो सुल्तान की तानाशाही समाप्त करना चाहता था। वह पकड़े गये पर पुनः विद्रोह में शामिल। प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों की चाल व्यर्थ कर दी और उनकी जीत पर जीत होती गयी। पर इस युद्ध में तुर्की हार गया। ग्रीस द्वारा तुर्की पर आक्रमण के समय कमाल ने अपार शौर्य दिखाया और जीते। कमाल ने देश को प्रजातंत्र घोषित किया और स्वयं प्रथम राष्ट्रपति बने। धार्मिक नेताओं के विरोध करने के बावजूद सामाजिक सुधार किये—पर्दाप्रथा को हटाया, स्त्रियों को अधिकार प्रदान किये। १६२४ में खिलाफत-प्रथा का अंत किया, तुर्की को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया, इस्लामी कानूनों को हटाकर नई संहिता स्थापित की, बहु-विवाह गैरकानूनी घोषित किया गया, अरबी तिथि की जगह रोमन लिपि अपनाई गई।

कर्ण (ज० व० ६)—इनकी उत्पत्ति सूर्य के अंश से कुन्ती के गर्भ से हुई थी। जन्म के समय ही इनके शरीर पर कवच-कुंडल थे। जन्म होते ही कर्ण को लोकलाज के कारण कुमारी कुन्ती ने अश्व नदी में परित्याग कर दिया था। इनका पालन-पोषण कौरवों के सारथि अधिरथ तथा उसकी पत्नी राधा ने किया था। राजकुमारों की शस्त्र-परीक्षा में अर्जुन द्वारा इनका अपमान किए जाने पर दुर्योधन ने इन्हें अंग देश का राजा बना दिया। इन्होंने भी उसे जीवनपर्यन्त मित्रता निबाहने का वचन दिया और वचन का निर्वाह किया।

कर्णदेव (सिद्ध० ४)—सिद्धराज जयसिंह के पिता तथा मीनल दे के पति।

'कला कला के लिए' (सा० ३७)—इस उक्ति में पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्रचलित एक मान्यता 'आर्ट फार आर्ट्स सेक' की ओर संकेत है। इस विचारधारा के समर्थकों में विक्टर ह्यूगो, स्विनबर्न, पेटर, ह्विसलर, आस्कर वाइल्ड, ब्रेडले, क्लाइव बेल आदि अग्रगण्य हैं। इसका विश्वास है कि काव्य अथवा कला का अपना उद्देश्य आप ही है। सौंदर्य की सृष्टि अपने आप में अपनी सिद्धि है, उसके अतिरिक्त किसी नैतिक प्रयोजन की पूर्ति काव्य के लिए अप्रासंगिक है। काव्य का संसार अपने आप में स्वतंत्र, एक निराला संसार है, अतः सामान्य लोक-नियम तथा रीति-नीति आदि का उसके साथ कोई संबंध नहीं है।

कलि (व० सं० ३६)—सत्ययुग आदि के क्रम से प्रवृत्त होनेवाला चौथा युग।

कलिंग-जेता (वि० वे० ३७)—सम्राट् अशोक।

कल्माषपाद (ज० भा० १०६)—एक इक्ष्वाकु वंशी राजा, जो ऋतुपर्ण के पौत्र एवं सुदास के पुत्र थे। अन्य नाम चित्रसह, सौदास। इनकी पत्नी का नाम मदयंती था। शक्ति मुनि से विवाद और मुनि का तिरस्कार। शक्ति द्वारा राक्षस होने का शाप, विश्वामित्र की प्रेरणा से किंकर नामक राक्षस का इनके शरीर में आवेश। अश्मक इनका पुत्र था।

कवि ठाकुर (वि० वे० २०)—विश्व कवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जिन्हें उनकी कृति 'गीतांजलि' पर १९१३ में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। १९१४ में उन्हें 'सर' की उपाधि प्रदान की गयी और आक्सफार्ड विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० लिट्० उपाधि से विभूषित किया। जलियांवाला बाग में हुए भारतीयों के नृशंस हत्याकांड के प्रति विरोध प्रदर्शित करते हुए उन्होंने १९१९ में 'सर' की उपाधि का परित्याग कर दिया। १९२१ में उन्होंने बोलपुर (बंगाल) में विश्वभारती विश्वविद्यालय की स्थापना की।

७ अगस्त, १९४१ को उनका स्वर्गवास हो गया।

कशा-चिह्न (वि० प्रि० ९१)—कोड़ों का निशान। कहा जाता है कि मुसलमान कुलोद्भव व्यक्ति चैतन्य का शिष्य बन गया। उसका नाम हरिदास हो गया। उसके सजातीयों ने उसे कोड़ों से मारा और नदी में बहा दिया। नदी से निकालने के बाद जब वह चैतन्य से मिला तो चैतन्य ने उसके शरीर पर पड़े कोड़ों के चिह्न अपने शरीर पर दिखलाए।

कांचन दे (सिद्ध० ८२)—सिद्धराज की कन्या जिसका विवाह अर्णोराज (अर्णवराज) से हुआ था।

काक भट्ट (सिद्ध० ९५)—काठियावाड़ का दुर्गपाल तथा सिद्धराज का सेनानायक। अर्णोराज और जयसिंह से संधि तथा कांचन दे से उसके विवाह के प्रसंग में गुप्तजी ने उसकी कूटनीतिज्ञता का संकेत किया है।

काम (शंकु० १२)—कामदेव, प्रेम के देवता जिन्हें ब्रह्मा के हृदय से उत्पन्न कहा गया है। शिव ने इन्हें जलाकर भस्म कर दिया था। इन्द्र के कहने से यह उमा से विवाह करने के लिए शिव को राजी करने गये थे। विभूति द्वादशीव्रत करने के कारण अनंगावती, रति के साथ एक और पत्नी बन गई और वह प्रीति कहलायी। सिद्धेश्वर के निकट कुसुमेश्वर में शिव की उपासना कर इन्होंने पुनः देवत्व प्राप्त किया, इनके बाणों से पीड़ित हो ब्रह्मा अपनी पुत्री से ही प्रेम करने लगे थे, पर यह बतलाने पर कि इन्होंने केवल कर्त्तव्य-पालन किया था, ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण के पुत्र होने का वर दिया। इन्होंने नव-दुर्गाओं को भी काम-पीड़ित किया था।

स्त्री-पुरुष संयोग की प्रेरणा देनेवाला एक पौराणिक देवता, वसंत इसका साथी, कोकिल वाहन, उसका शस्त्र धनुष-बाण (फूलों का बना) है। उन्मादन, शोषण, तापन, सम्मोहक और स्तंभन इसके पाँच बाण कहे जाते हैं।

कारनेगी—(प० प्र० १४०) (१८३५-१९१९) अमरीकी उद्योगपति, तथा परोपकार के कार्यों के लिए दान देने वाला प्रसिद्ध महान दानी।

कार्तिकेय—(द्वा० ९३) महादेव के पुत्र जिनका लालन-पालन चन्द्रमा की स्त्री कृत्तिकाओं ने किया था। इनका दूसरा नाम कुमार; देवसेना पति तारकासुर का वध करने के लिए इनका जन्म हुआ। इसको मारने के कारण तारकारि। इनकी स्त्री का नाम देवसेना जो ब्रह्मा की पुत्री थी। कहा जाता है पार्वतीजी शिव का वीर्य धारण न कर सकी, अतएव पृथ्वी, अग्नि और गंगाजी ने उसे क्रमशः धारण किया। जब उस वीर्य को गंगाजी भी धारण नहीं कर सकीं, तो उसे शरबन में फेंक दिया। वहीं तारकारि शरजन्मा उत्पन्न हुए। इन्हें दूध पिलाने के लिए देवताओं द्वारा प्रेरित छह कृतिकाओं द्वारा समान रूप से स्तन्यपान कराने के कारण इन्होंने छह मुख धारण किए। इसलिए इन्हें षण्मुख कहा गया। इन्हें अग्नि, भू, गंगा-पुत्र, षडानन, शरवणभव भी कहा जाता है।

कालयवन—हरिवंश पुराण के अनुसार यवनों का एक राजा जिसने जरासंध के साथ मथुरा पर चढ़ाई की थी।

कालिंजर—(सिद्ध० ११५) (कालंजर) उत्तरप्रदेश के बाँदा जिले में स्थित। यहाँ का किला बहुत सुदृढ़ माना जाता था। बार-बार गौरी, शेरशाह, अकबर ने आक्रमण कर इसे राजपूतों से जीता था।

कालिदास—(सा० ३४१) संस्कृत के महाकवि कालिदास को 'कवीन्द्र' तथा 'कविता-केलि-कला-विलास) कहा जाता है। (भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो-विलासः) कालिदास संस्कृत साहित्य के ज्वलंत दीपस्तंभ हैं। उन्होंने दो महाकाव्यों की रचना की—'कुमारसम्भव' तथा 'रघुवंश'। इनके अतिरिक्त उनके दो गीतिकाव्य ('ऋतु-संहार' तथा 'मेघदूत') और तीन नाटक ('मालविकाग्नि-मित्र', 'विक्रमोर्वशीय' और 'अभिज्ञान शाकुंतल') है।

कालिदास कोमल भावों के चित्रकार हैं। श्रृंगार तथा करुण कालिदास के विशेष रस हैं। प्रकृतिवर्णन में भी कालिदास प्रकृति के कोमल पक्ष के ही प्रशंसक हैं। कालिदास ने संयोग तथा विप्रलंभ दोनों प्रकार के श्रृंगार का सुंदर चित्रण किया है। भारतीय पंडितों ने कालिदास की उपमा

को सर्वश्रेष्ठ माना है। (उपमा कालिदासस्य) और एक उपमा के आधार पर उन्हें 'दीपशिखा कालिदास' की उपाधि प्रदान की है।

कालिय—(द्वा० ७३) प्रजापति कश्यप और दक्षपुत्री कद्रू का पुत्र, नागों में श्रेष्ठ नाग, गरुड़ के भय से सपरिवार कालिंदी की गोद में रहता था जहाँ शाप के कारण गरुड़ का प्रवेश नहीं था। श्रीकृष्ण द्वारा मर्दन तथा वरदान कि तुम्हारे सिर पर मेरा पद-चिह्न देखकर गरुड़ तुम्हारा अनिष्ट नहीं करेगा।

कालिय नाग-दमन (झं० ५०)—एक बार कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ घूमते-घूमते यमुना-तट के उस स्थान पर पहुँचे जहाँ अत्यंत भयंकर और विषाग्नि के कणों से दूषित एक कुण्ड था और जहाँ कालिय नाग रहता था। उस विषाग्नि से आस-पास के पेड़ जल जाते थे और पक्षी भस्म होकर गिर पड़ते थे। नाग द्वारा यमुना-जल को दूषित होते देख कृष्ण ने उसका उपाय सोचा। वह कदम्ब के पेड़ पर चढ़कर कुण्ड में कूद पड़े। कालिय नाग उनकी ओर दौड़ा और उन्हें अपनी कुण्डली में कसने लगा। यह देख ग्वाल-बालों ने ब्रज में आकर सारी कथा नंद-यशोदा से कही। वे गिरते-पड़ते वहाँ पहुँचे तो कृष्ण को नाग की कुण्डली में कसा देख शोक से व्याकुल हो उठे। उन्हें दुःखी देख बलराम ने कृष्ण से शीघ्र ही नाग को दण्ड देने के लिए कहा। तब कृष्ण स्वयं को सर्प के बंधन से मुक्त कर उसके सिर पर चढ़कर नृत्य करने लगे। कृष्ण के चरण-प्रहार से नाग रक्त वमन करने लगा। यह देख नाग-पत्नियों ने कृष्ण से उसे क्षमा करने की प्रार्थना की। कालिय ने भी क्षमा माँगी। कृष्ण ने उसे आदेश दिया कि वह यमुना छोड़कर समुद्र में चला जाय। कालिय ने ऐसा ही किया।

काली(ज० भा० ११२)—(१) व्यास ऋषि की माता सत्यवती का नाम, (२) भीमसेन की एक पत्नी जिससे सर्वगत नामक पुत्र हुआ। (३)दुर्गा का नाम (४)दक्ष की पुत्री जिसे कालिका कहा जाता है; इसके पुत्र कालकेय कहलाते हैं।

काशी (ज० भा०)—भारत के प्रमुख पुण्य-क्षेत्रों में से एक, गंगा के किनारे स्थित; यहाँ विश्वनाथ निवास करते हैं।

किन्नर (सिद्ध० ७७)—किन्नर तथा किन्नारियों के संबंध में आरण्यक पर्व में किन्नरों को राक्षस, वानर तथा यज्ञों के साथ पुलस्त्य की संतति माना गया है। भागवत के आठवें अध्याय में इनका गंधर्वों के सहकर्मी के रूप में उल्लेख है। इन्हें संगीतप्रिय तथा मधुरकण्ठ से गीत गाने वाला भी कहा गया है। अमरकोष में किन्नरों को किंपुरुष वर्ग के समकक्ष माना गया है। इनके शरीर को नरवत् तथा मुख को अश्ववत् कहा है। वाचस्पत्यकोष में इनका पार्श्वभाग अश्व के समान तथा मुख नरवत् बताया गया है।

कीचक (सै० ६)—मत्स्य-नरेश विराट का साला और सेनापति, सुदेष्णा का भाई। इसके एक सौ पाँच भाई थे जो उपकीचक कहलाते थे। सूतराज केकय की बड़ी रानी मालवी के गर्भ से उत्पन्न। अज्ञातवास के समय रानी सुदेष्णा के साथ सैरंध्री नाम से रह रही द्रौपदी के रूप पर मोहित हो गया। सुदेष्णा से सैरंध्री का परिचय मांगा तथा सैरंध्री की प्राप्ति में सहयोग माँगा। द्रौपदी का अपमान किया। द्रौपदी के संकेत पर रात में नृत्यशाला में गया, वहाँ भीमसेन से युद्ध तथा वध।

कुंती (व० सं० ७)—यदुवंशी शूरसेन की पुत्री, महाराज पांडु की पत्नी तथा कर्ण, युधिष्ठिर भीम और अर्जुन की माता।

कुन्ती, भीम और वक राक्षस की कथा (भा० भा० १८)—१२ वर्ष के वनवास के समय पांडवों की माँ कुंती अपने पुत्रों के साथ एक दिन एकचक्रा नगरी में पहुँची। वहाँ वक नामक राक्षस ने बड़ा उत्पात मचा रखा था। उसे संतुष्ट रखने के लिए नगर के एक व्यक्ति की प्रतिदिन भेंट चढ़ायी जाती थी। जिस घर में पांडव ठहरे वह एक ब्राह्मण परिवार का घर था और संयोग से उस दिन उसी परिवार के इकलौते ब्राह्मण-पुत्र की राक्षस के पास जाने की बारी थी। कुंती को जब पता लगा तो उन्होंने ब्राह्मण-पुत्र के स्थान पर अपने बेटे भीम को वहाँ जाने के लिए कहा। भीम ने उस राक्षस को मार डाला और इस प्रकार नगर-वासियों को संकट से मुक्त किया। कुंती का यह कार्य बड़ी उदारता तथा त्याग-भावना का द्योतक था।

कुंतीभोज (ज० भा० १२)—एक क्षत्रिय राजा जो शूरसेन के फुफेरे भाई थे। शूरसेन द्वारा इनके लिए अपनी पुत्री पृथा को गोद देना। इनका दुर्वासा की सेवा के लिए कुंती को उपदेश। इनके भाई का नाम पुरजित तथा पुत्र का नाम विनू।

कुबेर (सिद्ध० ११२)—धनाध्यक्ष, एक देवता जिन्हें इंद्र के नौ निधियों के भंडारी तथा महादेव जी का मित्र कहा जाता है। इन्हें शिव का भाई भी बतलाया गया है। यह इड़विड़ा के गर्भ से उत्पन्न विश्रवा ऋषि के पुत्र और लंकापति रावण के सौतेले भाई थे। इन्होंने ही विश्वकर्मा से लंका बनवाई थी। इन्हें रावण ने लंका से निकाल दिया। तपस्या

द्वारा वह देवतापद प्राप्त कर धन के अध्यक्ष बने। इनके एक आँख, तीन पैर तथा आठ दाँत हैं। पुष्पक इनका वाहन है। इन्हें ब्रह्मा का मानस-पुत्र तथा पुलस्त्य ऋषि का पौत्र भी माना जाता है। इनकी माता का नाम देववर्णी था जो बृहस्पति की पुत्री थी। इनकी स्त्री का नाम ऋद्धि है। मणिग्रीव और नल कूबर इनके पुत्र तथा कन्या का नाम मीनाक्षी है। इनके निवास-स्थान को अलकापुरी, वसुधारा या वसुस्थली कहते हैं जिसे हिमालय पर्वत पर स्थित माना गया है। मेरु पर्वत की चोटी मंदार पर चैत्ररथ नामक इनका उपनाम है। इनके सेवक किन्नू तथा वित्त गोप्ता भंडारी हैं। महाभारत में इनकी पत्नी का नाम भद्रा कहा गया है। इनके द्वारा अर्जुन को अन्तर्धानास्त्र की प्राप्ति हुई। गंधमादन पर्वत पर पांडवों से भेंट कर युधिष्ठिर तथा भीम को सांत्वना दी। इन्होंने पुष्पक विमान भी प्राप्त किया था।

कुब्जा (द्वा० १४१)—मथुरापति कंस की माल्वानुलेपन वाहिनी दासी। कृष्ण ने इसका कुबड़ापन दूर किया था।

कुमार (सा० १६)—कार्तिकेय, जो शिव के पुत्र, देवताओं के सेनापति और युद्ध के देवता माने जाते हैं।

कुरु (ज० भा० ३२०)—एक सोमवंशी राजा जिसके वंश में पांडु और धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए थे। सूर्य-कन्या तपती के गर्भ से सम्राट संवरण द्वारा उत्पन्न। इनके द्वारा वाहिनी के गर्भ से अश्ववान, अभिष्यंत, चैत्ररथ, मुनि तथा जनमेजय का जन्म हुआ।

कुरुराज (ज० व० १७)—दुर्योधन का नाम।

कुलवन्ती (कि० २२)—किसान काव्य के नायक की पत्नी। इसका परिचय पात्रों में दिया गया है।

कुली-प्रथा (कि० ४०)—भारत की पराधीनता के समय अंग्रेज व्यापारियों ने इस प्रथा को चलाया था। वे काम-धंधे के लिए भारत के लोगों को बहला-फुसलाकर और जोर-जबर्दस्ती से मारिशस, फिजी आदि उपनिवेशों में लेकर उनसे कुलीगिरी तथा मजदूरी करवाते थे। इस प्रथा में दीनबंधु एड्रयूज ग्रियर्सन तथा लार्ड हार्डिग्ज के प्रयत्नों से सुधार आया। इस प्रथा को गिरगिट-प्रथा भी कहते हैं। यह प्रथा उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में प्रारम्भ की गई थी। इस प्रथा के अंतर्गत भारतीय मजदूरों से किसी बगीचे पर एक निर्धारित अवधि तक काम करने के लिए एग्रीमेंट कराया जाता था। यह एग्रीमेंट ही बोलचाल में गिरगिट बोला जाने लगा। इस प्रथा के अंतर्गत बहुसंख्यक भारतीय मजदूर हिंद महासागर स्थित मारीशस, प्रशांत महासागर स्थित फिजी, मलय प्रायद्वीप तथा द्वीपपुंज, श्रीलंका, केनिया आदि देशों में गए थे।

कुवलयापीड़ (द्वा० १६३)—ऐरावत कुलोत्पन्न कंस का हाथी। भगवान कृष्ण द्वारा इसका वध किया गया।

कुश—सीता के यमज पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र जिनका जन्म वाल्मीकि-आश्रम में हुआ था। वहीं उन्होंने विद्याध्ययन और धनुर्विद्या का अभ्यास किया। जब अश्वमेध के निमित्त छोड़ा गया घोड़ा आश्रम में आया तो कुश-लव ने उसे पकड़ लिया। शत्रुघ्न से युद्ध हुआ जिसमें इन दोनों ने उन्हें परास्त कर दिया; लक्ष्मण आये तो वह भी इनके हाथों परास्त हुए। जब राम आए तो वाल्मीकि ने उनका परिचय कराया।

कृतयुग (व० सं० ३७)—चार युगों में से पहला युग, सतयुग। सूर्य, चन्द्रमा, तिष्य तथा बृहस्पति जब एक राशि में आ जाते हैं, तब सतयुग का आरंभ होता है।

कृतवर्मा (यु० ४०)—यदुकुल के अन्तर्गत भोजवंशी हृदिदक का पुत्र, कृष्ण का अनुयायी, आज्ञापालक। यह महाभारत में कौरव पक्ष की ओर से लड़ा था। अभिमन्यु पर आक्रमण करने वाले छह महारथियों में से एक। द्वैपायन सरोवर पर दुर्योधन को युद्ध के लिए उत्साहित किया। अश्वत्थामा के साथ रात को सौप्तिक युद्ध में गया। पांडवों के शिविर में आग लगाने वाला, सात्यिकि द्वारा मौसल युद्ध में इसका वध हुआ। अन्य नाम—अनर्तवासी, भोज, हार्दिक, माधव, सात्वत, वार्ष्णेय, वृष्णि।

कृत्तिका (सि० ३)—इनकी संख्या छह है। स्कन्ध को दूध पिलाने वाली। इन्हें चन्द्रमा की पत्नी माना गया है जो दक्ष के शाप से निःसंतान थी। छः तारे जो कार्तिकेय की परिचर्या करने वाली अप्सराओं के रूप में वर्णित हैं। अरुंधती को छोड़कर छः ऋषि-पत्नियाँ जिन्होंने छद्मरूप से कार्तिकेय को दूध पिलाया। ये बाद में भयानक ग्रह यथा शकुनि, पूतना, पिशाची, रैवतग्रह, दिति तथा लोहितायनि। (२) सत्ताईस नक्षत्रों में से तीसरा नक्षत्र।

कृपाचार्य (ज० भा० १२)—द्रोणाचार्य का साला। ज्ञानपदरी नामक अप्सरा के दर्शन से सरकण्डे पर स्खलित हुए महर्षि शरद्वान के दो भागों में बँटे हुए वीर्य से एक पुत्र और एक कन्या की उत्पत्ति। पुत्र का नाम कृप और पुत्री का कृपि। महाराजा शांतुन द्वारा दोनों का पालन-पोषण। शरद्वान का गुप्त रूप से परिचय देना तथा शास्त्रों का उपदेश। कौरव पांडवों तथा यादवों को धनुर्वेद की शिक्षा। रंगभूमि में कर्ण से कुल-परिचय पूछना, महाभारत में अनेक योद्धाओं के साथ युद्ध। दुर्योधन को संधि के लिए समझाना, द्वैपायन सरोवर पर दुर्योधन को युद्ध के लिए उत्साहित करना, अश्वत्थामा

को सेनापति पद पर अभिषिक्त करना। अश्वत्थामा के साथ रात को सौष्तिक युद्ध में जाना, पांडव-शिविर में आग लगाना, दुर्योधन की दशा देखकर विलाप करना। महाप्रस्थान से पूर्व युधिष्ठिर ने कृपाचार्य की पूजा करके उन्हें परीक्षित को शिष्य रूप में सौंपा। अन्य नाम—भारताचार्य, ब्रह्मर्षि, शारद्वत, गौतम।

कृष्ण—कंस की बहिन देवकी के गर्भ से उत्पन्न। कंस के भय से इनके पिता इन्हें अपने मित्र नन्द और यशोदा के पास गोकुल में छोड़ आए थे। इनका बचपन गोधन-चारण तथा गोपी-ग्वालों के साथ लीला करने में व्यतीत हुआ। ऋषि सन्दीपन के यहाँ इन्होंने सुदामा के साथ शिक्षा प्राप्त की। कंस का वध करके मथुरा रहे तथा बाद में द्वारका का राज्य सम्हाला। इनके भाई का नाम बलराम था। इनकी बहिन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हुआ था। वह महाभारत के युद्ध में अर्जुन के सारथि थे, इन्होंने गीता का उपदेश भी दिया था। इनकी प्रेमिका राधा तथा पत्नियों में रुक्मिणि तथा सत्यभामा प्रसिद्ध हैं।

कृष्ण-मंदिर (रा० प्र० १८)—कारागार। कृष्ण का जन्म कारागार में हुआ था। अतः देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वालों ने कारागार का नाम कृष्ण-मंदिर रख दिया।

कृष्णा (विजय० ४)—(१) कृष्णा नदी का नाम; यमुना नदी का एक नाम। (२) द्रौपदी का एक नाम।

केशव (अजित ८८)—बंगाल के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता तथा स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानी श्री केशवचन्द्र सेन।

कौटिल्य (सिद्ध० १७)—तक्षशिला-निवासी ब्राह्मण जिसे चाणक्य अथवा विष्णुगुप्त भी कहते हैं। राजा नन्द से बदला लेने के लिए इसने चन्द्रगुप्त को प्रेरणा दी कि वह नन्द वंश को नष्ट कर दे। चन्द्रगुप्त के राजा बनने पर चाणक्य उनका प्रधान आमात्य बना। इन्होंने प्रसिद्ध ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' की रचना की थी।

कौरव (ज० भा० ३०)—कुरु महाराज के वंशज—पांडु एवं धृतराष्ट्र के पुत्र। प्रायः यह शब्द धृतराष्ट्र के पुत्रों के लिए प्रयुक्त होता है।

कृपि (ज० भा० ४२५)—शरद्वान ऋषि की पुत्री, कृपाचार्य की बहिन, द्रोणाचार्य की पत्नी, अश्वत्थामा की माता। शांतनु द्वारा इनका संवर्धन।

क्रोधी मुनि और सती का प्रसंग (भा० भा० २०)—एक बार एक पतिव्रता स्त्री अपने कोढ़ी और चिड़चिड़े स्वभाव पति को अपने कंधे पर बिठाकर जा रही थी। मार्ग में मांडव्य ऋषि के शरीर से उसके पति का पैर लग गया। उन्होंने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि सूर्योदय होते ही वह ब्राह्मण मर जायेगा। सती ने कहा कि सूर्योदय ही न होगा और वस्तुतः उसके पातिव्रत्य बल से सूर्य उदय नहीं हुआ। फिर तो हलचल मच गई। अन्त में अनुसूया देवी ने उस सती को समझाया; सूर्य उदय हुआ पर उसके उदय होते ही ब्राह्मण मर गया। तब अनुसूया देवी ने अपने पुण्य-बल से उसे जिला दिया और उसे निरोग भी कर दिया।

कौशिक (सा० ४११ प्रद० १०)—विश्वामित्र। कुशिक राजा के वंशज होने के कारण विश्वामित्र को कौशिक कहा जाता है।

क्षेत्रवर्मा (सिद्ध० ११५)—महोबा के राजा मदनवर्मा का गृहसचिव। यह बेतवा (वेगवती) नदी के किनारे स्थित वेगवन्ती नगरी का निवासी था।

ख

खंगार (सिद्ध० ५३)—जूनागढ़ (सौराष्ट्र) के राजा नवघन का पौत्र तथा महीपाल का पुत्र। इसने रानक दे से विवाह किया था जबकि सिद्धराज जयसिंह उसका वरण करना चाहता था। सिद्धराज जयसिंह ने इसकी बहिन के लड़कों देशल और वेशल को अपनी ओर मिलाकर छल से उसे मार डाला तथा उसके दोनों पुत्रों को भी मार दिया।

खजुराहो (सिद्ध० १५)—चन्देल वंश की धार्मिक राजधानी (आधुनिक मध्यप्रदेश) जो बुन्देलखंड में छतरपुर से २७ मील दूर पूर्व में स्थित है। खजुराहो के मन्दिर कला की दृष्टि से अत्यधिक भव्य माने जाते हैं।

खांडव (ज० भा० १२६)—यमुना तटवर्ती एक वन, जिसे भगवान कृष्ण तथा अर्जुन की सहायता से अग्निदेव ने जलाया था। इसकी रक्षा के लिए इंद्र के प्रयत्न। इसके जलने के समय तक्षक की पत्नी का अर्जुन द्वारा वध। इंद्र का प्रिय वन; यहीं पर अग्नि ने वरुण से श्रीकृष्ण और अर्जुन को गांडीव धनुष, अक्षय तरकस, कपिध्वज वाला रथ और रथ में बाँधने के लिए चार श्वेत अश्व प्राप्त किए थे। दिल्ली का पुराना नाम इंद्रप्रस्थ था और यही खांडवप्रस्थ भी था। खांडव वन के जलने के बाद यह स्थान इंद्रप्रस्थ कहलाया।

खांडववन दाह की कथा (प० प्र० ८८)—एक दिन अर्जुन एवं श्रीकृष्ण यमुना-तट पर विहार कर रहे थे। तभी एक लंबे डीलडौल वाला ब्राह्मण आया और बोला कि वह अग्नि है और उसकी भूख खांडव वन को जलाकर ही मिट सकती है, पर इंद्र उसमें बाधक है। उसने उन दोनों से अनुनय की कि वे अपने पराक्रम से इंद्र को रोककर उसे वन जलाने

में सहायता दें। अर्जुन ने कहा कि यदि वह उन्हें दिव्यास्त्र दे तो कार्य पूरा हो सकता है। अग्नि देव की प्रार्थना पर वरुण ने अर्जुन को गांडीव धनुष तथा कृष्ण को चक्र तथा कौमोदकी गदा दी। तब अग्नि ने अपनी ज्वालाओं से खांडव वन को जलाना शुरू किया। इंद्र की आज्ञा से मेघ बरसने लगे पर अर्जुन ने इंद्र को परास्त कर दिया और खांडव वन धक-धक जलने लगा। इस अग्निकांड से केवल छः प्राणी बच सके—अश्वसेन सर्प, मय दानव और चार शार्ग पक्षी।

ग

गंगा में गृह (सा० १४३)—'गंगायां घोषः' अर्थात् गंगा पर बस्ती लक्षण-लक्षणा का प्रसिद्ध उदाहरण है। यहाँ मुख्य अर्थ-परित्याग इसलिए है कि अपने अमुख्य अर्थ तटस्थ के संकेत को ग्रहण कर सके। 'गंगा' शब्द की लक्षणा वृत्ति सर्वथा स्वार्थ-समर्पण—अपने अर्थ के बिलकुल त्याग देने के कारण है। 'साकेत' के वर्तमान प्रसंग में श्री राम लक्ष्मण तथा सीता नौकासीन हैं। उन्होंने मानो गंगा पर तिरती उस नाव को ही अपना वासस्थल बना लिया है। अतः यह वाक्य गंगा में गृह सहज वाचक (वाच्यार्थ का ही बोधक) बन गया है।

गंधमादन (ज० भा०)—हिमालय के उत्तर भाग में स्थित बदरिकाश्रम के समीपवर्ती पर्वत। यहाँ कश्यप ने तपस्या की थी। तपस्या के लिए जाते समय पत्नियों सहित पांडु का यहाँ आगमन। तपस्या के लिए जाते समय अर्जुन ने हिमवान तथा गंधमादन पर्वत को लाँघकर आगे यात्रा की थी। भगवान नरनारायण का आश्रम। पांडवों ने यहाँ प्रवेश किया था। इस पर्वत पर भीमसेन द्वारा कुबेर के सखा मणिभान का वध। अर्जुन का इंद्रलोक से लौटने पर गंधमादन पर्वत पर आना। हनुमान यहीं कदली वन में रहते थे। सौगन्धिक पुष्प की खोज में यहीं पर भीम की उनसे भेंट हुई थी।

गंधर्व (ज० व० २७)—देवयोनिज तथा अंतरिक्ष-निवासी; अरण्यक के अनुसार इनकी संख्या ग्यारह तथा शतपथ ब्राह्मण के अनुसार २७। इनका संबंध नाद तथा वाणी के साथ दर्शित है। शतपथ ब्राह्मण में इन्हें विलासी और योषित्काम कहा गया है। ब्राह्मण ग्रंथों में भी स्त्री-लोलुप तथा रूप-सौंदर्य का उपभोक्ता कहा गया है। इनका स्थान गुह्यक लोक से ऊपर और विद्याधर-लोक से नीचे गंधर्वलोक है। महर्षि कश्यप की दो पत्नियाँ थीं—मुनि और प्राथा। इन्हीं से अधिकांश अप्सराओं और गंधर्वों की उत्पत्ति हुई। अप्सराओं में उर्वशी, मेनका आदि प्रसिद्ध हैं और गंधर्वों में हा-हा, हू-हू, विश्वासु, तुम्बुरु और चित्ररथ आदि प्रधान हैं।

गजमोक्ष प्रसंग—भागवत पुराण के अनुसार इंद्रद्युम्न राजा को अगस्त्य ऋषि का सम्मान न किये जाने पर शाप दिया गया कि वह गजयोनि में जन्म ले। एक दिन जब वह गंगा में क्रीड़ा कर रहा था, एक मगर ने उसका पैर पकड़ लिया। हाथी ने पैर छुड़ाने की भरसक चेष्टा की पर जब सफल न हो सका तो उसने विष्णु से गुहार की; विष्णु ने आकर उसे छुड़ाया।

गांगेय (ज० व० ६०)—महाराज शान्तनु के गंगा नामक महारानी से जन्मे पुत्र भीष्म।

गांधारी (ज० भा० ६३)—गांधार राज सुबल की पुत्री, धृतराष्ट्र की पत्नी, दुर्योधन, दुःशासन आदि कौरवों तथा दुःशला की जननी।

गांधी (कि० ३४)—पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गांधी; जन्म दो अक्टूबर १८६९ को भारत के पोरबन्दर नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने दक्षिण अफ्रीका तथा भारत से बाहर रह रहे भारतीयों की दशा सुधारने का अनथक काम किया तथा सन् १९१४ से भारत में रहते हुए सविनय अवज्ञा आन्दोलन, मजदूर आन्दोलन, असहयोग आन्दोलनों के माध्यम से भारतीय जनता को संगठित कर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध लड़ाई लड़ते हुए भारत को स्वतंत्र कराया। ३० जनवरी १९४८ को नाथूराम गोडसे नामक व्यक्ति ने गोली मारकर उनकी हत्या कर दी। गांधीजी को महात्मा, राष्ट्रपिता, बापू आदि नामों से भी स्मरण किया जाता है।

गायक मदन शिशु (भा० भा० ७५)—अलौकिक प्रतिभा-संपन्न शिशु-गायक मास्टर मदन जिसने २ वर्ष ९ मास की आयु से ही गाना आरंभ कर दिया था और जो शीघ्र ही भारत-भर में विख्यात हो गया था।

गार्गी—उपनिषद्-काल की एक ब्रह्मवादिनी विदुषी। इन्होंने जनक की सभा में याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछे जिनसे इनकी विद्वत्ता का पता लगता है। उसी के प्रश्नों के उत्तर में याज्ञवल्क्य ने अपने दर्शन का प्रतिपादन किया।

गिरनार (सिद्ध० ५९)—काठियाबाड़ में जूनागढ़ के निकट स्थित एक पर्वत। यहाँ के अनेक मंदिरों को गुजरात के चालुक्य राजाओं ने बनवाया था।

गुजरात (सिद्ध० ८६)—पश्चिमी भारत का एक प्रदेश। इसके अन्तर्गत पुराने बम्बई सूबे के अहमदाबाद, भड़ौच, पंचमहल, खैरा, सूरत, बड़ौदा, सौराष्ट्र तथा कच्छ की रियासतें सम्मिलित थीं। कहा जाता है कि पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में जब हूणों ने भारत पर आक्रमण किया तब से यह नाम प्रसिद्ध

हुआ। यह नाम हूणों के साथ विदेश से आए गुर्जरों ने दिया था। ये पश्चिमोत्तर दिशा से भारत में आकर अह्निलबाड़ तथा भिन्नभाल में बस गए थे। गुर्जरों द्वारा गुजरात राज्य स्थापित किया गया था जिसमें राजपूताना के कुछ भाग भी सम्मिलित थे।

गुर्जर (सिद्ध० ४०)—प्राचीन काल में गुर्जर नामक एक राजवंश था जिसके मूल पुरुष के नाम से उसके वंशधर गुर्जर कहलाये और उनके अधीन देश गुर्जर देश अर्थात् गुर्जरों से रक्षित देश नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह विश्वास किया जाता है कि गुर्जर एक जनजाति थी जो हूणों के साथ भारत आए थे। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा भोज प्रथम था जो मिहिर भोज के नाम से भी प्रसिद्ध था।

गुह—रामायण का एक पात्र। छोटी जाति का खेवट जिसने राम-सीता-लक्ष्मण को गंगा पार कराई थी और राम ने उसे गले लगाकर उसको भाई की तरह प्यार और सम्मान दिया था।

गोकुल (सिद्ध० ६, द्वा० १३२)—यमुना के किनारे की व्रजभूमि; यहीं पर नन्द, यशोदा रहते थे और कृष्ण तथा बलराम का बचपन यहीं पर व्यतीत हुआ था। इसलिए यह स्थान प्रसिद्ध और पवित्र माना जाता है।

गोडसे (रा० प्र० २०)—नाथूराम गोडसे। इसी ने महात्मा गांधी को गोली मारकर उनकी हत्या कर दी थी।

गोदावरी (विज० ४)—यह दक्षिण भारत के नासिक जिले में स्थित त्र्यम्बक ज्योतिर्लिंग के समीप ब्रह्मगिरि से निकलकर समुद्र में मिलती है। तीर्थयात्रा करते हुए राजा युधिष्ठिर यहाँ आए थे। भगवान राम ने भी (पंचवटी) में गोदावरी के तट पर निवास किया था।

गोपाचल (सिद्ध० १२५)—ग्वालियर का नाम।

गोपालकृष्ण गोखले (भा० भा० १६३)—(१८६६-१९१५)—१८८४ में ग्रेजुएट होने के बाद फर्ग्युसन कालेज पूना में प्राध्यापक और फिर आचार्य हुए। राजकीय एवं सार्वजनिक कार्यों के सिलसिले में सात बार इंग्लैंड की यात्रा की। १९०४ ई० में सी० आई० ई० की उपाधि मिली। १९१४ में के०सी०आई०ई० की उपाधि ठुकरा दी। निर्भीक और तेजस्वी होते हुए भी वह गर्मदल की नीति न अपना सके। उनकी स्वराज्य की कल्पना डोमिनियन स्थिति की थी। भारत-सेवक-समाज की स्थापना उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण कार्य था।

गोमती (ज० भा० १६६)—एक प्रसिद्ध नदी, गंगा की सात धाराओं में से एक। युधिष्ठिर तीर्थ-यात्रा करते हुए यहाँ आए थे। गोमती के तट पर राम ने दस अश्वमेध यज्ञ किए थे। दिवोदास की नगरी का एक छोर गंगा के उत्तर तट पर तथा दूसरा छोर गोमती के दक्षिण किनारे तक फैला था। इसीके किनारे पुराण-प्रसिद्ध नैमिषारण्य स्थित है।

गोवर्द्धन (द्वा० ६०)—व्रजमंडल का सुप्रसिद्ध पर्वत, जो भगवान श्रीकृष्ण का स्वरूप माना जाता है। इसे गिरिराज भी कहते हैं। जब इंद्र व्रजवासियों को अपनी पूजा न पाने के कारण मिटा देने के लिए व्रज में घोर वर्षा करने लगे, उस समय कृष्ण ने किशोरावस्था में ही गौओं की रक्षा के लिए एक सप्ताह तक गोवर्धन पर्वत को अपने हाथ पर उठा रखा था।

गोविंद घोष (वि० प्रि० १२६)—ये चैतन्य-संप्रदाय के एक भक्त कवि थे।

गोविंदसिंह (हि० ५६) (१६६६-१७०८)—सिक्खों के दसवें और अंतिम गुरु। जन्म-स्थान पटना। मुगलों से अपने पिता गुरु तेगबहादुर की हत्या का बदला लेने के लिए इन्होंने नहान की पहाड़ियों में तप किया। पौंटा में रहते हुए श्रीकृष्ण चरित से संबंधित प्रारंभिक रचनाएँ लिखीं। स्थायी वास आनंदपुर में रखा। इनके चार बेटे थे जो शत्रुओं के हाथों मारे गये। इन्होंने पाँच प्यारे सिक्खों का चुनाव किया और पाँच ककार रखने का आदेश दिया। इसी से खालसा की नींव पड़ी। इनमें अद्भुत संगठन-शक्ति थी। दक्षिण में एक पठान के हाथों घायल होने से इनका देहांत हुआ। वह कवि के नाते भी विख्यात हैं। दशम ग्रंथ, गोविंदगीता और प्रेमप्रबोध इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

गौतमी (शकु० ६)—(१) शकुन्तला की सखी, कण्व के आश्रम में रहने वाली एक ऋषिकन्या।

घ

घटोत्कच (यु० २७)—हिडिम्बा के गर्भ से भीमसेन द्वारा उत्पन्न एक राक्षस, सहायता के लिए इसका कुंती को आश्वासन, इंद्र की शक्ति का आघात सहने के लिए इंद्र द्वारा इसकी सृष्टि, सहदेव की आज्ञा से इसकी लंका-यात्रा, विभीषण से कर लाकर सहदेव को देना, द्रौपदी को कंधे पर चढ़ाकर गंधमादन की यात्रा। दुर्गम मार्ग में पांडवों को पीठ पर बिठलाना। अलंबुष, दुर्योधन, भगदत्त, विकर्ण, अश्वत्थामा तथा वर्ण से युद्ध, कर्ण के साथ घोर युद्ध, कर्ण द्वारा छोड़े गए अस्त्र से वध। अन्य नाम—भैमसेनि, भैमि, हैडिम्ब, हैडिम्बि।

घमंडी मुनि और सती की कथा तथा व्याध-गीता (भा० भा० २०)—एक बार एक योगी वन में वृक्ष के नीचे ध्यान-मग्न बैठा था। तभी दो कौओं ने कांव-कांव कर उसकी

समाधि में विघ्न डाला। योगी ने अपनी क्रोधभरी दृष्टि ऊपर की तो कौए मर कर नीचे गिर पड़े। इससे योगी में अहंकार पैदा हो गया। एक बार वह भिक्षा के लिए गाँव गया और एक द्वार पर जाकर भिक्षा के लिए पुकारा। भीतर से स्त्री-कंठ से उत्तर मिला, "तनिक ठहरो।" योगी ने उसे अपनी अवज्ञा समझ मन-ही-मन सोचा, "यह अभागिन मेरा योग-बल नहीं जानती!" तभी भीतर से फिर आवाज आयी, "बेटा! क्रोध मत कर, यहाँ कौए नहीं रहते।" योगी आश्चर्यचकित रह गया और जब स्त्री बाहर आयी तो उसके चरणों में गिरकर उसने पूछा, "माँ, तूने यह सब कैसे जाना?" स्त्री ने उत्तर दिया, "मैं साधारण पर पतिपरायणा स्त्री हूँ। जब तुमने आवाज दी, मैं रुग्ण पति की सेवा कर रही थी। पति-सेवा ही मेरा धर्म है। इस धर्म-पालन से मेरा हृदय निर्मल हो गया है और मैं सब जान जाती हूँ। यदि तुम्हें इससे अधिक जानने की इच्छा है, तो अमुक व्याध के पास जाओ।" उस स्त्री के आदेश पर वह योगी उस व्याध के पास गया। व्याध ने उसे जो उपदेश दिये उन्हीं का संग्रह 'व्याध गीता' के नाम से प्रसिद्ध है।

च

चंड-मुंड (श० १९)—राक्षस शुंभनिशुम्भ के दो साथी। इन दोनों का काली ने वध किया था। इसीलिए काली का एक नाम चामुण्डा भी है।

चंदेल (सिद्ध० १११)—राजपूतों की एक जाति। इस वर्ग के लोग अपने को क्षत्रिय मानते हैं किंतु इनकी उत्पत्ति गोंडों तथा भीलों से भी बतलायी जाती है। इनका क्षेत्र आधुनिक विंध्य प्रदेश के दक्षिण विंध्याचल और उत्तर में यमुना के बीच स्थित बुन्देलखंड था। उस समय इस क्षेत्र का नाम जेजाकमुक्ति या जुझौती था। खजुराहो के मंदिर, कालिंजर का किला, अजयगढ़ का महल और महोबा का प्राकृतिक सौंदर्य चंदेलों की संस्कृति और उपलब्धि के केंद्र थे।

चंद्रगुप्त (सिद्ध० १२६)—चंद्रगुप्त मौर्य ने ईसापूर्व तीसरी तथा चौथी शताब्दी में मगध में अपना शासन स्थापित कर पंजाब से यूनानी शासन का उच्छेद किया तथा सेल्युकस को हरा कर उसकी पुत्री हेलन से विवाह किया। इसने अपना राज्य हिंदुकुश की पहाड़ियों तक पहुँचा दिया था। चंद्रगुप्त मौर्य की गणना भारत के श्रेष्ठ सम्राटों में की जाती है।

गुप्त वंश के संस्थापक (जन्म २६ फरवरी सन् ३२०) चंद्रगुप्त भी इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। इन्होंने पाटलिपुत्र को राजधानी बनाया। महाराजाधिराज की उपाधि प्राप्त की थी। इनका पोता चंद्रगुप्त भी चंद्रगुप्त द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध है। इसने मालवा, गुजरात काठियावाड़ तथा उज्जयिनी पर विजय प्राप्त कर विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। महाकवि कालिदास इन्हीं के दरबार के रत्न थे।

चंद्रशेखर आजाद (भा० भा० ११२)—डाक-विभाग में काम करने वाले श्री सीताराम के पुत्र, काशी में विद्याध्ययन, १९२१ में गाँधी के पहले आंदोलन में कूद पड़े और गिरफ्तार हुए। विद्यापीठ में क्रांतिकारियों से परिचय, क्रांतिकारी के रूप में अनेक जोखिम के काम किये, काकोरी के पास ट्रेन-डकैती में भाग लिया, भगतसिंह के साथ दल संगठित किया, उनके साथी गिरफ्तार होते गए, पर वह आजाद ही रहे। सैंडर्स की हत्या में उनका भाग था। १९३१ की २७ फरवरी को १० बजे एक गद्दार की मुखबिरी के कारण वह इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस से लड़ते हुए मारे गये।

चंपतराय (हि० ५६)—बुंदेला सरदार, वीरसिंह का मित्र और विद्रोह के समय जुझारसिंह का सहायक। १६३९ ई० में बुंदेला सेनाओं के हारने पर वह दारा की सेवा में चला गया। १६६१ ई० में उसने औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह किया पर बड़ी कठोरता से उसका दमन कर दिया गया।

चक्रपाणि (ज० व० ५५)—कृष्ण का एक नाम। विष्णु के अवतार जिनके हाथ में चक्र-सुदर्शन रहता है।

चक्रव्यूह (ज० व० २)—द्रोणाचार्य द्वारा निर्मित एक सैन्य व्यूह। इस व्यूह की आकृति गाड़ी के पहिए के समान होती है। इसके भेदने की विद्या पाण्डवों में केवल अर्जुन जानते थे। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने सुभद्रा के गर्भ में केवल चक्रव्यूह प्रवेश का भेद जान लिया था। इसी कारण वह महाभारत के युद्ध में उसमें प्रवेश तो कर सका किंतु न वह इससे बाहर आ सका और न ही उसे इसके अंदर बाहरी सहायता मिल सकी। इसी कारण वह व्यूह में मारा गया।

चरक (भा० भा० ३९)—आयुर्वेद के एक प्रधान आचार्य जिनका ग्रंथ 'चरक संहिता' आयुर्वेद का प्रधान चिकित्सा-ग्रंथ माना जाता है।

चर्चिल (रा० प्र० २४)—पूरा नाम सर विन्सटन चर्चिल (१८७४-१९६५)। राजनीतिज्ञ, सैनिक तथा लेखक। आप इंग्लैंड के प्रधान मंत्री भी रहे। कंजर्वेटिव पार्टी से संबद्ध आपको सन् १९५३ में नोबिल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। आप विश्वप्रसिद्ध वक्ता तथा कूटनीतिज्ञ के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं।

चार्वाक (हि० १०३)—नास्तिक मत के प्रवर्तक एक मुनि जिनका दर्शन 'चार्वाक' दर्शन नाम से प्रसिद्ध है। इस दर्शन में जीवन के सुख-भोग को ही सब कुछ माना गया है—यावत् जीवेत् सुखं जीवेत ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत।

चित्रकूट (सिद्ध० ११, १४)—एक प्रसिद्ध पर्वत जो प्रयाग से २७ कोस दक्षिण की ओर है। यह पर्वत मंदाकिनी नदी के पास है। बनवास के समय राम, लक्ष्मण और सीता यहाँ कुटिया बनाकर रहे थे। यहीं पर भरत अयोध्यावासियों के साथ राम से वापिस चलने के लिए निवेदन करने आए थे।

चित्रभानु (सिद्ध० २१)—सूर्य का एक नाम।

चित्रांगद (ज० भा० ३६)—सत्यवती के गर्भ से जन्मा महाराज शान्तनु का पुत्र तथा देवव्रत (भीष्म) का भाई। यह गन्धर्व-राज चित्रांगद से युद्ध करते हुए मारा गया।

चित्रांगदा (ज० भा० १३४)—मणिपुर-नरेश चित्रवाहन की पुत्री, अर्जुन की पत्नी तथा बभ्रुवाहन की माँ।

चीन-२ (वि०प्र०४० रा० प्र० १७)—एशिया महाद्वीप का वह भाग जो मध्य एवं पूर्व एशिया में स्थित है। इसका क्षेत्रफल ९७३८५० वर्ग किलोमीटर है। विश्व का एक प्राचीन और भारत का पड़ोसी देश। यहाँ का प्रधान धर्म बौद्ध धर्म है। सन् १९११ में प्रसिद्ध क्रांतिकारी सन्यात सेन ने चीन से मंचु शासन को समाप्त कर १२ फरवरी, १९१२ को वहाँ गणतंत्र की स्थापना की। भारत और चीन के संबंध के साक्ष्य प्रथम शताब्दी से ही मिलने लगते हैं।

भारत को स्वतंत्रता मिलने के पश्चात भारत चीन संबंधों में प्रगाढ़ता और दोनों देशों ने एकप्रसिद्ध संधि-प्रस्ताव पंचशील पर हस्ताक्षर किए, किंतु २० अक्तूबर १९६२ में मैत्री भाव और संधियों को ठुकराकर उसने भारत पर आक्रमण कर दिया।

चेदीश्वर (व० वै० २६)—चेदि एक प्राचीन देश था। यहाँ के राजा शिशुपाल को चेदीश्वर कहा गया है। यह श्रीकृष्ण की बुआ का लड़का था। कृष्ण ने अपनी बुआ को वचन दिया था कि वह शिशुपाल के सौ अपराध क्षमा कर देंगे। पाण्डवों द्वारा किए गए राजसूय-यज्ञ में कृष्ण ने इसका वध किया था।

चौहान (सिद्ध०)—यज्ञ के लिए पवित्र भूमि को खोजते हुए ब्रह्मा के हाथ से जिस स्थान पर कमल पुष्प गिरा था वह स्थान पुष्कर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी स्थान पर उन्होंने यज्ञ प्रारम्भ किया और राक्षसों के भय से सूर्य को स्मरण किया। इस कारण सूर्यमंडल से एक दिव्य पुरुष उतरा जिसे चाहमान (चौहान) कहा गया।

छ

छत्रसाल (हि० ५६) (१६४९-१७३१)—चंपतराय के चौथे पुत्र। प्रसिद्ध बुंदेला योद्धा। पहले मुगल सेना में नौकरी की, जयसिंह की सेना में भरती हुए, जयसिंह की स्तुति भी की। १६६७ में शिवाजी से भेंट हुई, उनके साथ पूना में रहे। १६६५ में बुंदेलखंड आकर शुभकरण बुंदेला से मिले। उन्होंने मुगलों से अनेक युद्ध कर उनके दाँत खट्टे किए; छत्रसाल कलम के भी धनी थे, उनकी भक्ति तथा नीति की कविताएँ प्राप्त हैं।

ज

जगदीश चंद्र बसु (भा० भा० १९३) (१८५८-१९३७) भारत के प्रसिद्ध भौतिकविद तथा पादप क्रिया वैज्ञानिक; कैम्ब्रिज से शिक्षा प्राप्त करने के बाद १८८५ में प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता में भौतिकी के प्रोफेसर बने। १९१७ में बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना। वैद्युत विकिरण से संबंधित आविष्कारों के लिए विख्यात। वनस्पति-विज्ञान में इनके आविष्कार आश्चर्यजनक और प्रगत थे जिनके लिए आज भी उन्हें स्मरण किया जाता है। सन् १९१७ में इन्हें 'सर' की उपाधि प्रदान की गई; १९२० में वह रायल सोसायटी के फैलो निर्वाचित हुए।

जगद्देव (सिद्ध० ३१)—मालवा के राजा नरवर्मा का अंग-रक्षक एक वीर योद्धा। मालवा को जीत कर सिद्धराज जयसिंह इसे अपने साथ ले गया था। बाद में वह सिद्धराज जयसिंह का अत्यन्त विश्वस्त अगरंक्षक रहा।

जगन्नाथ (वि० प्रि० १०)—विश्व का स्वामी, विष्णु। पुरी में स्थापित जगन्नाथ मंदिर जिसका निर्माण गगवंशीय राजा अनंग भीम ने सन् ११८४ से सन् ११९८ तक कराया। इस मंदिर में जगन्नाथ की मूर्ति सुभद्रा और बलराम की मूर्तियों के साथ स्थापित है। तीनों मूर्तियां चंदन से निर्मित हैं।

जगाई (वि० प्रि० २८)—मायापुर का एक दुष्ट जो बाद में चैतन्य का सेवक बन गया था।

जमदग्नि (ज० भा० ११०)—सत्यवती और ऋचीक ऋषि के पुत्र, रेणुका के पति तथा परशुराम के पिता। कार्तवीर्य के पुत्रों ने इनका वध किया था। इनके पुत्र होने के कारण इनके पुत्र का नाम जामदग्नि था।

जयचंद (भा० भा० ६८)—कन्नौज का राजा और पृथ्वीराज का संबंधी जिसने ईर्ष्यावश पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए शहाबुद्दीन गौरी को बुलाया था।

जयदेव कवि (वि० प्रि० १०४)—प्रसिद्ध ग्रंथ गीत गोविन्द के रचयिता।

जय-विजय (ज० व० ४६)—विष्णु के दो पार्षदों का नाम। जय-विजय दोनों भाई थे। बाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में कहा गया है कि इन दोनों भाइयों को सनकादि ने शाप दिया था। फलस्वरूप जय को हिरण्याक्ष रावण और शिशुपाल तथा विजय को हिरण्यकशिपु कुम्भकर्ण और कंस के रूप में जन्म लेना पड़ा था।

जरत्कारु (सिद्ध० १२७)—एक उच्चकोटि के यायावर ऋषि। इन्होंने पितरों के उद्धार के लिए इस शर्त पर विवाह करना स्वीकार कर लिया था कि कन्या पक्ष वाले कन्या को भिक्षा रूप में उसे प्रदान करें तथा कन्या का नाम भी जरत्कारु हो। वासुकि ने अपनी छोटी बहिन जरत्कारु को भिक्षा-रूप में उन्हें समर्पित किया था। इनके पुत्र का नाम आस्तीक था।

जयद्रथ (ज० भा० ६)—धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला का पति, सिन्धु सौवीर के राजा वृहदत्र का पुत्र तथा अश्वजित का पिता। अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु के वध में इसका विशेष हाथ था। इसका वध अर्जुन ने किया था।

जरासन्ध (द्वा० ११६)—अर्थात जरा (राक्षसी) द्वारा जोड़ा गया। जरासंध मगध देश के राजा वृहद्रथ का पुत्र था जो दो खण्डों में उत्पन्न हुआ था। इन दोनों खंडों को राजा ने फेंक दिया। जरा ने इन खंडों को जोड़ दिया। यह सहदेव का पिता था। इसकी राजधानी गिरिव्रज थी। इसकी पुत्रियाँ अस्ति और प्राप्ति कंस से ब्याही थीं। कंस के मारे जाने पर इसने अट्ठारह बार मथुरा पर चढ़ाई की थी। इसने हजारों राजाओं को बंदी बना रखा था। युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में श्रीकृष्ण अर्जुन तथा भीम को लेकर इसके यहाँ गए थे। इसने सत्ताईस दिन तक भीम से युद्ध किया और कृष्ण के संकेत से भीम ने इसके संधि-स्थल पर प्रहार कर इसके शरीर को चीर डाला।

जवाहरलाल नेहरू (रा० प्र० २४)—नेहरूजी का जन्म १४ नवम्बर, १८८९ को प्रयाग में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मोतीलाल नेहरू तथा माता का नाम स्वरूप रानी था। उनकी शिक्षा इग्लैण्ड के हैरो, ट्रिनिटी कालिज, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हुई; सन् १९१२ में बैरिस्टर बन कर भारत आए, सन् १९१६ में आप गाँधीजी के सम्पर्क में आए। इसी वर्ष इनका विवाह कमला नेहरू से हुआ। कमला नेहरू से इन्हें एक कन्या और एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र की मृत्यु जन्म से कुछ समय बाद हो गई। आप भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के अग्रणी नेता रहे। आप १५ अगस्त १९४७ को भारत के प्रथम प्रधान-मंत्री बने। २७ मई, १९६४ में आपका देहावसान हुआ।

जिष्णु (सिद्ध० ११८)—(१) विष्णु का एक नाम।

(२) श्रीकृष्ण का एक नाम।

(३) इन्द्र का एक नाम।

(४) इन्द्र का पुत्र होने के कारण अर्जन का एक नाम।

(५) पाण्डव पक्ष का एक चेदिदेशीय योद्धा जिसका वध कर्ण ने किया था।

जीमूत (ज० व० ३६)—(१) बादल।

(२) बादलों को वाहन बना लेने के कारण इन्द्र का नाम जीमूतवाहन पड़ा।

(३) व्योम का एक पुत्र तथा विवृति का पिता।

(४) विराट की सभा का एक पहलवान जिसे भीम ने मारा था।

जुझौती (सिद्ध० ७)—जेजाकभुक्ति (आधुनिक बुन्देल खंड) इस प्रदेश पर चन्देल राजाओं का राज्य था।

जूनागढ़ (सिद्ध० ५२)—सोरठ-सौराष्ट्र (दक्षिण काठियावाड़) की राजधानी। ई० सन् १२५० से पूर्व यहाँ का राजा महिपाल था; उसका पुत्र खंगार या खेंगार था। राठौड़ सीहा उसका पुत्र झांझर तथा झांझर के पुत्र सेजक (सहजिग) के साथ राठौड़ महीपाल के पास आए थे तथा उसके पुत्र खेंगार ने उन्हें १२ गाँव जागीर में दिए। सेजक ने अपनी पुत्री वालभवा का विवाह खेंगार के साथ किया था। गुजरात के राजा जयसिंह ने वि० सं० ११७२ में सोरठ पर चढ़ाई कर जूनागढ़ के राजा खेंगार को मारा था। डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार सेजक का ही दूसरा नाम खंगार था।

जैन (सिद्ध० १५)—भारत के एक निरीश्वरवादी धर्म-संप्रदाय के अनुयायी जो अहिंसा को परम धर्म मानते हैं तथा जिन महाराज (महावीर जिन) की उपासना करते हैं।

झ

झालापति-मान (कि० ४६)–झालावाड़ (राजपूताने) का प्रसिद्ध झालावंशीय राजा।

झारखंड (वि० प्रि० १२७) वर्तमान बिहार प्रांत का एक भाग।

ट

ट्रांसवाल युद्ध—१८८० ई० में बोअरों ने गणराज्य का स्वर ऊँचा किया। इसके लिए उन्हें अंग्रेजों से युद्ध करना पड़ा। १८८१ ई० में वह अंग्रेजी प्रभुसत्ता के अन्तर्गत स्वतंत्र

हुआ। १८९९-१९०२ में बोअर युद्ध हुआ। युद्ध के चार वर्षों के बाद अंग्रेजी सरकार ने ट्रैंसवाल के लिए स्वायत्त शासन की व्यवस्था कर दी।

टाइटानिक (मं० घ० २१४)—एक जलयान जो १९२२ में जलमग्न हो गया था और जिसमें यात्रा करते अंग्रेजों ने मृत्युगीत गाते हुए जल-समाधि ली थी।

ट्रूमैन (रा० प्र० २४)—हैरा एस ट्रूमैन का जन्म सन् १८८४ में हुआ था तथा सन् १९४५-५३ तक वह अमरीका के राष्ट्रपति रहे। वह अमरीका के तैंतीसवें राष्ट्रपति थे।

डायर (अजित ४६-४८)—जनरल डायर, जो १९१९ में अमृतसर क्षेत्र के एरिया-कमांडर थे और जिन्होंने १३ अप्रैल, १९१९ को जलियां वाले बाग (अमृतसर) में निहत्थे भारतीयों पर गोलियाँ बरसा कर भीषण नर-संहार कराया था।

डीपो (कि० ४२)—अंग्रेज व्यापारियों द्वारा बनाया गया एक कैम्प जिसमें भारतीय कुलियों को रखा जाता था।

त

तपन (ज० व० १७)—पुराणों के अनुसार एक नरक का नाम जिसमें प्रवेश करते ही शरीर जलने लगता है।

ताड़का (हि० ७१)—एक राक्षसी जो ऋषियों-मुनियों को कष्ट देती तथा उनके यज्ञादि धार्मिक कृत्यों में विघ्न डालती थी। विश्वामित्र के साथ जाते हुए राम ने उसका वध किया था।

तारकासुर (ज० व० ७)—एक प्रसिद्ध असुर जो तारका का पुत्र और तारा का भाई था। इसे ब्रह्मा से दो वरदान प्राप्त थे। (१) मेरे समान कोई बलवान न हो। (२) यदि मैं मारा जाऊँ तो उसी के हाथ से जो शिव से उत्पन्न हो। इसका वध शिव के पुत्र कार्तिकेय ने किया था।

तिलक लोकमान्य (भा०भा० १६२) (१८५८-१९२०)—भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के पिता, महाराष्ट्र के ब्राह्मण परिवार में जन्म; सन् १८९७ में पहली बार पूर्ण स्वतंत्रता की कल्पना करने वाले तथा 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे' का सिंहनाद करनेवाले, डैकन ऐज्यूकेशनल सोसायटी, फर्गुसन कालेज, केसरी, मराठा आदि पत्रों से संबद्ध; गणपति पर्व मनाने की प्रेरणा-स्रोत, १८९७में १८ मास का कारावास-दंड। १९०८ में पुनः राज-द्रोह के लिए ६ वर्ष का कारावास और मांडले भेज दिये गये। हिन्दी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि बनाने का परामर्श देने वाले पहले भारतीय।

तीन ग्राम (कु० गी० २४)—संगीत में सुभीते के लिए षड्ज, मध्यम और गांधार नामक तीन ग्राम निश्चित कर लिए गये हैं, जिन्हें क्रमशः नद्यावर्त, सुभद्र और जीमूत भी कहते हैं और जिनके देवता क्रम से ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। प्रत्येक ग्राम में सात-सात मूर्च्छनाएँ होती हैं। सा (षड्ज) से आरम्भ करके (सा रे ग म प ध नि) जो सात स्वर हों, उनके समूह को षड्ज ग्राम, (मध्यम) से आरम्भ करके (म प ध नि सा रे ग) (गांधार) या (पंचम) से आरम्भ करके जो स्वर हों, उनके समूह को गांधार अथवा पंचम (जैसी स्थिति हो) ग्राम मानते हैं। इनमें से पहले दो ग्रामों का व्यवहार तो इसी लोक में मनुष्यों द्वारा होता है, पर तीसरे ग्राम का व्यवहार स्वर्गलोक में नारद करते हैं। वास्तव में तीसरा ग्राम होता भी बहुत ऊँचा है और उसके स्वर केवल सितार, सारंगी, हारमोनियम आदि बाजों में ही निकल सकते हैं, मनुष्यों के गले से नहीं।

अगिया बैताल (कु० गी० १००)—विक्रमादित्य के दो बैतालों में से एक का नाम अगिया बैताल था। अगिया बैताल काल्पनिक बैताल का नाम भी है जिसके विषय में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि यह बड़ा दुष्ट था और बड़े आश्चर्यजनक कृत्य किया करता था। मुंह से लूक या लपट निकालने वाले उल्कामुख प्रेत का भी यही नाम है। अतः अगिया बैताल का आशय भ्रामक या घातक प्रभा-पुंज बिखेर कर अपनी ओर आकृष्ट करके हानि पहुँचानेवाला प्राणी माना जा सकता है।

तुरुस्क (सिद्ध० ३४)—तुर्क जाति।

तुलसी (सा० १५८)—श्री रामचरितमानस के रचयिता गो० तुलसीदास (सं० १५८९-१६८० वि०)

तृणावर्त (द्वा० १६२)—कंस के मित्र एक दैत्य का नाम जो चक्रवात का रूप धारण कर कृष्ण को मारने आया था। कृष्ण ने इसका वध कर दिया था।

त्रिकूटिनी (सा० ४३०, प्र० ५१)—त्रिकूट पर्वत पर स्थित होने तथा इस पुरी को रूपरचना में यंत्रों, मंत्रों तथा तंत्रों—तीनों का योगदान होने के कारण लंका को त्रिकूटिनी कहा गया है।

त्रिशंकु (ली० २९)—हरिवंश पुराण में लिखा है कि महाराज त्रयारुण का सत्यव्रत नामक एक पुत्र बहुत ही पराक्रमी राजा था। सत्यव्रत ने एक पराई स्त्री को घर में रख लिया था। इसके पिता ने उसे शाप दे दिया कि तुम चांडाल हो जाओ। तदनुसार सत्यव्रत चांडाल होकर चांडालों के साथ रहने लगे। जिस स्थान पर सत्यव्रत रहते थे उसके पास ही विश्वामित्र ऋषि भी वन में तपस्या करते थे। एक

बार उस प्रान्त में बारह वर्षों तक वृष्टि नहीं हुई, इससे विश्वामित्र की पत्नी अपने बिचले लड़के को गले में बाँधकर सौ गायों को बेचने निकली। सत्यव्रत ने उस लड़के को ऋषि-पत्नी से लेकर उसे पालना आरम्भ किया, तभी से उस लड़के का नाम गालव पड़ा। एक बार मांस के अभाव के कारण सत्यव्रत ने वशिष्ठ की कामधेनु गौ को मारकर उसका मांस विश्वामित्र के पुत्रों को खिलाया और स्वयं भी खाया था। इस पर वसिष्ठ ने उनसे कहा कि एक तो तुमने अपने पिता को असंतुष्ट किया, दूसरे अपने गुरु की गौ मार डाली और तीसरे उसका मांस स्वयं खाया और ऋषि-पुत्रों को खिलाया; अब किसी प्रकार तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। सत्यव्रत ने ये तीन महापातक किये थे, इसी से वह 'त्रिशंकु' कहलाये। उन्होंने विश्वामित्र की पत्नी और पुत्रों की रक्षा की थी। इसलिए ऋषि ने उनसे वर माँगने के लिए कहा। सत्यव्रत ने सशरीर स्वर्ग जाना चाहा। विश्वामित्र ने पहले तो उनकी यह बात मान ली, पर पीछे से उन्होंने सत्यव्रत को उनके पैतृक राज्य पर अभिषिक्त किया और स्वयं उनके पुरोहित बने। सत्यव्रत ने कैकय वंश की सप्तरथा नामक कन्या से विवाह किया था, जिसके गर्भ से सत्यव्रती महाराज हरिश्चंद्र ने जन्म लिया था। तैत्तिरीय उपनिषद के अनुसार त्रिशंकु अनेक वैदिक मंत्रों के ऋषि थे।

थ

थर्मापोली (स्व० सं० १२४)—पूर्वी यूनान में स्थित एक जगह जहाँ ४८० ई०पू० में स्पार्टा के शासक लिआनिडैस ईरानी राजा जकसीज से एक मार्मिक युद्ध में परास्त हुए थे। यहाँ २६९ ई० पू० से गाल्स तथा यूनानियों के बीच युद्ध हुआ था जिसमें यूनानी हारे थे। यहीं १९१ ई० पू० में रोमवासियों ने सीरिया को परास्त किया था।

द

दक्षिणायन (वि० प्रि० ३९)—भारत का दक्षिणी भाग, चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण भारत की यात्रा की थी।

दधीचि ऋषि की दानशीलता का प्रसंग (गुरु० ९७) —राक्षसगण देवताओं को बहुत संतप्त कर रहे थे। उन्हें आत्म-रक्षा का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। ऐसी स्थिति में उन्हें परामर्श दिया गया कि यदि इन्द्र दधीचि ऋषि की हड्डियों से अस्त्र बनाकर उसका प्रयोग राक्षसों पर करें तो देवता राक्षसों को पराभूत कर सकते हैं। इन्द्र बड़े संकोच के साथ ऋषि के पास गया। ऋषि तुरन्त सहमत हो गये। उन्होंने तत्काल प्राण त्याग दिए। बाद में उनकी हड्डियों से बने वज्र द्वारा इन्द्र ने राक्षसों पर विजय प्राप्त की और इस प्रकार देवगण संकट-मुक्त हुए।

दमयन्ती (ज० भा० १५७)—विदर्भ-नरेश भीम की पुत्री जो अपूर्व सुन्दरी थी। इसने नल को मनसावरण किया था और इन्द्रादि देवताओं के प्रस्ताव को अस्वीकार। अंततः नल के साथ विवाह किया था।

दयानन्द सरस्वती (भा० भा०)—(१८८१-१९४०) जन्म का नाम मूलशंकर, काठियावाड़ के टंकारा नामक गाँव में रहने वाले उदीच्य ब्राह्मण कर्शणजी के पुत्र। १४ वर्ष की अवस्था में सारा यजुर्वेद और दूसरे वेदों के अंश कंठस्थ; आर्यसमाज के प्रवर्तक, महान समाज-सुधारक, हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने वाले, अस्पृश्यता के कट्टर विरोधी, शुद्धि संस्कार द्वारा विधर्मियों को हिन्दू बनाने का आंदोलन चलाने वाले, राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने वाले।

दारा (काबा० ६०)—दारा शिकरेह—शाहजहाँ का सबसे बड़ा पुत्र। वह धार्मिक विचारों में अत्यंत उदार तथा सहिष्णु था। उसने उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया था। अपने उदार धार्मिक विचारों के कारण उसे प्राणों की बलि चढ़ानी पड़ी थी।

दुर्योधन (ज० भा०)—धृतराष्ट्र और गांधारी के सौ पुत्रों में सबसे बड़ा। वह पांडवों से द्वेष रखता था। इसकी हठ के कारण ही महाभारत का युद्ध हुआ था।

दुष्यन्त (शकु० २०)—पुरुवंश के एक सुप्रसिद्ध राजा और चक्रवर्ती सम्राट। इनका गांधर्व विवाह शकुन्तला से हुआ।

दुःशाला (ज० भा० २२४)—जयद्रथ की पत्नी, कौरव तथा पांडवों की बहिन। गांधारी के गर्भ से उत्पन्न धृतराष्ट्र की कन्या।

देवकी (द्वा० ८१)—देवक भोज की पुत्री, वसुदेव की पत्नी तथा कृष्ण की जन्मदात्री। वह मथुरा-नरेश कंस की चचेरी बहिन थीं। कंस ने इनके रथ को हाँका था। रथ हाँकते समय उसने आकाशवाणी को सुना कि देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न पुत्र से उसका वध होगा। अतः देवकी और उसके पति दोनों को कंस ने कारागार में डाल दिया तथा देवकी से उत्पन्न छः पुत्रों का भी जन्म होते ही तत्काल वध कर दिया। लेकिन सातवीं कन्या उसके हाथों से छूटकर आकाशगामी हो गई। भाद्रपद की अष्टमी को देवकी के गर्भ से कृष्ण का जन्म हुआ जिन्हें रातोंरात वसुदेव ने अपने मित्र नन्द के यहाँ गोकुल पहुँचा दिया।

देवगढ़ (सिद्ध० ७)—बुन्देलखण्ड में झाँसी जिले का एक स्थान जहाँ गुप्तकाल के सुन्दर मंदिर विद्यमान हैं।

देवव्रत (यु० १५)—भीष्म का मूल नाम।

देवयानी (ज० भा० २३)—दैत्य गुरु शुक्राचार्य की पुत्री तथा ययाति की पत्नी, यजनी अथवा जयन्ती के गर्भ से उत्पन्न। नहुष-पुत्र ययाति की पत्नी तथा यदु एवं तुर्वसु की माता।

देशपति (ज० भा०)—मणिपुर-नरेश चित्रवाहन के लिए प्रयुक्त शब्द जिसका अर्थ राजा है। चित्रवाहन की कन्या चित्रांगदा थी। चित्रांगदा का विवाह अर्जुन से हुआ था। इसके पुत्र का नाम बभ्रुवाहन था।

देशल (सिद्ध० ७०)—खंगार की बहिन का पुत्र। इसने अपने मामा खंगार से छल किया था और इसी के छल के कारण सिद्धराज खंगार को पराजित कर सका था।

द्रोणगिरि (ज० व० ७१)—शाल्मलि द्वीप अथवा कुशद्वीप, वनौषधियों के लिए विख्यात पर्वत, इसकी स्थिति क्षीरोद सागर में मानी जाती है। श्री लक्ष्मण को शक्ति लगने के समय संजीवनी बूटी लाने के लिए हनुमानजी इसी पर्वत पर गए थे।

द्रोणाचार्य (ज० व० तथा ज० भा०)—गंगाद्वार निवासी महर्षि भारद्वाज के पुत्र; इनका विवाह शरद्वान की पुत्री कृपी से हुआ था। इनके पुत्र का नाम अश्वत्थामा था। इन्होंने कौरव-पांडवों तथा अन्य राजपुत्रों को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दी थी।

द्रोणि (ज० भा० ४१८)—द्रोणाचार्य का पुत्र, अश्वत्थामा।

द्रौपदी—महाराज द्रुपद की पुत्री कृष्णा; इन्होंने स्वयंवर में अर्जुन को जयमाला पहिनाई थी किंतु कुंती ने इसे भिक्षा समझकर पांचों पांडवों को उपयोग में लाने की आज्ञा दी थी। इनके गर्भ से प्रतिविंध्य, सुतसोम, श्रुतिकीर्ति, शतानीक, श्रुतवर्मा नामक पाँच पुत्रों का जन्म हुआ था। ये जब सो रहे थे तब अश्वत्थामा ने इनका वध कर दिया था।

द्वापर (द्वा० १२१)—पुराण में वर्णित चार प्रमुख युगों में से तीसरा युग जिसमें श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। इसकी कालावधि ८६४००० वर्ष मानी जाती है और इसे वैश्य युग भी कहते हैं।

द्वारका (सिद्ध० ८)—इसे द्वारवती या कुशस्थला भी कहते हैं। यह काठियावाड़ गुजरात की एक प्रधान नगरी है। पुराणों के अनुसार यह सात प्रसिद्ध पुरियों में से एक है और इसे चार धामों में से एक धाम भी माना जाता है। जरासंध और कालयवन नामक राक्षसों से यादवों की रक्षा करने के लिए देवशिल्पी विश्वकर्मा से कृष्ण ने इस नगरी और यहाँ एक किले का निर्माण कराया था। श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण के पश्चात् यह किला समुद्र में डूब गया था। पुराणों के अनुसार द्वारका के पूर्व में रैवतक, उत्तर में वेणुमंद, पश्चिम में सुकक्ष, दक्षिण में लतावेष्टा आदि पर्वत स्थित हैं।

द्वैत (ज० भा० १८३)—एक वन, सरस्वती नदी के तट पर अवस्थित एक वन; यहाँ वनवास के समय पांडवों ने निवास किया था तथा तीर्थयात्रा के समय बलराम जी भी यहाँ आए थे।

ध

धनवंतरि (स्व० सं०)—देवताओं के वैद्य जो अमृत-मंथन के समय हाथ में अमृत लिए समुद्र से निकले थे।

धंधक नरेश (सिद्ध० ३५)—चन्द्रावती का राजा धंधु; (धंधुक या धुंधक) जब उसने चालुक्य राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार न की तो भीमदेव अप्रसन्न हो गए और वह धारा नगरी के राजा भोज के पास चला गया।

धनञ्जय (ज० व० २७)—अर्जुन का एक नाम, पार्थ।

धनद (ज० व० ६)—धन का देवता कुबेर।

धूमकेतु (वि० प्रि० ८२)—अथर्ववेद (१९-९-१०) में धूमकेतु का एक विरुद वर्णित है, जिसके अनुसार यह उल्का है; ज्योतिष-ग्रंथों में यह पुच्छल तारे का नाम है।

धूम्रलोचन (श० २)—शुंभ-निशुंभ राक्षसों का साथी। इसे शक्ति को पकड़कर लाने का आदेश दिया गया। अम्बिका ने हुंकार द्वारा ही इसे भस्म कर दिया था।

धूम्राक्ष (सा० ४४५ प्र० ६६)—रावण की सेना का एक बलवान राक्षस।

धृष्टद्युम्न (ज० व० ६८, यु० २२)—याज ऋषि द्वारा संस्कारयुक्त हविष्य की आहुति से अग्नि से उत्पन्न, पांचाल नरेश द्रुपद के पुत्र, द्रौपदी के अग्रज, अपने समय के महान वीर, इन्होंने द्रोण से शस्त्र-शिक्षा प्राप्त की थी; महाभारत में वह पांडवों के प्रधान सेनापति थे और इन्होंने क्रौञ्चाण तथा मकरव्यूह आदि व्यूहों का निर्माण किया था। इन्होंने द्रोणाचार्य-वध की प्रतिज्ञा की थी जिसका पालन उनका सिर काटकर किया था। अश्वत्थामा द्वारा रात्रि में इनका वध किया गया था।

धेनुक (द्वा० ३७)—धेनुक नामक राक्षस ने गदहे का रूप धारण कर बलराम तथा उनके बाल-साथियों पर आक्रमण किया था। बलराम ने उसे उठाकर पेड़ पर पटक दिया। इस तरह वह मारा गया।

धौम्य (व० वै० १६)—पांडवों के पुरोहित एक ऋषि। इन्होंने एक-एक कर सभी पांडवों का द्रौपदी से विधिवत्

विवाह कराया था। राजसूय-यज्ञ में इन्होंने युधिष्ठिर का अभिषेक किया था। वन-गमन तथा तीर्थयात्रा के समय वह पांडवों के साथ गए थे, इन्होंने द्रौपदी का अपहरण करने पर जयद्रथ को फटकारा ही नहीं था बल्कि उसकी रक्षा का प्रयत्न भी किया था।

ध्रुव (ज० व० १९)—राजा उत्तानपाद की बड़ी रानी सुमति से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र। छोटी रानी सुरुचि के आग्रह पर राजा ने बड़ी रानी और ध्रुव को नगर से बाहर कुटिया में रहने के लिए भेज दिया। एक दिन पिता के दर्शनार्थ जब ध्रुव राजसिंहासन के पास पहुँचा और राजा की गोद में बैठने लगा तो छोटी रानी ने उसका तिरस्कार किया। उससे मर्माहत हो जब वह माँ के पास लौटा और माँ ने कहा कि सबसे बड़े पिता भगवान विष्णु हैं तो वह उन्हें पाने के लिए वन में चला गया। उसकी घोर तपस्या से प्रसन्न हो भगवान विष्णु ने उसे दर्शन दिए और उन्हीं के वरदान के फलस्वरूप वह उत्तर दिशा में अचल तारे के रूप में स्थित है।

न

नंदन-वन (सा० २२)—इंद्र के उपवन का नाम जो स्वर्ग में स्थित माना जाता है।

नंद (द्वा० १३२)—गोकुल एवं नंद गाँव में रहने वाले गोपों के राजा (नंद बाबा)। वह कृष्ण के पालक पिता और वसुदेवजी के मित्र थे।

नकुल (ज० व० ८१)—महाराज पांडु के क्षेत्रज पुत्र; यह और इनके भाई सहदेव अश्विनी कुमारों से नियोग द्वारा माद्री के गर्भ से जुड़वां उत्पन्न हुए थे।

नरवर्मा (सिद्ध० २४)—मालवा का परमार राजा जिसे गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह ने पराजित किया था। नरवर्मा ने जयसिंह की अनुपस्थिति में गुजरात पर चढ़ाई कर दी। जयसिंह के मंत्री सांतू ने उसे जयसिंह की सोमनाथ-यात्रा का फल देकर विदा किया था। बाद में जयसिंह ने मालवा पर चढ़ाई की और वह बारह वर्ष तक मालवा का घेरा डाले रहा। नरवर्मा का देहान्त वि० स० ११९० कार्तिक सुदी ८ को हुआ। उसके बाद उसका बेटा यशोवर्मा मालवा का राजा हुआ। उसने पराजित होकर जयसिंह के साथ संधि की।

नर-हरि (हि० ९८)—हिरण्यकशिपु से प्रहलाद की रक्षा करने के लिए भगवान विष्णु ने ऐसा रूप धारण किया जिसका मुख सिंह का और शेष शरीर मनुष्य का था क्योंकि हिरण्यकशिपु को वरदान प्राप्त था कि उसे न मनुष्य मार पायेगा और न कोई देवता और न कोई हिंस्र पशु।

नवघन (सिद्ध० ५१)—सोरठ (सौराष्ट्र) का राजा नवघन तथा खंगार का बाबा। जयसिंह ने इसे पराजित ही नहीं किया था अपितु छुटकारे के लिए इसे दाँतों के नीचे घास का तिनका रखना पड़ा था। उसके चार पुत्र थे। वे चारों पुत्र भी जयसिंह के पराक्रम के कारण अपने पिता के अपमान का उससे बदला लेने में असमर्थ रहे। मरते समय उसके पौत्र (महीपाल का पुत्र) ने शपथ ली थी कि वह नवघन के अपमान का बदला जयसिंह से लेगा।

नानक (भा० भा० १५५)(१४६९-१५३९)—सिक्खों के आदिगुरु। १५ अप्रैल १४३९ को इनका जन्म कल्यानचंद नामक किसान के यहाँ तलवंडी में हुआ था जिसे आज ननकाना साहब कहते हैं। विवाह और दो पुत्र होने पर भी इनका मन संसार में न रमा और १५०७ में वह यात्रा को निकल पड़े। वह सर्वेश्वरवादी थे और मूर्तिपूजा को निरर्थक मानते थे, रूढ़ियों और कुसंस्कारों का तीव्र विरोध किया, आंतरिक साधना को प्रधान माना। नारी को बड़प्पन दिया। वह अच्छे कवि थे; उनकी भाषा 'बहता नीर' थी जिसमें अनेक भाषाओं के शब्द समा गये थे। उनके तथा अन्य गुरुओं की काव्य-रचनाओं का संग्रह है—'आदिग्रंथ'।

नारद (द्वा० ७६)—एक देवर्षि जो ब्रह्मा के मानस-पुत्र माने जाते हैं। इन्हें एक लोक के समाचार दूसरे लोक में पहुँचाने का कार्य करने वाला भी कहा गया है।

नारायण (द्वा० ३०)—मनुस्मृति के अनुसार परमात्मा का नाम। परमात्मा से सबसे पहले जल उत्पन्न हुआ; इसलिए जल को नारा कहते हैं।—नर (परमात्मा) उसी जल में निवास करता है, इसलिए उसे नारायण कहते हैं।

(२) अजामिल के सबसे छोटे पुत्र का नाम।

नित्यानंद (वि० प्रि० २८)—एक अवधूत जो बाद में चैतन्य के शिष्य बन गए थे।

निवेदिता (हि० ११७)—एक यूरोपियन महिला जिन्हें स्वामी विवेकानंद ने हिन्दू धर्म में दीक्षित किया था और जो अपनी मानवता एवं सेवा-कार्यों के कारण सिस्टर निवेदिता के नाम से विख्यात हुई।

निशुम्भ (श० १८)—एक असुर का नाम जो दनु के गर्भ से उत्पन्न कश्यप ऋषि का पुत्र था। इसके दो भाई (शुंभ बड़ा तथा नमुचि छोटा) थे। इंद्र द्वारा नमुचि के मारे जाने पर शुंभ-निशुंभ ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। इनको मारने के लिए दुर्गा ने शक्ति-रूप में अवतार लिया था। ये दोनों दुर्गा के साथ युद्ध करते हुए मारे गए।

नेताजी (अजित ९३)—श्री सुभाषचंद्र बोस, जिन्होंने

भारत के स्वाधीनता-संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी और भारत की स्वतंत्रता के लिए विदेश में आजाद-हिन्द-सेना का संगठन किया।

नैपोलियन (वैता० २६) (१७६९-१८२१)—कुलीन परिवार में जन्मे नैपोलियन के पिता का नाम चार्ल्स तथा माता का नाम लीतिशिया रैमालिनो था। ब्रीन की सैनिक अकादमी में १७७९ से १७८४ तक शिक्षा प्राप्त की और फिर एक वर्ष तक तोपखाने-संबंधी ज्ञान की प्राप्ति की; फ्रांस में राजतंत्र की दुर्दशा से क्षुब्ध नैपोलियन ने आरंभिक सैनिक सफलताओं से सबका ध्यान आकृष्ट कर लिया। उसे इटली के अभियान (१७९६) का नेतृत्व दिया गया और वह सफल रहा। १७९८ में उसने मिस्र पर चढ़ाई की। १७९९ में उसने नया विधान बनाया और सारी शक्तियाँ नैपोलियन में केन्द्रित हो गईं। १८०१ में उसने एक सुधार-योजना कार्यान्वित कर फ्रांस में सुव्यवस्था लाने में सफलता प्राप्त की। १८०४ में वह फ्रांस का सम्राट बन गया; उसने अनेक युद्ध-अभियानों में सफलता पायी, १८०७ में रूस को भी हराया। सारे यूरोप का स्वामी होने पर वह इंग्लैंड को हराने का स्वप्न देखने लगा। उसकी मनमानी और क्रूर नीतियों से तंग आकर अनेक यूरोपीय देशों ने विद्रोह किया। रूस का विद्रोह उसके लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। १८१५ में उसे वाटरलू के युद्ध में हराकर सैंटहैलना में बंदी बनाकर रखा गया। वहीं १८२१ में पाँच मई को उसकी मृत्यु हुई।

प

पंचकुल (सिद्ध०)—यह एक महकमा था जिसमें पाँच पुरुष नियत रहते थे और उनका मुख्य काम राजकीय कर आदि उगाहना था। उनका मुखिया राज्य का मंत्री अथवा उसके समान उच्च अधिकार वाला व्यक्ति होता था। उसका प्रत्येक सभ्य पंचकुल कहलाता था। इससे ही पंचोली शब्द बना है। पंचकुल द्वारा दिए गए आदेश को भी सम्भवतः पंचकुल ही कहा जाता होगा।

पंचनद (विज० ४)—पाँच नदियों वाला प्रदेश—पंजाब।

पंचमख (व० सं० ८)—पाँच प्रकार के यज्ञ या कृत्य

(१) स्वाध्याय—ब्रह्मयज्ञ
(२) होम—देवयज्ञ
(३) बलिवैश्वदेव—भूतयज्ञ
(४) पिंडक्रिया—पितृयज्ञ
(५) अतिथिपूजन—नृयज्ञ

पंचवटी (सिद्ध० १४)—(१) दंडकारण्य में वह स्थान जहाँ वनवासी राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ निवास किया था। (२) पीपल, बेल, बड़, हड़ और अशोक वृक्ष का समाहार।

पंचशर (शकु०)—कामदेव के पाँच प्रकार के बाण-सम्मोहन, उन्मादन, स्तम्भन, शोषण, तापन।

पंचशील (विज० २)—२७ अप्रैल १९५४ को तिब्बत के प्रश्न पर भारत और चीन के मध्य जो अनाक्रमण-संधि हुई उसमें भारत के प्रधान-मंत्री तथा चीन के प्रधान-मंत्री ने पाँच सिद्धांतों को आधार बनाकर संधि पर हस्ताक्षर किये थे। यही पाँच सिद्धांत पंचशील कहलाते हैं—

(१) कोई देश किसी देश पर आक्रमण नहीं करेगा।

(२) कोई देश किसी देश के आंतरिक मामलों में हस्त-क्षेप नहीं करेगा।

(३) सभी देश एक दूसरे की सत्ता एवं सीमा के प्रति सम्मान का भाव रखेंगे (५) शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति अपनाई जाएगी।

पद्मिनी (भा० भा० १२४)—चित्तौड़ की एक प्रसिद्ध रानी जो अलाउद्दीन की सेना को महल में आया जान जीते जी चिता में जलकर भस्म हो गयी।

पन्ना (कि० ४६)—इसने राजा संग्रामसिंह एवं रानी कर्मवती के पुत्र उदयसिंह की प्राण-रक्षा की थी। संग्रामसिंह के बड़े भाई पृथ्वीराज के पासवान पूतल दे के पुत्र बनवीर ने पन्ना के पुत्र को उदयसिंह समझ पन्ना के सामने ही कत्ल कर दिया था। वह कुंवर उदयसिंह को एक बारी दम्पत्ति (दोने-पत्तल बनाने वाली जाति) की सहायता से कुम्हलगढ़ ले गई थी। उसकी स्वामि-भक्ति, कर्तव्यपरायणता और स्वार्थ-त्याग भारतीय इतिहास की गौरव गाथा है।

पमार (परमार) (सिद्ध० ७९)—एक बार विश्वामित्र आबू पर्वत पर रहने वाले वसिष्ठ ऋषि की गाय नन्दिनी को हर ले गए। इस पर वसिष्ठ ने क्रुद्ध होकर अपने अग्निकुंड में आहुति दी, जिससे उस कुण्ड में से एक वीर पुरुष प्रकट हुआ, जो शत्रु से लड़कर गाय छीन लाया। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर ऋषि ने उसका नाम परमार अर्थात शत्रु को मारने वाला रखा।

परकीया (वि० प्रि० ३०)—नायिका का एक भेद। पर-पुरुष से प्रेम करने वाली नायिका को परकीया या अन्या अथवा अन्यदीया कहते हैं। इसका प्रेम प्रच्छन्न होता है। यह परकीया किसी अन्य पुरुष की पत्नी या अविवाहिता कन्या होती है। इस दृष्टि से इसके दो भेद हो जाते हैं—ऊढ़ा या परोढ़ा और अनूढ़ा (कन्यका)

परकीया भाव—परकीया शब्द का शाब्दिक अर्थ है दूसरे की स्त्री। काव्यशास्त्र के अनुसार परकीया वह स्त्री है जो इस लोक या परलोक का ध्यान छोड़कर उस पुरुष के प्रेम में लिप्त है जिसके साथ वह विधिपूर्वक विवाहित नहीं है। परकीया भाव का आधार केवल प्रेम है और इसी रूप में वैष्णवों ने इसे ग्रहण किया है।

परशुराम (ज० भा० ३७)—जमदग्नि के पुत्र; माता का नाम रेणुका, द्रोणाचार्य व कर्ण के गुरु सहस्रबाहु अर्जुन के संहारक, कार्तवीर्य अर्जुन, यादवों, हैहयराज अर्जुन का वध करने वाले।

पलुषकर विष्णु दिगंबर (भा० भा० १६३)—संगीत की उच्च प्रतिष्ठा के पुनरुद्धारक, संगीत-गुरु, भक्त हृदय गायक। जन्म १९ अगस्त १८७२ ई० में महाराष्ट्र के कुरुंदवा नामक गाँव में। पिता दिगंबर बुवा कीर्तनकार थे। बारह वर्ष की कठोर संगीत-साधना के बाद संगीत का उद्धार करने के लिए पूरे भारत की यात्रा की। १९०१ में लाहौर में गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना, छात्रवृत्तियों की स्थापना कर संगीत-शिक्षा को प्रोत्साहन, १९०९ में बंबई में गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना। जनसमूह में संगीत-प्रचार, संगीत-परिषदों का आयोजन, शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने का सफल अभियान, संगीत-लिपि का निर्माण, लगभग ७० संगीत-ग्रंथों का लेखन-प्रकाशन।

पाञ्चजन्य (ज० व० ३६)–(१) श्रीकृष्ण के शंख का नाम। (२) रैवतक पर्वत का समीपवर्ती वन। (३) पाँच ऋषियों के अंश से उत्पन्न एक अग्नि।

पांचालपुरी (ज० भा० ११२)—एक प्राचीन देश या नगर। यहाँ के राजा द्रुपद थे। इनकी पुत्री का नाम द्रौपदी था। पाण्डव एक वर्ष यहाँ रहे थे।

पांडव (ज० व० १)—महाराज पांडु के पुत्र—युधिष्ठिर अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव।

पांडु (ज० व० १४)—महाराज विचित्रवीर्य के क्षेत्रज पुत्र, महर्षि व्यास के द्वारा विचित्रवीर्य की पत्नी अम्बालिका के गर्भ से उत्पन्न, पांडवों के पिता, इनके अन्य नाम—भारत, भरतवर्ष, भरत सक्त, कौरव, कौरव-नन्दन, कौशल्या नन्द वर्धन, कुरुद्वह आदि।

पाटन (सिद्ध० २६)—अणहिल पाटन प्राचीन काल में गुजरात के चावड़े और सोलंकी राजाओं की राजधानी थी जिसको अणहिलवाड़ा भी कहते थे। मुसलमान लेखकों ने इसका नाम नहरवाला दिया है। अब इसको पाटण कहते हैं और यह बड़ौदा राज्य के अंतर्गत है। इसे चावड़ा वंशी राजा वनराज ने वि० सं० ८२१ वैशाख शुक्ला २ को बसाया था। यहाँ पर वि० सं० १०१७ तक चावड़ों का राज्य रहा तथा उसके बाद सोलंकियों (चालुक्यों) का।

पाणिनि (भा०भा० ३९)—ईसवी-पूर्व चौथी शताब्दी के प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण जिन्होंने अष्टाध्यायी नामक प्रसिद्ध व्याकरण-ग्रंथ की रचना की।

पाराशर (ज० भा० ११०)—एक मुनि जो इन्द्र की सभा के सदस्य तथा युधिष्ठिर की सभा में भी विराजते थे।

पाशुपत-अस्त्र (ज० भा० १५८)—शिव का अस्त्र, इसकी प्राप्ति के लिए अर्जुन ने तपस्या की। तपस्यारत अर्जुन के सामने एक भयानक सूअर आया, अर्जुन उसे मारने के लिए उठे, तभी उस सूअर का आखेटक भी आया। दोनों ने उसे अपना आखेट सिद्ध करना चाहा। यह विवाद संघर्ष में परिवर्तित हो गया, तभी अचानक अर्जुन ने प्रातःकाल शिवार्पित माला को आखेटक के गले में देखा। उसने समझ लिया कि आखेटक स्वयं शिव हैं। उसने उनकी उपासना की, फलस्वरूप शिव ने उसे पाशुपत-अस्त्र प्रदान किया।

पियर्सन (कि० ४१)—गोखले के निवेदन पर दीनबंधु एड्रयूज के साथ दक्षिण अफ्रीका की यात्रा करने वाले एक अंग्रेज। इन्होंने गिरमिट और कुली-प्रथा पर एक रिपोर्ट तैयार की थी जिसके कारण कुली-प्रथा समाप्त हुई।

पीना साँप (न० ६३)—मारवाड़ का एक साँप, जिसे पीना साँप कहते हैं। वह सोते हुए मनुष्य के सामने आकर बैठ जाता है और उसकी साँसें पीने लगता है। इस तरह उस का विष व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। साँस पी चुकने के बाद वह अपनी पूँछ के प्रहार से उस सोते हुए व्यक्ति को जगाकर चला जाता है।

पुंड्र (बि० वे०)—बलि के पुत्र एक दैत्य का नाम।

पुरंजय (न० ६१)—एक प्रसिद्ध रघुवंशी राजा, काकुत्स्थ, पुर को जीतने वाला, इन्द्र।

पुरहूत (न० ५२)—इन्द्र का एक नाम।

पुराण (सिद्ध० ५८)—प्राचीन वृत्तांत, सृष्टि, लय, मन्वंतरों तथा प्राचीन ऋषियों-मुनियों और राजाओं के वंशों तथा चरित्रों के वर्णन से युक्त प्रसिद्ध हिंदू-धर्म-ग्रंथ जिनकी संख्या अट्ठारह है।

पुरु (सिद्ध० १२८)—इस नाम के दो प्रसिद्ध राजा हुए—एक ययाति और शर्मिष्ठा के पुत्र जिन्होंने पिता का बुढ़ापा स्वीकार किया और सबसे छोटे होते हुए भी ययाति का राज्य पाया। दूसरे हस्तिनापुर के चंद्रवंशी राजा जिन्होंने सिकन्दर को वितस्ता नदी पर रोक दिया था पर जो बाद में

बंदी बनाये गये थे और जिनके उत्तर पर प्रसन्न होकर सिकन्दर ने उनका राज्य लौटा दिया। यूनानी इतिहासकारों ने इसका नाम पौरस लिखा है।

पुरोचन (ज० भा०)—दुर्योधन का मंत्री, लाक्षागृह का निर्माता; यह लाक्षागृह में ही जल कर मर गया था।

पुलस्त्य (सा० ४३७, प्र० ५९)—ब्रह्मा के मानस-पुत्रों में से एक जिनकी गिनती सप्तर्षियों और प्रजापतियों में होती है। रावण इन्हीं के कुल का था।

पुलोम (हि० ४४)—(१) भृगु ऋषि की पत्नी पुलोमा नामक राक्षस द्वारा इसका हरण, इसके गर्भ से च्यवन मुनि का जन्म (२) एक राक्षस (३) कश्यप और दनु से उत्पन्न एक दानव (४) दैत्य कुल की एक कन्या। (५) इन्द्र की पत्नी शचि भी पुलोम नामक राक्षस की पुत्री थी।

पुष्कर (सिद्ध० ७७)—एक प्रसिद्ध तीर्थ; यह अजमेर से छः कोस दूर उत्तर दिशा में है, यहाँ पर ब्रह्मा जी ने यज्ञ किया था; यहाँ ब्रह्मा का मंदिर है। पद्म और नारद पुराण में इसका माहात्म्य मिलता है। कहा जाता है ब्रह्मा के हाथ का कमल यहाँ गिरने से यह सरोवर उत्पन्न हुआ।

पुष्करिणी (ज० भा० ३७)—(१) एक प्रसिद्ध तीर्थ (२) सम्राट भरत की पुत्रवधू तथा भुमन्यु की पत्नी, सुहोत्र दिविरथ, सुहोता, सुहवि, सुयजु की माता।

पूतना (गुरु० ६२)—एक राक्षसी जिसने अपने स्तनों पर विष का लेप कर कृष्ण को मारने के हेतु पय-पान कराया था पर कृष्ण ने दूध पीते-पीते उसके प्राण ही हर लिये।

पृथा (व० सं० ४९)—शूरसेना की पुत्री, जो संसार की अनुपम सुन्दरी थी, वसुदेव की बड़ी बहिन, इनका दूसरा नाम कुन्ती, महाराज पाण्डु की पत्नी, युधिष्ठिर, अर्जुन व भीम को जन्म देने वाली।

पृथु—राजा वेन के पुत्र। पुराणों में कहा जाता है कि जब अपने दुष्ट कार्यों के कारण ऋषियों ने वेन को मार डाला और उसकी मृत्यु के बाद देश में अराजकता फैली तो वेन की दाहिनी भुजा के मर्दन से पृथु का जन्म हुआ। राजा होने पर उसने देखा कि पृथ्वी के कोप के कारण प्रजा भूखों मर रही है। उसने बाण चलाकर पृथ्वी का भेदन करना चाहा, इस पर पृथ्वी ने क्षमा माँगी और कहा कि प्रजा को सब कुछ मिलेगा। राजा पृथु ने अपनी पत्नी के साथ वन में जाकर घोर तपस्या की।

पृथ्वीराज (पत्रा० ३)—बीकानेर के राजा। अकबर से लड़ते-लड़ते जब महाराणा प्रताप एक बार अपने घरवालों की भूख और यातना को देख अपना धैर्य खो बैठे और अकबर से संधि करने का प्रस्ताव करने की सोचने लगे तब इन्होंने अपनी ओजस्विनी कविता में एक पत्र लिखा जिसे पढ़कर महाराणा फिर अपने पूर्व व्रत पर दृढ़ हो गये।

पौरव (ज० भा० ३०)—(१) पुरु कुल के वंशज (२)एक राजर्षि जो शरभ नामक दैत्य से उत्पन्न हुए, दुर्योधन की सेना के एक महारथी। (३) अंगदेश के एक राजा (४) विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक।

प्रकाशानन्द (वि० प्रि० १२८)—काशी के प्रसिद्ध संन्यासी तथा काशी के पण्डितों एवं साधुओं के सिरमौर।

प्रजापति (श० ९)—ब्रह्मा।

प्रतापरुद्र राजा (वि० प्रि० ७८)—प्रतापरुद्र राजा का पूरा नाम गजपति प्रतापरुद्र था। यह उड़ीसा के शासक और चैतन्य के समकालीन थे; इन्हें विजयनगर के राजाकृष्ण देव राम ने परास्त किया था।

प्रतिमा (सा० १८१)—संस्कृत के महाकवि तथा नाटककार भास द्वारा लिखा गया नाटक, जिसमें राम-वनवास की कथा वर्णित है।

प्रफुल्लचंद्र राय (भा० भा० १६३)—(सन १८६१ १९४४) भारतीय रसायनज्ञ तथा महान शिक्षक। आरंभिक शिक्षा गाँव में, बाद में कलकत्ता के एल्बर्ट स्कूल तथा प्रेसिडेंसी कालेज में। १८८२ में गिलक्राइस्ट छात्रवृत्ति पाने पर एडिनबरा विश्वविद्यालय में प्रवेश, वहाँ ६ वर्ष तक अध्ययन; १८८७ ई० में डी० एस-सी० की उपाधि। भारत लौटने पर प्रेसिडेंसी कालेज में असिस्टेंट प्रोफेसर। १८९२ ई० में ८०० रुपये की अल्प पूँजी से अपने रहने के कमरे में ही विलायती ढंग की औषधियाँ तैयार करने का कार्य आरंभ किया। पारद-नाइट्राइट यौगिक का आविष्कार करने पर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति। रसायन के अतिरिक्त इतिहास से भी बड़ा प्रेम था। उन्होंने रसायन के सैकड़ों उत्कृष्ट विद्वान तैयार किये। वह जीवन-भर अविवाहित रहे और शिक्षा, अनुसंधान आदि के लिए जीवन समर्पित कर दिया।

प्रहस्त (सा० ४४४, प्र० ६९)—रावण की सेना का एक बलवान राक्षस।

प्रह्लाद (स्व० सं १११)—हिरण्यकशिपु का पुत्र जिसने पिता की अवमानना करते हुए भी भगवान विष्णु की भक्ति की। उसका पिता बड़ा अहंकारी था, ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता था और चाहता था कि सब केवल उसकी पूजा करें। उसने बेटे को बहुत समझाया, धमकाया, घोर कष्ट दिये—पहाड़ की चोटी से गिरवाया, जल में डुबाया और अन्त में अपनी बहिन होलिका से, जिसे अग्नि में न जलने का

वरदान था कहा कि वह अपनी गोद में बिठा उसे जला दे। होलिका प्रह्लाद को गोद में लेकर जलने लगी पर स्वयं जल गयी और प्रह्लाद का बाल-बाँका भी न हुआ।

प्राग्ज्योतिषपुर (ज०भा० ४३१)—एक प्राचीन नगर जो भौमासुर की राजधानी था। भौमासुर के बाद यहाँ के राजा भगदत्त हुए और उसके पश्चात वज्रदत्त।

प्रियंवदा (शकु० ९)—एक ऋषि-कन्या तथा शकुन्तला की सखी। अभिज्ञान शाकुन्तलम् के प्रथम अंक में ही शकुन्तला तथा अनसूया का प्रवेश। गुप्तजी ने अनसूया प्रियंवदा को परिणय चर्चा करने वाली, उसे वल्कल की चोली पहनाने वाली, ढीली करने वाली अर्थात शृंगार करने वाली कहा है। कालिदास की प्रियंवदा भी लगभग ऐसी ही है। शकुन्तला, "सखी अनसूया, इस प्रियंवदा ने ऐसा कसकर बल्कल बाँध दिया है कि मैं हिलडुल नहीं पा रही हूँ।" इस पर प्रियंवदा उत्तर देती है—मुझे क्या उलाहना देती हो, अपने उस यौवन को क्यों नहीं दोष देती जो तुम्हारे स्तनों को इतना बढ़ाता चला जा रहा है।

फ

फिजी (कि० ३४)–एक ब्रिटिश उपनिवेश; यह दक्षिण पैसेफिक सागर में न्यु हैलिरीड के पूर्व में स्थित है। इसकी राजधानी सुबा है। ब्रिटिश शासन के समय भारत के गरीब किसानों व मजदूरों को फिजी ले जाकर चीनी उद्योग को स्थापित करने का कार्य किया गया था। प्रशान्त महासागर के दक्षिण पूर्व में ३४३ द्वीपों का एक समूह फिजी के नाम से जाना जाता है। सन् १८७९ में ब्रिटिश सरकार के एक समझौते के अंतर्गत पाँच सौ भारतीय श्रमिकों को भारत से १०००० मील दूर फिजी भेजा गया था। उनसे किया गया एग्रीमेंट शब्द ही बिगड़ कर गिरमिट और इन मजदूरों को गिरमिटिया कहा जाने लगा। फिजी की जनसंख्या लगभग सवा छह लाख है; इसमें से आधे से अधिक भारतीय मूल के निवासी हैं। फिजी का प्राकृतिक सौंदर्य और हरियाली काश्मीर के समान है। सन् १९१६ तक साठ हजार से अधिक भारतीय मजदूर बन कर फिजी गए थे। सन् १८७९ में गए मजदूरों ने यहाँ चीनी उद्योग स्थापित किया था। फिजी देश सन् १९७४ में स्वतंत्र हुआ था। यहाँ की भाषा अंग्रेजी, हिंदी तथा फिजीयन है।

फाहियान (भा० भा० ६५)—पाँचवीं सदी के आरंभ में भारत की यात्रा पर आया एक चीनी जो पाटलिपुत्र में तीन वर्ष रहा और जिसने अपने यात्रा-वृत्तांत में तत्कालीन भारत के साहित्य, शिल्प आदि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

फिरदौसी (भा० भा० ४१)—फारसी के प्रसिद्ध महाकवि (९३२-१०२० ई०)। इनका शाहनामा महाकाव्य अत्यंत प्रसिद्ध है और इसके विषय में कहा जाता है कि शाह ने उसके प्रति छंद के लिए कवि को एक अशरफी देने का वायदा किया था।

फ्रांस (रा० प्र० १५)—यूरोप का एक देश जिसे प्रजातांत्रिक पद्धति का जन्मदाता माना जाता है। इसका क्षेत्रफल ५५०००० वर्ग किलोमीटर है। यह पश्चिमी यूरोप का सबसे प्रधान देश है। इसका प्रधान नगर पेरिस है।

ब

बकासुर वध—बकासुर कंस का मित्र था। वह बगुले का रूप धारण कर कृष्ण को मारने के लिये गया और उन्हें निगल गया। जब कृष्ण उसके तालु के नीचे पहुँचे तो उसके तालु को जलाने लगे। उससे परेशान हो उसने कृष्ण को उगल दिया, पर उन पर अपनी चोंच से प्रहार करने लगा। तब कृष्ण ने बकासुर की चोंच को चीर कर उसे मार डाला।

बढ़वान (सिद्ध० ७१)—काठियावाड़ का एक प्रसिद्ध नगर; वर्द्धमान।

बदरिकाश्रम (ज०भा० १७७)—सुप्रसिद्ध बदरिकाश्रम तीर्थ, जहाँ पूर्व काल में नर नारायण ने अनेक बार दस-दस हजार वर्षों तक तपस्या की थी। पांडवों ने यहाँ की यात्रा की थी।

बभ्रुवाहन (ज० भा० ४३२)—राजा चित्रवाहन की पुत्री चित्राङ्गदा के गर्भ से अर्जुन द्वारा उत्पन्न एक वीर राजा। राजा चित्रवाहन की कुल-परम्परा-निर्वाह हेतु अर्जुन ने बभ्रुवाहन को चित्राङ्गदा के शुल्क रूप में दान दिया था। अतः बभ्रुवाहन को चित्रवाहन का पुत्र माना गया है। राजसूय-यज्ञ के समय इन्होंने अर्जुन से युद्ध कर उन्हें मूर्च्छित कर दिया था।

बनवीर (कि० ४६)—बनवीर मेवाड़ के राजा संग्रामसिंह के बड़े भाई पृथ्वीराज के पासवान पूतलदे का पुत्र था। उसे बदचलनी के कारण संग्रामसिंह ने देश-निकाला दे दिया था। किंतु राणा सांगा के पुत्र विक्रमादित्य के राज्य-काल में वह पुनः उनके दरबार में आ गया और षड्यंत्र करके विक्रमादित्य की हत्या कर मेवाड़ का राजा बन गया। उसने पंद्रहवर्षीय उदयसिंह की हत्या का भी प्रयत्न किया। किंतु पन्ना की कर्त्तव्यपरायणता के कारण उदयसिंह की प्राण-रक्षा हो गई।

बराह (वि० प्रि० १२८)—विष्णु के दस अवतारों में तृतीय स्थान बराह अवतार का है। भगवान ने पाताल लोक

से पृथ्वी के उद्धार के लिए यह अवतार धारण किया था।

बर्बक (सिद्ध० ५१)—एक आदिवासी महान योद्धा; इस पर सिद्धराज जयसिंह ने विजय प्राप्त कर इसे अपना अंगरक्षक बना लिया था।

बलराम (द्वा० ४३)—वसुदेव तथा रोहिणी के पुत्र। यह देवकी के गर्भ में थे परंतु यम ने याम्य माया द्वारा इन्हें रोहिणी के गर्भ में डाल दिया। इस संकर्षण गर्भ के कारण इनका नाम संकर्षण तथा अधिक बलशाली होने के कारण इनका नाम बलराम पड़ा। इन्होंने भीम को गदा-युद्ध की शिक्षा दी थी।

बा (अं० अ० १६)—कस्तूरबा गाँधी, गाँधी जी की पत्नी जिन्हें आदर और प्रेम से सब लोग 'बा' कहते थे।

बापूराव (भा० भा० १६३)—एक प्रसिद्ध देशभक्त और शहीद। मध्यप्रदेश के एक जमींदार जो १८५८ के विद्रोह में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े, विश्वासघात के कारण पकड़े गये और उन्हें फाँसी दे दी गई।

बाहुलोड़ (सिद्ध० २३)—उस स्थान का नाम जहाँ सोमनाथ का मंदिर स्थित है।

बृहदबल (ज० व० ११)—गांधारराज सुबल के पुत्र, गांधारी तथा शकुनि और वृषक के भाई। अभिमन्यु के द्वारा इनका वध; इनके अन्य नाम—कौसल्य, कोसलक, कोसल राज।

बृहन्नला (ज० भा० २४१)—अज्ञातवास के समय रखा गया अर्जुन का छद्मनाम। उर्वशी के प्रणय-प्रस्ताव को अस्वीकार करने पर उर्वशी ने यह शाप दिया था कि अर्जुन को नपुंसक रूप में स्त्रीवेश धारण करना पड़ेगा। विराट नगर में बृहन्नला का रूप धारण कर उसने राजकन्या उत्तरा को नृत्य-गान की शिक्षा देकर शाप की पूर्ति की।

बौद्ध (सिद्ध० १५)—बौद्ध धर्म की स्थापना महात्मा बुद्ध ने ईसा-पूर्व छठी शताब्दी में की थी। यह धर्म चार आर्य-सत्यों तथा अष्टांग मार्ग का उपदेश देता है। इसके अनुसार वेद-वचन प्रमाण नहीं हैं। इस धर्म के अनुयायी महातमा बुद्ध तथा उनके शिष्यों की शिक्षाओं का अनुसरण करते हैं।

ब्रह्म (श० ८)—परमातमा, परब्रह्म, इन्हें ऋक्, यजु साम और अथर्वरूप माना गया है। इन्हें सरूप, अरूप पर तथा अपर भी कहा गया है। पुष्कर द्वीप निवासी इनकी उपासना करते हैं।

भ

भगीरथ (ली० २२)—अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा जो महाराज सगर के परपोते थे; उन्होंने तपस्या करके स्वर्ग से गंगा की पृथ्वी पर अवतारणा करायी थी।

भरत (ज० भा० ३७८)—(१) कैकेयी के गर्भ से जन्मे राजा दशरथ के पुत्र तथा राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के भाई।

(२) दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न एक राजा; इनके कारण ही इस देश का नाम भारत पड़ा।

(३) भरत नामक अग्नि के पुत्र; अद्‌भुत नामक अग्नि के पुत्र जो मरे हुए प्राणियों के शव का दाह करते हैं।

(४) शंभु नामक अग्नि के पुत्र।

भवभूति (सा० २६६)—संस्कृति के सुप्रसिद्ध नाटककार भवभूति का समय ८०० वि० माना जाता है। उनकी रचनाएं हैं—'मालती माधव', 'महावीर चरित्र' और 'उत्तररामचरित'।

भंडारकर रामकृष्ण गोपाल (भा० भा० १६३)—आरंभ से ही अत्यंत प्रतिभाशाली छात्र, बम्बई में एम० ए० करने के बाद हैदराबाद में प्रधानाचार्य, फिर पूना के डेकन कालेज में आचार्य, १६०१ में बम्बई विश्वविद्यालय के उपकुलपति। प्राकृत भाषाओं, ब्राह्मी, खरोष्ठी आदि लिपियों, इतिहास के क्षेत्र में गवेषणा, हस्तलिखित ग्रंथों की खोज और प्रकाशन के क्षेत्र में कार्य। आपकी स्मृति में पूना में भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना की गई, अपनी विधवा कन्या का पुर्नविवाह कर इन्होंने साहस का परिचय दिया था। स्वाध्याय और संयम के लिए प्रसिद्ध प्रकांड विद्वान।

भानुमती (ज० भा० ३५२)—(१) दुर्योधन की पत्नी। (२) कृतवीर्य की पुत्री तथा पुरुवंशी राजा अहंयाति की पत्नी, सार्वभौम नामक राजा की मां, महर्षि अङ्गिरा की प्रथम पुत्री।

भारत (ज० व० ३०)—अर्जुन का एक नाम।

भारती (भा० भा० १२५)—मण्डन मिश्र की पत्नी जिन्होंने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था।

भार्गव (प्र० १८)—परशुराम, भृगु के वंश में उत्पन्न होने के कारण परशुराम को भार्गव कहा जाता है।

भास्कर (भा० भा० ३६)—११वीं-१२वीं शताब्दी के 'सिद्धांत शिरोमणि' के रचयिता प्रसिद्ध ज्योतिषी।

भास (सा० १८१)—संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि तथा नाटककार जिनका समय ईसा की दूसरी शती के आसपास माना जाता है। इनके १३ नाटक प्राप्त हैं। इनमें से 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में उदयन तथा वासवदत्ता के प्रेम का चित्रण है। 'पंचरात्र' में द्रोण द्वारा पाँच दिन के अंदर पांडवों को

ढूँढ़ कर आधा राज्य दिलाने का वर्णन है। 'चारुदत्त' में निर्धन ब्राह्मण चारुदत्त और बसन्तसेना के अनूठे प्रेम का वर्णन है। 'दूतघटोत्कच' में हिडिम्बा से उत्पन्न भीम के पुत्र घटोत्कच को दूत बनाकर दुर्योधन के पास भेजे जाने का वर्णन है। 'अविमारक' में राजकुमार अविमारक और राजकुमारी कुरंगी की प्रेम-कथा है। 'बाल चरित' में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का निरूपण है। 'उरुभंग' में भीम तथा दुर्योधन का गदायुद्ध वर्णित है। 'मध्यम व्यायोग' में भीम का पराक्रम वर्णित है। 'अभिषेक' में राम-रावण युद्ध तथा रामराज्याभिषेक का वर्णन है। 'प्रतिमा' में रामवनवास से संबंधित प्रसंग वर्णित है और 'दूतवाक्य' में महाभारत युद्ध रोकने के लिए श्रीकृष्ण का दूत-रूप में दुर्योधन के पास जाना वर्णित है। भास उत्कृष्ट कवि तथा सफल नाटककार रहे हैं।

भिंदिपाल (श० १४)—एक विशेष अस्त्र।

भीम (ज० व० ५६)—महाराज पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र, कुन्ती के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। यह युधिष्ठिर के अनुज तथा अर्जुन के अग्रज थे। इन्होंने द्रोणाचार्य एवं बलराम से शिक्षा प्राप्त की थी। इनकी पत्नियों के नाम द्रौपदी, बलंधरा, हिडिम्बा था; इन्होंने दुःशासन और दुर्योधन का वध किया था।

भीमराज (सिद्ध० ३३)—भीमदेव मूलराज के प्रपौत्र दुर्लभराज का पुत्र था। दुर्लभराज सिद्धराज के पड़बाबा थे। उनकी वंशावली है—भीमदेव, क्षेत्रराज, देवप्रसाद, त्रिभुवन पाल, कुमारपाल। सिद्धराज का उत्तराधिकारी कुमारपाल था। मूलराज के प्रपौत्र दुर्लभराज का पुत्र भीमराज या भीमदेव था। इसकी उपाधि सिद्धराज थी।

भीम विरुपाक्ष (सिद्ध० २२)—विरुप आँख अर्थात त्रिनेत्र रखने वाले शिव।

भीष्म—राजा शांतनु और गंगा के पुत्र। पिता के लिए आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा करने वाले, कौरवों के सेनापति के रूप में अपार शौर्य दिखाते हुए कृष्ण को आयुध ग्रहण करने के लिए बाध्य किया। शिखंडी को सामने रख कर जब अर्जुन ने बाण चलाये तो इनका शरीर बाणों से छिद गया। ५८ दिन तक बाणों की शय्या पर पड़े रहने के बाद इन्होंने प्राण त्यागे क्योंकि इन्हें इच्छा-मृत्यु का वरदान प्राप्त था।

भू-भा (श० ६)—पृथ्वी की माँ।

भूमिसुर (व० स० ३०)—(१) ब्राह्मण, ब्रह्मा की पुत्री पृथ्वी से उत्पन्न होने के कारण यह नाम। पृथ्वी का देवता अर्थात ब्राह्मण।

भूरिश्रवा (ज० व० ७४)—कुरुवंशीय सोमदत्त के पुत्र, सात्यिकी के दस पुत्रों का वध, मणिमान का वध, अर्जुन द्वारा इनकी दाहिनी भुजा का काटा जाना। सात्यिकी द्वारा वध।

भृगुराज (ज० व० ६०, यु० २५)—(१) अग्नि से उत्पन्न एक ऋषि; इनकी पत्नी का नाम पुलोमा था जिसका राक्षस ने अपहरण किया। इनका द्रोणाचार्य से युद्ध बन्द करने को कहना। अग्नि से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम भृगु; इनका अगस्त्यजी को नहुष के पतन का उपाय बतलाना, इनके द्वारा नहुष को शाप तथा नहुष को शापोद्धार का उपाय बतलाना। (२) परशुराम का एक नाम।

भोजदेव (सिद्ध० ३३)—मालवा का प्रसिद्ध राजा भोज जिसकी राजधानी धारा नगरी थी। गुर्जरवंश का सबसे प्रतापी राजा भोज देव प्रथम था जो मिहिर भोज के नाम से भी प्रसिद्ध था। इसका वंशज नरवर्मा था जिसने सिद्धराज जयसिंह से १२ वर्षों तक युद्ध किया था। इसका उपनाम त्रिभुवन नारायण भी था।

म

मघाई (वि० प्रि० २८)—मायापुर का एक दुष्ट जो बाद में चैतन्य का सेवक बन गया था।

मणिपुर (ज० भा० १३४)—धर्मज्ञ राजा चित्रवाहन की राजधानी। अर्जुन चित्रवाहन की पुत्री चित्रांगदा से विवाह कर यहाँ तीन वर्ष तक रहे। अर्जुन द्वारा चित्रांगदा के गर्भ से बभ्रुवाहन का जन्म। अश्वमेधीय अश्व के रोके जाने पर बभ्रुवाहन तथा अर्जुन का यहाँ पर घनघोर युद्ध।

मतंग मुनि (हि० १११)—शबरी के गुरु जो महाभारत के अनुसार नापित के वीर्य से ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। यह ज्ञात होने पर कि वह ब्राह्मण सन्तान नहीं हैं, उन्होंने ब्राह्मणत्व पाने के लिए घोर तपस्या की। इन्द्र के समझाने पर कि ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं होगा, उन्होंने वर माँगा कि उन्हें ऐसा पक्षी बना दिया जाय जिसकी सब वर्ण वाले पूजा करें। वर प्राप्त होने पर यह छदोदेव के नाम से प्रसिद्ध हुए।

मदनमोहन मालवीय (भा० भा० १६२)—हृदय की महानता के कारण संपूर्ण भारत में 'महामना' के नाम से संपूजित, सनातन धर्म के कट्टर पोषक, धर्म और देश के लिए सर्वस्व त्याग करने वाले, भारतीय संस्कृति के प्रतीक और ऋषि-प्राण। हिन्दी के उत्थान तथा शिक्षा-प्रसार में अपूर्व योगदान, काँग्रेस के नेता और चार बार सभापति, हिंदू विश्वविद्यालय बनारस के संस्थापक।

मथुरा (सिद्ध० ११३—द्वा० १२२)—पुराणानुसार

सात मोक्षदायिनी पुरियों में से एक, रामायण के अनुसार मधु नामक दैत्य ने इसे बसाया था। पाली भाषा के ग्रंथों में इसका नाम मथुरा, श्रीकृष्ण की जन्म-स्थली। अशोक के समय आचार्य उपगुप्त ने इसे बौद्धधर्म का केन्द्र बनाया; यह जैनों का भी तीर्थस्थान था; १९वें तीर्थंकर मल्लिनाथ का जन्मस्थान, महमूद गजनवी ने १०१७ में आक्रमण कर नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों का केन्द्र; इसका दूसरा नाम मधुपुर और शूरसेनपुर है। कृष्ण ने यहाँ चाणूर, सुनामा, कुवलयापीड़, कंस आदि को मारा, बलराम ने मुष्टिक का संहार किया।

मदनवर्मा (सिद्ध० ७)—महोबे का वीर राजा; बारहट नामक चारण ने इसके शासन तथा बुद्धि की बड़ाई जयसिंह से की। जयसिंह ने महोबा पर चढ़ाई की किंतु बिना युद्ध के ही मदनवर्मा से मित्रता कर ली थी।

मद्रराज (ज० भा० ३०६)—नकुल का मामा तथा नकुल की माता माद्री का भाई।

मय (ज० भा० १३०)—एक दानव जो खांडव वन में रहता था। अर्जुन ने इसे जलने से बचाया, दिव्य-सभा-भवन का निर्माता, शिल्पी, भीमसेन तथा अर्जुन को गदा व शंख भेंट की।

मय-कृत-भवन (भा० भा० ४४)—पांडवों ने मय नामक शिल्पी से ऐसा भवन निर्मित कराया जिसकी शिल्प-कला अद्‌भुत थी। जब दुर्योधन उस भवन में गया तो उसने फर्श को जलाशय और दीवार को दर्पण समझा। एक स्थान पर वह जल में भीगने के भय से कपड़े उठाने लगा और दूसरे स्थान पर उसका सिर टकरा गया। यह देख द्रौपदी ने मजाक किया कि अन्धे के अन्धे होते हैं।

मकरध्वज (हि० १९७)—एक सत्यप्रतिज्ञ राजा जो सत्य की रक्षा के लिए अपना शरीर आरे से कटवाने के लिए तैयार हो गया था।

मरुद्‌गण (ज० भा० १७७)—देवताओं का एक गण।

मलान (रा०प्र० १७)—डेनियल एफ मलान (१८७४ १९५८)। सन् १९१७ में वह यूनिम पार्लियामेंट (दक्षिणी अफ्रीका) के सदस्य बने। सन् १९४८ में जनरल स्मट्स को हराकर वह प्रधान-मंत्री बने।

महता मुंजाल (सिद्ध० ८१)—सिद्धराज जयसिंह का मंत्री; साक्ष्यों से सिद्ध है कि मुंजाल ने जयसिंह के राज्य-विस्तार के लिए अनथक श्रम किया। वह बुद्धि में दूसरा चाणक्य था।

महर्षि देवेन्द्रनाथ (भा० भा० १६२)—अपार धन तथा वैभव में पले, हिंदू कालेज कलकत्ता में शिक्षा प्राप्त देवेन्द्रनाथ ने २२ वर्ष की आयु में तत्त्वबोधिनी सभा की स्थापना की जिसका मुख्य ध्येय था ब्राह्मधर्म की शिक्षा देना। १८४२ में उन्होंने ब्रह्म समाज में पदार्पण किया जिससे उसमें नया जीवन आया। १८४५ में उन्होंने चार ब्राह्मणों को चारों वेदों का अध्ययन करने के लिए काशी भेजा। 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का प्रतिपादन उन्हींने एक लेख में किया। केशवचंद्र सेन से विवाद होने पर देवेन्द्रनाथ का समाज 'आदि समाज' कहलाने लगा।

महाकाल (सिद्ध० २९)—उज्जैन का प्रसिद्ध मन्दिर जहाँ महाकाल (शिव) का ज्योतिर्लिंग स्थापित है।

महाभारत (ज० व० १)—(१) एक बड़ा महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक महाकाव्य। यह हिंदुओं का एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक ग्रंथ है। इस काव्य में कौरव तथा पांडवों के बीच चलने वाले महान युद्ध का वर्णन है। इस ग्रंथ में अट्ठारह पर्व (सर्ग या अध्याय) हैं जिनके नाम हैं—आदि, सभा, वन विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासी, मौसल, महाप्रस्थान और स्वर्गारोहण। कौरव-पांडवों के युद्ध के पश्चात व्यास जी ने 'जय' नाम से इस काव्य की रचना की थी। वैशंपायन ने इसके सम्पादन में कुछ और सामग्री जोड़ कर इसका नाम भारत रखा किन्तु सौति नामक ऋषि ने इसमें कुछ और कथाएँजोड़कर इसका नाम महाभारत रख दिया।

महिषासुर (श० ११)—एक असुर जिसने देवताओं को परास्त कर रुद्र के रथ पर आक्रमण किया था। इसे शिव का वरदान प्राप्त था। दुर्गा द्वारा इसका वध।

महीपाल (सिद्ध० ५३)—सोरठ के राजा नवधन का उत्तराधिकारी पुत्र तथा खंगार का पिता।

महोबा (सिद्ध० ८)—उत्तरप्रदेश के हमीरपुर जिले का एक प्राचीन नगर। यह चन्देल वंशीय राजाओं की राजधानी रहा।

मांधाता (ली० २२ हि० २९)—अयोध्या के एक प्राचीन सूर्यवंशी राजा जो दिलीप के पूर्वजों में से थे।

माढव्य (शकु० ३५)—दुष्यन्त का विदूषक सखा।

मातलि (ज० भा० ४४६)—देवराज इन्द्र का सारथि।

माद्री (ज० भा० ३०८)—मद्र देश के राजा की पुत्री, शल्य की बहिन, नकुल और सहदेव की माता। धृति नामक देवी के अंश से उत्पन्न। अश्विनी-कुमारों द्वारा गर्भ-धारण। अपने पति पाण्डु के साथ चितागमन।

माधव (ज० व० ८१)—मौन, ध्यान और योग से

श्रीकृष्ण का बोध अथवा साक्षात्कार होता है, इसीलिए उनका नाम माधव।

माधवराव सप्रे (भा० भा० १६३)—(१८७१-१९२६) मध्यप्रदेश के जिला दमोह के पथरिया गाँव में जन्मे माधव राव ने सरकारी नौकरी न कर हिंदी तथा मराठी की सेवा का व्रत लिया। १८९८ में कलकत्ता वि० वि० से बी० ए० पास कर विलासपुर के महाराज-कुमार के अंग्रेजी ट्यूटर हुए। १९०३ में 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक पत्र प्रकाशित किया, १९०५ में 'ग्रन्थमाला' नामक पत्र प्रकाशित किया। मराठी के 'केसरी' के ढंग पर साप्ताहिक 'हिन्दी केसरी' १९०७ में प्रकाशित किया, जिसमें उग्र लेखों के छपने के कारण १९०८ में गिरफ्तार किये गये, १९२० में इन्हीं की प्रेरणा से साप्ताहिक 'कर्मवीर' प्रकाशित हुआ। अतः महान हिन्दी-सेवी एवं पत्रकार के रूप में इनकी ख्याति हुई।

मानस (सा० १५८, १६)—(१) हिमालय के उत्तर की एक प्रसिद्ध बड़ी झील—मानसरोवर।

(२) गोस्वामी तुलसीदासकृत 'श्री रामचरित मानस'।

मारीच—एक राक्षस जिसने रावण के कहने पर सोने का हिरण बनकर सीता को ललचाया था और जिसके कारण रावण सीता का हरण करने में सफल हुआ।

मारीचि (शकु० ४१)—मारीचि के पुत्र कश्यप। ये ब्रह्मा के पुत्र तथा देवताओं तथा राक्षसों के पिता थे। इनका विवाह दक्ष की तेरह कन्याओं से हुआ था जिनमें अदिति प्रधान थी।

मार्कण्डेय (ज० भा० १८५)—एक प्रसिद्ध महामुनि, इनके द्वारा पाण्डवों को धर्म का उपदेश, इनके द्वारा बाल मुकुन्द का दर्शन, कल्कि अवतार का वर्णन, इनकी पत्नी का नाम घूमोर्णा था।

मार्क्स (अजित ८०)—कार्ल मार्क्स का जन्म ५ मई, १८१९ को रहाइनलैंड में ट्रायर नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता एक यहूदी वकील थे। कार्ल छः वर्ष के थे, तब पिता के पूरे परिवार ने ईसाई धर्म अंगीकार कर लिया।

कार्ल बचपन से ही स्वतंत्रचेता, निर्भीक, तर्कशील और मनस्वी थे। सत्रह वर्ष की अवस्था में वह बोनविश्वविद्यालय में विधि के अध्येता बने और अगले वर्ष वह बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो गये। इन वर्षों के ग्रीष्मकालीन मध्यावकाश में वह बैरन वोन वैस्टफालेन की पुत्री जैनी के प्रेमपाश में बँध गये। इस संबंध ने उन्हें कवि बना दिया और युवा कवि निरंतर अपने काव्योपहार अपनी प्रेमिका को अर्पित-समर्पित करने लगा। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि राजनीतिक क्षेत्र में तहलका मचा देने वाला विचारक सर्वप्रथम कवि रूप में ही प्रकट हुआ।

अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण मार्क्स को अनेक कष्टों तथा यातनाओं का सामना करना पड़ा। किंतु कलम के इस सिपाही ने प्रतिकूल परिस्थितियों से कभी पराजय स्वीकार नहीं की। उनकी युगान्तकार रचना 'कैपिटल' का प्रथम खंड १८६७ में प्रकाशित हुआ और द्वितीय तथा तृतीय खंड एंगेल्स ने संपादित करके उनके मरणोपरान्त क्रमशः १८८५ और १८९४ में प्रकाशित कराये।

अनेक वर्ष तक कैंसर से पीड़ित रह कर उनकी पत्नी जैनी १८८१ में परलोकवासिनी हो गयीं और उसके दो ही वर्ष बाद १४ मार्च, १८८३ को मार्क्स का भी देहावसान हो गया।

मार्क्सवाद सृष्टि और समाज का समन्वित दर्शन है। मार्क्सवाद के दार्शनिक दृष्टिकोण को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहते हैं। मार्क्सवाद के अनुसार अब तक समाज में चार प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाएं प्राप्त हो सकी हैं। (१) आदिम साम्यवाद (२) दास-व्यवस्था (३) सामन्तवादी व्यवस्था और (४) पूंजीवादी व्यवस्था।

मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था शोषण पर आधारित है। यह शोषण सर्वहारा का है, क्योंकि सर्वहारा शारीरिक श्रम के उत्पादन करता है, किंतु उसका लाभ पूंजीपतियों के हाथ में चला जाता है। समाजवादी क्रांति केवल सर्वहारा ही कर सकता है। यह क्रांति सफल हो जाने पर साम्यवाद की सृष्टि होती है।

मालवा (सिद्ध० २६)—मालव गण का पश्चातवर्ती निवास-स्थान। उज्जयिनी मालवा की राजधानी रहा। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में यहाँ क्षत्रियों का शासन था। क्षत्रपों के बाद यह प्रदेश गुप्तवंश और गुप्तवंश के बाद यहाँ हूणों का राज्य हुआ। सन् ५२८ में मदसौर के राजा यशोधर्मा ने इसे जीतकर उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया। बाद में यहाँ चालुक्य तथा गुर्जर प्रतिहार वंश का राज्य रहा। यहाँ के प्रसिद्ध राजाओं में विक्रमादित्य, भोजराज (मिहिर भोज) नरवर्मा आदि प्रसिद्ध रहे हैं।

मालिनी (शकु० ७)—नदी जिसके तट पर महर्षि कण्व का आश्रम था और जो हिमालय की तराई में बहती है। उत्तरप्रदेश के बिजनौर जिले में यह नदी आज भी वर्तमान है।

मिस स्लेड (हि० ११७)—फ्रांस के एक बड़े सेनाधिकारी की पुत्री जो गाँधीजी से इतनी प्रभावित हुई कि

उनकी शिष्या बन गयीं और उनके आश्रम में रह कर सेवा-कार्य करती रहीं। उन्होंने अपना नाम रखा मीरा बेन।

मीनल देवी (मीनलदे) (सिद्ध०) अनहिलवाड़ पाटन में गुर्जर साम्राज्य की नींव डालने वाला मूलराज सोलंकी था। उसके पुत्र चामुंड राय के तीन पुत्र बल्लभ सेन, दुर्लभ सेन और नागराज थे। नागराज के भी तीन पुत्र थे—मूलराज देव, क्षेमराज तथा कर्ण देव। कर्ण देव की पत्नी का नाम मीनल देवी, मीनल दे अथवा मीलन दे था। इसका ही पुत्र इतिहास-प्रसिद्ध सिद्धराज जयदेव अथवा जयसिंह था।

मुंजराज (सिद्ध० ३४)—परमारवंशी मालवा के इतिहास-प्रसिद्ध राजा। इन्होंने अपने भाई सिंधुराज के पुत्र भोज को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। इनका दूसरा नाम वाकपतिराज भी था। परमारों का वंशक्रम वैरिसिंह, उसका पुत्र सीयक (श्रीहर्ष), उसका पुत्र मुंज (वाग्पतिराज) तथा उसके छोटे भाई सिंधुराज का पुत्र भोजराज। भोज के वंशज ही मालवा के नरवर्मा तथा उनका पुत्र यशोवर्मा थे जिसे सिद्धराज जयसिंह ने पराजित किया था।

मुरारि गुप्त (वि० प्रि० ३३)—यह एक कवि थे जो चैतन्य के भक्त तो बन गए किंतु वह राम के भक्त और दास्य-भाव के समर्थक थे।

मूर्च्छना (ज० व०)—सप्त स्वरों का क्रम युक्त संस्थान। क्रम युक्त होने पर सात स्वर मूर्च्छना कहे जाते हैं। मूर्च्छना शब्द में मूर्च्छ धातु का अर्थ चमकना, उभरना है। राग रूपी अमृत के हृद (सरोवर) में गायकों और श्रोताओं के हृदय का निमग्न होना ही मूर्च्छना है। जिस स्वर से आरोह होता है, उसी स्वर से जब समाप्ति हो, तब मूर्च्छना होती है। जैसे षड्ज ग्राम में प्रथम मूर्च्छना का स्वर सन्निवेश स रि ग म प ध नि स होने पर षड्ज मूर्च्छित (उभरा हुआ) होता है।

मुसलमान (वि० प० ६)—पवित्र धर्मग्रन्थ कुरान तथा पैगम्बर मुहम्मद साहब पर यकीन करने वाले और उनके वचनों को माननेवाले सम्प्रदाय का व्यक्ति।

मेघनाद (ज० भा० ३९१)—रावण का पुत्र तथा सुलोचना का पति।

मेनका (शकु० ६)—इन्द्र सभा की एक अप्सरा, जिसने इन्द्र की आज्ञा से विश्वामित्र का तप भंग किया था। विश्वा-मित्र के संयोग से इसके गर्भ से शकुन्तला का जन्म हुआ था।

मैत्रेयी—याज्ञवल्क्य की विदुषी तथा ब्रह्मवादिनी कनिष्ठा पत्नी। पति के संन्यास लेने पर इन्होंने पति से आत्म-ज्ञान माँगा और अंत में पति से आत्म ज्ञान प्राप्त कर उनके साथ वन को चली गयी।

मैनाक (ज० भा० ११२)—कैलास पर्वत की उत्तर दिशा में स्थित एक पर्वत। इसके समीप बिन्दु सरोवर है जहाँ राजा भगीरथ ने गंगावतरण के लिए तपस्या की थी। (२) पश्चिम दिशा का एक तीर्थभूत पर्वत जो वैदूर्य शिखर के पास नर्मदा के तट प्रान्त में है।

मोहन (अजित ८)—राष्ट्रपिता मोहनदास करमचन्द गाँधी।

य

यक्ष (ज० भा० २३२)—वनगमन के समय धर्म ने पहले तो ब्राह्मण बनकर निज अरणि रक्षा के लिए ब्राह्मणों का आह्वान किया। बाद में वह मायामृग बन कर लुप्त हो गया। मृग के पीछे भागते-भागते पांडवों को प्यास लगी। चारों पांडव प्यास बुझाने तथा युधिष्ठिर के लिए पानी लेने सरोवर पर गए। सरोवर में छिपकर किसी ने उनसे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए कहा; उत्तर न देने पर मरना अनिवार्य था। यक्ष के प्रश्नों का उत्तर न दे पाने पर चारों पांडव मृतप्राय हो गए। बाद में युधिष्ठिर ने उसके आचार-विचार संबंधी प्रश्नों के उत्तर दिए। युधिष्ठिर द्वारा दिए गए उत्तरों से संतुष्ट होने पर यक्ष ने चारों पांडवों को प्राण-दान दिया और प्रसन्न होकर दर्शन दिए। उसने बतलाया कि वह धर्म है और परीक्षा लेने के लिए यक्ष बना था।

यक्ष (शकु०)—एक देवता-वर्ग। इन्हें कुबेर का सेवक और उनकी निधि का रक्षक माना जाता है। पुराणों के अनुसार ये सुयश और प्रचेता की संतान हैं।

यज्ञसेन (ज० भा० ६६)—पांचाल नरेश पृषत का पुत्र, मरुदगणों के अंश से उत्पन्न। द्रोण के सहपाठी, अर्जुन द्वारा बंदी बनाकर द्रोणाचार्य को भेंट देना, इनके पुत्र का नाम धृष्टद्युम्न तथा पुत्री का कृष्णा (द्रौपदी), द्रौपदी का अर्जुन से विवाह, इनका उपलव्य नगर में अभिमन्यु के विवाह में आना। राजाओं के पास रण-निमंत्रण भेजने का प्रस्ताव, द्रोणाचार्य द्वारा इनका वध। इनके अन्य नाम—द्रुपद, पांचाल, पार्षत, सौमकि आदि।

यदु (ज० भा० २८)—राजा ययाति के देवयानी के गर्भ से जन्मे प्रथम पुत्र, पिता ययाति को युवावस्था न देने पर राजा न होने का शाप, यदु की संतानें यादव। शुक्राचार्य के दौहित्र, यदु के पुत्र का नाम क्रोष्टा।

यदुवंशी (सिद्ध० ६३)—भारत के प्राचीन सम्राट ययाति के पुत्र यदु के द्वारा चलाया गया वंश। इस वंश के लोग यादव भी कहलाते हैं। भारत का एक प्राचीन और

प्रसिद्ध क्षत्रिय वंश। कृष्ण को भी यादववंशीय ही माना जाता है।

यम (ज० व० २२)—समस्त प्राणियों का नियमन करने वाले, सूर्य के पुत्र, इनके द्वारा अर्जुन को दण्डास्त्र की भेंट, नल को वरदान, सावित्री को अनेक वरदान तथा सत्यवान को जीवित करना, पितरों के राजा, नचिकेता को उपदेश।

यमुना (द्वा० १४)—सूर्य-पुत्री, ये अधिदैविकरूप से भगवान कृष्ण की पट्टमहिषी थी। गंगा की सात धाराओं में से एक। ये आर्चीक पर्वत के पास बहती हैं। इनके तट पर संजय पुत्र सहदेव, राजभरत, मांधाता, नभाग पुत्र, अम्बरीष, अगस्त्य, राजा शांतनु आदि राजाओं ने यज्ञ और तपस्या की। इसका तट श्रीकृष्ण की लीला-स्थली।

ययाति (ज० भा०)—महाराज नहुष के द्वितीय पुत्र। इन्होंने देवयानी तथा शर्मिष्ठा से विवाह किया था। शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु को ही इन्होंने अपना उत्तराधिकारी बनाया तथा पुरु के ही वंशज कौरव तथा पांडव थे।

यश-पटह (सिद्ध० ४०)—सिद्धराज का प्रसिद्ध हाथी।

यशोदा (द्वा० १६)—कृष्ण के पिता बसुदेव के मित्र, नंद की पत्नी। कृष्ण का पालन-पोषण इन्होंने ही किया था। सामान्यतः यही कृष्ण की माता मानी जाती हैं।

यशोवर्मा (सिद्ध० ३१)—मालवा के राजा नरवर्मा का पुत्र। नरवर्मा ने सिद्धराज की अनुपस्थिति में पाटन पर चढ़ाई कर दी थी। सिद्धराज के मंत्री सांतू से उसने जय के फलस्वरूप सिद्धराज द्वारा की गई सोथनाथ की यात्रा का पुण्य माना था जो सांतू ने उसे दे दिया। सिद्धराज जयसिंह को यह घटना अपमानजनक लगी और उसने मालवा पर चढ़ाई कर दी। कहते हैं बारह वर्ष तक जयसिंह ने मालवा को घेरे रखा; नरवर्मा की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र यशोवर्मा सिंहासन पर बैठा। यशोवर्मा ने सिंहराज जयसिंह से संधि की थी।

यादव (सिद्ध० १२५)—ययाति के पुत्र। यदु के वंशज।

युधामन्यु (ज० भा० ४१५)—पांडव पक्ष का योद्धा, पांचाल देश का राजकुमार, अर्जुन का चक्र-रक्षक, कृपाचार्य द्वारा पराजित होना; इसके द्वारा कर्ण के भाई चित्रसेन का वध। अश्वत्थामा द्वारा इसका वध।

युयुत्सु (यु० ४२)—धृतराष्ट्र द्वारा वैश्यजातीय भार्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र, इनकी संज्ञा करण थी। भीमसेन को दिए गए विष की भीमसेन को सूचना देना। कुरुक्षेत्र में पांडवों के पक्ष में। यह ही महाभारत के अंत में राज-महिलाओं के साथ हस्तिनापुर लौटे थे। इसी को आगे करके पांडवों ने धृतराष्ट्र के लिए जलांजलि दी। महाराज परीक्षित के संरक्षक।

योगिनी (सिद्ध० ५७)—वैरागिनी जो अष्टांग योग में विश्वास रखती है, सुख-दुःख में एक-सी रहने वाली।

र

रांतिदेव (मं० ध० २८६)—एक दानी राजा जिन्होंने एक बार ४८ दिन निराहार रहने के बाद भी आए हुए अतिथि को अपना भोजन दे दिया था।

रक्तबीज (ज० भा० ४०८)—शुंभ और निशुंभ दानवों का सेनापति, एक राक्षस का नाम। इसके शरीर की प्रत्येक रक्त-बूँद से एक नये राक्षस की सृष्टि हो जाती थी। दुर्गा ने इसका रक्त पीकर इसे मार डाला था।

रघु (ली० २२)—सूर्यवंशी राजा दिलीप के पुत्र जो रामचंद्र के परदादा और प्रसिद्ध रघुवंश के मूल पुरुष तथा संस्थापक थे।

रघुनाथ (वि० प्रि० १२)—महाप्रभु चैतन्य के छः प्रमुख अनुयायियों में एक। यह वृंदावन में बस गए थे और यहाँ रहते हुए इन्होंने मत का प्रचार किया था।

रणछोड़ (वि० प्रि० २३)—जरासंध के आक्रमणों से तंग आकर श्रीकृष्ण रणभूमि त्यागकर द्वारका चले गए। इसी कारण इनका नाम रणछोड़ पड़ गया।

रणजीतसिंह महाराज (हि० ५६)(१७८०-१८३६)—सरदार महासिंह और राजकौर के गर्भ से उत्पन्न रणजीतसिंह का जन्म गुजरांवाला (अब पाकिस्तान) में हुआ था। १७६८ में शाह जमान ने जब पंजाब पर आक्रमण किया तो उन्होंने वीरता से लड़ते हुए उसे पराजित किया। १८०० ई० में वह लाहौर के एकछत्र अधिपति हो गये। जम्मू और कश्मीर के अभियान में भी इन्होंने विजय प्राप्त की। १८०० के अंत में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इनके साथ मित्रता करने का प्रस्ताव भेजा। इन्होंने यह मित्रता आजीवन निभायी। १८०१ ई० के वैशाखी दिवस पर इन्हें महाराणा की उपाधि दी गयी और इनका 'तिलक समारोह' हुआ। सिक्ख होते हुए भी उनका राज्य सबके लिए था और वह योग्यता के आधार पर पद-नियुक्ति करते थे। १८०५ ई० के अंत में उन्होंने होल्कर तथा अंग्रेजों के बीच संधि कराई। १८११ में अफगानिस्तान के पदच्युत शाह शुजा के परिवार को शरण दी। शाहशुजा को कारागार से मुक्त कराया जिसके बदले उसने इन्हें कोहिनूर हीरा दिया। १८१८ में मुलतान और पेशावर जीते; १८१६ में काश्मीर को मिलाकर पंजाब की सीमाओं का

विस्तार किया; १८२६ में हैदराबाद के निजाम से प्राप्त सुंदर चंदोबे को उन्होंने स्वर्ण मंदिर को भेंट कर दिया। १८२६ में सैयद अहमद को और १८३५ में काबुल के दोस्त मोहम्मद को पराजित किया। उनकी सर्वप्रमुख उपलब्धि थी—पंजाब को एक शक्तिशाली, प्रभुतासंपन्न राज्य बनाना।

रति (शकु० १२)—दक्ष प्रजापति की पुत्री और कामदेव की पत्नी। इसे देखकर समस्त देवताओं का मन इसमें रत हो गया, इस कारण इसका नाम रति पड़ा। रोमनों की 'वीनस' से इसकी तुलना की जाती है।

रत्नावली (भा० भा० ४५)—श्रीहर्ष द्वारा रचित एक नाटिका और उसकी नायिका।

रविवर्मा (भा० भा० २६३) (१८४८-१६०५)—त्रावणकोर में जन्म; चित्रकला की शिक्षा पाने के बाद अपनी चित्रकला में भारतीय एवं यूरोपीय चित्रशैली का समन्वय करने वाले, ३० वर्ष तक भारतीय चित्रकला की साधना-सेवा की। उनके चित्रों में पौराणिक विषयों और राजा-महाराजाओं के चित्र हैं जिनका बड़ा स्वागत हुआ।

रवीन्द्रनाथ (भा० भा० १६३) (१८६२-१६४२)—बहुमुखी प्रतिभा वाले बंगला भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार, संगीतकार और कलाकार जो रवीन्द्र संगीत, शांतिनिकेतन तथा 'गीतांजलि' पर नोबुल पुरस्कार पाने के लिए विश्व-विख्यात हैं और जिनका प्रसिद्ध गीत 'जन गण मन अधि-नायक' भारत का राष्ट्रगीत है।

रसखान (हि० ११८)—दिल्ली के पठान वंश में उत्पन्न ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि। इनका जन्म संवत् १६१५ के आसपास माना जाता है। इन्होंने इस्लाम छोड़कर वैष्णव धर्म स्वीकार किया और वह गोसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनके लौकिक प्रेम के संबंध में दो कथाएँ हैं—एक के अनुसार वह एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे और दूसरी के अनु-सार एक रूपगर्विता स्त्री पर। प्रेमपात्र से उपेक्षा पा वह भगवद्भक्ति की ओर उन्मुख हुए और भक्ति-काव्य लिखने लगे। इनके दो काव्य-संग्रह हैं—'सुजान रसखान' और 'प्रेम-वाटिका'। यह अपने सरस सवैयों के लिए विख्यात हैं।

राजेन्द्र (रा० प्र० २४)—राजेन्द्रप्रसाद—भारत के प्रथम राष्ट्रपति, स्वतंत्रतासेनानी, महात्मा गांधी के अन्यतम सहयोगी।

राधा (द्वा० १३)—(१) कृष्ण की प्रियतमा, अयन घोष की पत्नी, वृषभानु गोप की पुत्री।

(२) धृतराष्ट्र के सारथि अधिरथ की पत्नी, कर्ण को पुत्रवत् पालने वाली।

रानकदे (सिद्ध० ५५)—सौराष्ट्र के एक सामंत सिंधु-राज की कन्या। ग्रहदोष के कारण पिता ने इसका परित्याग कर दिया था। इसका पालन-पोषण एक कुम्हार (कुंभकार) दम्पति ने किया था। इसके रूप-लावण्य की चर्चा सुनकर सिद्धराज जयसिंह इससे विवाह करना चाहता था किंतु उसकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। सिंहराज के अमात्य भट्टकाक के कारण जूनागढ़ (सौराष्ट्र) के राजा खंगार से उसका विवाह हुआ। खंगार महीपाल का पुत्र तथा नवघन का पौत्र था। सिंहराज एक बार नवघन को पराजित कर उसका अपमान कर चुका था किंतु बाद में नवघन स्वतंत्र शासक के रूप में जूनागढ़ में राज्य कर रहा था। सिंहराज नवघन से तथा उसके पौत्र द्वारा रानकदे से विवाह करने के कारण चिढ़ गया था। उसने जूनागढ़ पर चढ़ाई कर खंगार और रानकदे के दो पुत्रों की हत्या कर दी। वह रानकदे को हठात् अपनी रानी बनाना चाहता था किंतु भट्टकाक के प्रयत्नों से वह अपने पति खंगार के सिर को लेकर सती हो सकी।

राम (सिद्ध० १११)—त्रेता-युग में कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न दशरथ के पुत्र, भगवान के मुख्य अवतार माने जाते हैं, वसिष्ठ द्वारा शिक्षा, बाल्यावस्था में मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुए ताड़का, सुबाहु आदि राक्षसों का वध, सीता से विवाह, राज्याभिषेक के समय विमाता कैकेयी द्वारा चौदह वर्ष का वनवास, वन में चित्रकूट; गोदावरी के किनारे नासिक के पास पंचवटी में वास। वहाँ से रावण द्वारा सीता-हरण। वानरराज सुग्रीव से मैत्री, सुग्रीव-हनुमान आदि की सहायता से लंका पर आक्रमण तथा रावण आदि राक्षसों का वध कर सीतासहित अयोध्या आना।

रामकृष्ण परमहंस (भा० भा० १६२)—(१८३६-१८८६) बंगाल के हुगली जिले में केमर प्रकुर गाँव में एक धर्मनिष्ठ गरीब परिवार में १८३६ में जन्म हुआ। बाल्यावस्था में नाम गदाधर था। सत्रह वर्ष की आयु में गाँव छोड़कर कलकत्ता आये और कालीदेवी के मंदिर में पुरोहित हो गए। बारह वर्ष तक सभी प्रमुख ग्रंथों का अध्ययन करने के बाद सभी के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति की दृष्टि; आध्यात्मिक प्रेरणा के स्रोत, समन्वयवादी, दिव्य संदेशवाहक।

रामदास, समर्थ (भा० भा० १५५) (शक संवत् १५३०-१६०३)—महाराष्ट्र के जाँमगाँव में शक संवत् १५३० को जन्मे रामदास विवाह-मंडप से भागकर गोदावरी के जल में खड़े होकर १२ वर्ष तक जप करते रहे और वैदिक ग्रंथों का अध्ययन किया। १५५४ के अंत में वह तीर्थयात्रा पर निकले और संपूर्ण देश का पर्यटन किया। देश की दुर्दशा से क्षुब्ध हो

उन्होंने कर्मयोग का पाठ पढ़ाया; कोदंडधारी राम का आदर्श रखा। शिवाजी महाराज से भेंट होने पर धर्म-संरक्षण का कार्य उत्साह से आगे बढ़ा, ग्यारह स्थानों पर हनुमान की मूर्ति स्थापित की गयी और साहित्य-साधना में जुट गए। इनका 'दास बोध' ग्रंथ सुविख्यात है। हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना में शिवाजी के साथ उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही।

राममूर्ति (भा० भा० ७२)—प्रो० राममूर्ति नायडू मद्रास के विजगापट्टम जिले के रहने वाले थे और शारीरिक बल के लिए विख्यात थे। छाती पर चालीस मन का पत्थर तुड़वाना, लोहे की मोटी जंजीर तोड़ना, छाती पर हाथी खड़ा करवाना, मोटर को रोकना उनके लिए सरल था। ऐसे कार्यों के लिए उन्हें अनेक पदक और पुरस्कार मिले।

राममोहन राय (भा० भा० १६२)(१७७४-१८१३)—भारतीय पुनर्जागरण के पिता, बंगाल के पुरातनपंथी ब्राह्मण-परिवार में जन्म होते हुए भी प्रगतिशील विचारों वाले, अनेक भाषाओं के विद्वान। १८०५ में ईस्ट इंडिया कंपनी में नियुक्त १८१४ में सेवानिवृत्त; १८२८ में ब्रह्मसमाज की संस्थापना की। महान समाज और धर्म सुधारक, सती-प्रथा का विरोध कर उसे समाप्त कराने वाले।

रामेश्वर (सिद्ध० १४)—दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध शिवलिंग। कहा जाता है इसकी स्थापना लंका जाते समय श्री रामचंद्र जी ने ज्येष्ठ शु १०, बुधवार को की थी। भारत के चार महान तीर्थ-धामों में से एक।

राष्ट्रसंघ (रा० प्र० १७)—राष्ट्रसंघ निर्माण की बात अक्तूबर १९४४ में डम्बरटन ओक्स में अमरीका, इंग्लैंड, रूस तथा चीन राष्ट्रों की एक बैठक में तय हुई तथा २६ जून १९४५ को ५० राष्ट्रों ने इसके चार्टर पर हस्ताक्षर किए। अमरीका के राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने इस संघ को संयुक्त राष्ट्र संघ (यू० एन० ओ०) नाम दिया और २४ अक्तूबर १९४५ को इस संघ की विधिवत स्थापना हुई।

रिजवी (रा० प्र० २०)—कासिम रिजवी, रजाकारों का नेता। अनेक वर्षों तक साम्प्रदायिक विष का प्रचार व प्रसार करने के बाद पाकिस्तान चला गया।

रुकमांगद (हि० १९७)—एक भगवद्-भक्त राजा।

रुक्मिणी (वि० प्रि० ४२)—विदर्भ-नरेश भीष्मक की पुत्री तथा श्रीकृष्ण की पटरानियों में सबसे बड़ी। श्रीकृष्ण ने इसका अपहरण कर विवाह किया था। इस अवसर पर कृष्ण ने रुक्मिणी के भाई रुक्मी, शिशुपाल आदि को युद्ध में पराजित किया। इसके गर्भ से दस पुत्रों और एक पुत्री की उत्पत्ति हुई। दसों पुत्रों में प्रद्युम्न सबसे बड़े और प्रसिद्ध हुए हैं।

रुक्मी (ज० भा०)—(१) विदर्भ-नरेश भीष्मक का ज्येष्ठ पुत्र तथा रुक्मिणी का भाई।

(२) मद्रराज शल्य का एक पुत्र जो अभिमन्यु के हाथों मारा गया।

रुद्र (श० ८)—(१)सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा की भौंहों से उत्पन्न एक देवता जो क्रोध-रूप माने जाते हैं। इनसे भूत, पिशाच, प्रेतादि उत्पन्न होते हैं। ग्यारह रुद्र—अज, एक पाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शंभु, हरण और ईश्वर।

(२) वैदिक साहित्य में अग्नि को भी रुद्र कहा गया है।

(३) भगवान शंकर का एक नाम।

(४) विश्वकर्मा के एक पुत्र का नाम।

रूप गोस्वामी (वि० प्रि० १२६)—यह चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे और उनसे प्रेरित होकर वृंदावन में बस गए थे। इनके पिता का नाम कुमार तथा पितामह का नाम मुकुन्द था। इनका समय पंद्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण तथा सोलहवीं शती का प्रारम्भ है। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की जिनमें 'भक्ति रसामृतसिंधु' अत्यन्त प्रसिद्ध है।

रेड इंडियन (रा० प्र० १७)—अमरीका के आदिवासी।

रेवती रमण राम (ज० भा० ३५५)—बलराम—राजा रेवत की पुत्री जिसका विवाह बलराम से हुआ; इस कारण बलराम का यह नाम। इनसे दो पुत्र निशठ और उल्मुक।

रोमांस (सिद्ध० निवेदन)—अंग्रेजी साहित्य में शौर्य-पूर्ण कथाओं को उपन्यास न कहकर रोमांस की संज्ञा दी गई है। रोमांस में काल्पनिक अथवा ऐतिहासिक वीरों की वीरता और उनके प्रेम आदि का वर्णन होता है।

रोहिणी (वि० प्रि० १५)—एक नक्षत्र का नाम रोहिणी नक्षत्र दिन में ही निकलता है। दक्ष-कन्या रोहिणी जो चंद्रमा की प्रियतमा है, वह भी दिन में ही चंद्रलाभ कर सकती है। "उपरागांते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्। शकुन्तला ७/२२ कालिदास।

रोहिणी (शकु० ४७)—(१) दक्ष प्रजापति की पुत्री तथा चंद्रदेव की पत्नी। २७ नक्षत्रों में से चौथा नक्षत्र; इसके ५ तारे हैं जिनकी आकृति रथ के समान है।

(२) वसुदेव की पत्नी तथा बलराम की माता जो पति के साथ सती हुई थी।

रौलेट एक्ट (अजित ४६)—यह अधिनियम अराजकतावादी तथा क्रांतिकारी अपराध अधिनियम के नाम से १

मार्च, १६१६ को पास किया गया था। इससे सरकार को अराजकतामूलक तथा क्रांतिकारी गतिविधियों से निबटने के लिए आपात अधिकार प्राप्त हो गये थे और वह ऐसी गति-विधियों से सम्बद्ध व्यक्तियों के साथ बहुत कड़ी कार्रवाई करने की स्थिति में हो गई थी। भारतीय नेताओं और जनता ने इस अधिनियम का विरोध किया क्योंकि इसमें न तो अपील करने के लिए व्यवस्था थी, न दलील या वकील की (अदालती तौर पर अपने पक्ष में कुछ कार्रवाई करने की) ही व्यवस्था थी। महात्मा गांधी ने इस अधिनियम के विरोध में ६ अप्रैल, १६१६ को पूर्ण हड़ताल का आह्वान किया था। इसके उपरांत पंजाब के कुछ भागों में हिंसा भड़क उठी। जलियांवाला बाग (अमृतसर) का भीषण नर-संहार भी इसी का एक परिणाम था।

ल

लंदन (रा० प्र० ४६)—यूरोप का सबसे बड़ा नगर; इसे रोमंस ने टेम्स नदी के किनारे बसाया था। इंग्लैंड का एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक, आर्थिक और औद्योगिक केन्द्र है।

लक्ष्मण (ज० व० १०)—(१) दुर्योधन का महारथी पुत्र, अभिमन्यु के द्वारा इसका वध।

(२) महाराज दशरथ के चार पुत्रों में से एक, सुमित्रा का ज्येष्ठ पुत्र तथा शत्रुघ्न का सहोदर।

लक्ष्मी (सिद्ध० ५८)—समुद्र से प्रकटी देवी, विष्णु की पत्नी, समुद्र से प्रकटे १४ रत्नों में से एक।

लव (ज० व० ३)—सीता के जुड़वाँ पुत्रों में से एक जिन्होंने अपने भाई कुश के साथ मिलकर राम का अश्वमेध घोड़ा पकड़ लिया और युद्ध में राम के सभी भाइयों को हराया। अंत में राम आए, बाल्मीकि ने परिचय कराया और पिता-पुत्रों का मेल हुआ। लव को कोसल का राज्य और कुशल को उत्तर कोसल का राज्य मिला।

लाक्षाभवन (व० सं० ७)—दुर्योधन द्वारा पांडवों के निवास के लिए बनवाया गया लाख का घर। इसके निर्माता उसके मंत्री पुरोचन थे। पांडव इस आवास के जलने पर बच गए और पुरोचन इसमें जलकर भस्म हो गया। कहा जाता है कि यह स्थान इलाहाबाद जिले में हंडिया स्टेशन के पास गंगा-तट पर था जहाँ उसके कुछ अवशेष शेष हैं।

लाटहार्डिज (कि० ४२)—चार्ल्स हार्डिज पेन्स हर्स्ट के बैरन; यह भारत के गवर्नर जनरल हेनरी हार्डिज के पौत्र थे जो १६१० से १६१६ तक भारत के वायसराय रहे। इन्हीं के समय में जार्ज पंचम सम्राज्ञी के साथ भारत आए थे। इन्होंने सन् १६१३ में भारतीय प्रवास कानून की आलोचना करते हुए एक जाँच कमेटी बनाई थी। इस समिति के सदस्य श्री एड्रूयूज तथा श्री पियर्सन ने। इनकी रिपोर्ट के आधार पर भारतीय प्रवास कानून में सुधार किए गये थे और कुली-प्रथा समाप्त कर दी गई थी।

लिंचिग (अजित ४४)—वह कानूनी कुरीति जिसके अनुसार अंग्रेज सरकार भारत में राजनीतिक अपराधियों के दंडविधान के लिए मनमाने ढंग से कानूनी अधिकारियों की नियुक्ति कर देती थी। ये अधिकारी निरंकुशतापूर्वक अप-राधियों को दंडित किया करते थे।

लिखित मुनि (भा० भा० १७)—शंख और लिखित दो बड़े सदाचारी और तपस्वी भाई थे। दोनों भाई बाहुदा नदी के तट पर अलग-अलग आश्रमों में रहते थे। एक दिन लिखित मुनि बड़े भाई के आश्रम में गए और वहाँ के स्वादिष्ट फलों को देख उनके मुँह में पानी भर आया। भाई थे नहीं, अतः बिना उनकी अनुमति लिए उन्होंने फल तोड़कर खा लिए। जब शंख को पता लगा तो उन्होंने अपने छोटे भाई के उस काम को चोरी बताया और परामर्श दिया कि वह राजा सुद्युम्न के निकट जाकर अपना अपराध स्वीकार करे। लिखित ने राजा के पास जाकर कहा कि उन्हें चोरी के लिए दंड दिया जाय। राजा ने कहा, "मैं तुम्हारी सत्यवादिता पर प्रसन्न हो तुम्हें क्षमा करता हूँ।" पर लिखित मुनि अड़े रहे, निदान उनके दोनों हाथ काट डाले गए। हाथ कटवाकर वह बड़े भाई शंख के पास गए, उनसे क्षमा माँगी और फिर तप करने चले गये।

लियोनिडास (प० प्र० ११६)—स्पार्टा का शासक जो ३०० स्पार्टन और ६०० थेस्पियन सैनिकों के साथ ईरानी राजा जर्कसीज से थर्मापिली के युद्ध में ४८० ई० पू० में पराजित हुआ था।

लोमस मुनि (ज० भा० १६८)—एक ऋषि का नाम; इन्होंने युधिष्ठिर को तीर्थों का परिचय दिया था और उनके साथ ही यात्रा की थी। अर्जुन के इंद्रलोक जाने पर उसका संदेश युधिष्ठिर को देने वाले।

व

वंशीवट (द्वा० १४)—वृंदावन के एक बरगद के वृक्ष का नाम; इसके नीचे कृष्ण वंशी बजाया करते थे।

वक (व० सं० ६)—एकचक्रा नगर से दो कोस दूरी पर यमुना के किनारे वन में एक गुफा के अंदर रहनेवाला नर-भक्षी राक्षस; भीमसेन द्वारा इसका वध।

वकासुर (द्वा० ७३)—अंधक का पुत्र तथा आद्रि का भाई, गायों को पानी पिलाते समय इसके द्वारा कृष्ण को

निगल लेना, कृष्ण के द्वारा वध।

वज्रदंत (सा० ४४४, प्र० ६९)—रावण की सेना का एक बलवान राक्षस।

वज्रदत्त (ज० भा० ४३१)—प्राग्ज्योतिषपुर का राजा और भगदत्त का पुत्र, इसका अर्जुन के साथ युद्ध।

वरुण (अजित ६०)—एक वैदिक देवता, जिन्हें जल का अधिपति कहा गया है।

वरुण २ (द्वा० ४०)—कश्यप द्वारा अदिति के गर्भ से उत्पन्न राक्षस, आदित्यों में से एक, महर्षि वशिष्ट इनके पुत्र रूप में उत्पन्न। चौथे लोकपाल, जल के स्वामी तथा जल में इनका निवास; अग्नि ने अर्जुन के लिए इनसे गांडीव, अक्षय तरकस तथा कपिध्वज रथ माँगा था।

वसिष्ठ (ज० भा० १०६)—एक प्राचीन ऋषि, मित्र और वरुण के उर्वशी से जन्मे पुत्र, राजा दिवोदास के पुरोहित, ब्रह्मा के मानस-पुत्र। इनके अनेक पत्नियाँ थीं किंतु प्रसिद्ध अरुन्धती है। विश्वामित्र तथा निमि से इनका संघर्ष। कहा जाता है विश्वामित्र ने इनके १०० पुत्रों को भस्म कर दिया था। सूर्यवंशी राजाओं के पुरोहित, इनके पास नंदिनी नामक प्रसिद्ध गाय थी। विश्वामित्र द्वारा हरण की चेष्टा करने पर इसके शरीर से अनेक योद्धा और मलेच्छ निकले जिन्होंने विश्वामित्र को पराजित किया। इंद्रियों को वश में करने के कारण वसिष्ठ कहलाए। इनके अन्य नाम—आपव, हैरण्य-गर्भ, मैत्रावरुणि, वारुणि।

वसु (श० ९)—'शक्ति' में 'वसुविमाकर' का अर्थ दक्ष कन्या से जन्मे आठ वसुओं की कांति है।

१. चेदि देश के राजा उपरिचर वसु।

२. धर्मदेव द्वारा दक्षकन्या के गर्भ से उत्पन्न आठ वसु धर, ध्रुव, आप, अनिल, अनल, सोम, प्रत्यूप और प्रभास।

३. महाराज ईलिन के द्वारा रथंतरी के गर्भ से उत्पन्न।

४. एक ब्राह्मण मुनि जिनके पुत्र का नाम पैल था।

५. जमदग्नि ऋषि के रेणुका के गर्भ से उत्पन्न परशुराम के भाई।

६. कृमिफुला का कुलांगार राजा।

७. भगवान विष्णु का एक नाम।

८. शूरसेन के पुत्र, देवकी के पति, श्रीकृष्ण के पिता, कुंती के भाई, उग्रसेन के मंत्री, उग्रसेन के भाई देवक की पुत्री से इनका विवाह, यह देवकी के नवजात शिशु कृष्ण को अपने मित्र नंद के यहाँ पहुँचाकर नंद-कन्या को लाये। इनके अन्य नाम—आनक दुन्दुभि, शौरि, शूरपुत्र, यदूद्वाह।

वसुदेव (द्वा० ११७)—शूरसेन के पुत्र, देवकी के पति, कृष्ण के पिता, कुंती के भ्राता, उग्रसेन के मंत्री, उग्रसेन के भाई देवक की कन्या देवकी से इनका विवाह। इन्होंने सद्यःजात कृष्ण को नंद के यहाँ पहुँचाया था।

वसुसेन (वसुषेण)(ज० भा० ३०६)—कर्ण का बाल्यावस्था का नाम।

वादरायण (ज० व० २४)—देखिए वेदव्यास।

वायजाबाई (भा० भा० १२५)—ग्वालियर की एक रानी।

वारडोली (स्व० सं० १२४)—१९२२ में वारडोली नामक स्थान पर गांधीजी, सरदार पटेल और तायबजी सविनय अवज्ञा आंदोलन की योजना बनाने के लिए एकत्र हुए। ४ फरवरी को गांधी जी ने वायसराय को लिखा कि उनके नेतृत्व में यह आंदोलन शुरू होगा।

वारणावत (ज० भा० ७०)—एक प्राचीन नगर जहाँ दुर्योधन ने पुरोचन की सहायता से पांडवों के लिए लाक्षागृह का निर्माण कराया था।

वाल्मीकि (द्वा० ७९)—भृगुवंशोत्पन्न प्रचेता के वंशज, रामायण के रचयिता, आदि कवि, महान ऋषि, तमसा नदी के तट पर इनका आश्रम था। उत्तरी बिहार के चम्पारन जिले में भैंसालोटन ग्राम को इनका आश्रम कहा जाता है। १४-१-१९६४ में इस स्थान का नाम वाल्मीकि नगर रखा गया। सुमति के पुत्र-जन्म, नाम अग्निशर्मा, चोर-डाकुओं के साथ रहना, अत्रि ऋषि की कृपा से ज्ञान प्राप्ति। १३ वर्ष तक तपस्या के कारण इनके ऊपर बांबी(वाल्मीकि)जम गई, इसी कारण नाम वाल्मीकि।

वासव (न० ४०)—इंद्र का एक नाम।

वासवी (न० ५०)—१. इंद्राणी, इंद्र की पत्नी—शची। २. उपरिचर वसु के वीर्य से अद्रिका के गर्भ से उत्पन्न कन्या सत्यवती जिसके कौमार्यावस्था के पराशर मुनि के संसर्ग से उत्पन्न पुत्र व्यास; महाराज शांतनु से विवाह के बाद चित्रांगद एवं विचित्रवीर्य पुत्रों की माता।

वासुकि (श० २६)—एक नागराज जो आस्तीक वे मामा तथा कश्यप और कद्रू के पुत्र थे। सागर-मंथन के समय मंथन-दंड की डोरी बने थे। दुर्योधन द्वारा भीम को डुबाए जाने पर उसकी रक्षा की।

वासुदेव (वि० प्रि०)—एक आचार्य जो चैतन्य के भक्त बन गए तथा उनके आसपास नृत्य किया करते थे। इनक नाम सार्वभौम भट्टाचार्य था। ये नीलाचल में निवास करते थे।

वास्कल (श० १२)—१. महिषासुर का साथी राक्षस

दुर्गा ने इसका संहार किया था।

२. समुद्र के निकटवर्ती प्रदेश का एक ग्राम जहाँ धर्म विमुख द्विज रहते थे।

३. हिरण्यकशिपु का पाँचवाँ पुत्र।

विकर्ण (यु० ४७)—धृतराष्ट्र का पुत्र, ग्यारह महारथियों में से एक, द्रौपदी चीर-हरण-प्रसंग में इसके द्वारा न्यायोचित निर्णय दिया गया। भीमसेन द्वारा इसका वध।

विक्टोरिया क्रास (कि० ४७)—अंग्रेजों के शासनकाल में सैनिकों को दिया जाने वाला एक सर्वोच्च सम्मान।

विक्रमादित्य, विक्रमी संवत्—यह उज्जयिनी-नाथ गंधर्वसेन के पुत्र थे। इन्होंने शकों को परास्त कर अपनी विजय के उपलक्ष्य में ईसा से ५७ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया था। वह स्वयं काव्य-मर्मज्ञ थे और प्रसिद्ध संस्कृत कवि कालिदास इनकी सभा के रत्न थे।

विचित्रवीर्य (ज० भा० ६५)—सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न चंद्रवंशी महाराजा शांतनु के पुत्र। इनका विवाह काशी-नरेश की सुपुत्री अम्बिका और अम्बालिका से हुआ था। निस्संतान अवस्था में ही असंयमपूर्ण जीवन व्यतीत करने के कारण राजयक्ष्मा से इनकी असामयिक मृत्यु। मृत्यु के पश्चात् इनकी माता सत्यवती तथा भीष्म के निर्देश से नियोग-क्रिया द्वारा व्यास द्वारा अम्बा व अम्बालिका को गर्भाधान कराया गया। अम्बा से धृतराष्ट्र तथा अम्बालिका से पांडु की उत्पत्ति।

विडालक्ष (श० १२)—महिषासुर के साथी एक राक्षस का नाम।

विदुर (ज० भा० ७४)—धृतराष्ट्र एवं पांडु के भाई के समान, व्यासजी के नियोग द्वारा एक दासी के गर्भ से जन्मे। पुत्र-प्राप्ति हेतु जब अम्बिका को व्यासजी के पास दुबारा भेजा जाने लगा तो चुपके से उसने अपनी दासी को अपने वेष में व्यास जी के पास भेज दिया; फलस्वरूप विदुर का जन्म। अपने समय के ज्ञानी तथा विद्वान।

विदुला (स्व० सं० ८३)—विदुला राजमाता थी। उनका पुत्र युद्ध में सिंधुराज से पराजित होने के बाद हताश होकर अकर्मण्य हो गया। तब रानी बिदुला ने ही अपने पुत्र को युद्ध करने के लिए उत्साहित किया। माँ के शब्दों से प्रेरणा पा संजय ने फिर युद्ध किया और शत्रुओं पर विजय प्राप्त की।

विधृता (द्वा०२९१)—एक याज्ञिक की पत्नी जो बाल-कृष्ण की लीलाओं पर मुग्ध थी किंतु याज्ञिक उसके इस प्रेम को सन्देह की दृष्टि से देखता था।

विदेह (शकु० ५)—१. मिथिला के राजा जनक का नाम।

२. जनक के पूर्वज राजा निमि का नाम।

३. प्राचीन मिथिला का नाम।

४. अत्रिकुल का एक राजा।

५. कौशाम्बी के राजा दंडपाणि का पुत्र, इनके पुत्र क्षेमक थे।

वशिष्ठ के शाप से राजा निमि ने देह त्याग किया, देवता इन्हें जीवित करना चाहते थे किंतु वह देहधारी नहीं होना चाहते थे। उनके शरीर मंथन से राजा जनक की उत्पत्ति।

विपिन बिहारी (भा० भा० १६३)—डाक्टर घोष कानून के विद्वान् थे। कलकत्ता तथा बर्दवान में वकालात की; कलकत्ता हाईकोर्ट के जज बने।

विराट (सै० ८)—मत्स्य देश के एक राजा जो मरुद्गणों के अंश से उत्पन्न हुए, अज्ञातवास में पांडव विराट के यहाँ विराट नगर में रहे थे। इनकी पुत्री का नाम उत्तरा था जिसे बृहन्नला रूप में अर्जुन ने संगीत-शिक्षा दी थी, बाद में उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से हुआ। इनकी पत्नी सुरथा का पुत्र श्वेत, सुदेष्णा के पुत्रों का नाम शंख और उत्तर थे। सुदेष्णा के भाई का नाम कीचक (शतानीक मदिराक्ष)। द्रोणाचार्य द्वारा विराट का वध किया गया था। गुप्तजी के सरंध्री तथा जय-भारत काव्यों में इसका चित्रण महाभारत के ही अनुरूप किया गया है।

विलियम डी० रेंट (हि० ११६)—फ्रांस का एक नागरिक जो हिन्दू धर्म में दीक्षित होने के बाद शिमला-स्थित एक मंदिर में महंत हो गया था और जिसने अपना नाम मस्तराम रख लिया था।

विष्णु शर्मा (भा० भा० ३६)—प्रसिद्ध नीति-ग्रंथ 'पंचतंत्र' के रचयिता जिन्होंने अमरशक्ति नामक राजा के तीन मूर्ख पुत्रों—बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनंतशक्ति को नीति-कुशल बनाने के लिए 'पंचतंत्र' की रचना की। इसमें पाँच भाग हैं—मित्र-भेद, मित्र-संप्राप्ति, काकोलूकीय, लब्ध-प्रणाश और अपरीक्षित। इन कथाओं के द्वारा नीति का उपदेश बड़ी सरल और रोचक शैली में दिया गया है। अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है।

वृंदावन (द्व० १४)—मथुरा जिले में स्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान, कृष्ण का लीलास्थल, महमूद गजनवी ने आक्रमण कर इसको तहस-नहस कर दिया। चैतन्य महाप्रभु ने यमुना के किनारे दूसरे वृंदावन की स्थापना की।

वृषपर्वा (ज० व० २६)—राक्षसों का राजा, दैत्य-

राज, इसने शुक्राचार्य को अपना गुरु बनाया था। इसी की पुत्री शर्मिष्ठा थी।

वृहन्नला (मं० घ० ६४)—पांडवों के अज्ञातवास के दिनों में राजा विराट के यहाँ पांडव वेश बदलकर रहे थे। उस समय अर्जुन ने वृहन्नला नाम से महल में नृत्य-संगीत की शिक्षा देने का कार्य किया था।

वेत्रवंती (सिद्ध० ११५)—वेत्रवती (वेतवा) नदी के तट पर बसा एक उपनगर।

वेत्रवती (सि० ७)—मध्यप्रदेश की एक नदी जो बेतवा के नाम से भी प्रसिद्ध है।

वेन (भा० भा० ५६)—एक अत्याचारी राजा जिसके अनाचारों और अत्याचारों से तंग आकर ऋषि उसके पास गये और उसे समझाया, पर न मानने पर मार डाला गया।

विश्वकर्मा (श० १०)—देवताओं के शिल्पी, आठवें बसु, प्रभास के पुत्र, इनकी माता वृहस्पति की बहिन, इंद्र-लोक, तिलोत्तमा, यमसभा, पुष्पक विमान, अर्जुन के रथ के ध्वज, विजय नामक धनुष, शिव के लिए दिव्य रथ का इन्होंने निर्माण किया था। नल नामक वानर और तीन सिर वाला विश्वरूप इनके पुत्र थे। इन्होंने वृत्रासुर को भी उत्पन्न किया था। बारह आदित्यों में से एक, कश्यप द्वारा अदिति के गर्भ से उत्पन्न, बज्र के निर्माता, पुत्री का नाम कशेरुका, इन्होंने सुदर्शन चक्र, लंका का निर्माण किया था। सूर्य-पत्नी संज्ञा के पिता।

विश्वरूप (वि० प्रि० १०)—ये चैतन्य के बड़े भाई थे, संन्यासी हो गये थे।

वेशल (सिद्ध० ७०)—जूनागढ़ (सौराष्ट्र) के राजा खंगार की बहिन का लड़का। इसने तथा इसके भाई वेशल ने षड्यंत्र कर सिद्धराज जयसिंह को जूनागढ़ पर चढ़ाई करने का बुलावा दिया और उसकी सहायता की थी।

वैतरणी (द्वा० ६२)—एक प्रसिद्ध पौराणिक नदी जो यमराज के द्वार पर स्थित है। कहते हैं मृत्यु के पश्चात् इसके गरम, तेज प्रवाह वाले बदबूदार जल को पार करना होता है। (२) सती-वियोग में शिव के नेत्र-जल से बनी नदी (३) उड़ीसा की एक पवित्र नदी। (४) भागीरथी गंगा ही जब पितृलोक में बहती है तो वैतरणी कहलाती है।

व्यास (सा० ३८७)—महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास। उन्होंने 'महाभारत' की रचना द्वापर युग के अंत में की थी। इस प्रकार धार्मिक परम्परा इनका रचनाकाल विक्रम से भी कई हजार वर्ष पूर्व मानती है। इस परम्परा के अनुसार 'महाभारत' तथा वाल्मीकि कृत 'रामायण' को वेद के समान पवित्र ग्रंथ माना जाता है तथा इतिहास-पुराण पंचम वेद के रूप में इनकी गणना की जाती है। ये दोनों काव्य केवल काव्य न होकर भारतीय संस्कृति, समाज, राज-नीति तथा धर्म के सर्वांगीण आकर-ग्रंथ हैं। इस दृष्टि से 'महाभारत' 'रामायण' से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसे 'भारतीय संस्कृति का विश्वकोश' कहा जा सकता है।

व्यास मुनि (ज० व० २४)—१. देखिए वेदव्यास और व्यास।

वेदव्यास, व्यास द्वैपायन (ज० भा० २५)—महाराज शांतनु की पत्नी सत्यवती के कुँआरी अवस्था के पुत्र। ये पराशर मुनि के पुत्र और द्वैपायन नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने महाभारत नामक ग्रंथ की रचना की। इन्होंने अपनी माँ सत्यवती और सत्यव्रत की आज्ञा द्वारा नियोग-पद्धति का अनुसरण करते हुए अम्बिका, अम्बालिका तथा उनकी एक दासी को गर्भाधान कराया जिससे धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर का जन्म हुआ। सत्यवती ने कुमारी अवस्था में पाराशर जी से समागम कर यमुना द्वीप में इन्हें जन्म दिया था। पाराशर द्वारा जन्म दिए जाने के कारण इन्हें पाराशर और द्वीप में जन्म लेने के कारण द्वैपायन कहा गया। वेदों का व्यास (विस्तार) करने के कारण वेदव्यास कहलाए। इनके द्वारा गांधारी को सौ पुत्रों का वरदान, युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में ब्रह्मा का कार्य संभालना, यज्ञ समाप्ति पर युधिष्ठिर का अभिषेक, इनके द्वारा संजय को दिव्य दृष्टि का दान; इन्होंने समय-समय पर शोकाकुल धृतराष्ट्र, गांधारी, युधिष्ठिर को भी अनेक दृष्टांत सुनाकर सान्त्वना दी। इनके पुत्र का नाम शुकदेव था। धृताची अप्सरा के रूप पर मोहित होकर अरणी काष्ठ पर वीर्यपात हो जाने से शुकदेव की उत्पत्ति। इनके प्रभाव से कुरुक्षेत्र में मारे गए कौरव-पांडव वीरों का गंगा के जल से प्रकट होना। अन्य नाम—कृष्ण, कृष्ण द्वैपायन सत्यवती-सुत, पाराशर्य, बादरायण।

व्रज रहस्य (वि० प्रि० ६७)—व्रज शब्द का अर्थ है व्याप्ति। व्यापक होने के कारण ही इसे व्रज कहते हैं सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से अतीत जो परब्रह्म है वही व्यास है, अतः उसे व्रज कहते हैं।

(२) मथुरा और वृंदावन के आस-पास ८४ कोष की वह भूमि जहाँ कृष्ण, राधा-कृष्ण, और गोपी-गोप-कृष्ण ने रहस्यमयी लीलाएँ की थीं। यह क्षेत्र कृष्ण-लीला के कारण भक्ति, भक्ति-रस, व्रज-रस का स्थल है।

श

शंकर (द्वा० ४९)—शिव का एक नाम।

शक (सिद्ध० ३४)—मध्य एशिया की यायावर जाति के लोग। ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी से प्रथम शताब्दी तक ये लोग गांधार, पंजाब, मथुरा, काठियाबाड़ और महाराष्ट्र तक फैल गए। शक-शासकों ने क्षत्रप उपाधि धारण की। इन्होंने पश्चिमी भारत पर वर्षों तक राज्य किया। शकों के कुषाण राजा कनिष्क ने ७८ ई० में शक संवत् चलाया था।

शकुन्तला (शकु० ५४)—देवलोक की अप्सरा मेनका के द्वारा महर्षि विश्वामित्र का तप भंग कर दिया गया था। फलस्वरूप मेनका के गर्भ से शकुन्तला का जन्म हुआ। उसका पालन-पोषण कण्व मुनि ने किया था और उसका विवाह महाराज दुष्यन्त से हुआ था। शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा था।

शकुनि (यु० ३६, ज० भा० ६९)—(१) धृतराष्ट्र कुल में जन्मा एक नाग जो जनमेजय के सर्वसत्र में भस्म हो गया था।

(२) गांधारराज सुबल का पुत्र, दुर्योधन का मामा, धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी का भाई। इसी की सहायता से दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जूए में हराया, इसने गांधारी के विवाह का कार्य संपादित किया था। इसके पाँच भाइयों का इरावान द्वारा बध, भीमसेन द्वारा इसके पाँच भाइयों का संहार। सहदेव द्वारा इसका वध।

अन्य नाम—गांधार कितव, पर्वतीय, सौबल, सौबलक, सुबराज।

शक्ति (श०)—महिषासुर के वध के लिए विष्णु के परामर्श से अपने-अपने तेज से तेज-पुञ्जस्वरूप देवी को प्रकट किया था। शक्तिरूपिणी देवी ने महिषासुर का वध किया था। (सिद्ध० ६४) पार्वती, दुर्गा।

शची (न० १६)—दानवराज पुलोम की पुत्री, इंद्र की पत्नी तथा जयंत एवं जयंती की माता। वृत्रासुर वध के पाप के कारण इंद्र को कमलनाल में छिपकर रहना पड़ा और इंद्रलोक की रक्षा का भार इक्ष्वाकुवंशी राजा अंबरीश के पुत्र नहुष को सौंपा गया। नहुष के शची पर आसक्त होने के कारण शची ने उसको स्वर्गच्युत करने की योजना बनाई। फलस्वरूप नहुष का स्वर्ग से पतन हुआ।

शची (वि० प्रि० १०)—चैतन्य महाप्रभु की माता।

शबरी (व० सं० ३)—शबरी जाति की श्रमणा नाम की स्त्री जो भगवद्भक्त थी। पति द्वारा पक्षियों के मारने पर वह घर त्यागकर पम्पापुर पहुँची। वहाँ मतंग ऋषि के उपदेश से इसे ज्ञान और भक्ति प्राप्त हुई। ऋषियों द्वारा इसका तिरस्कार किए जाने से पम्पापुर में कीड़े पड़ गए और जल रक्त के समान हो गया। वनगमन और सीताहरण के समय राम-लक्ष्मण इसकी कुटी पर गए। इसने भक्तिभाव से झूठे बेर राम को खिलाए और इसके स्पर्श से पम्पापुर का जल भी शुद्ध हो गया।

शर्मिष्ठा (ज० भा० २३)—दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या। स्नान करते समय वस्त्र बदल जाने के कारण इसने क्रोध में अपनी सखी तथा गुरुपुत्री देवयानी को एक कुएँ में ढकेल दिया था जिसका नहुष के पुत्र राजा ययाति ने उद्धार किया था। अपने इस कृत्य के कारण उसे देवयानी की दासी बनना पड़ा। राजा ययाति से देवयानी का विवाह होने के बाद शर्मिष्ठा को दासी-रूप में देवयानी के साथ जाना पड़ा। राजा ययाति से उसे तीन पुत्र हुए—दुह्यु, अनु तथा पुरु। पुरु ही बाद में भारत देश के राजा बने जिनके वंशज कौरव तथा पांडव थे।

शल्य (यु० २५)—बाह्लीक एवं मद्र देश के राजा, माद्री के भाई, नकुल-सहदेव के मामा। महाभारत युद्ध में आने पर इनका जो विशेष सत्कार हुआ इससे वे प्रसन्न हुए किंतु जब पता चला कि यह सत्कार दुर्योधन ने किया था तो दुःखी हुए; किंतु सत्कारी का पक्ष लेने का वर दे चुके थे। युद्ध के समय युधिष्ठिर से मिलने पर कर्ण का उत्साह नष्ट करने की प्रतिज्ञा करना। युद्ध में कर्ण का सारथी बनना, उसका उत्साह नष्ट करना। कर्ण के पश्चात कौरव-सेना का सेनापति बनना। युधिष्ठिर द्वारा वध।

अन्य नाम—आर्तायनि, बाह्लीक पुंगव, सौवीर।

शांतनु (ज० भा० १३)—महाराज प्रतीप के द्वितीय पुत्र, देवापि के अनुज तथा बाह्लीक के अग्रज, माता का नाम सुनन्दा, दूसरों को शांति देने के कारण इनका नाम शांतनु। भीष्म के पिता, इनकी दूसरी पत्नी सत्यवती जो मत्स्य-कन्या थी। सत्यवती से चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य का जन्म। इनकी पहली पत्नी का नाम गंगा था जो भीष्म की माँ थी।

अन्य नाम—भारत, भारतगोप्ता, भरत सत्तम, कौरव्य कुरुसत्तम प्रातीप आदि।

शांतिपुर (वि० प्रि० ११६)—नवद्वीप का एक ग्राम जहाँ चैतन्य ने नवद्वीप आते हुए विश्राम किया था।

शाकंभरी नृप (सिद्ध० ८५, ९२)—अजमेर राज्य का प्राचीन नाम सपाद लक्ष अथवा शाकंभरी। इसका राजा अर्णोराज था जिस पर सिद्धराज जयसिंह ने विजय प्राप्त कर उसके साथ अपनी एकमात्र पुत्री कांचन दे का विवाह किया

था।

शाक्य मुनि (भा० भा० ६४)—भगवान बुद्ध जो शाक्य कुल में उत्पन्न हुए थे।

शार्गरव (शकु० २९)—महर्षि कण्व का शिष्य। यह और गौतमी शकुन्तला को दुष्यन्त के पास पहुँचाने गए थे।

शार्लमेगन (भा० भा० ९९) (७६८-८१४)—महान सम्राट जिसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त कर इटली, बवेरिया आदि को अधीन बनाया, स्पेन और हंगरी के युद्धों में विजय प्राप्त की और पश्चिमी यूरोप के तमाम ईसाई देशों को एक साम्राज्य में मिलाकर उनका अधिपति बना। उसने यूरोप में पुनर्जागरण की लहर भी दौड़ाई।

शिखंडी (ज० भा० ३८)—इसके पूर्वजन्म का नाम अम्बा; काशी-नरेश की पुत्री, शाल्व व भीष्म द्वारा स्वीकार न किए जाने और परशुराम-भीष्म के युद्ध का भी कोई परिणाम न निकलने पर शिव की तपस्या और शिव से अगले जन्म में भीष्म को मारने का वरदान। महाराजा द्रुपद के यहाँ कन्या या नपुंसक रूप में जन्म। महाभारत के युद्ध में शिखंडी द्वारा भीष्म का वध।

शिवि, बाज़ और कबूतर का प्रसंग—उशीनर के पुत्र राजा शिवि अपनी जीव-दया और दानशीलता के लिए विख्यात हैं। एक बार उनकी परीक्षा लेने के लिए इंद्र ने बाज़ का, अग्नि ने कबूतर का रूप धारण किया। बाज़ कबूतर का पीछा करता हुआ राजा शिवि के दरबार में पहुँचा। कबूतर ने राजा की गोद में शरण ली। बाज़ ने उस पर अपना अधिकार बताया और अंततः वह इस शर्त पर कबूतर को छोड़ने के लिए तैयार हुआ कि राजा कबूतर के भार के बराबर अपने शरीर का मांस दें। राजा के सहमत होने पर तराजू के एक पलड़े पर कबूतर रखा गया और दूसरे पर राजा स्वयं अपने शरीर का मांस काटकर रखते रहे। कबूतर का भार बढ़ता गया तो राजा स्वयं तराजू के पलड़े पर जा बैठे। इस कृत्य के द्वारा उन्होंने अपनी सच्ची जीव-दया और दानशीलता का परिचय दिया।

शिशुपाल (द्वा० ११६)—चेदी देश का प्रसिद्ध राजा, दमघोष का पुत्र, जरासंध का प्रधान सेनापति, राजसूय-यज्ञ में श्रीकृष्ण की अग्रपूजा का इसके द्वारा विरोध, श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में द्वारका का इसने दाह किया था। श्रीकृष्ण का मौसेरा भाई, जन्म के समय इसके तीन नेत्र और चार हाथ थे तथा वह गदहे के समान रेंकने लगा था। श्रीकृष्ण ने इसके १०० अपराध क्षमा करने का वचन दिया था। कृष्ण के सुदर्शन चक्र से इसका वध। रुक्मि की इच्छा से भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी का विवाह इससे होना तय हुआ था लेकिन कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अपहरण। शिशुपाल के अन्य नाम—चैद्य, चेदिपति।

गुप्तजी ने महाभारत के अनुसार ही इसका चित्रण सिद्धराज, द्वापर और जयभारत काव्यों में किया है।

शुंभ (श० १८)—दनु के गर्भ से उत्पन्न कश्यप ऋषि का पुत्र। इसके भाइयों के नाम नमुचि और निशुम्भ थे। वह दुर्गा या शक्ति के द्वारा मारा गया। इसे वर प्राप्त था कि स्त्री के अतिरिक्त किसी और के द्वारा नहीं मारा जा सकता। देवी के प्रति आसक्ति और विवाह-प्रस्ताव। निशुंभ के मरने के पश्चात देवी द्वारा इसका वध।

शुंभ और निशुंभ (हि० ७५)—दो राक्षस भाई जो अपने अत्याचारों के कारण दुर्गा द्वारा मारे गये।

शुक्र (सिद्ध० १२८)—महर्षि भृगु के पुत्र, असुरों के आचार्य, मृतसंजीवनी विद्या के ज्ञाता, इनकी पुत्री का नाम देवयानी। कच को मृतसंजीवनी विद्या का दान किया। इन्हें पिता तथा माता मानकर देवयानी से विवाह करने के प्रस्ताव को कच ने अस्वीकार किया। देवयानी का ययाति से विवाह। शर्मिष्ठा से पुत्रोत्पन्न करने के कारण ययाति को वृद्धावस्था का शाप तथा शाप-मोक्ष का उपाय बतलाना। शिवजी के लिंग से निर्गत होने के कारण इनका नाम शुक्र पड़ा। पत्नी का नाम शुषमा या शतपर्वा। इनके चार पुत्र थे—त्वष्टा, वरुत्री, षण्ड तथा मर्क। अन्य नाम—भार्गव, भृगुनन्दन, भृगुश्रेष्ठ, उशना आदि।

शुभा (वि० प्रि० ११३)—विष्णुप्रिया की अंतरंग सहेली।

शूनक (ज० भा० ४४६)—स्वर्गारोहण के समय महाराज युधिष्ठिर के साथ जाने वाला कुत्ता।

शूरसेन (ज० भा० ४१)—यदुवंशी देवमीढ़ के पुत्र, वसुदेव के पिता। इनकी पुत्री का नाम पृथा, उसे अपने मित्र राजा कुन्तिभोज को गोद देना, इसी कारण पांडु की पत्नी, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम की माता का नाम कुन्ती पड़ा था।

शेरशाह (काबा० ५३)—भारत के अफ़ग़ान शासक शेरशाह सूरि जिन्होंने यहाँ १५४० से १५४८ ई० तक शासन किया।

शौरि (ज० भा० ४३१)—शूर के पुत्र वसुदेव का नाम।

श्रद्धानंद (हि० १९१)—स्वामी श्रद्धानंद (१८५७-१९३६) पंजाब के जालंधर शहर से बीस मील दूर तलवार गाँव में जन्मे श्रद्धानंद का पहला नाम मुंशीराम था। यह पं० मोतीलाल नेहरू के सहपाठी रहे। बड़े होकर वकील बने

और जालंधर में वकालत शुरू की। अच्छी आय थी, ठाठ-बाट से रहते थे। आर्यसमाज के प्रवर्तक दयानंद सरस्वती के संपर्क में आने पर आर्यसमाजी बन गये और प्रचारार्थ १८८९ में 'सद्धर्म प्रचारक' साप्ताहिक पत्र निकाला। वह सच्चे देशभक्त और समाजसुधारक थे। १८८९ में गुरुकुल-प्रणाली की शिक्षा के लिए विस्तृत योजना प्रस्तुत की और उसे क्रियान्वित करने में जुट गये, वकालत छोड़ दी। उन्हीं के प्रयत्नों से १९०२ में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना हुई। १९१७ में सब-कुछ दान कर संन्यासी बने। १९१९ में गांधीजी से संपर्क होने पर वह राजनीति में कूद पड़े। वह पहले हिंदू थे जिन्होंने जामा मस्जिद और फतहपुरी मस्जिद में भाषण दिये। शुद्धि आंदोलन में भाग लेने के कारण मुसलमान चिढ़ गये और १९२६ में अब्दुल रशीद नामक मुसलमान ने उन्हें गोली चला कर मार डाला। इस प्रकार वह धर्म पर बलिदान हो गये।

श्रवण (श्रवण कुमार) (ज० भा० १७५)—अंधे तपस्वी माता-पिता का इकलौता पुत्र जो हाथी के भ्रम में दशरथ के शब्द-बेधी बाण से मारा गया।

श्रीद (न० ५४)—(१) कुबेर का विशेषण (२) विष्णु का एक नाम।

श्रीरंग (ज० भा० १३६)—भगवान का विशेषण, श्रीकृष्ण का एक नाम।

श्रीवास (वि० प्रि० २६)—नवद्वीप के मायापुर नामक स्थान के एक प्रसिद्ध वैष्णव।

स

संकर्षण (वि० प्रि० १०)—बलराम का एक नाम। वह देवकी के गर्भ में थे, परंतु राजा यम ने याम्य माया द्वारा इन्हें रोहिणी के गर्भ में डाल दिया। इस संकर्षण कर्म के कारण इनका नाम संकर्षण पड़ा।

संगम (ज० भा० १६९)—प्रयाग में जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों का मिलन होता है।

संजय (ज० भा० २९२)—गवल्गण नामक सूत-पुत्र, मुनियों के समान ज्ञानी और धर्मात्मा। धृतराष्ट्र के मंत्री। इन्हें दिव्य-दृष्टि प्राप्त थी। वह तीसरे दिन आहार ग्रहण करते थे। महाभारत के समय इनका कार्य समाचार देना तथा समाचार सुनाने का रहा। युधिष्ठिर द्वारा इन्हें कार्यों की जाँच-पड़ताल और आय-व्यय के निरीक्षण का कार्य सौंपा गया। वह धृतराष्ट्र के पीछे चलते थे और उन्हें प्रत्येक विषय में जानकारी देते थे।

संजीवनी (सिद्ध० १२८)—एक विद्या जिसके द्वारा मृत व्यक्ति को जीवन-दान दिया जा सकता है। शुक्राचार्य ने इसी विद्या से अनेकों बार दानवों तथा बृहस्पतिपुत्र कच को जीवित किया था।

संवत् (सिद्ध० ३४)—वर्ष-गणना का वर्ष, सन्, वर्ष, साल, विक्रम, संवत्सर। भारत में अनेक संवतों का चलन हुआ। बहुत से राजाओं ने अपने राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में अपने नाम से नये संवत् प्रचलित किए थे। युधिष्ठिर संवत् ईसापूर्व ३१०२ से प्रारंभ माना जाता है। विक्रम संवत् का नाम सानंद, संवत् विक्रम, श्री नृप विक्रम संवत् अथवा मालव संवत् भी है। इसका प्रारंभ ५७ ई० पूर्व माना जाता है। आनंद विक्रम का प्रारंभ ३५ ई० में तथा कनिष्क द्वारा चलाए शक संवत् का प्रारंभ ७८ ई० में माना जाता है। अन्य संवतों में लिच्छवि, चेदि या कलचुरि, गुप्त, हूण, हर्ष, कालम् नेपाली, विक्रमांक, चालुक्य संवत् (चालुक-नरेश जयसिंह द्वारा सन् १०७६ में चलाया गया) लक्ष्मण संवत् आदि प्रसिद्ध हैं।

संसप्तक (ज० भा० ३७९)—संशप्तक। अन्त तक युद्ध करने और दूसरों को भागने से रोकने की शपथ खाने वाला योद्धा। महाभारत के द्रोणपर्व में त्रिगर्त जनपद के राजा सत्यरथ तथा उसके भाई सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मा, मालव तथा तुण्डी केरवीर, प्रस्थलेश्वर सुशर्मा ने यह प्रतिज्ञा की थी कि या तो अर्जुन को मारेंगे या मर जायेंगे, इसीलिए ये प्रतिज्ञाधारी संशप्तक कहलाए।

सगर (प० प्र० १३२)—सूर्यवंशी राजा बाहु का चक्रवती पुत्र। सपत्नी के द्वेष के कारण सगर की माँ को शिशु को सात वर्ष तक गर्भ में रखना पड़ा। उसने बड़ा होकर अपने पिता की पराजय का बदला लेने के लिए दैत्यों से युद्ध किया और उनसे पिता का राज्य छीन लिया। सगर के दो पत्नियाँ थीं—केशिनी और सुमति। सुमति के साठ हजार पुत्र हुए। अश्वमेध यज्ञ करने के लिए उसने घोड़ा छोड़ा, पर वह हर लिया गया। सगर ने बेटों को उसे खोजने का आदेश दिया। उन्होंने उसे पाताललोक में कपिल मुनि के पास देखा। उन्होंने भ्रमवश कपिल मुनि को चोर समझ कुवाच्य कहे। कपिल ने क्रुद्ध होकर उन्हें भस्मीभूत कर दिया। प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा कि जब उनका पौत्र आकाश से गंगा उतार लायेगा तब वे स्वर्ग प्राप्त करेंगे। भगीरथ ने यह कार्य किया।

सत्यवती (ज० भा० ३२)—एक धीवर कन्या, इसके शरीर से मछली की गंध आने के कारण इसका नाम मत्स्य-गंधा भी था। कौमार्यावस्था में पाराशर मुनि के संसर्ग से इसके गर्भ से महर्षि व्यास का जन्म हुआ था। इसका विवाह

कौरव-पांडवों के पूर्वज महाराज शान्तनु से हुआ था जिसके कारण भीष्म को आजन्म विवाह न करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ी थी। इसके दो पुत्रों में चित्रांगद गन्धर्वों से युद्ध में मारे गए और दूसरे पुत्र विचित्रवीर्य की पत्नी अंबिका एवं अंबालिका से व्यास के नियोग से धृतराष्ट्र तथा पांडु का जन्म हुआ था।

सत्यवान-सावित्री (ज० भा०)—साल्व देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र। वृद्धावस्था में राजा अन्धे हो गए और शत्रुओं द्वारा राज्य छीने जाने पर अपनी पत्नी और पुत्र के साथ वन में रहने लगे। मद्रदेश के राजा अश्वपति की कन्या जो पति की खोज में जा रही थी उसने सत्यवान को अपना पति चुना। अश्वपति के दरबार में नारद ने सत्यवान को अल्पायु बताते हुए विवाह के एक वर्ष पश्चात मृत्यु-योग बतलाया। सावित्री ने उस दिन से तीस दिन पूर्व से व्रत रखना प्रारंभ कर दिया। सत्यवान जब लकड़ी काटने वन को गए तो सावित्री भी उसके साथ गई। वहाँ सत्यवान चक्कर खाकर सावित्री की गोद में गिर कर मृत्यु को प्राप्त हुए। यमराज जब यमपाश में बांधकर सत्यवान की आत्मा को ले जा रहे थे तब सावित्री पीछे-पीछे चलने लगी। यम ने उसे लौटाने का प्रयत्न किया, अन्त में हारकर उसे १०० पुत्र होने का वर दिया। इस वर को पूरा करने के लिए यम को सत्यवान के प्राण वापिस देने पड़े और साथ ही राजपाट आदि भी। महाभारत के वन-पर्व तथा मत्स्य पुराण में यह कथा विस्तार से दी गई है। जिस दिन अर्थात ज्येष्ठ मास की अमावस्या को सावित्री को यम से वर प्राप्त हुआ था, वह दिन सुहागिन स्त्रियों के लिए पवित्र दिन माना जाता है।

सनातन गोस्वामी (वि० प्रि० १२६)—चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख शिष्य। रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी दोनों महाप्रभु के पट्टशिष्य एवं भाई थे। इन्होंने 'भागवतामृत' और 'सिद्धांत सार' आदि अनेक ग्रंथों की रचना की।

सपादलक्ष (सिद्ध० ८५)—अजमेर राज्य का प्राचीन नाम; इसे सिद्धराज राजा जयसिंह ने इसके राजा अर्णोराज को पराजित कर जीता था। बाद में अपनी पुत्री कांचन दे का विवाह उसके साथ कर दिया था। सांभर तथा अजमेर का क्षेत्र। यह चौहान राजाओं के अधीन था।

सप्तरथी (ज० व० १३)—दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, दुःशासन, शकुनि, अश्वत्थामा।

महाभारत के द्रोण पर्व में छः महारथियों के प्रयत्न से अभिमन्यु वध का वर्णन।

सप्त स्वर—स्वर सात प्रकार के माने गए हैं। षडज (स) ऋषभ (रे) गांधार (गा) मध्यम (मा) पंचम (पा) धैवत (धा) और निषाद (नि)

सर सयाजीराव (१८६३-१९३८)—बड़ौदा-नरेश जिन्होंने बड़ौदा रियासत पर ६३ वर्ष तक शासन किया; उनका मूल नाम गोपाल राव था, पर उन्हें १२ वर्ष की आयु में मल्हार राव की विधवा ने गोद लिया था। उन्होंने २४ बार विश्व-भ्रमण किया, उनके विचार उदार थे और उन्होंने अनेक परियोजनाएँ आरंभ कर बड़ौदा को उन्नत बनाया। वह पहले शासक थे जिन्होंने अपनी रियासत में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाया, उनके राष्ट्र-प्रेम के कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें विद्रोह-समर्थक समझा।

सवाई धनी (सिद्ध० ८६)—सपादलक्ष (अजमेर) के भू-भाग के स्वामी अर्णोराज (आना) की उपाधि।

सांतू (सिद्ध० २४)–राजा भीमदेव का मंत्री। यह राजा जयसिंह देव का भी मंत्री था। राजा जयसिंह की अनुपस्थिति में इसी ने मालवराज नरवर्मा को राजा जयसिंह की सोमनाथ-यात्रा का पुण्य भेंट किया था।

सात्यकि (ज० भा० १५४)—वृष्णिवंशी शिनिकुमार सत्यक के पुत्र, अर्जुन और सुभद्रा के लिए दहेज लेकर इंद्रप्रस्थ आए थे। श्रीकृष्ण के शांति-दूत बनकर हस्तिनापुर जाते समय यह कृष्ण के साथ गए थे। इनके द्वारा कौरव पक्ष के अनेक योद्धा—कर्ण, दुर्योधन, द्रोण आदि पराजित हुए थे तथा अलंबुष, अनुविंद, सोमदत्त, भूरिश्रवा से युद्ध में पराजित होने पर उसने इनकी चोटी पकड़ ली थी जिससे अर्जुन ने उसके हाथ काट दिए। इस अन्याय का विरोध करने पर वह अनशन करने लगा; अनशन करते समय सात्यकि ने भूरिश्रवा का वध कर दिया, जिसे दोषपूर्ण माना गया। कृष्ण के साथ ही यह हस्तिनापुर से द्वारिका गए थे। इनके अन्य नाम—आनर्त, शैनेय, शिनिपुत्र, मधूद्वह, सात्वत, सात्यक, वार्ष्णेय, कृष्ण्यन्धक प्रवीर, यादव, यदूद्वह, यदुवीर, युयुधान आदि।

सावित्री (हि० ६५)—सावित्री ने मन ही मन सत्यवान को अपना पति मान लिया था। पर जब देवर्षि नारद ने बताया कि वह अल्पायु है, तो माता-पिता ने उसे समझाया कि वह उससे विवाह न करे। पर वह अपने वचन पर अटल रही। विवाह के एक वर्ष बाद जब जंगल में लकड़ी काटते हुए सत्यवान की मृत्यु हो गई तो उसने अपने पातिव्रत्य के बल तथा युक्तियों से यमराज को प्रसन्न कर अपने पति सत्यवान को पुनः जीवित कर लिया।

सिकंदर (हि० ३०)—यूनान का एक प्रसिद्ध प्रतापी नरेश जो मकदूनिया के राजा फिलिप्स का बेटा और अरस्तू

का शिष्य था। मिस्र, ईरान, अफगानिस्तान पर विजय प्राप्त करता हुआ वह भारत आया था और उसने तक्षशिला और सिंध का कुछ अंश जीत लिया था।

सिंधुराज (सिद्ध० ५४)—सौराष्ट्र का एक सामन्त तथा रानक दे का पिता। इसने ग्रह-दोष के कारण सद्य:जात रानक दे का परित्याग कर दिया था।

सिद्धराज जयसिंह देव (संवत् ११९०-१२३०)—कर्णावती नगर के राजा कर्णदेव का पुत्र। इसकी माता का नाम भीलन देवी (भीलन दे) था। इसने मालवराज यशोवर्मा, सौराष्ट्रराज खंगार तथा सपादलक्षराज अर्णोराज को पराजित किया था। इसकी पत्नी का नाम लीलावती तथा पुत्री का नाम रानक दे था जिसका विवाह अर्णोराज से हुआ था।

सिख (गुरु०)—एक भारतीय धर्म या संप्रदाय के अनुयायी। सिक्ख धर्म का प्रवर्तन गुरु नानक देव ने किया था। गुरु गोविन्दसिंह ने शांतिप्रिय सिक्ख संप्रदाय को मुसलमानों के आक्रमण का मुकाबला करने के लिए एक सैनिक संगठन का रूप दिया था। उन्होंने अपने पंथ का नाम खालसा (पवित्र) रखा तथा केश, कच्छ, कड़ा, कृपाण और कंघा—पांच वस्तुओं को प्रत्येक सिक्ख के लिए आवश्यक माना।

सिल्यूकस (भा० भा० ४८)—यूनान के महान विजेता सिकन्दर का सेनापति जिसको सम्राट चन्द्रगुप्त ने पराजित किया और मंत्री चाणक्य के परामर्श पर उसकी बेटी कार्नेलिया से विवाह कर यूनान और भारत को मैत्री के बंधन में बांधा।

सीता (द्वा० ४०)—महाराजा जनक की पुत्री तथा धनुषयज्ञ में धनुष-भंग के पश्चात अयोध्या-नरेश राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी से विवाह, राम के साथ ही वन-गमन, पंचवटी में रहते हुए इनका रावण द्वारा हरण। इनके हरण के कारण सुग्रीव आदि वानर सेना के साथ राम तथा उनके भाई लक्ष्मण द्वारा लंका पर चढ़ाई तथा रावण का वध करके सीता की मुक्ति। पुष्पक विमान पर चढ़कर राम तथा सीता अयोध्या आए।

सुंद (ज० भा० ६)—निकुम्भ दैत्य का पुत्र, उपसुंद का भाई। त्रिभुवन-विजय प्राप्ति हेतु विंध्याचल पर्वत पर इसने तपस्या की। ब्रह्माजी द्वारा अपने भाई के अतिरिक्त किसी दूसरे से न मारे जाने का वरदान। तिलोत्तमा के कारण इन दोनों भाइयों का एक-दूसरे के हाथ से गदा-युद्ध में वध।

सुकन्या (भा० भा० १९)—राणा शर्याति की पुत्री, सुकन्या एक बार पिता के साथ वन-विहार करते समय च्यवन ऋषि के आश्रम के निकट ठहरी। वहाँ घूमते-फिरते उसने एक मिट्टी का ढेर देखा जिसमें दो तारे-से चमक रहे थे। कौतूहलवश उसने उन्हें कांटे से कुरेदा तो उनमें से खून बहने लगा। वास्तव में बरसों तपस्या करते-करते च्यवन ऋषि को चारों ओर से मिट्टी ने ढक लिया था। वे तारे उनके नेत्र थे। आंखें नष्ट होने पर च्यवन ऋषि ने सेवा के लिए सुकन्या को मांगा। राजा घबड़ाया पर सुकन्या ने कहा कि ऋषि की दशा उसी के कारण हुई है, अत: वह उनकी सेवा में रहेगी। उसका विवाह च्यवन ऋषि से कर दिया गया। बाद में उसने देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों को प्रसन्न कर लिया। उन्होंने अपनी चिकित्सा से ऋषि का कायाकल्प कर दिया। उनको पुन: नेत्रों की ज्योति के साथ-साथ यौवन भी प्राप्त हो गया।

सुदामा (द्वा० २०५)—भगवान कृष्ण के बाल्य-सखा जो सन्दीपन ऋषि के आश्रम में साथ-साथ पढ़े थे। उनकी पत्नी का नाम सुशीला। उसके कहने पर सुदामा द्वारिका कृष्ण से मिलने गए। सुशीला के दिए हुए चार मुट्ठी तंदुलों को साथ में लेकर कृष्ण-मिलन पर कृष्ण ने उनकी पोटली खोलकर एक मुट्ठी चावल खा लिये। फलस्वरूप सुदामा को वैभव की प्राप्ति हुई। गुरु-आश्रम में रहते हुए सुदामा ने एक बार गुरु-पत्नी के दिए हुए चावलों को कृष्ण की चोरी से खा लेने के कारण सुदामा दरिद्र हो गए थे।

सुदेष्णा (सै० ९)—मत्स्यराज विराट की भार्या, केकयराज की कन्या, इसका दूसरा नाम चित्रा भी था, कीचक की बहिन। सैरन्ध्री वेश में द्रौपदी को आश्रय देने वाली। सैरन्ध्री पर कीचक के कामासक्त होने पर उसे सुदेष्णा ने सम्मति दी। भीमसेन द्वारा कीचक के वध पर राजा विराट का द्रौपदी को अपने यहाँ से चले जाने को कहलवाना। द्रौपदी के तेरह दिन और रहने की प्रार्थना को स्वीकार करना।

सुबल (ज० भा०)—गांधार देश का राजा, गांधारी तथा शकुनि का पिता, प्रह्लाद-शिष्य नग्नजित के अंश से उत्पन्न। गांधारी और शकुनि अर्थशास्त्र के ज्ञान में निपुण थे। इनके द्वारा अपनी कन्या गांधारी का धृतराष्ट्र को वाग्दान। इनके अन्य पुत्र अचल और वृषक।

सुबाहु—एक राक्षस जो मारीच का भाई था। विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डालने के कारण वह राम-लक्ष्मण द्वारा पराजित किया गया।

सुभद्रा (ज० व०)—वसुदेव की पुत्री। भगवान श्रीकृष्ण और सारण की सगी बहिन। अर्जुन के प्रति अनुरक्त श्रीकृष्ण की सम्मति से रैवतक पर्वत के उत्सव पर इनका अपहरण।

अर्जुन से विवाह, गोपी वेश में द्रौपदी के पास आगमन, इनके गर्भ से अभिमन्यु का जन्म। पांडवों को वनवास होने पर अभिमन्यु एवं द्रौपदी पुत्रों सहित श्रीकृष्ण के साथ द्वारिका जाना, अभिमन्यु वध पर विलाप, मृत पुत्र को जिलाने की कृष्ण से प्रार्थना, इनका उलूपी और चित्रांगदा (अर्जुन की अन्य पत्नियां) से मिलन।

सुरवैद्य (सा० ६६)—देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (भा० भा० १६३)—(१८४८-१६२५) नर्म दल के संस्थापकों में से एक; भारतीय कांग्रेस पार्टी के दो बार सभापति, अपने देश-प्रेम के कारण आई० सी० एस० से हटाये गये। प्रभावशाली वक्ता थे, बंगालियों को देश-प्रेम की प्रेरणा दी। बंग-भंग, स्वदेशी और असहयोग आन्दोलनों में भाग लिया। पर बाद में उनकी लोकप्रियता कम होती गयी और १६२३ के चुनावों में पराजित होने पर उन्होंने राजनीति से संन्यास ले लिया।

सुवर्णावली (वि० प्रि० ५१)—एक वेश्या अथवा रूप-जीवा जो नृत्यगान त्याग कर चैतन्य की शिष्या बन गई थी।

सुशर्मा (ज० भा० २७८)—वृद्ध क्षेम का पुत्र एवं त्रिगर्त देश का राजा, जो द्रौपदी के स्वयंवर में गया था। दुर्योधन की सम्मति पर इसने विराट नगर पर चढ़ाई कर गौ-हरण किया और राजा विराट को बंदी बनाया। उस समय भीम ने इसे पकड़ा और युधिष्ठिर ने इसे दास-भाव से मुक्ति दी। महाभारत युद्ध में सुशर्मा अर्जुन द्वारा मारा गया।

सुल्व-सूत्र (भा०भा० ३७)—कल्पसूत्र के चार विभागों—श्रुत, ग्रह्य, धर्म ओर सुल्व में से अंतिम। इनके रचयिता बोधायन और आपस्तंभ माने जाते हैं। सुल्व का अर्थ है—नापने का सूत्र या डोरी। सुल्वसूत्र के अन्तर्गत यज्ञभूमि की नाप-जोख, वेदियों की नापजोख और उनके निर्माण के संबंध में निश्चित नियम बताये गये हैं। इन्हें भारतीय ज्यामिति से संबद्ध प्राचीनतम ग्रंथ कहा जा सकता है।

सुश्रुत (भा० भा० ३६)—आयुर्वेद के अति प्राचीन आचार्य जो विश्वामित्र के पुत्र कहे जाते हैं और जिनका ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' आयुर्वेद के तीन महान ग्रंथों में से एक माना जाता है।

सूत सुमित्र (ज० व० ८)—अभिमन्यु का सारथि। इसकी अभिमन्यु के साथ युद्ध-संबंधी कर्त्तव्यों पर विचार करने की प्रार्थना। चक्रव्यूह के समय अभिमन्यु के आदेश से इसने द्रोणाचार्य की ओर रथ बढ़ाया था।

सूपकार (ज० भा० २४१)—रसोइया, खाना बनाने वाला, भोजन बनाने वाला। अज्ञातवास के समय महाराजा विराट के यहाँ भीम ने सूपकार के रूप में कार्य किया था।

सूर्यवर्मा (ज० भा० ४३१)—त्रिगर्त देश का राजा, जो अश्वमेधीय अश्व के पीछे गए हुए अर्जुन के साथ युद्ध में परास्त हुआ।

सैरन्ध्री (सै० १०)—अज्ञातवास के समय रखा गया द्रौपदी का नाम, इस नाम से वह विराट नगर में रानी सुदेष्णा की दासी बनकर रही थी।

सोमनाथ (सिद्ध० ४)—यह सुप्रसिद्ध शिव-मंदिर काठियावाड़ के प्रभास पट्टन नामक समुद्रतटीय स्थल पर गुजरात के चालुक्यों द्वारा निर्मित कराया गया था। इसे सन् १०२४ में सुल्तान महमूद गजनवी ने ध्वस्त कर दिया था। बाद में सिद्धराज जयसिंह ने इसे पुनः बनवाया था।

सोरठ (सिद्ध० ५१, ७६)—वर्तमान सौराष्ट्र, दक्षिण काठियावाड़। काठियावाड़ के गोहिल, गुहिल वंशी, गहलौत, गोभिल, गौहिल्य थे और वि. सं. की १२वीं शताब्दी के आस-पास सोलंकी राजा सिद्धराज (जयसिंह) और कुमारपाल की सेवा में रहकर सौराष्ट्र पर शासन करते थे।

सोलन (भा० भा० १५७)—यूनान का एक प्रसिद्ध विद्वान और कवि। एथेंस वाले बार-बार अपने पड़ौसी मेगारावालों से पराजित होते रहे। सोलन ने उन पराजयों से अत्यंत पीड़ित होकर एक कविता लिखी और एक ऊँचे टीले पर बैठकर वह कविता सुनाई। उस कविता को सुन एथेंस-निवासी बड़े उत्साहित हुए, उन्होंने मेगारावालों पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की।

सौभद्र (ज० व० ८)—अभिमन्यु का नाम—सुभद्रा का पुत्र, पार्थ का पुत्र।

स्टालिन (रा० प्र० २४)—(१८७६-१६५३)—पूरा नाम—जनरेलीसोमो जोसेफ विसारिनोविच। रूस की जन-क्रांति का एक नेता। यह सन् १६२४ से १६५३ तक गण-राज्य सोवियत रूस के प्रधानमंत्री रहे थे।

स्मर (शकु० पृ० १७)—कामदेव का नाम।

स्वकीया (वि० प्रि० ११७)—पत्नी या अपनी स्त्री। इसके अन्य नाम स्वा, स्वीया, स्वस्त्री भी हैं। जो स्त्री मन, वचन और कर्म से पति-प्रेम करे उसे स्वकीया कहते हैं। विश्वनाथ के अनुसार विनय, सरलता आदि गुणों से युक्त घर के कर्म में तत्पर, पतिव्रता नायिका स्वकीया कहलाती है।

स्वप्न (सा० १८१)—संस्कृत के महाकवि और नाटककार भास द्वारा रचित नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता' जिसमें

वत्सदेश के राजा उदयन और अवन्ति की राजकुमारी वासवदत्ता की प्रेम-कथा वर्णित है।

स्वामी प्रकाशानंद (वि० प्रि० ३)—काशी के प्रसिद्ध विद्वान और योगी। बाद में चैतन्य ने इनका नाम प्रबोधानंद रखा। इन्होंने 'श्री वृन्दावन महिमामृतम्' की रचना की। यह चैतन्य के प्रिय पार्षद थे।

स्वामी रामतीर्थ (भा० भा० १६२)—बंगाल के एक प्रसिद्ध संत।

ह

हकीकतराय (हि० ५६) (१७२४—१७४१)—स्यालकोट के भागमल के धर्मपरायण पुत्र। मुसलमानों द्वारा देवी दुर्गा को गाली देने पर क्षुब्ध होकर उन्होंने कुछ कहा जिससे उन्हें शासक अमीरबेग की अदालत में पेश किया गया। उन्हें इस्लाम के अपमान के लिए मृत्यु-दंड दिया गया। प्राण-रक्षा का एकमात्र उपाय था इस्लाम धर्म ग्रहण करना। पिता का अनुरोध, माँ और पत्नी के आंसू भी उन्हें विचलित न कर सके और उन्हें फांसी दे दी गयी।

हयमेध (ज० व० ३)—अश्वमेध या राजसूय-यज्ञ। महाभारत के सभा-पर्व में नारद जी ने युधिष्ठिर से कहा था कि जो राजा राजसूय यज्ञ करता है, संग्राम में पीठ दिखाए बिना मर मिटता है और तीव्र तपस्या द्वारा शरीर का परित्याग करता है, वह देवराज इंद्र की सभा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करता है।

(२) एक प्रकार का यज्ञ जो एक वर्ष में समाप्त होता है। इसमें घोड़े के माथे पर 'जय-पत्र' बांध कर छोड़ दिया जाता है। इस यज्ञ-अश्व को पकड़ लेनेवाले राजा से यज्ञ करने वाला राजा युद्ध करता है और उसे पराजित कर यज्ञ संपन्न करता है। घोड़े के पीछे सेना रहती है। इस प्रकार जब घोड़ा सारे भूमण्डल में जय प्राप्त कर लौटता था, तब उसी घोड़े की चर्बी से यज्ञ किया जाता था। रामचन्द्र, युधिष्ठिर, बलि, परीक्षित, पृथु आदि राजाओं ने इस यज्ञ को संपन्न किया था।

हर (सिद्ध० १७)—(१) शिव का एक नाम।

(२) वसदा के गर्भ से उत्पन्न माली राक्षस का पुत्र।

(३) एक दानव जो कश्यप के द्वारा दनु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

हरदौल (१६२६-३५)—ओड़छा-नरेश जुझारसिंह के छोटे भाई। भ्रातृभक्त; जुझारसिंह की अनुपस्थिति में शासन करते हुए जब इन्होंने बेईमानों की नहीं चलने दी तो उन्होंने जुझारसिंह से शिकायत की कि हरदौल के अपनी भाभी से अनुचित संबंध हैं। राजा ने रानी की परीक्षा लेने के लिए उनसे कहा कि वह हरदौल को अपने हाथों विष दें। रानी के बता देने पर भी हरदौल ने विष मिली मिठाई खाना स्वीकार किया; मिठाई खायी और स्वर्ग सिधार गये। उनकी मृत्यु के बाद उनकी घर-घर पूजा होने लगी। इन्हें हरदिया देव कहकर इनकी वेदी बनाकर पूजा की जाती है।

हरि (सिद्ध० ६)—(१) विष्णु का एक नाम। 'हरति पापानि इति हरि,' इस व्युत्पत्ति से विष्णु, कृष्ण तथा राम का नाम। (२) रावण की राक्षस सेना का एक दल। (३) गरुण के वंशजों में से एक का नाम। (४) घोड़ों की एक जाति। (५) राजा अंकपन का पुत्र। (६) तारकाक्ष असुर का पुत्र (७) पांडव पक्ष का एक योद्धा।

हरिदास (वि० प्रि० २६)—एक प्रसिद्ध भक्त जो चैतन्य के शिष्य बन गए थे। कहा जाता है कि हरिदास मुसलमान कुल में उत्पन्न हुए थे।

हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता का प्रसंग (प्र० १०)—त्रेता युग में सूर्यवंश में त्रिशंकु के पुत्र राजा हरिश्चन्द्र अपनी उदारता तथा सत्यवादिता के लिए प्रसिद्ध हैं। मुनि विश्वामित्र ने उनकी परीक्षा के लिए पहले उनसे उनका राज्य दान में ले लिया और फिर दक्षिणा मांगी। दक्षिणा की राशि पूरी करने के लिए इन्होंने अपनी पत्नी को बेचा और स्वयं चांडाल के यहाँ श्मशान में नौकरी की। जब पुत्र रोहिताश्व की सर्प दंश से मृत्यु पर रानी शैव्या उसका शव लेकर श्मशान में पहुंची, तो राजा ने कर के रूप में उससे वस्त्र मांगा; रानी को अपना आधा वस्त्र फाड़कर देना पड़ा। इस प्रकार अपना सर्वस्व दान कर तथा अनेक कष्ट झेलकर भी राजा ने अपनी सत्यवादिता का परिचय दिया और सत्यवादी कहलाये।

हर्ष (सिद्ध० १२६)—कन्नौज और थानेश्वर का राजा (६०६-६४७ ई०)। इसने वल्लभी, मगध, काश्मीर, गुजरात तथा सिंध को जीत कर एक विशाल राज्य की स्थापना की थी। इसकी उपाधि महाराजाधिराज थी। यह शिव, सूर्य तथा बुद्ध तीनों का उपासक था। यह एक उच्चकोटि का कवि भी था। इसने नागानंद, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका नाटकों की रचना की थी। कादम्बरी और हर्षचरित के रचयिता बाण इसी के राज-कवि थे। (२) परमार राजा भोज का पूर्वज सीमक (श्री हर्ष) वैरिसिंह का पुत्र था। सीमक (श्रीहर्ष) के पुत्र का नाम मुंज (वाक्पति राज) था।

हाटकपुरी (प्र० ५६)—हाटक का अर्थ है सोना। लोकप्रवाद के अनुसार लंका सोने की बनी हुई थी। अतः लंका

को हाटकपुरी कहा गया है।

हविर्वहन (श० ६)—अग्नि का एक नाम। ऐसी अग्नि जो पवित्र है तथा यज्ञ द्वारा उद्भूत है।

हारूँरशीद (भा० भा० ९९)—बगदाद का सम्राट जो वैभव और कला-प्रेम के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है।

हूण (सिद्ध० ३४)—मध्य एशिया की एक खानाबदोश जाति; इन्होंने पांचवीं शताब्दी में भारत पर आक्रमण किये थे। हूणों का नेता तोरमाण सन् ५०० में मालवा को जीत कर वहाँ का राजा बन गया था। मालवा के राजा यशोधर्मा तथा बालादित्य के संयुक्त प्रयत्न से तोरमाण परास्त किया जा सका था। बाद में इस जाति ने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया।

हेमकूट (शकु० ३२)—(१) पुराणानुसार किंपुरुष वर्ष और भारत की सीमा पर स्थित हिमालय के उत्तर का एक पर्वत (२) नन्दा नदी के तट पर का एक दुर्गम पर्वत, (३) उत्तर दिशा का एक पर्वत। (४) सिन्धु नदी और समुद्र के संगम पर स्थित सौ शिखरों से युक्त एक पर्वत।

हेमचन्द्र (सिद्ध० ३८)–हेमचन्द्र सूरि सिद्धराज जयसिंह के समय में जीवित था और उसके दरबार का प्रतिष्ठित विद्वान था। उसने वि० सं० १२१७ (सन् ११६०) के आस-पास द्वयाश्रय काक नामक भट्टी काव्य-शैली की पुस्तक की रचना की जिसमें सिद्ध हैम नामक संस्कृत व्याकरण के सूत्रों के क्रमशः उदाहरण और गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज से कुमारपाल तक का इतिहास, दोनों का आश्रय लिया गया है। इसी से उसका नाम द्वयाश्रय काव्य रखा गया।

होमर (भा० भा० ४१)—यूनान का आदि महाकवि जिसके महाकाव्य 'इलियड' तथा 'ऑडेसी' बहुत प्रसिद्ध हैं और जिसका समय ईसा से ९वीं शताब्दी पूर्व माना जाता है।

□□

खण्ड ५

विशिष्ट शब्दावली 'अर्थसहित'

विशिष्ट शब्दावली 'अर्थसहित'

अ

अंगराग (सा० २१) शरीर की शृंगार सामग्री—चंदन, केसर, कपूर, कस्तूरी, सिंदूर, रोली, मेंहदी आदि।

अंतक (प० प्र० १५१) मृत्यु, यमराज।

अंभोज (प० प्र० ६५) कमल।

अंतराय (यशो० १५) विघ्न। योग की सिद्धि में विघ्न जो नौ प्रकार के हैं—(१) व्याधि; (२) स्त्यान अर्थात् संकोच; (३) संशय; (४) प्रमाद; (५) आलस्य; (६) अविरति अर्थात् विषयों में प्रवृत्ति; (७) भ्रांति-दर्शन; अर्थात् उल्टा ज्ञान; (८) अलब्ध भूमिकत्व अर्थात् समाधि की अप्राप्ति; (६) अव्यवस्थितत्व अर्थात् समाधि होने पर भी चित्त का स्थिर न होना।

अंस-आसन (ज० भा० २६०) जिनके कंधे आसन बने रहे।

अकबक (व० सं० ४७) आगा-पीछा, आशंका।

अकंथ (हि० १७४) वस्त्रविहीन।

अकाल कुसुम (दि० ७) वह पुष्प जो अनुकूल ऋतु के अतिरिक्त ऋतु में भी खिले; बेमौसम में खिलने वाला फूल।

अकाल पुरुष (गुरु० ३८) ईश्वर, सर्वशक्तिमान परम सत्ता।

अकूल (द्वा० १२५) मझधार।

अक्रौर्य (हि० २५) अक्रूरता।

अक्ष-पण (ज० भा० ३१७) पाँसों का दाँव या खेल, जुआ।

अक्षौहिणी (यु० ४०) चतुरंगिणी सेना का एकपरिमाण या विभाग (१,०६,३५० पैदल, ६५,६१० घोड़े, २१८७० रथ और इतने ही हाथी)।

अखती (हि० ७१) अक्षयतृतीया। स्त्रियों का एक त्योहार।

अखर्व (हि० ३८, गुरु० २२०) जो छोटा न हो अर्थात् बड़ा।

अखिल-लोचन (ज० व० ५२) कृष्ण के लिए प्रयुक्त शब्द।

अगत (दि० १३) असहाय, निरवलम्ब।

अगत्या (ज० भा० २६३) लाचार होकर।

अगद (ज० भा० ७०) औषधि।

अचीती (उच्छ्० ६३) जिसकी कल्पना भी न थी, अनपेक्षित।

अच्युत (प० प्र० २६) स्थिर, कृष्ण का एक नाम, भगवान।

अजा (गुरु० १३६) बकरी।

अजभड़ (गुरु० २४०) दृढ़, मजबूत।

अटवी (ज० भा० २६३) वन।

अणु सा अपना भ्रम हिमगिरि सा (अं० अ० २५) चौरी-चौरा हत्याकांड के बाद गांधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन वापिस ले लिया था जिससे भारतीयों की स्वतंत्रता कुछ वर्षों के लिए टल गयी। बाद में गांधीजी ने उसे 'हिमालय जैसी भूल' कह कर अपनी गलती मानी थी।

अत्रास (उच्छ० २५) निर्भीक, भयरहित।

अतार्किक (गुरु० ४४) तर्क न करने वाला, श्रद्धापूर्वक सिद्धान्त या धर्म-तत्त्व को चुपचाप स्वीकार करने वाला।

अतिबला (विद्या) (ली० ६२ प्र० १०) एक प्राचीन युद्धविद्या, जिसके सीखने से श्रम और ज्वर आदि की बाधा का भय नहीं रहता था।

अदत्तमूल्यभोजी (भू० २२) बिना मूल्य दिए भोजन करने वाला (मुफ्तखोर)।

अदुरित (द्वा० ८६) प्रत्यक्ष, प्रकट।

अदृष्टाकाश—भाग्य या नियति रूपी आकाश।

अधमर्ण (ज० भा० २८६) कर्जदार, ऋणी।

अधिदैवत (द्वा० ६०) इष्टदेव, प्रधान देव परमेश्वर।

अधोभुवन (प० प्र० ८४) पाताल लोक।

अध्वर (द्वा० ३१) यज्ञ, सोमयज्ञ।

अध्वर-यूप (सा० २१) यज्ञ में वह खंभा जिससे बलि-पशु बांधा जाता है।

अनपत्या (ज० भा० ४१६) सन्तानहीन स्त्री।

अनल हक (हि० १९६) मैं ही ब्रह्म हूँ।

अनात्म भाव (रा० प्र० ३७) आत्मा या चैतन्य—रहित-भाव, आत्मा की सत्ता को स्वीकार न करना।

अनाविला (रत्ना० ४२) स्वच्छ, निर्मल।

अनिमेष (हि० १९) बिना पलक झुकाये, निरंतर।

अनीकिनी (ज० भा० ३०२) सेना, सेना का दसवां भाग।

अनीह (द्वा० ९१) उदासीन, इच्छारहित।

अनुग (भा० भा० १३०) पीछे चलने वाला, अनुचर, साथी।

अनुपद रहना (पत्रा० ४) पीछा करना।

अनुयोग (वि० प्र० ४१) प्रश्न, जिज्ञासा, पूछताछ।

अनुलाप (शकु० १२) संवाद, वार्तालाप।

अनुहार (उच्छ० ९१) समानता।

अनूप (हि० १९३) सजल देश।

अनूरु (यु० ५४) जिसकी जंघाएँ बेकार कर दी गई हों।

अन्नोदक (रंग ८४) अन्न और जल।

अपकर्ष (स्व० सं० ६१) अवनति।

अपगीत(मं० घ० १११)अमांगलिक गीत, अभद्र कथन, अपयश।

अपत (स्व० सं० ६४) पत्रविहीन, निराश्रित।

अपत्य (ज० भा० ३९) संतान, पुत्र।

अपदेव (दि० १४) दैत्य, राक्षस।

अपलाप (ज० भा० ३४९) बदनामी।

अपवर्ग (हि० २४, नहुष ६५, भा० भा० १७, ज० व० ८१) मोक्ष।

अपसव्य (गुरु० १५८) दाहिना, अनुकूल।

अपांग (सिद्ध० १२३) कटाक्ष।

अपारार्णव (रंग ५६) विशाल सागर।

अप्रतिबंधकता (प० प्र० ५५) स्वतंत्रता।

अब्द (भा० भा० ८२) वर्ष।

अब्धि (हि० ४८, दि० २८) सागर।

अभयदायक (रंग ५५) रक्षा का आश्वासन देने वाले।

अभिघाती(द्वा० ८५)प्रहार करने वाला, चोट पहुँचाने वाला।

अभिमंत्रित (श० १०) मंत्र द्वारा पवित्र किया हुआ।

अभिसारिका (ज० व० ४५) प्रियतम से मिलने लिए एक निश्चित स्थान पर जानेवाली स्त्री।

अभ्रंकष (स्व० सं०) गगन-चुम्बी, ऊँचे-ऊँचे।

अमर्ष (स्व० सं० ११, ज० व० ३३) क्रोध।

अमल (मं० घ० १५५) नशा, अफ़ीम का घोल जि पीने से नशा होता है।

अमिताभ—असीम तेजयुक्त।

अंबा को दिये वचन—शिक्षा के लिए इंग्लैंड जाने पूर्व गांधीजी ने अपनी मां को वचन दिये थे कि वह शरा और मांस का सेवन नहीं करेंगे।

अंबारी(भा० भा० १०१) हौदा, हाथी की पीठ प बैठने का आसन।

अयुत (झं० १९) दस हजार, बहुत से।

अरुन्तुद (सा० ७८) मर्म तक को कष्ट पहुँचाने वाल कर्कश।

अराति (हि० ५९) शत्रु।

अराल (झं० ५४, द्वा० ७४) कुटिल, टेढ़ा।

अरिंदम (ज० व० ३३) शत्रुओं का दमन करने वाल शत्रुजयी।

अरिष्ट (वैता० १६, मं० घ० ७०, हि० ४८) दुर्भाग अशुभ, अपशकुन।

अर्णव (झं० १५३) समुद्र।

अर्द्धाशन (कि० ३६) आधा भोजन।

अलं (हि० १४४) पर्याप्त।

अलक (झं० १६४) केश।

अलक्त (गुरु० १३४) सिंदूर।

अलख (वि० प्रि० ७१) अलक्ष्य, दर्शन और भक्ति क्षेत्र में निर्गुण ब्रह्म के लिए प्रयुक्त।

अलिंद (गुरु० १००) आंगन।

अलीक (मं० घ० १०७) मिथ्या, झूठा।

अवगीत (ज० भा० ३४७) निंदित।

अवतंस (गुरु० २१८) मुकुट, कर्णफूल।

अवदात (झं० ५८) उज्ज्वल, निर्मल।

अवधूत (अं० अ० ३३) साधुओं का एक वर्ग जो प्रा एकान्त स्थान पर साधना करता है।

अवरोह (वि० प० ७) ऊपर से नीचे आने का क्रम।

अवसन्न (झं० २९) स्तब्ध, चेतना-शून्य।

अवस्ता—पारसियों का धर्म-ग्रंथ।

अविविक्त (ज० भा० १४७) अविवेचित।

अव्यय (प० प्र० १६) जिसमें विकार न आये।

अष्टमंगल (प्र० ८) आठ मंगल द्रव्य या पदार्थ सिंह, वृष, हाथी, कलश, पंखा, वैजयंती, भेरी और दीपक। किसी-किसी के मत से—ब्राह्मण, गौ, अग्नि, सुवर्ण, घी, सूर्य, जल और राजा।

असित(प०प्र० १२०, उच्छ् १२०) काली, श्याम वर्ण की।

असिधारा-प्लावन (हि० ६०) शत्रु को तलवारों के प्रहार।

असुरापी (द्वा० ५५) जिसने शराब न पी हो।

असूया (प० प्र० ५) ईर्ष्या, डाह।

अस्तोक (हि० ५२) बहुत।

अस्थिसार (गुरु० ६७) हड्डियों का खाद।

अहरह (वि० प्रि० ५४) दिन-प्रतिदिन, रात-दिन।

आ

आंजनेय (पत्रा-३, हि० ७८) अंजनी के पुत्र, हनुमान।

आंय-बांय (उच्छ्० २०) बेकार की बातें।

आंबेरनाथ (गुरु० ६०) जयपुर का राजा।

आंस-गांस (स्वस्ति ७३) संवेदना, पीड़ा, दर्द।

आकर्णकृष्ट (वि० प्रि० १३६) कानों तक खींचा हुआ।

आकाश-वृत्ति (गुरु० ६१) अनिश्चित आय।

आकुंचन (द्वा० ११०) सिमटना, सिकुड़ना।

आखंडल (मं० घ० १२३) इंद्र, पर्वतों को तोड़ने वाला।

आगत पतिका (ज० भा० १८३) वह नायिका जिसका पति परदेश से लौटा हो।

आज्य (अनघ ६६) वे वस्तुएँ, जिनकी आहुति दी जाए।

आणवक (अनघ ६५) अल्पवयस्क युवक।

आतपत्र (हिडि० ८, स्व० सं० १३२) छाता।

आत्म-भू (ज० व० ६१) अपने आप पैदा हुआ, ईश्वर।

आत्म-संग्रह (दि० २७) अपनी आवश्यकता के अनुसार वस्तुओं का उपार्जन और उनका भंडारण।

आतिथेयातिथि (सिद्ध० १२) अतिथि-सत्कार और उसके लिए जुटाई गई सामग्री।

आद्या शक्ति (भा० भा० १२३) दुर्गा।

आधि-व्याधि (स्व० सं० ९८) मानसिक पीड़ा, चिंता तथा शारीरिक रोग, बीमारी, विपत्ति।

आनक (सा० ४७५) गरजता हुआ बादल।

आनर्त (भा० भा० १२२) रंग-स्थल।

आनुषंगिक (सिद्ध० निवेदन) सम्बद्ध, प्रासंगिक।

आपण-बिपणि (रा० प्र० १६) खरीद-फरोख्त, क्रय-विक्रय।

आप्त (हि० ११०) प्रामाणिक।

आपद्धर्म (सिद्ध० १२७) वह आचरण जिसकी इजाजत केवल मुसीबत के समय के लिए दी गई हो।

आभिक्षा (रत्ना० ५६) फटा हुआ दूध, छेना।

आमिक्षा (स्वस्ति ६५, उच्छ्० १२८) लोभ, लालच।

आमोद (उच्छ्० ९६) सुगंध।

आम्नाय (हि० १३७) अभ्यास, परंपरा।

आयत्त (ज० भा० ५६) प्राप्त करना, ले सकना, अधीन करना।

आयुध (भं० १२१) हथियार, शस्त्र।

आरण्यक (हिडि० ३३) वन में उत्पन्न, वनवासी।

आराव (कु० गी० ११) आरव, आवाज।

आरें (वैता० १६) लोहे की पतली तानें जो पहिए में लगी होती हैं।

आरोह (वि० प्र० ७) ऊपर चढ़ना, संगीत में स्वरों को ऊँचे ले जाना।

आर्ति (यु० १७) क्लेश, पीड़ा, मनोव्यथा।

आर्द्र (दि० ८०) गीला, भीगा।

आर्यांशुमाली (पत्रा० ५) आर्य जाति के सूर्य।

आल-वाल (उच्छ्० ३०) थाला।

आलान (सा० २४३) हाथी बांधने का खंभा, या जंजीर।

आलाप (ज० भा० २९४) परस्पर वार्तालाप, स्वर-साधना, तान।

आलोक चित्र-पट (हि० १४८) फोटो लेने की प्लेट।

आवर्त (उच्छ्० ७६) भंवर, चक्कर।

आविष्ट (ज० भा० १८०) आवेशयुक्त; तत्पर; भरा हुआ।

आशुतोष (सिद्ध० २२) तुरन्त प्रसन्न होने वाले भगवान् शंकर।

आसार-जोतियां (ज० भा० १८४, गुरु० ७६) मूसलाधार वृष्टि।

आसुरी चिकित्सा—शल्य चिकित्सा (सर्जरी)।

आसूर्य—जब तक सूर्य उदय होता रहे, चिरकाल तक।

आस्य (गुरु० २३४) मुख।

आहव (ज० भा० ६०) आह्वान, ललकार।

आहूत (काबा० ६०) निमंत्रित।

आहूति (हि० ३७) पुकारना।

इ

इक्षु (गुरु० ३६) ईख।

इतस्ततः (ज० भा० ७२) इधर-उधर।

इंदर-सभा—नवाब वाजिद आलीशाह अपने दरबार में नाचने-गाने वाली सुन्दरियों को एकत्र कर अपना और दरबारियों का मनोरंजन करता था। उसके द्वारा आयोजित यह सभा 'इन्दर-सभा' कहलाती थी।

इन्द्रजाल (झं० १०२) जादू।

इन्दुलतलब (कि० १८) एक प्रकार का ऋण-पत्र जिसके अनुसार जिस समय मांगा जाय, उसी समय रुपया देना पड़े।

इयत्ता (झं० १२६) अन्त, सीमा।

इला (सा० १८) पृथ्वी।

ई

ईति (प० प्र० १३) खेतों को हानि पहुँचाने वाले उपद्रव जो छह प्रकार के हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहे, पक्षियों द्वारा हानि, दूसरे राजा का आक्रमण।

ईश के ऊरुज (भा० भा० १२१) वैश्य, कहा जाता है कि वैश्य परम पुरुष के उरू से उत्पन्न हुए हैं।

उ

उंछवृत्ति (ज० भा० ४३३) खेत में छूटे हुए दाने बीनकर गुजारा करना।

उच्चारोह (ज० भा० ३५०) ऊँचे चढ़ना, आत्मविकास।

उच्चैश्रवा (गुरु० ७७) इन्द्र का बड़े कानों वाला सफेद घोड़ा जो समुद्र-मंथन के समय निकला था।

उच्छिन्न (सैं० १७, हि० ५७, दि० २४) कटा हुआ, उखड़ा हुआ।

उटज (स्व० सं० ३०) कुटिया, झोंपड़ी।

उड्डीनता (मं० घ० २१६) उड़ने की शक्ति।

उत्कर्ण (वैता० ११) सुनने के लिए कान खड़े किये हुए। सुनने के लिए उत्सुक।

उत्क्षिप्त (हि० ५०) फेंका हुआ, ताड़ित।

उत्तरायण (यु० १०) सूर्य का मकर रेखा (दक्षिण) से कर्क रेखा (उत्तर) की ओर जाना।

उत्तरीय (सिद्ध० २१) दुपट्टा, ओढ़नी।

उतमर्ण (ज० भा० २८६) ऋण देने वाला, महाजन।

उत्तरांग (युद्ध० ४६) ऊपर का अंग, कटि से ऊपर का अंग।

उत्सन्न (कि० २६) अभिशप्त, उच्छिन्न।

उत्स (रा० प्र० ६) प्रवाह, झरना, सोता, स्रोत।

उद्गीर्ण (श० ११) गुंजरित होना।

उदग्रीव (वि० प्रि० २४) जिसकी गर्दन ऊपर उठी हो।

उद्यापन (ज० भा० ४३६)—व्रतादि की समाप्ति पर किया जाने वाला कृत्य जैसे हवन, दान आदि।

उद्युक्त (ज० भा० १६८) काम में लगा हुआ, उद्यमी।

उद्वाह (ज० भा० १३७, रंग० १४) विवाह।

उद्वेलित (वि० प्रि० ६)—उफनता हुआ, आलोड़ित।

उन्मेष (रंग० ३४, हि० ४८) जागना, स्फुरण, उदय, प्रकाश।

उपकूल (गुरु० १०३) किनारा।

उपचार (उच्छ्० २४) इलाज, उपाय।

उपट (झं० १५६) आघात, दबाव।

उपधान (व० सं० ४३) तकिया, वह वस्तु जिसका सहारा लिया जाय।

उपनीत (हि० ४४) प्राप्त।

उपल (स्व० सं० ६०) ओले।

उपशम (ज० व० ५३) शांत होना, वासना का नाश।

उपायन (प्र० ३३) भेंट, उपहार।

उपेन्द्र (ज० व० ३५) इन्द्र के छोटे भाई, विष्णु, कृष्ण।

उरग (ज० व० ५६) सांप।

उर्मि (उच्छ्० ७६) लहर।

उर्वी (द्वा० ५८) पृथ्वी, जमीन।

उलही (द्वा० १८) हुलसित होना, उल्लसित होना।

उल्का (ज० व० ८३) रात में आकाश से टूटकर गिरने वाला प्रकाशमय पिंड, टूटता तारा।

ऊ

ऊत (हि० १५३) मूर्ख।

ऊन षोडश (ज० व० ४) पंद्रह।

ऊना (प० प्र० १००) कम, छोटा, महत्त्वहीन।

ऊमस (ज० भा० ४४६) हवा न चलने से लगने वाली गर्मी।

ऊरू (सिद्ध० २०) जांघ, रान।

ऊर्मि-माली (ज० व० ५६) समुद्र।

ऊलती (नहुष ४३) उछलती।

ऊला-ऊला (स्वस्ति २६) उछला-उछला, कुदकते-फुदकते हुए।

ऊहापोह (हि० १६५) सोच-विचार, तर्क-वितर्क।

ऋ

ऋत (द्वा० ६४, ज० भा० २६५) सच्चाई।

ऋतु-विपर्यय (भा० भा० ८८) ऋतुओं का क्रम बदलना—वर्षा ऋतु में वर्षा न होकर गर्मी पड़ना अथवा बसंत में तीव्र शीत होना।

ऋद्ध (सिद्ध० ४८) सम्पन्न, समृद्ध।

ऋषभ (सा० ४६०) संगीत के सात स्वरों में से दूसरा। इसकी जाति क्षत्रिय, वर्ण पीला, देवता ब्रह्मा, ऋतु शिशिर, वार सोम, छंद गायत्री तथा पुत्र मालकोश है। यह स्वर बैल के समान कहा जाता है, पर कोई-कोई इसे चातक के स्तर के समान मानते हैं।

ए

एकलिंग (सिद्ध० १२५) शिव, मेवाड़ के राजवंशों के कुल-देवता।

एणी (द्वा० १७०) काले रंग की हरिणी।

एरण्ड (स्व० सं० १०६) एक पौधा जिसके बीजों का तेल रेचक होता है।

ऐ

ऐन्द्रास्त्र (ज० व० ७७) इन्द्रास्त्र, इन्द्र का अस्त्र।

ऐहिक (द्वा० २१६) इस लोक से संबंध रखने वाला, सांसारिक।

ओ

ओक (हि० १५७) घर, शरण-स्थल।

ओघ (ज० व० ८४, गुरु० १८५) प्लावन, धारा, बहाव, समूह।

ओदंत (प० प्र० १३८) बौद्धकालीन विश्वविद्यालय।

ओलापन (अनघ २१) शीतलता।

ओसरा (ब० सं० ५२) बारी, पारी, दांव, अवसर, मौका।

औरस (सा० ४४) १२ प्रकार के पुत्रों में से सर्वश्रेष्ठ। धर्म-पत्नी से उत्पन्न पुत्र।

क

कंचुकी (न० ४१) दासी, अन्तःपुररक्षिका, अँगिया।

कंजाभ्र (प० प्र० २) कमल और मेघ।

कंदली (ज० भा० १८४) कमल का बीज, एक पौधा।

कंधरा (द्वा० ५४२) कन्धा, गर्दन।

कंधेला (ज० भा० ३१) साड़ी का वह भाग जो कन्धे पर डाला जाता है।

कछोटा (ज० भा० ३१) घुटने के ऊपर तक की धोती।

कटक (प० प्र० ५८) सेना।

कटिबन्ध (सिद्ध० ३) कमरबन्द, कमर में पहनने वाले आभूषण।

कदर्थना (यु० ४७) दुर्गति, दुर्दशा, बुराई।

कदन्न (भू० भा० २२) घटिया या मोटा अन्न।

कनौखी (सै० २३, उ० ३०) दूसरों की दृष्टि बचाकर आँख का इशारा।

कपाल (वि० प्रि० ७६) भाग्य, मृत व्यक्ति की खोपड़ी से बना एक पात्र जिसे कापालिक रखते हैं और उसे साधना में आवश्यक भी मानते हैं।

कपित्थ (सा० ४१४, भा० भा० १३३) कैथ का फल।

कबूलत (कि० १८) शुद्ध शब्द कबूलियत, वह कागज जो पट्टा लेने वाला काश्तकार जमींदार को लिखकर देता है। २. पसंद, कबूल होना।

कमला विलास-विलोल (भा० भा० १५६) लक्ष्मी की कृपा से प्राप्त धन-धान्य, ऐश्वर्य और सम्पत्ति जो क्षणभंगुर हैं।

कम्बुरव (ज० व० ३६) शंख-ध्वनि।

कंपस्फुरण (ज० भा० ३१६) कांपना, सिहरना।

करका (ज० भा० २३४) ओला।

कर-मुख-निधि-भू (मं० घ० २१७) १६१२। कर—२ मुख—१, निधि—६, भू—१ अंकानाम वामतो गतिः।

कर कवला (ज० भा० १५४) हाथ का कौर या ग्रास।

करद (सिद्ध० १००) १. किसी प्रकार का कर या राजस्व देने वाला। २. बड़ा छुरा।

करवाल (प० प्र० ६२, गुरु० १०८) तलवार।

करि (ज० व० ११) हाथी।

करिणी (व० वै० ३४) हथिनी।

करी (न० ४३) हाथी।

कर्कटक (युद्ध० ११) एक प्रकार का विष, फोड़ा।

कर्तृत्व (ज० व० ८८) अभिकर्त्ता, रचयिता।

कर्त्तन (द्वा० ४६) काटना, कतरना।

कर्तित (यु० ६) कटी हुई।

कर्दम (यु० ६, उच्छ्० ४८) कीचड़, दलदल, पंक।

कर्मकाण्ड (हिडि० ३२) वेद का वह विभाग जो यज्ञीय कृत्यों, संस्कारों तथा उनके उचित अनुष्ठान से उत्पन्न फल से सम्बन्ध रखता है।

कर्मनाशा (स्व० सं० ८०) एक कल्पित नदी जो पुण्य का नाश करती है।

कर्बुरता (वि० वे० १) राक्षसता।

कर्षणा (यु० ५४) घसीटना, खींचना, आकर्षित करना।

कल्पवल्ली (सा० ३२) कल्पवृक्ष। पुराणानुसार देवलोक का एक अविनश्वर वृक्ष जो सबकुछ देने वाला माना

जाता है।

कल्पशाखी—कल्पवृक्ष जो सब कामनाएँ पूर्ण करने-वाला माना जाता है।

कलभ (प्र० १५) हाथी का बच्चा।

कल्पान्त (ज० भा० १७६) प्रलय।

कल्मष (सै० ३३) पाप, पापी, मलिन, लांछन।

कलकंठ (सिद्ध० २२) हंस, कबूतर।

कलाधर (शकु० १४) चन्द्रमा।

कलम्ब-कलाप (श० १५) लम्बा नुकीला बाण।

कवरी (ज० भा० १८४) गुँथी हुई चोटी या जूड़ा।

कवल (ज० भा० ३०) ग्रास, कौर।

कविर्मनीषी (वि० वे० ९८) महान या श्रेष्ठ कवि, चिंतक कवि।

कशा (भा० भा० १४२) चाबुक, कोड़ा।

कसा-गंसा—जकड़ा, ठसाठस जगह में कठिनाई से रहना।

कांचल (द्वा० १२५) गाय के गले से नीचे लटकती हुई खाल।

कांची (हि० ३५) करधनी, मेखला।

कांजीहौस (कि० ३२) वह स्थान जहाँ आवारा गाय-भैंस आदि पशुओं को पकड़कर रक्खा जाता है।

कांडारी—खिवैया, कर्णधार।

काकली (शकु० ४३) मंद-मधुर स्वर।

काजी (वि० प्रि० ३१) मुसलमानी कानून के अनुसार फैसला करने वाला या निकाह पढ़ाने वाला।

कानून ताजीरात—उन कानूनों का संग्रह जिनके अनुसार भारत में अपराधियों को दण्ड दिया जाता है (क्रिमिनल कोड), दण्ड-संहिता।

कापालिक (वि० प्रि० ७९) शिव का एक नाम, शिव के भक्त वामाचारी सम्प्रदाय के साधक।

कामलता (हिडि० १६) इच्छानुसार फल देने वाली लता

काम्य (दि० ११) उद्देश्य विशेष से किया गया।

कारिका (सा० १४१) किसी सूत्र की श्लोकबद्ध व्याख्या।

कार्पटिक (सिद्ध० ११९) तीर्थयात्री, अनुभवी पुरुष।

कार्मुक (ज० भा० ३५३) धनुष।

काला (न० ४४) सर्प।

कास (श० २६) घास।

किंकर (गु० १३४) सेवक।

किंसुक (ज० व० ७३) ढाक का पेड़, फूल, टेसू।

किरीटी (ज० व० ३५) ताज या मुकुट पहनने वाला अर्जुन का एक नाम।

कीर (उच्छ्० ४०) तोता।

कीलक (ज० भा० १७४) मंत्र का प्रभाव नष्ट कर देने वाला।

कोश (प० प्र० २०) बन्दर।

कंचित (प० प्र० ६२) टेढ़े, घुंघराले।

कुज (ज० भा० १७४) लाल रंग का, मंगल ग्रह।

कुज्झटिका (न० १८) कुहरा, धुन्ध।

कुड़कना (शकु० ३४) उछाह से अपनाना।

कुधी (ज० भा० ३०५) बुरी बुद्धि वाले।

कुबेर—धन और समृद्धि का देवता।

कुमुद्वती (शकु० १५) सफेद फूलों की कुमुदिनी, कमलों का समूह, कमल-स्थली।

कुम्भी (न० ४३) पानी का छोटा पात्र, घड़ा, घड़िया

कुररी (वि० प्रि० ८८, ज० व० १८) मादा कौंच (पक्षी)।

कुरुद्वह (यु० ४४) दुर्योधन का एक नाम।

कुल्या (पत्रा० ३१) नाली, छोटी जलधारा।

कुशपाणि (प० प्र० ४३) विरक्त साधु, तपस्वी।

कुसीदक (हि० १५०) सूदखोर।

कूट (ज० भा० १५९) सींग।

कूष्मांड (प० प्र० ८७) कुम्हड़ा, पेठा।

कृतलक्षण (सै० ३७) श्रेष्ठ, सुशील।

कृतविद्य (वि० प्रि० १२) विद्या के लिए प्रसिद्ध।

कृतहस्तता (भा० भा० ४८) बाण चलाने में कौशल।

कृतांत (गु० २४९) मृत्यु, यमराज के दूत।

कृती (दि० १०) पुण्यवान, महान।

कृत्या (ज० व० ६१, गु० २३३) संहारकारिणी-शक्ति

कृन्तक (ज० भा० ४१५) कठोर।

कृशानु (ज० व० ७७, प० प्र० १४९, गु० २२७) अग्नि

कृशानु शय्या—चिता।

क्लृप्त (ज० भा ३१७) उलझे, अस्तव्यस्त।

केका (प० प्र० ६५) मोर की बोली।

केकी (प० प्र० ६५) मोर।

कटभारे (प० प्र० २६) कैटभ नामक राक्षस को मारने वाले कृष्ण।

कैतव (ज० भा० ३४) जुआ खेलना, जुए में लगाया गया दाव, झूठ, धोखा, चालाकी।

कैवर्त (मं० घ० ६४) धीवर, केवट।

कैवल्य (हि० १३६, गुरु० ६९) मोक्ष।

कोकी (श० १४) गुलाबी रंग की हँसनी, कोयल, चकवी।

कोदण्ड गुण (झं ४३) धनुष की डोरी।

कोमलतनु (रंग० २४) कोमलांगी, कोमल शरीरवाली।

कौणप (सा० ४४५, प्र० ६८) राक्षस।

कौन्तेय (ज० व० २६) कुन्ती का पुत्र। युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन तीनों के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है।

कौमुदी (प० प्र० ६६) चांदनी।

क्रतु (ज० भा० २१८) अश्वमेध-यज्ञ।

क्रव्य (हिडि० ३८) मांस खाने वाला।

क्रव्याद (प्र० ११) मांस खाने वाला, जैसे राक्षस, गिद्ध, सिंह आदि।

क्रोड़ (उच्छ्० ६३) गोद।

क्रौंच (वि० प्रि० ८८) एक पक्षी—करांकुल नामक पक्षी। जल कुक्कुट, कुररी, बगुला।

क्लिन्न (द्वा० ११८) तर, गीला।

क्लीव (यु० ४४) नपुंसक, डरपोक, कायर।

क्षणजन्मा (सिद्ध० ३२) क्षणिक, अधिक समय तक जीवित न रहने वाला, क्षणभंगुर।

क्षणदा (हिडि० ३८) रात्रि।

क्षतच्छिन्न (ज० भा० ४१७) घायल, अचेत।

क्षांत (स्व० सं० ११३) क्षमाशील, सहनशील।

क्षाराम्बु (वि० प्रि० २३) खारा पानी।

क्षांति (अजित ४३) सहनशीलता।

क्षिप्त (अं० अ० ३६) फेंका हुआ, पटका हुआ, उचटा हुआ, फैलाया हुआ।

क्षुप (काबा० ८२) छोटी डालियों वाला वृक्ष, झाड़ी।

क्षोणी (स्व० सं० १२४, वि० प्र० २०) पृथ्वी।

क्षौम (सा० ३५) सन आदि के रेशों से बुना कपड़ा।

ख

खंख (उच्छ्० ४१) छूछा, वीरान, खाली।

खगोल (स्व० सं० ५०, वि० प्रि० ८०) आकाश।

खग्रास—ऐसा ग्रहण जिसमें सूर्य या चन्द्र का सारा मंडल ढक जाय, सर्वग्रास।

खनना (रा० प्र० ३५, भू० भा० २२) खोदना।

खर्ब (हि० २९, झं० ३८) विकलांग, अपूर्ण, ठिगना, ओछा, नष्ट।

खवाई (कि० १५) भोजन के निमित्त दिया गया धन।

खसना (सिद्ध० ३६) स्खलित होना, गिरना।

खाजा (रा० प्र० १३) एक प्रकार की मिठाई।

खेचर (वि० प्र० ३६) आकाश में चलने वाला।

खेला (वि० प्रि० १२२) नाटक।

खौर (श० १०) धनुषाकार तिलक, त्रिपुण्ड, मस्तक पर धारण करने का स्त्रियों का एक गहना।

ग

गंडक (हिडि० २३) गले में पहनने का गंडा, गांठ—एक विशालकाय पशु गेंडा।

गंधवाह (न० २२) वायु, हवा।

गँसी (ज० भा० ५२) ठोस, मजबूत।

गगन शिला (वि० प्रि० ७१) नभरूपी शिला, कवि ने इस रूपक के माध्यम से कबीर की निर्गुणोपासना पर व्यंग्य किया है।

गगनाक्रीड़ित—आकाश की गोद में क्रीड़ा करते हुए।

गच (ज० भा० ७१) गड्ढा, चूने-सीमेंट आदि से बना फर्श।

गणक पुंगव (भा० भा० ११९) गणना करने में कुशल, श्रेष्ठ ज्योतिषी, कुशल भविष्यवक्ता।

गतानुगतिकता (द्वा० ४५) पुराने आदर्श एवं परंपराओं का अनुकरण करना।

गमक (झं० ८) संगीत में एक स्वर से दूसरे स्वर तक जाने का ढंग, मधुर ध्वनि।

गर्हणा (ज० भा० ३१२) निंदा, शिकायत।

गर्ह्य (रंग० १८) गर्हित, निंद्य, निंदनीय।

गाँस (व० वैं० १७, ज० भा० ३४) रहस्यपूर्ण बात, बंधन, प्रतिरोध, हथियार की नोंक।

गानघनी (सिद्ध० ५१) संगीत-मर्मज्ञ।

गारुड़िक (द्वा० १५७, हिडि० ११३) साँप का विष उतारने वाला, सँपेरा।

गिरा (उ० १००) वाणी, शब्द।

गिरि-गुहाद्वारस्थ (रंग० ३६) पर्वत की कंदरा या गुफा के द्वार पर खड़ा।

गिरिनन्दन (ज० व० ७) कार्तिकेय का नाम।

गीतामते (भा० भा० ६) गीता का उपदेश देने वाले कृष्ण।

गुंजा (वि० प्रि० १९) घुंघची, रत्ती, एक वृक्ष का बीज।

गुड़जाना (स्वास्ति० ७०) नष्ट होना, समाप्त होना।

गुण (ज० व० ८४) धर्म, तीन गुण, प्रवीणता, रस्सी, धनुष की डोरी।

गुरसी (उ० ८६) अँगीठी।

गुरि, गुरियाँ (ज० भा० २२४) सर्प की केंचुल।

गुर्वी (सा० १५६, न० ३७) गौरवशाली।

गुल्फ (सिद्ध० २०) एड़ी की ऊपर की गाँठ।

गुल्म (सा० ४३८, प्र० ६१) पेट का एक रोग जिसमें उसके भीतर एक गोला-सा बँध जाता है। यह गोला हृदय के नीचे से लेकर पेड़ू तक के बीच कहीं पर भी उत्पन्न हो सकता है। 'भावप्रकाश' के अनुसार यह गोला अनियमित आहार-विहार तथा वायु और पित्त के दूषित होने से पैदा होता है।

गुल्म (वि० प्रि० ३६) वह पौधा जो एक जड़ से कई तनों के रूप में निकले यथा ईख, सेना का एक खण्ड।

गुहार (उ० ११६, वि० प्र० ६६) रक्षा के लिए पुकार, दुहाई।

गुह्यक (ज० भा० ६) कुबेर के खजानों की रक्षा करने वाला यक्ष।

गेंती (कि० ३६) मिट्टी खोदने की कुदाल।

गैरिक (ज० व० ७६) गेरुए रंग का।

गैल (झं० १३६) रास्ता, मार्ग, गली।

गोठ (द्वा० २७) गौशाला।

गोड़ना (उ० ११६, सिद्ध० ५७, कि० ३६) मिट्टी खोदकर उसे उलटना व पलटना। बनाना, निर्माण करना।

गोत्र (प० प्र० २६) पर्वत।

गोत्रिणी (न० ६४) पृथ्वी।

गोया (स्व० सं० ५६) गेंद बनकर।

गोरस (वि० प्रि० ८०) दूध, दही आदि।

गोष्पद (सा० ४३०, प्र० ५०) गाय के खुर के बराबर गड्ढा।

गौरव-गमन (रंग० २०) प्रतिष्ठा चली जाने पर, अपमानित होने पर।

ग्योंड़ा (द्वा० १३२) गाँव के आस-पास की भूमि, सीमा, हद।

घ

घट—प्राण, घड़ा।

घट-पट-रटना (वि० प्रि० ३०) ज्ञानमार्गी मन और शरीर को पवित्र रखने में विश्वास रखते हैं। यहाँ यही भाव है कि रट लगाने, मन के भीतर ब्रह्म के साक्षात्कार करने से भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

घनाघात (वि० प्रि० १२) सघन या अधिक चोट या आघात।

घनछैया (झं० १३६) घनी छाँह।

घातघट्ट (ज० भा० ४१५) घात लगाकर प्रहार करने वाला, घात लगाने में चतुर, अश्वत्थामा के लिए प्रयुक्त शब्द।

घींचना (हिडि० २३) खींचना, ऐंचना।

घूसें—चूहे के वर्ग का जंतु जो नाज इधर से उधर ले जाता है, शत्रु, अपकार करने वाले।

च

चंद्रकान्त (ज० व० ४०) एक रत्न (कल्पित) जिसके विषय में कहा जाता है कि वह चन्द्रमा के सामने रखने से पसीज जाता है।

चक्र (अं० अ० ३४) चर्खा।

चक्रवाक (उच्छ्० ६०) चकवा नामक पक्षी।

चक्री (यु० ४८) कृष्ण का एक नाम, चक्रसुदर्शन धारण करने वाला।

चटुल (द्वा० १११) चंचल, चपल, चालाक।

चड़मड़ (श० १५) ध्वनि करते हुए कम्पित होना, चरमराना।

चत्वर (स्वस्ति ६) चबूतरा।

चमू (ज० व० ६१, गुरु ८०) सेना, फौज, चमू में ७२९ हाथी, ७२९ रथ, २१८७ सवार और ३६४५ पैदल होते हैं।

चर्म-कृपाण (श० ६) ढाल और कृपाण।

चाँपना (ज० भा० ३५०) दबाना।

चामर (श० १२) (१) महिषासुर का एक साथी राक्षस। (२) चँवर, मोरछल।

चामुण्डा (श० २१) देवी का एक नाम, भैरवी, चंड तथा मुंड नामक राक्षसों के वध के कारण देवी का नाम चामुण्डा पड़ा।

चारणा (ज० भा० १६६) वंश की कीर्ति का गान करने या भ्रमण और यात्रा से मिलने वाले लाभ।

चारफल (सा० २४) चतुर्वर्ग—धर्म अर्थ काम और मोक्ष।

चिंतामणि (सा० ३२) एक कल्पित रत्न, जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय, वह पूर्ण कर देता है।

चिताना (भू० भा० १६) जीवन प्रदान करना, चेतावनी देना।

चित्र चरित्र (ज० भा० ३६७) जिनका चरित्र आदर्श चित्रों के समान जैसा है। आदर्श चरित्र।

चित्रपतंग (द्वा० १८८) तितली।

चित्रसारी (हिडि० ८६) चित्रशाला।

चित्रस्थ (रंग ३०) भौंचक्के, ठगे से, आश्चर्यचकित।

चित्राम्बर (ज० भा० १८५) चित्र के सदृश दिखने वाला आकाश।

चिबुक (ज० व० १९) ठोड़ी।

चीन्हना (ज० भा० २७) पहिचानना।

चूड़ा (श० १९) शिखर, चोटी।

चैत्य (हिडि० १६०) यज्ञशाला, देव-स्थान।

चैतन्य (ज० व० ४२) होश-हवास।

चोला (उच्छ्० १२१) शरीर।

छ

छजना (अजित ७४) सजना, उपयुक्त जान पड़ना।

छज्जा (वि० प्रि० ७८) मकान का वह भाग जो मकान के सामने की ओर निकला हो, ओलती, यहाँ यह शब्द मर्यादा के अर्थ में प्रयुक्त है।

छपपट (अजित १०१) छपछपाहट। धारा के किसी चीज के बार-बार टकराने से होने वाला शब्द।

छवि-वधू (रंग १२) सुन्दरता रूपी नववधू।

छादित (ज०व० १७) ढका या छाया हुआ, आच्छादित।

छिद्रेष्वनर्था (भा० भा० ९५) दुर्बलताएं, दोष ही अनर्थ की जड़ हैं।

छेंकना (अजित २२) घेरना, रोकना, गति का अवरोध करना।

छोह (वि० प्रि० ११६) ममता, स्नेह, प्रेम, कृपा।

ज

जंगम (श० ११) चलने फिरने वाला, चर, गतिशील।

जकी (सैं० १५) चकित, विस्मित।

जगदेक (ज० भा० २७८) संसार में एक मात्र—जगत् + एक।

जघन्य (कि० ३८) निन्दनीय, त्याज्य।

जठराग्नि (ज० व० १९) पेट की आग जो भोजन पकाती है।

जड़ीभूत (श० ४५) स्थिर, ठगा-सा, अविचलित।

जतुगृह—दुर्योधन द्वारा पांडवों को कुंती सहित जला कर भस्म करने के लिये वारणावत में बनवाया गया लाख, घास, फूस आदि का घर। लाक्षागृह।

जनार्दन (ज० व० २८) विष्णु एवं कृष्ण के नाम।

जनी-मानस (अजित ६६) स्त्री।

जपुजी (गुरु० ११६) सिक्खों का धर्म-ग्रंथ।

जयपाणि (भा० भा० २७) जापान जिसने रूस को युद्ध में पराजित कर एशिया का गौरव बढ़ाया।

जवनिका (रंग २८) नाटक, संसार रूपी नाटक।

ज्वाल-जालामोद (रंग २७) चिता की लपटें जो उसे शीतल और शांतिदायक लगीं।

जाज्वल्य (ज० व० ६०) प्रज्ज्वलित, प्रकाशयुक्त तेजस्वी।

जातता (ज० भा० ३४१) जन्म होने की कथा।

जातरूप (द्वा० २६) स्वर्ण, सोना, धतूरा।

जाति (सिद्ध० ८) एक ही गोत्र या वंश का मनुष्य। गोत्री भाई।

जानु (रंग ३५) घुटने।

जालरन्ध्र (प० प्र० ५४) झरोखा।

जिन (स्व सं० ७८) जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी।

जिष्णु (मं० घ० १३०, गुरु० १५१) सदा जीतने वाला इन्द्र।

जीवनमुक्त (वि० प्र० ४६) जिस (जीव) ने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया हो और इसीलिए जो सांसारिक मायाबंधन से छूट गया हो, वीतराग।

जुग (सा० ७२) जोड़ी, युग्म।

जौलों (प० प्र० ८३) जब तक।

ज्योतिरंगम (प० प्र० २५) जुगनू।

झ

झष (द्वा० १९६) मछली, ताप, गर्मी, वन।

झाऊ (द्वा० १३५) एक प्रकार का छोटा झाड़ जिसकी टहनियों की टोकरियाँ और रस्सियाँ बनती हैं तथा सूखी लकड़ी जलाने के काम आती हैं।

झावा (उच्छ्० ८६) टोकरा।

झिलना (भू०भा० १५) सहना, तृप्त होना, मग्न होना।

ट

टटका (द्वा० ४५) ताजा, हलका, कोरा।

टाँका (वि० प्रि० ८८) एक विशेष प्रकार का पात्र, हौज, कँडाल।

ठ

ठान जो ठठी सो ठठी (ज० भा० ३३२) कुछ और मुझे सुनना नहीं, जो निश्चय कर लिया है वह अटल है।

ठिया (भू० भा० १५) ठिकाना, स्थान, ठौर-ठिया, रहने का स्थान।

ड

डगर (उच्छ्० ५५) रास्ता, गली।

ड्योढ़ा (वि० प्रि० ६२) एक भारतीय गिनती या माप,

डेढ़ गुणा, एक जमा आधा अंश; ड्यौढ़ा के समान ही मात्रा या गिनती के लिए सवाया, पौना आदि शब्दों का भी प्रचलन है।

डीठ (गुरु० १०७) निगाह, दृष्टि।

ढ

ढूह (झं० १३) ढेर, टीला।

त

तक्षक (स्व० सं० ६७) पाताल के आठ नागों में से एक जिसने अर्जुन के पौत्र परीक्षित को डसा था, सर्प।

तगर (द्वा०२६) एक वृक्ष जिसकी जड़ गंध-द्रव्य के रूप में काम देती है।

तटस्थ (सिद्ध० ७१) उदासीन, जो गुटबंदी से पृथक् हो।

तड़ित् (श० ८) विजली, विद्युत, हिंसा।

तड़ितरलता (अ० अं० २६) बिजली का प्रखर प्रकाश।

तत्वज्ञानी (ज०व० ६०) जिसे ब्रह्म, आत्मा और जगत के सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान हो, ब्रह्मज्ञानी।

तनुधारियों (रंग० २७) जीवधारी, मनुष्य, प्राणी।

तन्न (भू० भा० २८) तद्+न—वह नहीं।

तपाना (वि० प्रि० ७०) गर्म करना, औटाना, कष्ट पहुँचाना।

तमचर (ज० व० ५४) निशाचर, उल्लू।

तरकी (हिडि० ३५) एक प्रकार के फूल के आकार का कान का गहना।

तरणि (प० प्र० ४२) सूर्य।

तरस्वी (ज० भा० २८२) उद्धार करने वाले व्यक्ति।

तर्जना (सिद्ध० ४१) धमकाना; डराना; डपटना।

तर्ष-तोष (भू० भा० ३०) मन की वह वृत्ति जिसमें प्राप्त वस्तु, सुख आदि से अधिक की लालसा न हो; तुष्टि।

तल्प (स्वस्ति० ४८) शय्या, पलंग, सेज।

तांडव (रंग २२) शिव का नृत्य जो वह प्रलय के समय करते हैं और जिससे सारा ब्रह्मांड नष्ट हो जाता है, भयंकर नाशकारी कृत्य (युद्ध)।

तापिच्छ (सा० ७६) तमाल वृक्ष।

तारक (वि० प्रि० ११८) उद्धार करने वाला, भवसागर से पार करने वाला।

तार्किक (सिद्ध० १०७) तर्कशास्त्र का जानने वाला, बहस करने वाला।

तिकट (व० वै० ५) त्रिकट, गोखरू, कंटीले फल जैसे स्वभाव वाले।

तितिक्षा (प० प्र० ४) सहनशीलता, क्षमा।

तिरस्क्रिया (रंग०३४) अपमान, तिरस्कार, बेइज्जती।

तिर्यग्गति (ज० भा० ३४३, उच्छ्० ११६) पशु-योनि में जन्म लेना।

तिलंगे (भू० भा० १८) लूट-खसोट करने वाले।

तिल्ली (कि० ३७) प्लीहा, पेट के भीतरी भाग का वह छोटा अवयव जो मांस की पोली गुठली के आकार का होता है। यह पसलियों के नीचे बाईं ओर होता है।

तीर्थंकर (हि० ७८) जैनियों के २४ महान व्यक्ति।

तुंड (ज० भा० ५४) मुख, मुँह।

तुंद (ज० भा० ३५५) पेट, उदर।

तुंदिल (सा० १६) तोंद वाला, बड़े पेट वाला।

तुष (व० सं० ३३) अन्न के ऊपर का छिलका, भूसी।

तुहिन (श० ४, उच्छ्० ७०) पाला, तुषार, हिम।

तूंबी (झ० ४३) कद्दू आदि का बना खोखला बर्तन, कमंडल।

तूणीर (हिडि० ३१) तरकश।

तूर्ण (द्वा० ७६, मं० घ० २४६, हि० १६४) शीघ्र, तुरन्त।

तूर्य (हि० ४२) तुरही।

तूल (ज० व० १६, गुरु० १०६) रुई, कपास, बात को बढ़ाना।

तूल-लव (अं० अ० ३६) कपास से बनी बत्ती।

तैलावत पटच्चर (सा० ४३४, प्र० ५६) तेल से सने हुए फटे-पुराने कपड़े।

तोड़ा (भू० भा० २६) कमी।

तोम (अं० अ० ६) समूह।

तोमर (सा० ४३६, प्र० ६२) भाले की तरह का एक प्राचीन अस्त्र।

तोरण (सिद्ध० १२०) सजावट के लिए लटकाई जाने वाली मालाएं।

तौर्यत्रिक (सै० ४३) गान एवं वाद्य।

तौलों (प० प्र० ८३) तब तक।

त्राण (अं० अ० १३ दि० ८) बचाव, आश्रय।

त्रिगर्त (मं० ध० ६६) आधुनिक जालंधर का प्राचीन नाम।

त्रिगुण (श० ६) सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणों का समाहार।

त्रिदिव (ज० भा० १६८, पत्रा० ३०) स्वर्ग, आकाश

त्रिदिव वादित्र (स्वस्ति १) स्वर्ग के बाजे।

त्रिपथगा (दि० २६) तीनों लोकों में बहने वाली गंगा।

त्रिवली (श० ६) पेट पर पड़ने वाले तीन बल या रेखाएँ।

त्रिवार (ज० भा० ६१) गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

त्वरा (रंग १०) शीघ्रता।

त्वेष (रंग ३४) क्रोध की आग।

थ

थेरी गाथा (भा० भा० १२५) २५०० वर्ष पूर्व की लिखी पाली भाषा की पुस्तक जिसमें ७०-८० बौद्ध स्त्रियों की धार्मिक कविताएँ संग्रहीत हैं।

द

दंडी-मुडी (वि० प्रि० ६२) दण्ड धारण करने वाला और मुड़े सिर वाला संन्यासी।

दंदशूक (नहु० ६४) साँप।

दंशन (कि० ४८) डसना, चुभन, डंक मारना।

दधिकाँदों (ज० भा० ४३६) जन्माष्टमी के समय होने वाला एक प्रकार का उत्सव जिसमें लोग हल्दी-मिश्रित दही एक-दूसरे पर फेंकते हैं।

दयित (वि० प्रि० ११३) प्यारा, प्रिय।

दयिता (काबा० ५६) प्रियतमा।

दरगोर (गुरु० २००) दीवार में चिनवा दिये जाँय।

दस्यु (सिद्ध० ३४) डाकू, चोर, अनार्य, असुर, दास।

दांत (मं० घ० ६५, गुरु १२०) जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो, जितेन्द्रिय।

दांति (अजित ४३) अधीनता, विनयशीलता।

दांभिक (व०वै० ३६) पाखण्डी, ढकोसला करने वाला।

दारा (उच्छ्० ६०) स्त्री, पत्नी।

दारित—चीरना, फाड़ना।

दारुखण्ड (युद्ध ३०) लकड़ी का टुकड़ा।

दिक्पाल (सा० ४३) पुराणानुसार दसों दिशाओं का पालन करने वाले देवता—यथा पूर्व के इन्द्र, अग्निकोण के वह्नि, दक्षिण के यम, नैऋत्य कोण के नैऋत, पश्चिम के वरुण, वायु के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान कोण के ईश, ऊर्ध्व दिशा के ब्रह्मा और अधोदिशा के अनंत।

दिग्दीप—अज्ञान रूपी अन्धकार में दीपक सदृश मार्ग दिखाने वाला, पथ-प्रदर्शक।

दिगम्बर—नंगे, वस्त्र-विहीन, शिव।

दिव (दि० ६) देवता।

दिवमान्य (ज० भा० ३२५) स्वर्गीय, अर्थात देवताओं द्वारा सम्मानित।

दीर्घसूत्रता (द्वा० १०२) प्रत्येक कार्य में विलम्ब करने का स्वभाव।

दुःशीला (ज० व० १६, द्वा० ३५) बुरे स्वभाव वाली, दुष्टा।

दुग्ध-पोष्य (सिद्ध० ८) दूध पर पलने वाला, दुधमुँहा।

दुरंत (स्व० सं ६७, गुरु० १४५) दुष्ट, नीच।

दुरत्यया (उच्छ्० १३१) दुस्तर, कठिन, दुर्दमनीय।

दुरदृष्ट (सै० ३७) जो देखने में भयंकर हो, दुर्भाग्य।

दुरभिसंधि (रा० प्र० २२) छलकपट से पूर्ण, गुट बाँध कर की गई सलाह।

दुराना (ज० भा० ३०३) चुराना, छिपाना।

दुरित (हि० ७३) पाप।

दुर्दम (स्व० सं० ५५) जो कठिनाई से दमन किया जा सके।

दुर्द्धर (रंग २६, झं० १०६) दुर्वह, जिसे धारण करना असह्य हो।

दुर्द्धर्ष (ज० व० ३१, स्व० सं० ११, हि० ५३) प्रबल, प्रचंड, जिसका दमन या वश में करना कठिन हो।

दुर्वृत्त (ज० व० २) दुराचारी, दुष्ट।

दुर्वाद (ज० भा० ३५७) निन्दा, अपवाद।

दुर्वार (उच्छ्० २२) जिसको हटाना कठिन हो।

दुर्विध (ज० व० २२) दरिद्र, दुष्ट, मूर्ख।

दुर्विपाक (उच्छ्० ६०) दुर्भाग्य।

दून (कि० २७) दुगने का भाव, बढ़-बढ़ कर बातें करना, शेखी मारना।

दृक्कालिमा—नेत्रों के आँसू रूपी स्याही।

दृगसह्य (प० प्र० १४८) नेत्रों को असह्य।

दृषद्वती (गुरु ४२) ऋग्वेद में वर्णित पंजाब की एक प्राचीन नदी।

दैवत-द्विरद (युद्ध ४४) देवताओं का हाथी।

दैवोऽपि दुर्बलघातक: (भा० भा० ६५) भगवान भी दुर्बलों को कष्ट देता है।

दौहित्र (ज० भा० ३६) लड़की का पुत्र, नाती।

द्विजराज (वि० प्रि० १५) चन्द्रमा, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ।

द्विजिह्व (गुरु० २३२) सर्प।

द्विपद-षण्ड (द्वा० १६१) दो पैरों वाले साँड, राक्षस।

द्विरद (गुरु० १५६) हाथी।

द्विषत (सा० ४५५) वैरी।

ध

धकड़ना (हि० ३२) जकड़ना, बाँधना।

धनद (ज० भा० १८१) धन का देवता, कुबेर।

धनी घोरी (सिद्ध० १२२) धन और मर्यादा वाला।

धन्वा (ज० व० १३) धनुष, कमान।

धर्मसुत (ज० व० ५५) युधिष्ठिर का एक नाम या विशेषण।

धर्षित (ज० भा० ३१२) अनादर, अपमान, अवज्ञा, दमन किए या हुए, परिभूत।

धाराधिप (सिद्ध० ५०) धारा प्रदेश का राजा।

धारायन्त्र (सिद्ध० १२३) पिचकारी।

धार्तराष्ट्र (ज० व० ७) धृतराष्ट्र के पुत्र।

धीमान (रंग ३७) बुद्धिमान।

धीवर (ज० भा० ३१) मछली पकड़ने और बेचने का व्यवसाय करने वाली एक जाति।

धुरड्डी (रा० प्र० १३) धूल की या धूल से खेली जाने वाली।

धूर्जटि (गुरु० ५९) शंकर, शिव।

धोरियो (भू० भा० १६) सम्मान रखने वाला।

ध्रुव (प० प्र० ९) अडिग, अचल, पक्का।

ध्वान (ज० भा० ३१२, हि० ७५) शब्द।

न

नकुल (ज० भा० ४३२) नेवला।

नड़ना (भू०भा० २०) झुकना, परिवर्तनशील।

नटवर(ज० व० ८२)नाट्यकला में प्रवीण, नाट्यकला तथा नाट्य-शास्त्र में प्रवीण होने के कारण कृष्ण का एक नाम।

नति (सिद्ध० २१) विनय, नम्रता, विनती।

नद्ध (ज० भा० १५४) बँधा हुआ, अटका हुआ।

नन्दीश्वर (सिद्ध० ११) शिव का एक नाम।

ननु नच (ज० भा० ३१२) बिना विरोध, हील-हुज्जत किए बिना।

नबी (गुरु० १९९) ईश्वर का दूत, पैगम्बर।

नभःशिला (सिद्ध० ३६) आकाश-रूपी शिला या पत्थर

नर-कक्षा (रा० प्र० १७) लोकतन्त्र प्रणाली, संसद।

नर देव सम्भव (ज० व० ३) मनुष्य रूपी देवता से उत्पन्न।

नवधाभक्ति—नौ प्रकार से की जाने वाली भक्ति—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

नष्टसार (कि० ८) नष्ट होने वाला तत्व।

नस्य (गुरु० २१८) दुर्गन्ध।

नालकी (न०६१) मेहराबदार पालकी जिसमें विवाह के अवसर पर दूल्हा बैठ कर जाता था।

नास्तिक (सिद्ध० ४५) वेद, ईश्वर और परलोक को न मानने वाला।

निगड़ (वि० प्रि० ४०, द्वा० ८६) जंजीर।

निगमागम (हि० १६४) वेद, आगम-शास्त्र।

निचाट (वि० प्रि० ९६)नीचे स्थान पर, स्थिर, शान्त।

निदाघ (ज० व० १७) गर्मी, ताप।

निधान (सिद्ध० १२) आधार, आश्रय, कोष, निधि।

निपात (श० १७) पतन, विनाश, मृत्यु।

निविड़ (उच्छ्० ९४) घनघोर।

निबेरा (स्वस्ति ८५) १. छुटकारा, मुक्ति २. बचाव, उद्धार।

निभृत (झं० ९८) निर्जन, एकांत।

निभृतनिवेश (झं० ५७) शून्य में बसने वाला ईश्वर।

निम्नगा (प० प्र० १२, उच्छ्० १४०) नीचे की ओर जाने वाली, नदी।

नियंता (उच्छ्० ८९) व्यवस्था करने वाला, भगवान।

नियुद्ध (ज० भा० १४०) पैदल युद्ध करने वाला बाहु-युद्ध, मल्ल युद्ध।

नियोग (ज० भा० ३९) प्राचीन काल की एक प्रथा जिसके अनुसार यदि कोई स्त्री अपने पति से सन्तान प्राप्त न कर सके तो वह पति की आज्ञा से देवर या पति के किसी अन्य गोत्रज, ऋषि, देवता आदि से सम्भोग कर सन्तान उत्पन्न करती थी।

नियोजन (ज० भा० ३५०) तोलना, तुलना करना, अपनी खोज करना।

निरवधि (दि० १७) जिसकी सीमा या अन्त न हो, बहुत विस्तृत।

निराना (कि० ३७) फसल के पौधों के आस-पास उगी घास आदि खोद कर हटाना।

निरापद (सिद्ध० ५५) आपदा रहित, सुरक्षित।

निरीश्वर (सा०) ईश्वर को न मानने वाला।

निरीह (रंग० ९) इच्छारहित, जिसकी कोई इच्छा न हो।

निरोधक (भू० भा० ७) रोकने वाला।

निर्गत (सिद्ध० ४३) निकला हुआ, बाहर आया हुआ।

निर्घृण (ज० भा० २३०) जिसे गंदी और बुरी वस्तुओं से घिन न लगे, घृणित, बुरा, निष्ठुर।

निर्घोष (ज० व० ७७) शब्द, आवाज।

निर्जर (न० ३०) देवगण।

निर्दिष्ट (व० वै० १४) जिसका निर्देश हुआ हो, बतलाया या नियत किया हुआ।

निर्वाण (वि०प्रि० ७१) बुझा हुआ, अस्त, मृत, शून्यता को प्राप्त, मुक्त, मोक्ष।

निर्वापित (गुरु० ११६) बुझ गयी।

निर्वेद (सै० १६) वैराग्य, अनुताप।

निवारना (हि० २५) रोकने की क्रिया, हटाने या दूर करने की क्रिया।

निवृत्ति-मार्ग (दि० १०) संन्यास, वैराग्य, विषय-भोगों से विरक्त होकर तपस्या आदि करना।

निवेश (हि० ११८) घर।

निषंग (गुरु० १७१) तरकश।

निषाद (श० २५) बहेलिया, शिकारी।

निषिद्ध (व० वै० ३, द्वा० ३४) जिसका निषेध किया गया हो, वर्जित, मना किया हुआ, दूषित, बुरा।

निष्कण्टक (ज० व० ३७) आपदा या बाधारहित, निर्विघ्न।

निष्क (ज० भा० ४५२) सोना, वैदिक काल में प्रचलित सोने का सिक्का, शुद्ध स्वर्ण रूपी आत्मा।

निष्कृति (सिद्ध० ५१, ७३, गुरु० ७६) निस्तार, छुटकारा स्वतंत्र होना, बचाव।

निष्ठीवन (गुरु० ४६) थूक।

निष्पत्ति (वि० प्रि० ८४) समाप्ति, अन्त, पक्वावस्था।

निष्प्रभ (ज० व० १२) प्रभाहीन, तेजहीन, श्रीहीन।

निसर्ग (ज० भा० १७०) प्राकृतिक सुषमा।

निस्त्रैगुण्य (भू० भा० ६३) जो सत, रज और तम इन तीनों गुणों से रहित हो।

निस्पन्दित (सिद्ध० ५६) निस्पन्द, स्थिर, निश्चल, स्तब्ध।

निस्व (अजित ४३) निःस्व, जिसके पास 'स्व' अर्थात अपना कुछ भी न हो, दरिद्र।

निस्वन (ज० भा० ३५२) ध्वनि, शब्द।

निहंग (वि० प्रि० १०८) एकाकी, अकेला, अकेला रहने वाला साधु।

निहोर के (रंग १६) विनयपूर्वक, प्रेम सहित।

नीप (सा० २६३) कदंब।

नीरदकान्तिहारी (प० प्र० १) बादलों की शोभा को लज्जित करने वाला।

नीवी (रा० प्र० ३१) पूंजी, नारा, इजारबन्द, बारदाना।

नृशंस (सिद्ध० ७४, ८३) लोगों को कष्ट या पीड़ा पहुँचाने वाला।

नेति नेति (ज० व० ५५) एक संस्कृत पद जिसका अर्थ है 'इति' या 'अन्त' नहीं है। इसका प्रयोग ईश्वर की महिमा के वर्णन के सम्बन्ध में होता है।

नैमित्तिक कर्म (हि० ३६) किसी प्रयोजन विशेष से किया जाने वाला कर्म, जैसे पुत्रेष्टि यज्ञ।

नैश (व० वै० ३२) रात सम्बन्धी, रात में दिखलाई पड़ने वाला।

न्यास (व० वै० २५) थाती, धरोहर।

प

पंचक (उच्छ्० ७२) अशुभ घड़ी जिसमें कोई कार्य करना निषिद्ध होता है।

पंचकुल (सिद्ध० ४) १. राजा के निर्देश से नियत पाँच लोग २. इनका निर्देश।

पंच तत्त्व—पंच भूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश।

पंचानन (श० १३) सिंह, शिव, जिसके पाँच मुख हों।

पंचमांगी (वि० प्रि० ३) रोड़ा अटकाने वाले।

पंजर (उच्छ्० ४१) पिंजड़ा।

पट घट (अजित ८६) कपड़े (किरमिच) का बना, पानी रखने का पात्र।

पट-प्रभा—भारत में बने कपड़े विशेषतः ढाका की मलमल की बारीकी, मसृणता एवं सुन्दरता।

पटाक्षेप (वि० प्रि० ८४) नाटक का अंक समाप्त होने पर मुख्य परदे का गिरना, परदा गिरना।

पटीर (गुरु० ६७) चन्दन।

पण (हि० ७८) बाजी, दाँव, शर्त, प्रतिज्ञा।

पण्य (ज० भा० १७) खरीदने योग्य, व्यापार करने योग्य वस्तु।

पत्तन (हि० १७८) नगर।

पति-जाया (द्वा० २०) पति-पत्नी।

पत्र-रचना (स्वस्ति० ७६) शृंगार, चन्दन, गोरोचन से मुख, माथे, कपोल आदि पर चित्र बनाना।

पद-परिणति (ज० भा० ३१८) पद में परिवर्तन होना।

पदस्थ (सै० २६) १. जो अपने पैरों के बल खड़ा हो, २. जो किसी पद पर नियुक्त हो।

पद्मराग (सा० २७) 'मानिक' या 'लाल' नामक रत्न।

पदातिक (वि० प्रि०) पैदल चलने वाला, पैदल

सिपाही।

पदाब्ज (रा० प्र० ११) पद रूपी कमल।

पयोद (ज० व० ६०) मेघ, बादल।

पद्मपत्रमिवाम्भसा (भा० भा० ६१) जल में कमल के पत्ते की तरह अलिप्त।

परन्तप (ज० व० ३०) अर्जुन का एक नाम।

परमहंस (वि० प्रि० १०८) वह संन्यासी जो ज्ञान की चरम सीमा को प्राप्त कर चुका है।

परमाणु (न० ५१) किसी तत्त्व का वह सूक्ष्म भाग जिसका और विभाग न हो सकता हो।

परवाना (कि० ४६) आज्ञापत्र।

परशु (श० १०) एक प्रकार का अस्त्र, परशु के डण्डे के सिरे पर अर्धचन्द्राकार लोहे का फल लगा रहता है।

परात्पर (ज० व० ६१, प० प्र० ३ उच्छ्० ८६) जिसके परे कोई दूसरा न हो, परमात्मा, विष्णु का एक नाम।

परा विद्या (भा०भा० ७६) वह विद्या जिससे अविनाशी ब्रह्म जाना जाता है, अध्यात्म विद्या।

परिकर (गुरु० १६२) साथी, सहयोगी।

परिकर (उच्छ्० ६७) कमर।

परिखा (ज० भा० १३४) नगर की रक्षा के लिए बनाई गई खाई, जो नगर के बाहर चारों ओर होती है।

परिग्रही (श० १०) ग्रहण करने वाला।

परिचालना (व० सं० २५) चलाने के लिए प्रेरणा देना।

परित्राण (उच्छ्० ११३) रक्षा।

परिरम्भण (सा० ४०) आलिंगन।

परिवह (श० ४०) सात पवनों में से छठा।

परिवाद (रा० प्र० ३८) निन्दा, अपवाद।

परिव्राजक (वि० प्रि० ८४) ऐसा संन्यासी जो किसी एक स्थान पर नहीं ठहरता।

परिशिष्ट (गुरु० २२४) अन्त में जोड़ा हुआ अंश, पूरक।

परिसीमा (वि० प्रि० १०५) अन्तिम सीमा, चरम सीमा।

परुष (उच्छ्० १३६) कठोर।

परोह (कि० २६) कुएँ से पानी निकालने का चमड़े का थैला।

पर्जन्य (हि० १२४) मेघ, बादल।

पर्तली (सिद्ध० ११५ म० घ० १५४) तलवार आदि रखने की चमड़े की वह पट्टी जो कन्धे से लटकायी जाती है।

पर्यवेक्षण (सिद्ध० ६६) भलीभाँति निरीक्षण, देखरेख करना।

पलक-पट (सिद्ध० १०७) पलकों का परदा।

पवि (श० १) वज्र।

पश्वासक्ति (गुरु० ३६) पदार्थों के प्रति पशुतुल्य मो और आसक्ति।

पहुँनाई (ज० भा० ४६) अतिथि के रूप में कहीं जान मेहमान होना, अतिथि-सत्कार।

पांचाली (म० घ० ७६) द्रौपदी का एक नाम।

पाकशासनासन (न० ५०) इन्द्र का सिंहासन।

पटुता (ज० भा० २८१) कुशलता, चतुराई।

पाणिपीड़न (रंग १०) पाणिग्रहण संस्कार, विवाह।

पाप-कर (सिद्ध० १६) अवैध कर या टैक्स।

पार्थ (ज० व० २६) पृथा (कुन्ती) का बेटा होने कारण अर्जुन का एक नाम।

पाम (यशो० १८) खाज, खुजली।

पार्श्व (सिद्ध० ४६) अगल-बगल की जगह।

पार्षद (हिडि० ११) सेवक, पास रहने वाला।

पाशव (श० १८) पशु-सम्बन्धी।

पाशी (श० ६) पाश या फन्दा रखने वाला यम अथ वरुण देव।

पिण्ड (सिद्ध० ५३) चावल या आटे का लौंदा, गोल

पिनाक (हि० ७१) शिव का धनुष।

पिशुन (गुरु० ६६) चुगलखोर, निन्दक।

पिष्टपेषण (प० प्र० ७३) बात को फिर-फिर कहना

पीनक (वि० प० ४) अफीम के नशे में झूमना, ऊँघना

पीनस (म० घ० १५४) पालकी, एक रोग जिसमें घ्रा शक्ति नष्ट हो जाती है।

पीनस्तोक (ज० भा० १७७, ३६६) स्थूल, मांस विशाल तथा छोटा, ठिगना।

पुंगव (सै० २७) श्रेष्ठ, उत्तम।

पुन्नाग (प० प्र० ६५) चम्पा, श्वेत कमल, जायफल

पुरातत्त्व (स्व० सं० ७७) प्राचीनकाल सम्बन्धी विद्य

पुरन्दर (श० ६) इन्द्र का एक नाम।

पुरावृत्त (ज० भा० ३५५) अतीत काल का इतिह या वृत्तान्त।

पुरुष कीर्ति (दि० ८) पुरुषार्थ और पराक्रम से प्रा यश।

पुरुषार्थ (ज० व० ६४) पौरुष, पराक्रम, पुंसत्व।

पुरैन (सा० १५०) पुराइन, कमल का पत्ता।

पुलक पाद्य (सिद्ध० ६५) प्रेम या हर्ष से अर्घ्य देना।

पुष्पपुर (स्व० सं० ५८) आधुनिक नगर पटना।

पूषण (झं० १०६) सूर्य।

पृथुल (सिद्ध० १२, झं० ८४, दि० २७) विस्तृत, विशाल।

पेशी (ज० व० ८६) मांस का टुकड़ा।

पोच (व० वैं० ७, प० प्र० ६) कमजोर, दुर्बल, निर्बल।

पोढ (गुरु० ४२) पुष्ट।

पौत्तलिक (हि० २०१) मूर्ति-पूजक।

पौनी (स्वस्ति० १३) रुई का टुकड़ा जिससे कात कर धागा निकाला जाय।

पौर (सिद्ध० ५६) नगर-सम्बन्धी।

प्रकर्ष (प० प्र० ४६) उन्नति, विकास।

प्रकृत (रंग० ३०) सच्चा।

प्रचारणा—ललकार, चुनौती।

प्रजापति (श० १०) ब्रह्मा।

प्रज्ञा (ज० व० ३०) बुद्धि।

प्रणवनाद (गुरु० १०६) ओंकार।

प्रणिधान (सा० ४३०) अत्यन्त भक्ति।

प्रतिकार (सिद्ध० ७०) बदला चुकाना, वह अपकार जो किसी अपकार के बदले किया जाय।

प्रतिपादन (सिद्ध० १७) किसी विषय का सप्रमाण कथन, किसी विषय का स्थापन।

प्रतिभात—चमकता हुआ, प्रकाशित, प्रदीप्त।

प्रतिरूप (रंग० ३३) प्रतिमूर्ति, अनुकृति, नकल।

प्रतिवाक्य (न० ५३) उत्तर, जवाब।

प्रतिवासी (उच्छ्० ११५) पड़ौसी।

प्रतिवेशी (सिद्ध० ८) पड़ौसी।

प्रतिशोध (सिद्ध० ५६) प्रतिकार, बदला।

प्रतीति (सिद्ध० ११७) विश्वास, ज्ञान, बोध।

प्रतीर (शकु० २१) तट, किनारा।

प्रत्यय (सिद्ध० १०३) अवधारणा, धारणा, विश्वास।

प्रत्याख्यान (कि० ४३) इनकार, उपेक्षा, खण्डन।

प्रत्यूष (ज० भा० २६८, मं० घ० १२६) प्रातःकाल।

प्रदा (सैं० १७) देने वाली।

प्रदोष (श० ६) त्रयोदशी व्रत जिसमें दिन-भर उपवास करते हैं और सायंकाल शिव की पूजा करके भोजन करते हैं।

प्रभंजन (ज० व० ६०, भा० भा० ८३) प्रचण्ड वायु, जोर की हवा।

प्रभविष्णु (सिद्ध० १०६, उच्छ्० ७७) प्रभावशाली, शक्तिशाली।

प्रमद (व० सं० ४६) मतवाला।

प्रमदा (शकु० २६) रूपवती स्त्री।

प्रमातामह (ज० भा० ४६) परनाना।

प्रभाती (सा० २५) एक प्रकार का गीत जो प्रातःकाल गाया जाता है।

प्रमाथी (झं० ५६) चंचल।

प्रमाद (प० प्र० १०३) आलस्य।

प्रमोदार्णव (मं० घ० ६४) आनन्द का सागर।

प्रवाल-पंचक (ज० भा० ४४०) पाँच मूँगे अर्थात् पाँचों पाण्डव, द्रौपदी के पति।

प्रव्रज्या (गुरु० ४१) संन्यास।

प्रस्थित (ज० भा० १६१) विशेष रूप से स्थित, जिसने प्रस्थान किया हो।

प्रस्फुट (ज० भा० १८३) विकसित, खिला हुआ।

प्रहरण (ज० भा० १६८) प्रहार।

प्रारब्ध (ज० व० ८७) भाग्य, तीन प्रकार के कर्मों में से वह जिसका फल भोगा जा रहा हो।

प्रियङ्गु (प० प्र० ६६) पीपल।

प्रेक्षण (द्वा० ६५) देखने की क्रिया, देखना।

प्रेत चक्राराधना (भा० भा० ३२) महादेव की पूजा।

प्लुत (ज० व० ५८) कम्पित, प्लावित।

फ

फणिनी (वि० प्रि० ११७) सर्पिणी।

फणिपाश (ज० भा० ४२०) वासुकि नाग के पाश में बँधी।

फाल्गुनी (ज० भा० ३०२) फाल्गुन मास में जन्मे अर्जुन का एक नाम।

फोले (कि० ३७) फफोले।

ब

बक्खल (कि० ८) गाय-भैंस बाँधने का बाड़ा।

बद्ध परिकर (भा० भा० १४६) तत्पर, कमर कसकर।

बद्धमूल—जिसकी जड़ें पुष्ट हों।

बफरना (ज० भा० १४६) उत्तेजित होना, क्रोध में भरना।

बला विद्या (प्र० १०, ली० ६२) वह विद्या जिसके बल से युद्ध-क्षेत्र में योद्धाओं को भूख-प्यास नहीं लगती थी।

बलिपशु (प्र० १२) वह पशु जो यज्ञ आदि में अथवा किसी देवता को सन्तुष्ट अथवा प्रसन्न करने के लिए उसके नाम पर मारा जाता है।

बसीठ (गुरु० २००) सन्देश देनेवाले।

बाड़व (प० प्र० २६; ज० व० ३५) समुद्र की आग।

बारहबाट (गुरु० ६०) छिन्नभिन्न।

बिचकना (द्वा० १३०) चौंकना, भड़कना।

बिचौनी (सिद्ध० ६६) मध्यस्थ, बिचौलिया।

बिड़ाल (भू० भा० ३१) मार्जार, बिलाव।

बिघुरे (व० वै० १२) बिखरे हुए।

बिद्ध (ज० व० ६०) छिदा हुआ, बिंधा हुआ।

बिलटना (ज० भा० ३११) पलटना, उलटा होना।

बिसाना (अजित ८, ९, २६) बिसहना, दाम देकर कोई वस्तु लेना।

बुंदिया (वि० प्रि० १९) आँख की पुतली।

बुतपरस्त (गुरु० १०९) मूर्तिपूजक।

बेंट (कि० ३९) गेंती का डण्डा।

बेठन (उच्छ्० ८७)वह कपड़ा जिसमें कोई वस्तु लपेटी जाय।

बेला (वि० प्रि० ११८) तट, किनारा, सृष्टि, समय।

बोदर (श० २१) लचीली छड़ी।

बोधि द्रुम (स्व० सं० ५९) गया-स्थित पीपल का पेड़ जिसके नीचे ध्यान लगाते हुए भगवान बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था।

ब्रह्म राक्षस (ज० भा० ४१५) प्रेत योनि प्राप्त करने वाला ब्राह्मण।

ब्यालू (कि १०) रात का भोजन (देशज)।

भ

भंड (भा० भा० ११७, हि० १३५) पाखण्डी।

भद्रभावोद्भाविनी—मंगलमय भावों को उत्पन्न करने वाली।

भद्राधान (ज० भा० ३३३) गर्भ धारण करते समय, सुख-सौभाग्य प्राप्त करने के समय।

भन्नाटा (ज० भा० ३१४) शून्यता, भनभनाहट।

भभरा (युद्ध० ४०) डरना, घबराना।

भरका (सा० १४६) पहाड़ों या जंगलों में वह गहरा गड्ढा जिसमें चोर, डाकू छिपते हैं।

भर्ग (श० २२) शिव।

भर्म भू (सै० ७) स्वर्ण-भूमि।

भवदीय भाषा (ज० भा० ३१३) सज्जनों द्वारा प्रयुक्त भाषा।

भवभूति—(भा० भा० १०) १. संसार का ऐश्वर्य, सम्पदा। २. संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार जिन्होंने उत्तर-रामचरित आदि नाटक लिखे थे।

भव भूमि (रंग० ६४) जन्मभूमि, मातृभूमि।

भवितव्य (ज० व० ९) होनहार, अवश्यम्भावी।

भहराना (द्वा० १४७)अचानक गिरना या टूट पड़ना।

भागिनेय (सिद्ध० ७०) बहन का लड़का, भानजा।

भाजन (ज० व० ४३) पात्र, बर्तन।

भाद्र (द्वा० १४५) भादों का महीना।

भारती—वाणी, कविता, सरस्वती।

भार रखना (ज० भा० ३२३) भरोसा या विश्वास रखना।

भावुक-भूप—अत्यधिक भावुक, संवेदनशील और उदारमना।

भ्राम (यशो० २०) भूल, धोखा।

भिंदिपाल (सा० ४३९, प्र० ६२) छोटा डण्डा जो प्राचीनकाल में फेंक कर मारा जाता था।

भिड़ (द्वा० २४) ततैया, बर्रे।

भिषग्वर (ज० भा० १२५) वैद्य, चिकित्सक, औषधियों का ज्ञान रखने वाले।

भींटा (वि० वे० ४१) ऊँची या टीलेदार धरती, जिस पर पान की खेती होती है।

भीष्म-सू (स्व० सं० ५७) गंगा।

भुक्तोज्झित (न० ६५) भोग कर छोड़ी गई, जूठन।

भूतनाथ (दि० १६) भूतों के स्वामी शिव।

भूतविद्या (भा० भा० ३०) वह विद्या जिसमें प्राणियों के प्रकार, उनकी रचना आदि का वर्णन होता है (जूलोजी)

भूदेव (प० प्र० ४२) ब्राह्मण।

भू-लुंठित (रंग० २०) पृथ्वी पर लुढ़कना।

भृकुटि-कुंचित-भाल (रंग ३३) क्रोध और चिंता में भौंहे टेढ़ी करने से वक्र रेखाएँ पड़ा मस्तक।

भृत्य (रंग० ३३) सेवक, दास।

भ्राता-रक्त-सिताम्बु (पत्रा० २९) भाई का रक्त जिसके लिए शरबत के समान है (औरंगजेब)।

भेक (वि० व० ६, हि० १६५) मेंढक।

भैरव राग (सा० २५) भैरवी वह रागिनी है जो सवेरे गाई जाती है। श्रुतिमधुर भैरव राग को भैरव भयंकर कहना, कवि की दृष्टि में, विचित्र बात है।

म

मंजीर (उच्छ्० ४१) नूपुर, घुंघरू।

मंडित (रंग० ३५) अलंकृत, शोभायमान।

मंजूषा (उच्छ्० ९८) पिटारी।

मंत्रणा (सिद्ध० ८२) सलाह।

मंत्र-द्रष्टा (दि० ७) वेद-मंत्रों का साक्षात्कार करने वाला ऋषि।

मंत्रित (ज० व० ८४) जिसका मंत्र द्वारा संस्कार किया गया हो।

मंदार (ज० व० ४८, श० २४) नंदन कानन के पांच वृक्षों में एक।

मंद्र (प्र० ८, उच्छ्० १५) संगीत में स्वरों के तीन भेदों में से एक जो अपेक्षया धीमा या मंद होता है। इस जाति के स्वर मध्य से अवरोहित होते हैं। इसे उदारा या उतार भी कहते हैं।

मकरंद (उच्छ्० ५७) पराग।

मख-भाग-पराग (दि० १२) यज्ञ में देवताओं को अर्पित पवित्र हविषान्न।

मखमेध (हि० २५) यज्ञ।

मघवा (प० प्र० २८) इन्द्र।

मज्जन (उच्छ्० १००) स्नान।

मठोला (द्वा० २४) छोटी मटकी।

मतंगज (ज० व० ६०, प० प्र० ६१) हाथी।

मतिमन्य (श० १६) बुद्धिमान।

मत्सरी (ज० भा० ३३१) जलने वाला, द्वेषी, मत्सर-युक्त।

मत्स्यन्याय (द्वा० ११३) बड़ी मछली द्वारा छोटी मछली को खाया जाने वाला न्याय अर्थात् सबलों द्वारा निर्बलों का उत्पीड़न, शोषण।

मत्स्यराज (सै० ६) मत्स्य देश का राजा, विराट।

मदकल (सा० ११८) मतवाला।

मदर्थ (ज० भा० ३०६) मेरे लिए।

मदार (हि० १५३) आक का पौधा।

मदीया (ज० भा० ३०३) मेरी।

मदोदक (भा० भा० ६८) शराब, मदिरा।

मधुपर्ण (द्वा० १७२) मुलैठी, जिसके पत्ते मिठास से भरे हों।

मधु-मिष्ठ (दि० २२) अत्यन्त प्रिय।

मधूक (वि० प्रि० ६१) महुए का पेड़।

मध्या (सिद्ध० ६८) मध्या नायिका, वह लड़की जो रजस्वला हो चुकी हो, वह नायिका जिसमें काम और लज्जा समान हो।

मनःपूत (सिद्ध० १५) मनचाहा, मन को प्रसन्न करने वाला।

मनस्काम (कि० ४०) मनोकामना।

मनस्विता (रा० प्र० ३६) बुद्धिमानी, दृढ़ निश्चय।

मनःसाक्षित्व-विद्या (भा० भा० ३२) वह विद्या जिसके द्वारा दूसरों के मन में प्रवाहित विचारों को जाना जाता है (थॉट रीडिंग)।

मनुजात (दि० ६) मनु की सन्तान अर्थात् मनुष्य।

मनोद्वार (सिद्ध० ६३) मन के द्वार पर।

मनोमिष (शकु० ११) मन के भाव के बहाने से।

मयंक (उच्छ्० ७६) चंद्रमा।

मयूख (प० प्र० ६१) अग्नि की ज्वाला।

मराल (वि० प्रि० ३६) राजहंस, कारडंव, बादल।

माल्लियां (शकु० ७) माल्लिका, पत्रवल्ली, लता।

मशक (यु० ४६) मच्छर।

मसि-लेखा (सिद्ध० २१) हल्की-हल्की मूँछों की रेखा।

मसृण (कि० ३८) चिकना, कोमल।

महाभट्टारक (सिद्ध० २४) महाराजा, सेनाध्यक्ष, माननीय।

महावर गोर (रा० प्र० ११) लाख का रंग जिससे स्त्रियां पांव रंगती हैं।

महाव्रतों—लम्बे अनशन जिनके कारण गांधी जी की मृत्युसंभावना से भारतवासी आशंकित और चिंतित हो उठते थे।

महीरूह (प० प्र० ४८) वृक्ष।

महेरी (कि० १०) उबली हुई ज्वार।

महैश्वर्य (वि० प्रि० ६) महान ऐश्वर्य, धन-दौलत।

मागध (सा० ४०) एक प्राचीन जाति, इस जाति के लोग विरुदावली का वर्णन करते हैं।

माड़े (स्वस्ति० १६) मले, गंदा करे, पोते।

मातंग (हि० ११२) चांडाल।

मातुल (यु० ३६) मामा।

मानस-भावन (भा० भा० ६) मन-रूपी मंदिर।

मानसर (सिद्ध० ५६) मानसरोवर।

माया (वि० प्रि० ७१) परमेश्वर की अव्यक्त बीज-रूप शक्ति जो प्रपंच की कारणभूता है, संसारासक्ति, प्रकृति।

मायावी (वि० प्रि० ३१) माया करने या जानने वाला, जादूगर, फरेबी।

मारण (अनघ १२७) प्राण लेने की क्रिया या भाव, वह तांत्रिक प्रयोग जो किसी के प्राण लेने के उद्देश्य से किया जाता है।

मार्जनी (वैता० १३) झाड़ू।

मार्तंड (प० प्र० ६२) सूर्य।

मारुत (ज० व० ४५, उच्छ्० १६) वायु या वायुदेव।

माल्यकोश (सा० ४६०) मालकोश, इस राग को 'कौशिक' राग भी कहते हैं। इसकी गणना छः मुख्य रागों के अंतर्गत की जाती है। यह संपूर्ण जाति का राग है। इसका स्वरूप वीररसयुक्त, रक्त वर्ण, वीर पुरुषों से आवेष्टित, हाथ में रक्त वर्ण का दंड लिये और गले में मुंडमाला धारण किये लिखा गया है। इसकी ऋतु शरद और समय रात का पिछला पहर है।

माहुर (उच्छ्० १३१) विष, जहर।

मिचकना (द्वा० १३७) आंख-मिचौली खेलने के हेतु।

मिचकी (सा० ३५०) छलांग।

मित्रचक्षु (अं० अ० ६) मित्रता का भाव।

मिलिन्द (म० घ० ६४, भ० ११८) भौंरा।

मिस (ज० व० ३२) ब्याज से, बहाने से।

मिसा (अजित० १२) मिस्सा, अनेक अनाजों का मिश्रित आटा।

मिहिर (ज० भा० १७१) चंद्रमा, सूर्य।

मीनाक्षी (शकु० २१) मछली की आंखों जैसी।

मुंड़चीरा (ज० भा० ३२१) लेनदेन में झगड़ा या हठ करने वाला।

मुकुल (उच्छ्० ४६) कली।

मुखप्रिय (प० प्र० ३६) नारंगी।

मुग्धा (सिद्ध० ६८) यौवन प्राप्त सरल स्वभाव वाली नायिका।

मुक्ताधार (सिद्ध० १२६) मोतियों को धारण करने वाले।

मुजरा (सिद्ध० ११५) राजाओं आदि के सामने जाकर सलाम करना, नाच।

मुरज (सा० ४०, स्व० सं० १३) मृदंग, पखावज।

मुस्तक गंध (ज० भा० १५६) कस्तूरी की गंध।

मुस्तकगंधा (सा० १५३) नागरमोथे की-सी गंधवाली।

मुहितास्मित (गुरु० ६१) मुग्ध होकर मुस्कराने लगे।

मूर्च्छना (सिद्ध० ७६, म० घ० २४०, उच्छ्० ३६) वीणा के सातों तारों का क्रम से आरोह, अवरोह।

मूसना (ज० भा० ३२१) चुराना, चुरा कर ले जाना।

मृगव्य (हिडि० १६) मृगया, शिकार।

मृगांक (न० १८) चंद्रमा।

मृगाधिप (रंग० ३६) सिंह, शेर।

मृत्तिका (सिद्ध० ५५) मिट्टी।

मृदु (प० प्र० ३६) अमरूद।

मृषा (सिद्ध० २६) झूठ-मूठ, वृथा, मिथ्या।

मेघ वाहन (ज० व० ५६) इन्द्र का एक नाम।

मेदिनी-तल (रंग० १६) भूमि के नीचे, जमीन के अन्दर।

मेदुर (ज० भा० १५६) अतिशय चिकना, मोटा।

मेष (हि० ७५, श० २४) मेढ़ा।

मौर्वी (ज० व० ६१) धनुष की डोरी।

य

यकृत (उच्छ्० ८७) जिगर।

यमदिशा (हि० ७७) दक्षिण दिशा।

यमुना स्तम्भ (भा० भा० ६६) कुतुब मीनार। कहते हैं पहले-पहल यह पृथ्वीराज ने अपनी कन्या के लिए यमुना-दर्शन हेतु बनवाया था ताकि वह प्रतिदिन प्रातःकाल उस पर चढ़कर यमुना के दर्शन कर सके। बाद में कुतुबुद्दीन ने इसका शिखर तोड़कर मुसलमानी ढंग से बनवाया और उसे अपने नाम से प्रसिद्ध किया।

यव (ज० भा० ४३३) जौ।

यवद्वीप—वर्तमान जावा द्वीप।

यवनिका (गुरु० १३६) पर्दा।

यशोधवलित (रंग० ३६) कीर्तियुक्त।

यांचा (सै० १६) प्रार्थनापूर्वक माँगना।

याग (न० ३६; स्व० सं० १३३) यज्ञ।

याज्ञसेनी (सै० ३८) द्रौपदी का एक नाम।

यादवी गति (अं० अ० १६) परस्पर लड़ने और मरने-मारने की नीति जो यादवों ने अपनायी थी और जिसके कारण यादव-वंश नष्ट हुआ था।

यूप (द्वा० ७२) यज्ञ का वह स्तम्भ जिससे बलि पशु बाँधते थे।

योगत्रय—भक्तियोग, कर्मयोग, संन्यासयोग।

र

रंगिणी (सिद्ध० ७७) राग-रंग में प्रवीण स्त्री।

रंचक (उच्छ्० २६) थोड़ा-सा।

रंजक (न० ३६) आनंददायक।

रंधन (स्वस्ति ६६) रसोई या भोजन बनाना।

रक्तसार (उच्छ्० ११४) दूध।

रजःप्रभञ्जन (दि० १६) धूल-भरी आँधी, तूफान।

रत्न-दोष (सिद्ध० ७७) रत्न से होने वाला अनिष्ट।

रपट पड़े की हर गंगा (गुरु० २१५) सयोग से कोई काम बन जाना।

रममाण (शकु० १२, उच्छ्० ५१) रमण करने लगा, विलास या क्रीड़ा में रम गया।

रसराज (रंग० १२) शृंगार रस।

रसातल (श० ११) पृथ्वी के नीचे सात लोकों में से छठा लोक।

रसूल (हि० ९८) ईश्वर का दूत।

रहँटी (कि० १०, १५) रुपया उधार लेने का एक ढंग विशेष जिसमें प्रतिमास किस्तों में रुपया वसूल किया जाय।

राका (प० प्र० १३) शरद्पूर्णिमा।

राजन्यजात (ज० भा० ५२) राजपुत्र।

राजप्रसू (सिद्ध० १८) राजमाता।

राजसूय यज्ञ (यु० ३८) यज्ञ विशेष जिसे कराने से किसी राजा को सम्राट् कहलाने का अधिकार मिल जाता था।

राता (न० ४६) रँगा हुआ, लाल।

राष्ट्रसभा (रा० प्र० १६) संसद, पार्लियामैन्ट।

रीं रीं करना (हि० २०) रिरियाना, गिड़गिड़ाना।

रुज (द्वा० १५५; प० प्र० ३५) रोग, कष्ट।

रुदंती (सा० २६८) १. रोती हुई। २. रुदंती नामक औषधि, जिसके विषय में कहा जाता है कि यदि इसका रस ताँबे पर मल दिया जाए और उस ताँबे को आग में तपा लिया जाए तो ताँबा सोना बन जाता है।

रुधिराप्लुत (द्वा० १११) रक्त से सना।

रूढ़ (सिद्ध० १२३) प्रचलित, कठोर, कड़ा।

रूपजीवा (वि० प्रि० १०२) वेश्या।

रूपभाजन (सिद्ध० ५६) सौंदर्य का घर।

रूरा (द्वा० ८६) अच्छा, अनोखा।

रूषित (द्वा० १२४) धूल आदि से भरा।

रोहित (ज० व० ७७) इन्द्रधनुष।

रौप्य-खंड (सिद्ध० ११) चाँदी का सिक्का, धन।

रौरव (उच्छ्० १०९, द्वा० ९२, भू० भा० ८) नरक।

ल

लंकासुर (हि० १२३) लंकाशायर नगर जो वस्त्र बनाने की मिलों के लिए विख्यात था।

लक्षक-लेख (दि० २७) सबका मार्गदर्शन करनेवाला सिद्धान्त।

ललाम (रंग० ६ प० प्र० २) सुंदर।

लवणासुर (अं० अ० ३१) नमक कानून। अंग्रेज सरकार ने नमक पर कर लगाया। गांधी जी ने उसका विरोध किया और नमक-सत्याग्रह कर अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिये।

लांगल (यु० ४६) हल।

लांछना (सै० ४१) दोष, कलंक, निन्दा।

लासानी (प० प्र० ५६) अनोखा, अद्भुत, जिसकी तुलना न हो सके।

लीते (स्वस्ति ४८) मग्न, डूबे हुए।

लुंज-पुंज (सिद्ध० ३४) विकलांग।

लुंठन (गुरु० ७०) लूटना, धन छीनना।

लुंठित (रंग० २०) भूमि पर लोट जाना, लुढ़कना, गिरना।

लूक (सा० ४३४, प्र० ५६, ज० भा० ३५६ झं० १५७) आग की लपट।

लूम (सिद्ध० ५७) डोलता हुआ, दुम, पूँछ।

लोष्ठ (सिद्ध० १५) ढेला, टुकड़ा।

लोहित दशा (ज० भा० ३१४) लाल-लाल अंगार बनी आँखों से।

व

वंग-सिन्धु—बंगाल की खाड़ी।

वंदीजन (सा० ४०, ज० व० ५५) राजाओं आदि का यश-वर्णन करने वाली एक प्राचीन जाति।

वदान्यता (ज० भा० ३२६, भा० भा० ७४, १६३, हि० ९७) उदारता, दानशीलता, मधुर भाषण।

वन-रुदन (व० सं २३) अरण्य-रोदन, बकवास।

वनानी (ज० भा० ३३) वन, जंगल।

वनिका (ज० भा० १८३) छोटा वन।

वपु (शकु० २०) शरीर।

वर्म्म (स्व० सं० ९३) कवच।

वयोविस्तार (ज० व० ३४) आयु पूरी होना।

वरवाम (ज० भा० १६२) अभिशाप।

वराक (ज० भा० ३५६) दीन, दयनीय, बेचारा।

वराटक (प० प्र० १०) कमल-बीज-कोष।

वरुण (दि० १२) जल का देवता।

वरुत्र (शकु० २१) मुख।

वरूथप (द्वा० ४३) सेनापति।

वल्कल (शकु० ६) पेड़ की छाल का कपड़ा।

वल्मीक (वि० वे० २) दीमकों द्वारा लगाया हुआ मिट्टी का ढेर। बाँबी।

वल्लकी (न० २१) वीणा।

वल्लभ (सै० २१) भीम का अज्ञातवास के समय का एक नाम।

वल्ली (रंग० २३ मं० घ० २७३) सुकोमलता।

वसनवह्नि (सै० ८) ढकी हुई या छिपी हुई आग।

वहिर्गता (न० ६५) विधि द्वारा इन्द्र से वियुक्त, बाहर गई हुई।

वाक्य-बीज—सूत्र रूप में कहा गया कथन; सिद्धान्त-सूत्र।

वाकोवाक्य विद्या (भा० भा० ३०) तर्कशास्त्र।

वाग्मि (ज० भा० २२०) भाषण-पटु, सुवक्ता पंडित।

वाचक (ज० व० ७) पाठक।

वाणी—गुरुवाणी, गुरुओं के उपदेश जो गुरु ग्रंथसाहब में संकलित हैं।

वाणी-विश्राम (गुरु० ३३) राम नाम जिसकी धुन से बापू को मानसिक शांति प्राप्त होती थी।

वातूल (स्वस्ति ३६, मं०ध० २३२, उच्छ्० ७७) उन्मत्त पवन, तूफान।

वादी (द्वा० ७७) राग का मुख्य स्वर।

वापी (गुरु० ५६) बावड़ी, सरोवर।

वाम पंथी (रा० प्र० ३३) शासक दल के विरोधी साम्यवादी।

वामा (सिद्ध० ३) स्त्री।

वामिनी (ज० भा० ३१६) आज्ञा का उल्लंघन करने वाली नारी, अवमानना करने वाली।

वामी (सिद्ध० ३) घोड़ी।

वायव्य (ज० भा० ६१) वायु-अस्त्र।

वार्त्तावह (काबा० ६६, सिद्ध० २६) दूत।

वासकसज्जा (वि० प्रि० ७८) शृंगार करके नायक की प्रतीक्षा में बैठी नायिका।

वासरांत (न० ४८) संध्या काल, दिन का अन्त।

वासव (श० ११) इन्द्र का एक नाम।

विकच (श० १०) खिली हुई।

विक्रांत (व० वै० १५, द्वा० १५१) योद्धा, साहसी।

विक्षेप (व० वै० ३६) बाधा, विघ्न।

विग्रह (स्व० सं १०३, दि० १४) युद्ध, संघर्ष।

विघटित (ज० भा० ३१२) परिवर्तित होना, विशेषरूप से घटित होना।

विघूर्ण (श० ६) घूमते हुए, चंचल।

विचक्षण (भू० भा० १६) चतुर, पारंगत, कुशल।

विजयस्थूण (हि० ३५) लोहे का खम्भा जो विजय की स्मृति में स्थापित किया जाय।

विज्ञता (रंग० ३२) विवेक, समझदारी, चतुराई।

विटचर (प० प्र० ६०) मल, विष्ठा खानेवाला।

वितण्डा (वि०प्रि० १४) अपने पक्ष की स्थापना, झगड़ा।

वितान (ज० व० ४७) चंदोवा, शामियाना।

वितुण्ड (श० १२) हाथी।

विदग्ध (सिद्ध० ६५) कुशल।

विदीर्ण (ज० व० १६) फटना।

विद्या-व्यासंग (हि० २४) विद्या-प्रेम।

विद्युद्द्रष्टा (ज० भा० १५४) बिजली की कौंध वाली निगाहों से देखने वाला।

विद्युद्दाम (ज० व० १२) बिजली की चमक।

विद्युद्वह्नि (पत्रा० ५) बिजली की चमक और प्रकाश।

विधि-वाद (मं० ध० २८७) तर्क-वितर्क, साम्प्रदायिक बहस।

विधेय (ज० भा० ४०) प्राप्य, अधीन।

विनिपात (ज० भा० २४) विनाश, पतन।

विन्यस्त (हि० ८८, दि० ७) सुरक्षित, सुव्यवस्थित।

विपणि (ज० भा० ३३) बाजार, जहाँ वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता है।

विपन्न (हि० ४२) विपत्ति में पड़ा हुआ।

विभावसु (ज० भा० १४२) सूर्य, अग्नि।

विभास (श० २०) कांति, चमक।

विभ्राट् (वि० वे० २३, ज० भा० ५६, हि० १६०) भयंकर विपत्ति, उपद्रव, बखेड़ा।

विबुध (श० २५) देवता।

विमुद (ज० व० ७८) निरानन्द, खिन्न।

विरंचि (ज० भा० ३२६) ब्रह्मा।

विरुदावली (ज० व० ५५, सा० ४०) किसी के गुण, प्रताप, पराक्रम आदि का सविस्तार वर्णन। यश-कीर्त्तन।

विरोग (ज० भा० २८७) आरोग्य, स्वस्थ।

विशिख (ज० व० ७४, ८४) बाण।

विश्री (श० २२) श्रीहीन, कांतिहीन, श्री हरने वाली।

विश्रुत (द्वा० २१०, गुरु० ५५) प्रसिद्ध।

विश्लेष (प० प्र० ६६) बिछोह, पार्थक्य, वियोग।

विश्वेश के बाहुज (भा० भा० १२०) क्षत्रिय, माना जाता है कि क्षत्रिय परमपुरुष की भुजा से उत्पन्न हुए हैं।

विषण्ण (न० २६) खिन्न, दुःखी।

विषाण (श० १७) सींग।

विष्णु पद (वि० प्रि० २६) गया में विष्णु के चरण-चिह्न।

विष्णुपदी (प० प्र० ३८) गंगा क्योंकि माना जाता है कि वह विष्णु के पदों से निकलकर ब्रह्मा के कमंडुल में आयी और फिर वहाँ से निकलने के बाद शिव ने उसे अपनी जटाओं में धारण किया।

विस्फुरण (सिद्ध० १११) कौंध, चमक।

विस्फोट (हि० १६६) विषैला फोड़ा।

विहंगम (झं ८६) पक्षी।

विहाग (झं १५६) एक राग विशेष।

विहार-विभ्राट (अं० अ० २०) उपद्रवपूर्ण मनोरंजन, ऐसा मनोविनोद जो दूसरों के लिए क्लेशदायक हो।

वीचि (उच्छ्० ६०) लहर।

वृन्त (उच्छ्० ५३, द्वा० १७२) डंठल, बौंडी।

वृक (द्वा० ६२) भेड़िया।

वृकोदर (व० सं० ५५, सैं० ३६) भीम का एक नाम।

वृत्त-रचना (सिद्ध० ५८) काव्य-सृजन।

वृषभानुजा (प० प्र० २६) राधा।

वृषलप्राय (हि० ६३) शूद्र के समान।

वृष्णि (यु० ४६) यादव, कृष्ण का वंश।

वेला वराकी (स्वस्ति ३६, मं० ध० २३२) दुर्बल तट, किनारा, बेचारा।

वेष्ठित (ज० व० ३६) घेरा हुआ।

वैकुण्ठ (ज० भा २६८) श्रीकृष्ण, स्वर्ग।

वैजयन्त (सा० २२, श० २५, न० २४) इंद्र की पुरी, इंद्र का प्रासाद।

वैतनिक (प० प्र० १०८) वेतन पाने वाला, सीमित आय वाला।

वैतरणी (उच्छ्० १००, भा० भा० ११३) एक पौराणिक नदी जो पृथ्वी और यमलोक के बीच स्थित बताई जाती है और जिसे पार करने के लिए मृत्यु के समय गो-दान किया जाता है ताकि मृत व्यक्ति उसकी पूँछ के सहारे इस नदी को पार कर ले।

वैतालिक (सा० ४०) वह स्तुति-पाठक जो स्तुति करके राजा को जगाता था।

वैदूर्य (सा० ३५) एक प्रकार का रत्न, जिसे 'लहसुनिया' कहते हैं।

वैनतेय (ज० भा० ३५६) गरुड़।

वैमात्रेय (ज० भा० १२८) सौतेला भाई।

वैर-शुद्धि (रंग० ३१) प्रतिशोध, शत्रु से बदला लेना।

वैर-शोधन (ज० व० ८) वैर चुकाना, बदला लेना।

वैश्वानर (दि० १२) अग्नि।

वैष्णव (वि० प्रि० ४६) विष्णु के उपासक।

व्यजन (सिद्ध० २) पंखा।

व्यामोह (ज० भा० ३७०) अज्ञान, मोह।

व्याली (शकु० ३४, झं० ८०) सर्पिणी।

व्यूढ़ (श० १२) विशाल, दृढ़, व्यवस्थित।

व्यूह (ज० व० ६१) युद्ध-भूमि में सैनिकों की विशेष स्थापना, सेना का विन्यास।

व्योमकेश (भा० भा० १६६) शिव।

व्रतवर्य (दि० १६) पवित्र व्रत।

व्रीड़ित (ज० भा० ६६) लज्जित।

श

शंपा (सैं० ३२, प० प्र० २६) विद्युत, बिजली।

शक्र (भा० भा० ५०, प० प्र० २५) इन्द्र का एक नाम।

शक्र-शरास (सा० २२) इन्द्रधनुष।

शकुंत—पक्षी, चिड़िया।

शकुनि (प० प्र० १२२) पक्षी।

शफर (झं० १६०) मछली।

शबर (ज० भा० ५२, सि० १३, गुरु० १६०) दक्षिण भारत की एक पहाड़ी जनजाति, शिव, शिकारी।

शर्वाणी (श० १६) शक्ति, दुर्गा, शिव की पत्नी पार्वती।

शल (सा० १५३) ऊंट।

शलाका (हि० १२) सलाई, पंक्ति।

शल्य (सा० १५३) हड्डी।

शव-साधन (दि० १६) श्मशान में शव पर बैठकर साधना करना, श्मशान जैसा भयानक वातावरण।

शष्प (स्वस्ति १३) नई घास।

शाक्त (वि० प्रि० ४६) शक्ति का उपासक जो पूजन के लिए देवी को बलि देना आवश्यक मानता है तथा मद्य, मांस आदि को अग्राह्य नहीं मानता।

शाखोच्चार (रा० प्र० १४) प्रजातांत्रिक चुनाव में चुनाव लड़नेवाले नेता की आगे-पीछे, खानदान, रिश्तेदार-सम्बन्ध आदि के विवरण का उच्चारण।

शाटिका (हिडि० १३) साड़ी, वस्त्र।

शाण (व० सं० १३, हि० १६६) कसौटी। एक पत्थर जो हथियार और औजारों पर धार रखने के काम आता है।

शाल (प० प्र० २५) एक वृक्ष विशेष।

शास्ति (उच्छ्० ५१) आज्ञा।

शिक्षक का इंगित (अं० अ० १८) एक बार कक्षा में परीक्षा के समय शिक्षक ने गांधीजी को वर्तनी शुद्ध करने का संकेत किया था, पर गांधीजी ने बेईमानी नहीं की।

शिरोरुह (सा० ३१) सिर के बाल।

शिविका (न० ५६) पालकी, डोली।

शुक्ति (उच्छ्० ५८) सीपी।

शुद्धि—आर्यसमाज द्वारा चलाया गया एक आन्दोलन जिसमें प्रलोभन या आतंक से ईसाई या मुसलमान बने

हिन्दुओं को पुन: हिन्दू धर्म में दीक्षित किया जाता था।

शिवाएं (गुरु० १५४) शृगाल, गीदड़।

शुद्धान्त (सा० १९१) अंत:पुर।

शूल (सा० ४३८) इस शब्द का प्रयोग दो भिन्न अर्थों में किया गया है :

(१) वायु के प्रकोप से पेट या आंतों में होने वाली एक प्रकार की प्रबल और विकट पीड़ा, जो बरछी की तरह चुभती हुई जान पड़ती है। ('मारक गुल्प, विदरक शूल'—सा० ४३८)

(२) (सा० ४३९) बरछे की तरह का एक अस्त्र 'शेल-शूल, असि-परशु, गदा-घन'—

श्राद्ध (वि० प्रि० २१) पितरों को तर्पण या पिंड दान।

श्रुतिनिधि (ज० भा० ३१०) वेदज्ञ, कृष्ण का एक विशेषण।

श्रुतिपद्धति—वेद-शास्त्रों द्वारा बताया जीवन-मार्ग।

श्रुतियान (वि० प्रि० १२) श्रुतियाँ रूपी जहाज।

श्रोत्रिय (द्वा० ३५) वेदज्ञ, वेदाध्ययनकर्त्ता, ब्राह्मणों की एक शाखा।

शैवल (ज० भा० २२४) शैवाल, काई।

शोथ (अनघ ९७) सूजन। किसी अंग का फूल या सूज जाना।

श्मश्रु (श० ४५) मूंछ, दाढ़ी।

श्यामा (ज० व० ५४) कोयल।

श्वपच (मं० घ० २०८) चांडाल।

श्वपदांकित (हि० १४०) कुत्ते के पैर का चित्र अंकित करवाकर निष्कासित करने की प्रथा।

श्वापद (यु० २२) जंगली, बर्बर, डरावना, भयंकर, हिंसक पशु के समान।

ष

षोडश विधि-पूजन—देव पूजन के सोलह अंग—आसन, स्वागत, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, चंदन, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा और वंदन।

स

संकुल (यु० ६) घना, प्रचंड।

संगर विनोद (सिद्ध० ११२) संघर्ष, युद्ध।

संघट्ट (श० १२) संघर्ष, मुठभेड़।

संघर्षण (सिद्ध० ९१) रगड़ने की क्रिया, मारकाट।

संज्ञाहीन (सिद्ध० ७१) मूर्छित।

संधान (ज० व० ८४) निशाना लगाना।

सनीर (श० २४) अश्रुपूर्ण।

संपुट (झं० ११२) दोना, अंजलि, मुख, कोश।

संपुटिकता (द्वा० १७२) अंजलि, रत्न-मंजूषा।

संभवा (सिद्ध० ५५) उत्पन्न हुई।

संप्रति (ज० व० ५) अब, इस समय।

संप्राप्ति (रंग० ३६) सम्यक् प्राप्ति, सफलता, उदय।

संभ्रान्त—भ्रम में पड़ा हुआ, चकाचौंध, विभ्रम में पड़ा हुआ।

संवादी (द्वा० ७७) संगीत में वह स्वर जिसका वादी से मेल हो और जो राग-विशेष में वादी से कम पर अ[न्य] स्वरों से अधिक महत्त्व रखता हो।

संस्था-विहीन—मर्यादाविहीन।

सकड़े बैठे हैं (स्व० सं० ४८) संकीर्ण मनोवृत्ति के ए[वं] स्वार्थलोलुप हो उठे हैं।

सक्तु (ज० भा० ४३३) सत्तु।

सटकना (झं० १३५) चुपके से निकल भागना।

सटायें (ज० भा० १५९) सुअर के बाल, जटा।

सत्तम (ज० भा० १५०) सर्वश्रेष्ठ, परमपूज्य।

सत्यधन (काबा० ९०) सत्य को ही अपना धन मान[ने] वाला व्यक्ति।

सत्यवंशी (कि० ३२) आचार-व्यवहार व वेशभूषा स[भी] में पवित्र भाव रखने वाला।

सत्यानृत (रा० प्र० १०) सत्य और झूठ।

सत्त्व (हि० २५) प्राण, शक्ति, उद्यम।

सत्वर (प० प्र० १०५) शीघ्र।

सद्द (अजित १२) सद्य, तत्काल।

सद्म (उच्छ्० ११९) भवन, घर।

सन्नध (हि० ४९) उद्यत, तैयार।

सन्नाह (काबा० ५९) कवच।

सन्निधान (प० प्र० ५१) समीपता, निकटता।

सपत्न (कु० गी० २४, गुरु ७५) बैरी, सपत्नी या सौ[त] की तरह का द्वेष और वैर रखने वाला।

सपदि (रा० प्र० २३) शीघ्र, तत्काल, तुरन्त।

सप्त स्वर (न० २४) संगीत का सप्तक—सा रे ग मा पा धा नि।

सभ्य (रंग० ११) सभासद, दरबारी।

सम (ज० भा० २८०) संगीत-शास्त्र का शब्द जिसक[ा] अर्थ है—संगीत में वह स्थान जहाँ लय की समाप्ति और ता[ल] का आरम्भ होता है।

यहाँ युद्ध के संदर्भ में प्रयुक्त है अर्थात् संगीत सिखला[ने] के साथ-साथ समान भाव से सुशर्मा से युद्ध करूँगा।

समधिक (द्वा० २१८) एक से अधिक, बराबर [या] अधिक।

समभक्त (दि०) परस्पर भक्ति, विश्वास और आस्थ[ा] रखने वाला।

समर-संक्रुद्ध (ज० भा० ३११) युद्ध में क्रोधित वीर।

समराग्नि (ज० व० १) युद्ध की आग।

समरोत्कर्ष (ज० व० २) युद्ध में होने वाली उन्नति अथवा यश।

समवाय (झं० १२०) भीड़, समूह, नित्य संबंध।

समशीतोष्ण-भाव (वि० प्रि० ६३, ज० व० ९४) एक जैसा समान भाव।

समष्टि (सिद्ध० ११८, १२७) व्यष्टि का विलोम, समूह

समारंभ (सिद्ध० ३२) अच्छी तरह आरम्भ होना समारोह।

समुद्यत (सिद्ध० ४७) अच्छी तरह से तैयार।

सरसीरुह (व० सं० ५५) कमल।

सरीसृप (सिद्ध० ३८) रेंगने वाला कीड़ा, सांप आदि।

सर्ग (श० २२) सृष्टि, अध्याय, प्रकरण, परिच्छेद।

सर्वसहा (व० सं० ३६, भू० २७) सबकुछ सहने वाली।

सर्वेपदा हस्तिपदे (वि० प्रि० १५) हाथी के पैर में सबके पाँव।

सलटना (रा० प्र० ४२) समाधान मिलना, सुलझना।

सलील (हि० २६) लीला सहित।

सवाई (कि० १५) सूद लेने का एक प्रकार जिसमें मूलधन अपने चतुर्थांश से युक्त हो जाता है।

ससंभ्रम (सिद्ध० २१) शीघ्रता में, सादर।

सस्मित (सिद्ध० ६६, १२२) अल्पहास युक्त।

सहकार (भा० भा० १६०) आम।

सहचरी (ज० व० १६) पत्नी, सखी।

सहचार(न०४८)संग-साथ, मित्रता, साथ-साथ चलना।

सांग (द्वा० ३४) प्रत्येक अवयव से पूर्ण।

सांगोपांग (सिद्ध० ६७) अंगों, उपांगों और उपनिषदों से युक्त, अंगों से युक्त, पूर्ण।

साकल्य (गुरु० १३०) हवन की सामग्री।

साका (सिद्ध० ३४, वैता० ३०, गुरु ७२) शाका, संवत, कीर्ति-स्मारक, रोब, दबदबा, कोई कठिन कार्य जिससे कीर्ति प्राप्त हो।

सात्विक (वि० प्रि० १२) सत्व गुण प्रधान, ईमानदार, नेक।

साध्वी (सिद्ध० ७६) पतिव्रता स्त्री, धर्मपरायण स्त्री।

सामुद्रिक विद्या (भा० भा० ३६) वह विद्या जिसमें शरीर के चिह्नों द्वारा व्यक्ति के स्वभाव-गुणों आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

सायत (रा० प्र० ३६) साइत, मुहूर्त, लग्न।

सार (सिद्ध० ८७) लोहा।

सार-घाट (सिद्ध० २६) तलवार के घाट उतारना, उचित स्थान पर पहुँचना।

सार-धार (ज० भा० ३५६) तलवार की धार।

सारमेय (ज० भा० ५४) कुत्ता।

सारस्वत (गुरु १२८) विद्वान, पंडित।

सालना (झं० १४१) चुभना, पीड़ा पहुँचाना।

सिंजित (सा० २३) ध्वनि, आवाज़।

सिंहनाद (ज० व० ७१) शेर की दहाड़।

सिरोही (सिद्ध० १६) तलवार।

सिरस्त्राण (सिद्ध० ३) युद्ध में शीश रक्षा के लिए पहना गया टोप—हैलमेट।

सीठा (द्वा० ४५) फीका, नीरस।

सीमंत (श० २०) सिर में निकाली हुई मांग, हद, सीमा-रेखा।

सुकृत (ज० व० ६२) पुण्य, सत्कर्म, सौभाग्य।

सुकृति (ज० व० १८, दि० १३) सत्कर्म, पुण्य, मंगल।

सुकृती (सिद्ध० १४) धार्मिक, पुण्यात्मा, भाग्यशाली।

सुखसाखा (सिद्ध० ५५) सुख देने वाले वंश का जन्म।

सुगत (न० ५३) सद्गति प्राप्त।

सुग-सुग (रा० प्र० १२) सुगबुगाहट, हल्की सी चर्चा।

सुगांगतट (ज० भा० १७८) गंगा का सुन्दर तट या किनारा।

सुतघातक (ज० व० ५८) पुत्रहन्ता।

सुधांशु (सिद्ध० १०७) चन्द्रमा।

सुनाद (सिद्ध० २३) सुन्दर ध्वनि।

सुपास (प० प्र० १२४) चैन, सुख, सुविधा।

सुमंजु (सिद्ध० ३४) सुन्दर।

सुरावट (सा० ४०) स्वरों का विन्यास उतार-चढ़ाव।

सुवर्णों में जड़े (रंग० ३४) सोने में जड़े, सुन्दर अक्षरों में लिखे।

सुसह्य (सिद्ध० ८१) जिसे सरलता से सहन किया जा सके।

सुस्थान (ज० व० ४३) पवित्र स्थान।

सुस्मित वदन (ज० व० ५०) मधुर हास्य-युक्त, मुस्कराना।

सुहागभरी (सिद्ध० ७६) सौभाग्य से भरी हुई, सौभाग्य-मय, सुख-सौभाग्य युक्त।

सूत(सा० ४०, १८२)भाट, चारण, सारथि, रथ हाँकने वाला।

सूत्रधार (वैता० १८) नाटक का संचालक, भारत का भाग्य-विधाता जिसने भारत की नियति-नटी को नया नाटक खेलने की प्रेरणा दी और भारत परतंत्रता से मुक्त हो स्वतंत्र राष्ट्र बन गया।

सूपकार (सैं० २३) रसोइया, पाचक।

सूरि (हि० १६७) पंडित।

सृति (वि० वै० १२, अं० अ० २२) मार्ग, पंथ।

सेवनीय (सिद्ध० १३) आराध्य, पूज्य, सेवा-योग्य।

सोहनाद (हि० ३३) मैं ही ब्रह्म हूँ, यह वाणी।

सौकर्य (गुरु० ६८) सुविधा, सुकरता।

सौम्य (सिद्ध० ६) रमणीक, प्रिय, मांगलिक, शुभ, प्रसन्न।

सैरिभ (ज० भा० १५६) महिष, भैंसा।

सौरभेयी वंश (प० प्र० २७) गायों का समूह।

स्तूप (श० १०) शिखर, ढेर, राशि, ढूह।

स्तैन्य (ज० भा० १३१) चोर, लुटेरा।

स्थाणुमूर्ति (मं० घ० २८१, झं० ३३) स्थिर, अचल।

स्थितप्रज्ञ (ज० भा० ३६५) गीता के अनुसार जिसका मन निर्विकार हो तथा जिसके मन में मोह-द्रोह, राग-रोष, भय, सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन-मरण आदि का भाव न हो।

स्नुषा (ज० व० ६) बहू।

स्फुलिंग (सिद्ध० ३६) अग्निकण, चिंगारी।

स्फोट (ज० व० २६) फूटकर निकलना, फटना, विस्फोट।

स्मर-समर (भा० भा० ११२) कामदेव का अखाड़ा, शृंगार रस का वर्णन करते हुए रीतिकाल के कवि नायक-नायिका के बीच होने वाली काम-क्रीड़ा को युद्ध का रूप देते थे।

स्रस्त (श० १५) च्युत होना, खसना, पतित, गिरना, भयभीत होना, धंसना।

स्यन्दन (मं० घ० १०४) रथ।

स्वजन (उच्छ्० १८) संबंधी, मित्र।

स्वप्नाविष्ट (न० ४६) निद्रालु, स्वप्न से अभिभूत, स्वप्नों में खोया।

स्वभू (ज० व० ८६) श्रीकृष्ण, स्वयं उत्पन्न होनेवाले।

स्वस्तिवाद (ज० व० ४६) कल्याण हो, इस अर्थ का आशीर्वाद।

स्वांग (न० ६१) नाटक, करतब, रूप धारण करना।

स्वान (ज० भा० ३६) ध्वनि, शब्द।

स्वानुरागिणी (ज० भा० ३६) अपने में अनुरक्त या लीन।

स्वारस्यार्थ (न० ३५) सहज स्वाभाविक रस के लिए, स्वाभाविकता हेतु।

स्वार्थ-संथियों (अं० अ० २४) स्वार्थ का पाठ पढ़ने वालों, स्वार्थ-मार्ग पर चलने वालों।

स्वेदमना (सिद्ध० ५७) पसीने का अंश।

स्वेदाम्बु (प० प्र० १४) पसीना।

ह

हँसली (कि० २६) स्त्रियों का एक गहना जो गले में पहना जाता है।

हड़, हरड़ (वि० प्रि० १०) एक पौधे का फल जो औषधि और मुखशुद्धि के काम आता है।

हतचेत (ज० व० २२) बेसुध, संज्ञाहीन।

हतप्रभ (श० २१, हि० ६१) तेजहीन।

हतभागिनी (ज० व० ३६, ७६) बदकिस्मत।

हतहाव (व० वै० ३६) जिनके आह्वान और पुकार नष्ट या विफल हो गए हों।

हदीस (गुरु० १२०) मुसलमानों का धर्म-ग्रन्थ जिसमें मुहम्मद साहब के वचनों का संग्रह है और जिसका व्यवहार बहुत-कुछ स्मृति के रूप में होता है।

हम्बा (वि० प्रि० ४५) संबोधन, हाय अम्बा, हाय माँ।

हयमेध (ज० व० ३) अश्वमेध-यज्ञ।

हरहारी (वि० प्रि० ६८) अन्त में हार कर।

हरिद्रा (रंग० २६) हल्दी।

हर्त्ता (ज०व० ६१) हरण करनेवाला, नष्ट करनेवाला।

हर्म्य (भू० भा० २०) महल, प्रासाद।

हर्यक्ष (काबा० १०२) भूरी आँखों वाला।

हला (वि० प्रि० १७) सखी।

हलीहाली(यु० ४८)हल धारण करने वाला, बलराम

हव्य (स्व० सं० १२) हवन-कुण्ड में डाली जाने वा सामग्री।

हहरे (स्व० सं० ५६) काँपना, भयभीत होना।

हाँक (सिद्ध० ४१) जोर से बोलकर किसी को पुका की क्रिया, हुंकार, गर्जन, ललकार।

हाटक (उच्छ्० ४०) सोना।

हाली (ज० भा० २८६) वर्तमान काल, सामयिक।

हिंसन (ज० भा० ४१४) हिंसा-भाव।

हिमकर-लेखा (कि० ३६) चन्द्रमा की किरण।

हिमाचल नन्दिनी (रंग० १०) पार्वती।

हिरौंजी (अजित० ७२) हिरमजी रंग की। हिरम लाल रंग की एक विशेष मिट्टी होती है जो कपड़े और दीव रँगने में काम आती है।

हींस (सिद्ध० २०) घोड़े की हिनहिनाहट।

हुत-होत्र (हि० ४४) होम, हवन।

हूक (सिद्ध० ८०) कसक, पीड़ा।

हूति (हि० १४६) पुकारना।

हूदना (ज० भा० २२२) रौंदना।

हूल (सिद्ध० ३६, स्व० सं० ६ उच्छ्० १६) पेल ठेलना।

हृत्पत्र (भा० भा० ६) हृदयरूपी कागज।

हृतपुत्रा (वि० प्रि० ८४) जिसके पुत्र का हरण लिया गया हो।

हृतरत्न (उच्छ्० ११५) जिसका रत्न छिन गया हो

हृद (सिद्ध० ७, ६६, न० ४०, उच्छ्० २६) सरोव

हृदयवल्लभ (ज० व० २०) प्राणप्रिय व्यक्ति।

हृदयस्थ (ज० व० ८८) हृदय में स्थित।

हृद्धाम (ज० व० ५) हृदयरूपी घर।

हेमनलिनी (सिद्ध० ५८) स्वर्णिम रंग की कमलिनी

हेरम्ब (सा० १६) गणेश।

हेला (वैता० १०) प्रेम-क्रीड़ा, विनोदसूचक मुद्रा।

हैम (सिद्ध० ३) सोने का बना।

होड़ाहोड़ी (सिद्ध० ६१) प्रतिस्पर्धा, प्रतिद्वंद्विता।

होत्री (द्वा० ३५) हवन करने वाला।

होमामोद (स्वस्ति १) हवन से निकलने वाली अम पूर्ण सुगंधि।

□□

मुद्रक : दुर्गा मुद्रणालय, सुभाष पार्क एक्सटेंशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२